कातंत्र - व्याकरण

हिन्दी टीका

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

प्रकाशक :

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला पुष्प नं० ८३

श्रीमद् शर्ववर्मआचार्य प्रणीत

कातन्त्र-रूपमाला

संस्कृत टीकाकार

श्रीमद् भावसेनाचार्य त्रैविद्य

हिन्दी अनुवादकर्त्री

गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

प्रकाशक

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

हस्तिनापुर (मेरठ) उ० प्र०

द्वितीय संस्करण | १९ नवंबर १९९२ | मूल्य :१००.०० रु०

११०० | मगसिर कृष्णा १० वी० नि० सं० २५१९

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित
वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत
कन्नड़, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल,
व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं बृहद् ग्रन्थों का मूल एवं
अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर
धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएँ
भी प्रकाशित होती रहती हैं।

आशीर्वाद एवं प्रेरणास्रोत :
परमपूज्य १०५ गणिनी आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

समायोजन :
आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

निर्देशन :
स्वस्ति श्री क्षुल्लक मोतीसागर महाराज

ग्रन्थमाला सम्पादक
कर्मयोगी बाल ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन

सिद्धान्त वाचस्पति, न्यायप्रभाकर, गणिनी आर्यिकारत्न

श्री ज्ञानमती माताजी

जन्म
टिकैतनगर (बाराबंकी उ.प्र.)
सन् १९३४ वि.सं. १९९१
असोज शु. १५ (शरद पू०)

क्षुल्लिका दीक्षा
आ० श्री देशभूषण जी से
श्री महावीरजी में
वि.सं. २००९ चैत्र कृ.१

आर्यिका दीक्षा
आ० श्री वीरसागर जी से
माधोराजपुरा (राज०) में
सं. २०१३ वैशाख कृ. २

जम्बूद्वीप हस्तिनापुर

विषय-सूची

मेरे उद्‌गार

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

सन् १९५३ में टिकैतनगर में प्रथम चातुर्मास होने के बाद आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज के संघ का विहार बाराबंकी, लखनऊ होते हुए पुनः महावीरजी अतिशय क्षेत्र की ओर हुआ। भगवान् महावीर के दर्शन कर संघ जयपुर आ गया। क्षु० विशालमतीजी संघ के साथ में थीं। मैं संस्कृत व्याकरण और सिद्धान्त आदि खूब पढ़ना चाहती थी, किन्तु अभी तक मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हो रही थी। इससे मेरे परिणामों में कभी-कभी बहुत ही अशांति हो जाती थी यहाँ तक कि कभी-कभी बैठे-बैठे मेरी आँखों में अश्रु आ जाते।

"भगवान् ! मुझे पढ़ने का साधन कैसे मिलेगा ? मेरी ज्ञान की बुभुक्षा कैसे शांत होगी ?"

मेरी यह स्थिति देखकर विशालमती माताजी आचार्य श्री के पास पहुँचकर सजल नेत्र करके मेरी वेदना सुनातीं और निवेदन करतीं—

"महाराजजी ! इसकी पढ़ाई का कुछ प्रबन्ध कीजिये।"

महाराजजी कहते—

"अम्मा ! इसकी इतनी छोटी उमर है अतः इसे खूब स्वाध्याय करके स्वयं ही श्लोक रट-रट कर याद करके अपने ज्ञान को बढ़ाना चाहिये, चिन्ता नहीं करना चाहिये।"

एक बार मैंने कहा—

"महाराजजी ! मैं सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ का स्वाध्याय करने बैठी, मूल संस्कृत पंक्तियों से अर्थ समझना चाहती थी किन्तु समझ में नहीं आया। मैं चाहती हूँ कि मुझे आप एक बार इस ग्रन्थ को पढ़ा दीजिये।"

महाराजजी ने कहा—

"आज तुम्हें मैं एक ग्रन्थ को पढ़ा दूँ किन्तु फिर भी हर एक संस्कृत के गन्थों को पढ़कर स्वयं अर्थ करने की क्षमता प्राप्त करने के लिये एक संस्कृत व्याकरण का पढ़ना बहुत ही जरूरी है।"

मैं तो स्वयं व्याकरण पूर्ण करना चाहती ही थी इस उत्तर से कुछ शांति मिली। पुनः विशालमती माताजी के अत्यधिक अनुनय-विनय से महाराजजी ने स्थानीय पण्डितप्रवर इन्द्रलालजी शास्त्री से कहा—

"पण्डितजी ! मेरी शिष्या वीरमती को आप संस्कृत व्याकरण पढ़ा दें।"

पण्डितजी ने महाराजजी की आज्ञा को शिरोधार्य कर मेरा अध्ययन शुरू किया। पूज्या क्षुल्लिका विशालमती माताजी मेरे साथ व्याकरण पढ़ने बैठ गईं। पण्डितजी ने दो-तीन सूत्र कराये और खूब समझाया। उतनी ही देर में मुझे वे सूत्र, उनकी वृत्ति और अर्थ याद हो गये। पुनः पण्डितजी ने कहा—

"माताजी ! इन सूत्रों को मैं कल कंठाग्र सुनूँगा।"

तब मैंने कहा—

"पण्डितजी ! आप अभी ही सुन लो और मुझे आगे के आठ-दस सूत्र और बता दो।"

पण्डितजी ने कहा—

"यह लोहे के चने हैं हलुआ नहीं है। बस एक-दो सूत्र ही पढ़ो ज्यादा हविस मत करो।"

दो-तीन दिन पण्डितजी ने पढ़ाया, किन्तु मुझे गति से सन्तोष नहीं हुआ। तब विशालमतीजी के आग्रह से आचार्य श्री ने दूसरे पण्डितों को बुलाया, वे भी ऐसे ही असफल रहे तब पण्डित इन्द्रलाल-जी आदि कई महानुभावों ने विचार किया कि—

"इन्हें तो व्याकरण पढ़ने की भस्मक व्याधि है सो कोई ब्राह्मण विद्वान् जो कि अतिप्रौढ़ हो जिसे व्याकरण कंठाग्र हो और जो पचास सूत्र पढ़ाकर भी न थके ऐसा विद्वान् ढूँढकर लाना चाहिए।"

उस समय जैन कालेज में कातन्त्ररूपमाला व्याकरण को पढ़ाने वाले एक ब्राह्मण विद्वान् दामोदर शास्त्री थे। उन्हें बुलाया गया और आचार्य श्री के सामने उनका परिचय दिया गया। पण्डित इन्द्रलाल-जी बोले—

"महाराजजी ! ये पण्डितजी ही इन्हें व्याकरण पढ़ा सकते हैं क्योंकि इन्हें व्याकरण के सारे सूत्र कंठाग्र हैं। रात-दिन यही व्याकरण ये पढ़ाते हैं।"

तभी आचार्य श्री ने मुझे बुलाया और विनोदपूर्ण शब्दों में बोले—

"वीरमती ! देखो, ये विद्वान् दामोदर शास्त्रीजी तुम्हें व्याकरण पढ़ायेंगे। यह कातन्त्ररूपमाला नाम की व्याकरण यहाँ जैन कालेज में दो वर्ष का कोर्स है लेकिन हाँ, तुम्हें दो महीने में पूरी कर लेनी है।"

मैंने प्रसन्नता से कहा—

"हाँ, महाराजजी ! जैसी आपकी आज्ञा है वैसा ही करूँगी, मैं तो दो महीने से एक दिन कम में ही पूरी कर लूँगी।"

इसी बीच पण्डित दामोदरजी बोले—

"पूज्य महाराजजी ! मैं प्रतिदिन एक घण्टे समय दे सकता हूँ इससे अधिक नहीं, चूँकि मेरे पास अधिक समय ही नहीं है।"

विशालमती माताजी ने कहा—

"ठीक है पण्डितजी ! आप कल से ही इनकी व्याकरण शुरू कर दीजिए। मुझे भी व्याकरण की रुचि है साथ ही मैं भी अध्ययन करूँगी।"

दूसरे दिन से कातन्त्ररूपमाला का अध्ययन शुरू हो गया। पण्डितजी दामोदरजी सूत्र बोलते उसका अर्थ कर देते पुनः संधि तथा रूपसिद्धि आदि करना बता देते। मैं सुनती रहती सब समझ लेती, किसी दिन शायद ही दूसरी बार व्याकरण हाथ में उठाई हो उसी समय जो मनन हो जाता था सो ठीक, दूसरे दिन यदि पण्डितजी कोई संधि या रूप पूछ लेते तो मैं विधिवत् सूत्रोच्चारण कर बता देती। विशालमती माताजी भी आश्चर्य से कहा करतीं—

"अम्मा ! तुमने पूर्वजन्म में व्याकरण पढ़ी है ऐसा प्रतीत होता है यही कारण है कि एक पाठी के समान तुम्हें व्याकरण याद हो जाती है पुनः पुनः दिन भर रटना नहीं पड़ता है।"

मुझे भी स्वयं ऐसा लगता था कि वास्तव में जैसे मैंने इस पुस्तक को कभी पढ़ा हो। यही कारण है कि मुझे न तो वह व्याकरण कठिन महसूस होती न लोहे के चने लगती। मैं सोचा करती—

"भला विद्वान् लोग व्याकरण को लोहे का चना क्यों कहते हैं ?"

उस समय कातन्त्र व्याकरण की मूल प्रति बड़ी मुश्किल से १-२ मिली थी एवं मुझे भी उस व्याकरण की सरलता तथा जैनाचार्यों की कृति होने से बहुत ही प्रेम हो गया था अतः मेरी इच्छा व क्षु० विशालमती माताजी की प्रेरणा और गुरुदेव आचार्य श्री देशभूषणजी महाराज की आज्ञा से श्री

सरदारमलजी खण्डाका सर्राफ जयपुर ने वीर प्रेस में उसी समय यह व्याकरण छपा दी। पं० भंवरलाल-जी न्यायतीर्थ सामने वीरप्रेस में सतत रहते थे अत: सामने के कमरे में मेरी चर्या का अवलोकन कर एवं अध्ययनरत देखकर प्रसन्नता व्यक्त किया करते थे। कभी-कभी निकट आकर क्षु० विशालमती माताजी से कुछ धर्म चर्चायें भी किया करते थे।

मुझे उन दिनों आहार में अन्तराय अधिक होती रहती थी जिससे शरीर, मस्तिष्क और आँखें कमजोर रहती थीं। उस पर भी अपनी आवश्यक क्रियाओं को करके मैं स्वाध्याय भी अधिक करती थी। अत: व्याकरण का रटना नहीं होता था फिर भी रात्रि में स्वप्न में अनेक रूप सिद्ध कर लिया करती थी। जो-जो सूत्र एक रूप के सिद्ध करने में काम आते थे, प्राय: सोकर उठकर व्याकरण देखने से वे सूत्र सही ही मिलते थे। कुछ मिलाकर मैं दिन में व्याकरण नहीं रटती थी तो भी रात्रि में स्वप्न में रटना हो जाया करता था इसे कहते हैं संस्कार। प्राय: सभी लोग अनुभव करते हैं कि जो कार्य दिन में किया जाता है या जिस कार्य में अधिक रुचि होती है। स्वप्न में प्राय: ये ही कार्य दिखते रहते हैं जैसे कि कपड़े के व्यापारी स्वप्न में भी कपड़े फाड़ते रहते हैं। विशालमती माताजी कभी-कभी आचार्य श्री के समीप आकर कहा करतीं—

"महाराजजी ! वीरमती अम्मा दिन में एक बार व्याकरण पढ़ने के बाद उठाकर देखती भी नहीं हैं और रात्रि में स्वप्न में सारे सूत्र याद कर लिया करती हैं" तब निकट में बैठे पण्डित कन्हैयालाल-जी आदि यही कहते कि इन्होंने पूर्वजन्म में सब कुछ पढ़ा हुआ है इसीलिये बिना याद किये सूत्र कंठाग्र हो जाते हैं।

पण्डित इन्द्रलालजी प्रतिदिन दर्शन करने आते थे तब वे व्याकरण में इतनी योग्यता देखकर कहा करते थे—

"ये माताजी 'व्युत्पन्नमति' हैं।"

क्षु० विशालमतीजी से भी कहते कि—तुम इन्हें व्युत्पन्नमति कहा करो। इनका व्युत्पन्नमति नाम सार्थक है। तब विशालमती माताजी भी अतीव वात्सल्यपूर्वक व्युत्पन्नमति कहने लगतीं थीं।

अनन्तर दो महीने में एक दिन शेष रहने पर ही मैंने व्याकरण पूर्ण पढ़ लिया तब विशालमती माताजी मुझे साथ में लेकर आचार्य श्री से आशीर्वाद दिलाने लाईं। आचार्य श्री ने कहा—

"बस, इतने मात्र व्याकरण से तुम सभी शास्त्रों का अर्थ समझ लेवोगी अब तुम्हें किसी से कोई भी ग्रन्थ पढ़ने की आवश्यकता नहीं है।"

इसके बाद दामोदर शास्त्री को यथोचित पुरस्कार दिलाकर आचार्य श्री ने कहा—

"पण्डितजी ! बस आपका कार्य हो चुका है।" उस समय पण्डितजी बहुत ही दु:खी हुए। वे बोले—

"गुरुदेव ! मैं इन माताजी को और भी कुछ अध्यापन कराकर सेवा करना चाहता हूँ।"

आचार्य श्री ने कहा—

"पुन: सोचा जायेगा।"

फिर मेरी भी इच्छा अब कुछ पूर्ण हो चुकी थी। इसी बीच "चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज सल्लेखना लेने वाले हैं" इतना सुनकर मुझे उनके दर्शनों की तीव्र अभिलाषा हो उठी। मैंने चातुर्मास बाद दक्षिण जाने का विचार बना लिया।

अध्यापन—मैंने आचार्य श्री से आज्ञा प्राप्त कर विशालमती माताजी के साथ दक्षिण जाकर

सर्वप्रथम "नीरागाँव" जिला—सोलापुर में आचार्य श्री के दर्शन किये थे। चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री की सल्लेखना देखने की उत्कंठा से सन् १९५५ में म्हसवड़ (जिला-सोलापुर) में हम दोनों क्षुल्लिकाओं का चातुर्मास हो रहा था। मुझे अध्ययन कराने की रुचि थी, क्षु० विशालमती माताजी की आज्ञा से मैंने वहाँ की बालिकाओं और महिलाओं को एक-दो घण्टे पढ़ाना शुरू किया। उसमें सर्वप्रथम मैंने बालिकाओं को कातन्त्ररूपमाला व्याकरण शुरू किया और धर्म में द्रव्यसंग्रह, तत्त्वार्थसूत्र अर्थ सहित पढ़ाना शुरू किया। उन बालिकाओं में एक बालिका प्रभावती थी। कुछ दिन पश्चात् मुझे एक महिला "सोनुबाई" से विदित हुआ कि—

"यह कन्या विवाह नहीं कराना चाहती है और त्याग की तरफ भी खास झुकाव नहीं है।"

तब मैंने उसे अधिक प्रेम से पढ़ाना शुरू किया और उस पर वैराग्य के संस्कार भी डालने लगी। इसी चातुर्मास में यह प्रभावती मेरे साथ आ० श्री वीरसागरजी के संघ में आ गई थी जो कि आज आर्यिका जिनमती के नाम से प्रसिद्ध हैं। उन्हें मैंने ये व्याकरण पूरी पढ़ाई थी तथा अनेक शिष्य-शिष्याओं को भी पढ़ाई। अनन्तर मैंने इसी एक व्याकरण के बल पर अनेक साधुओं को व शिष्य-शिष्याओं को श्री पूज्यपाद स्वामी द्वारा रचित "जैनेन्द्र प्रक्रिया" पढ़ाई, पुन: "शब्दार्णव चन्द्रिका" व्याकरण को भी पढ़ाया। इसके बाद "जैनेन्द्र महावृत्ति" व्याकरण जो कि आचार्य श्री पूज्यपाद द्वारा रचित जैनेन्द्र व्याकरण पर ही एक महाभाष्य रूप है उसका भी अध्ययन कराया।

सर्व प्रथम भगवान् आदिनाथ ने अपनी पुत्री ब्राह्मी को 'अ आ इ ई' आदि स्वर-व्यंजन सिखाये अतएव इसे आज भी ब्राह्मी लिपि कहते हैं। इसी व्याकरण के अन्त में श्री भावसेनाचार्य ने यही कहा है कि 'प्रभु आदिब्रह्मा ने कुमारी ब्राह्मी सुन्दरी को इसे पढ़ाया था इसलिये इस व्याकरण का नाम 'कौमार'[१] व्याकरण है। आदिपुराण में व्याकरण को 'वाङ्मय' कहा है। यथा—

'वाङ्मय' को जानने वाले गणधरादि देव व्याकरण शास्त्र, छंद शास्त्र और अलंकार शास्त्र इन तीनों के समूह को वाङ्मय कहते हैं।

सन् १९६७ में मैंने आर्यिका संघ सहित सनावद में चातुर्मास किया उस समय मोतीचन्द ने अध्ययन करना शुरू किया, उन्हें भी मैंने कातन्त्र व्याकरण, गोम्मटसार जीवकाण्ड, परीक्षामुख आदि पढ़ाना शुरू किया। उस समय मोतीचन्द ने कापी में व्याकरण सूत्रों का अर्थ लिखकर अभ्यास करना शुरू कर दिया। लगभग दो वर्ष में इन्होंने यह व्याकरण पूरी कर ली और सोलापुर परीक्षा बोर्ड से परीक्षा भी दे दी। अनन्तर मैं हमेशा रवीन्द्रकुमार, कु० मालती, माधुरी, त्रिशला, मंजू, कला, सुशीला आदि शिष्य-शिष्याओं को भी यही व्याकरण पढ़ाती थी। इन्हें हिन्दी में अर्थरूप से लिखी गयी मोतीचन्द की कापी से बहुत सुविधा मिलती थी। ऐसा देखकर व बहुत जनों के आग्रह को ध्यान में रखकर सन् १९७३ में मैंने इस व्याकरण का अनुवाद किया। मोतीचन्द और रवीन्द्र कुमार तभी से इसके छपाने की सोच रहे थे। उपाध्याय मुनि पूज्य अजितसागरजी, आचार्य श्री विमलसागरजी व आचार्य श्री विद्यासागरजी आदि साधु संघों की प्रेरणा भी प्राप्त होती रहती थी। मुझे प्रसन्नता है कि अब इसके छपने का योग आया। इसके पूर्व सन् १९७६ में खतौली में मैंने रवीन्द्र कुमार, मालती, माधुरी आदि को पुन: यह व्याकरण पूरी पढ़ाई थी उस समय इन लोगों ने मेरी हस्तलिखित कापी से बहुत कुछ सहयोग लिया था।

---

१. पद विद्यामधिच्छंदो विचितिं वागलंकृतिम्।
त्रयीं समुदितामेतां तद्विदो वाङ्मयं विदुः॥ १११॥
आदिपुराण, पर्व १६

यह कातन्त्ररूपमाला व्याकरण इतनी सरल है कि एक इसी के अध्ययन के आधार पर मैंने अष्टसहस्री जैसे क्लिष्टतम ग्रंथ का भाषा अनुवाद किया है। नियमसार प्राभृत ग्रन्थ की स्याद्वादचन्द्रिका नाम से संस्कृत टीका रची है और 'आराधना' नाम से एक संस्कृत ग्रन्थ लिखा है। अनेकों संस्कृत स्तुतियाँ बनाई हैं। इस व्याकरण को पढ़ते समय मस्तिष्क में जोर नहीं पड़ता है न लोहे के चने ही प्रतीत होती है। मेरी यही कामना है कि आप लोग इस व्याकरण को पढ़कर-पढ़ाकर संस्कृत के कुशल विद्वान् बनें और बालक-बालिकाओं को भी इसे पढ़ावें निष्णात बनावें। पुन: संस्कृत के उच्चकोटि के ग्रन्थों का अध्ययन-अध्यापन करने में कुशल होवें और सम्यग्ज्ञानमयी विद्या को प्राप्त कर श्रुतज्ञानरूपी दीपक से आत्मतत्त्व को देखकर उसका अनुभव करके परम्परा से केवलज्ञान के भागी बनें।

गणिनी आर्यिका ज्ञानमती

पुरोवाक्

श्री शर्ववर्म कृत कलाप व्याकरण की टीका के रूप में "कातन्त्ररूपमाला" की रचना "वादिपर्वत वज्र" श्रीमद् भावसेन त्रैविद्य के द्वारा हुई। उन्होंने यह रचना "कातन्त्ररूप मालेयं बालबोधाय कथ्यते" इस प्रतिज्ञा वाक्य के अनुसार बाल-व्याकरणानभिज्ञ जनों को शब्द शास्त्र का ज्ञान कराने के लिये की थी। "कु-ईषत् तन्त्रं व्याकरणं" व्युत्पत्ति के अनुसार यह संक्षिप्त एवं सरल व्याकरण है।

ग्रन्थ पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के भेद से दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में ५७४ सूत्रों के द्वारा सन्धि, नाम-प्रातिपदिक, समास और तद्धित रूपों की सिद्धि की गई है और उत्तरार्द्ध में ८०९ सूत्रों के द्वारा तिङन्त और कृदन्त रूपों की सिद्धि की गई है। १४८३ सूत्रों के इस ग्रन्थ में सरलता से बालकों को संस्कृत व्याकरण का ज्ञान कराया गया है।

सुबोध शैली में लिखे जाने के कारण इसका प्रचार न केवल भारतवर्ष में, अपितु विदेशों में भी था। जैन हितैषी अंक ४ वीर निर्वाण संवत् २४४१ में प्रकाशित 'कातन्त्र व्याकरण का विदेशों में प्रचार' शीर्षक लेख से अवगत है कि मध्य एशिया में भूखनन से प्राप्त कुबा नामक राज्य का पता लगा है उसमें जो प्राचीन साहित्य मिला है उससे विदित हुआ है कि उस समय वहाँ बौद्ध धर्म के अनेक मठ थे और उनमें संस्कृत पढ़ाने के लिये कातन्त्र व्याकरण का प्रयोग होता था। इससे समझा जा सकता है कि कातन्त्र व्याकरण की प्रसिद्धि कितनी और कहाँ तक थी।

कथा सरित्सागर में निबद्ध एक कथा के आधार पर विदित हुआ है कि महाराजा शालिवाहन (शक) को पढ़ानें के लिये उनके मन्त्री शर्ववर्मा ने कलाप व्याकरण की रचना की थी। कातन्त्ररूपमाला उसी की टीका है। पाणिनीय व्याकरण लोक और वेद दोनों को लिये हुए है तथा प्रत्याहार पद्धति से लिखित होने के कारण दुरूह हो गया है अत: अवैदिक परम्परा बौद्धों, जैनों तथा विदेशीय अन्य लोगों में कातन्त्ररूपमाला की ओर जनता की अभिरुचि होना स्वाभाविक है।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी तथा अन्यान्य विश्वविद्यालयों के परीक्षा पाठ्यक्रम में निर्धारित होने से सम्प्रति पाणिनीय व्याकरण का अच्छा प्रचार हो रहा है। पाणिनीय व्याकरण तथा कातन्त्ररूपमाला का तुलनात्मक अध्ययन करने से सहज ही अवगत हो जाता है कि कातन्त्ररूपमाला में सरलता से शब्द सिद्धि की गई है। यही नहीं, लघु सिद्धान्त कौमुदी की अपेक्षा इसमें अन्य अनेक रूपों की सिद्धि अधिक की गई है कारक तथा समास के प्रकरण लघु सिद्धान्त कौमुदी की अपेक्षा अधिक विस्तृत हैं।

मनोयोगपूर्वक कातन्त्ररूपमाला का अध्ययन अध्यापन करने वालों के ज्ञान में कोई न्यूनता दृष्टिगोचर नहीं होती। दिवंगत आचार्य श्री १०८ वीर सागरजी महाराज के संघ में संस्कृत का अध्ययन कातन्त्ररूपमाला के अध्ययन से ही होता था और उस समय उसके माध्यम से जिन्होंने संस्कृत का अध्ययन किया था ऐसे स्व० आचार्य ज्ञानसागरजी १०८ मुनि अजित सागरजी आचार्य श्री १०८ विद्यासागरजी तथा गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्रीज्ञानमती माताजी, जिनमती, सुपार्श्वमति तथा विशुद्धमति आदि माताओं के संस्कृत विषयक ज्ञान में न्यूनता नहीं दिखाई देती। कुछ दिन पूर्व आचार्य ज्ञानसागरजी के द्वारा जयोदय काव्य के उत्तरार्द्ध का अनुवाद और सम्पादन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तब ऐसा प्रतीत हुआ कि यह काव्य संस्कृत भाषा के अन्यान्य महाकाव्यों से अत्यधिक श्रेष्ठ है। मात्र कातन्त्ररूपमाला के अध्ययन से संस्कृत का इतना विकसित ज्ञान हो सकता है यह विश्वसनीय है।

सूत्रकर्ता शर्ववर्माचार्य कब और किस परम्परा में हुए इसका मुझे परिज्ञान नहीं है। कातंत्ररूपमाला के कर्ता आचार्य भावसेन हैं जो दक्षिण प्रांतीय थे। जैन आचार्यों में शब्दागम-व्याकरण तर्कागमन्याय शास्त्र और परमागम-सिद्धान्त, इन तीन विद्याओं में निपुण आचार्य को त्रैविद्य उपाधि से अलंकृत किया जाता था। इससे स्पष्ट है कि आचार्य भावसेन इन तीनों विद्याओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इस ग्रन्थ के अन्त में दी हुई प्रशस्ति से स्पष्ट है कि आचार्य भावसेन मूलसंघ सेनगण के आचार्य थे। सेनगण की पट्टावली में भी इनका उल्लेख मिलता है।

"परम शब्द ब्रह्म स्वरूप त्रिविद्याधिप-परवादि पर्वत वज्र दण्ड श्री भावसेन भट्टारकाणाम्—

"वादिगिरिवज्रदण्ड" वादिपर्वतवज्र और वादि गिरिसुरेश्वर आदि विशेषणों से स्पष्ट है कि यह शास्त्रार्थी विद्वान् थे। तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा के लेखक स्व० डा० नेमिचन्द्रजी ज्योतिषाचार्य आरा ने तृतीय भाग में ऊहापोह कर इनका समय तेरहवीं शताब्दी का मध्य भाग निर्धारित किया है। इनके द्वारा लिखित निम्न ग्रन्थ उपलब्ध हैं।

(१) प्रमाण प्रमेय (२) कथाविचार (३) शाकटायन व्याकरण टीका (४) कातन्त्ररूपमाला (५) न्याय सूर्यावलि (६) भुक्ति मुक्ति विचार (७) सिद्धान्त सार (८) न्याय दीपिका (९) सप्त पदार्थी टीका और (१०) विश्व तत्त्व प्रकाश। इन ग्रन्थों का विवरण तीर्थंकर महावीर और उनकी आचार्य परम्परा तृतीय भाग पृष्ठ २५६ से २६४ पर द्रष्टव्य है। डा० नेमिचन्द्रजी द्वारा लिखित यह ४ भागों में विभक्त महान् ग्रन्थ अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद् के द्वारा भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव के अवसर पर प्रकाशित है तथा तत्कालीन साहित्य में श्रेष्ठतम माना गया है।

कातन्त्र-रूपमाला की यह हिन्दी टीका गणिनी, आर्यिकाशिरोमणि श्री १०५ ज्ञानमती माताजी के द्वारा निर्मित है। ज्ञानमती माताजी सम्प्रति बहुश्रुत विदुषी हैं। न्याय, सिद्धान्त आचार तथा व्याकरणादि सभी विषयों में इनका अच्छा प्रवेश है। हिन्दी और संस्कृत की सुन्दर एवं निर्दोष कविता करती हैं। आधुनिक शैली से अपने प्रथमानुयोग की अनेक कथाओं को रूपान्तरित किया है। इनका विशिष्ट परिचय किसी ग्रन्थ में अन्यत्र दिया गया है कातंत्र-रूपमाला की इस हिन्दी टीका पाण्डुलिपि का मैंने आद्यन्त अवलोकन किया।

इस हिन्दी टीका के माध्यम से कातन्त्ररूपमाला के अध्ययन अध्यापन में विशेष सुविधा होगी ऐसी आशा है। अ० भा० वर्षीय दि० जैन विद्वत् परिषद्, शास्त्री परिषद् एवं अन्य बौद्धिक संगठन यदि प्रयास करें तो इसका सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय वाराणसी एवं रीवा विश्वविद्यालय की परीक्षाओं में लघुसिद्धान्तकौमुदी के विकल्प में निर्धारण हो सकता है और तब इसके प्रचार में चहुँमुखी प्रगति होगी।

अन्त में माताजी के वैदुष्य के प्रति समादर प्रकट करता हुआ उनके दीर्घ एवं स्वस्थ जीवन की कामना करता हूँ। समयाभाव के कारण पाणिनीय व्याकरण और कातन्त्ररूपमाला के विशिष्ट स्थलों का विश्लेषण नहीं कर सका इसका खेद है।

डा० पन्नालाल साहित्याचार्य, सागर

दो शब्द

जैनाचार्य ज्ञान-विज्ञान के चलते-फिरते कोश रहे हैं। उनकी सतत स्वाध्याय की प्रवृत्ति ने नये-नये ग्रन्थों को जन्म दिया। यही कारण है कि भारतीय साहित्य की प्रत्येक विधा पर उनके पचासों ग्रन्थ मिलते हैं। यद्यपि कुछ ग्रन्थ तो हमारी लापरवाही एवं उपेक्षावृत्ति से लुप्तप्राय हो गये लेकिन जो अवशिष्ट हैं वह भी इतना महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है किसी भी भारतीय को उस पर गर्व हो सकता है। हमारे आचार्यों एवं विद्वानों की कृतियों का यदि दर्शन करना चाहते हैं तो आप किसी भी जैन शास्त्र भण्डार चले जाइये वहाँ प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी भाषा के विविध विषयों पर निबद्ध ग्रन्थों के सहज ही दर्शन हो सकते हैं।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में व्याकरण का प्रमुख स्थान है। व्याकरण से भाषा सुसंस्कारित होती है और उसका अंग भंग नहीं किया जा सकता। व्याकरण शास्त्र भाषा के लिए लगाम का काम करता है। व्याकरण की उत्पत्ति का इतिहास भी उतना ही पुराना है जितना भाषा विशेष का। भगवान् ऋषभदेव द्वारा अक्षर एवं अंक विद्या का आविर्भाव अपनी पुत्री ब्राह्मी एवं सुन्दरी को पढ़ाने के लिए हुआ।*

व्याकरण साहित्य के क्षेत्र में जैनाचार्यों का उल्लेखनीय योगदान रहा है। आचार्य पूज्यपाद प्रथम वैयाकरण माने जाते हैं जिन्होंने जैनेन्द्र व्याकरण जैसी महान् कृति प्रदान की। इसके सूत्रों के दो पाठ मिलते हैं। प्रथम पाठ में ३००० सूत्र एवं दूसरे पाठ में ३७०० सूत्र मिलते हैं। प्रथम पाठ पर दो महावृत्तियाँ मिलती हैं। प्रथम अभयनन्दि की महावृत्ति एवं दूसरी श्रुतकीर्ति की पंचवस्तु उल्लेखनीय है। इसी तरह दूसरे पाठ पर भी सोमदेव (११वीं शताब्दी) द्वारा शब्दार्णवचन्द्रिका एवं गुणनन्दि द्वारा प्रक्रिया लिखी गयी। पं० नाथूराम प्रेमी के अनुसार पूज्यपाद की वही जैनेन्द्र व्याकरण है जिस पर अभयनन्दि ने वृत्ति लिखी थी।

शाकटायन दूसरे जैन वैयाकरण हैं जिन्होंने स्वोपज्ञ अमोघवृत्ति सहित शाकटायन शब्दानुशासन की रचना करने का श्रेय प्राप्त किया। ये ९वीं शताब्दी के माने जाते हैं। शाकटायन, पाणिनि एवं जैनेन्द्र व्याकरण की शैली पर लिखा हुआ व्याकरण है। इसमें ३२०० सूत्र हैं।

श्वेताम्बर आचार्य हेमचन्द्र ने सिद्ध हेमशब्दानुशासन लिखकर व्याकरण जगत् को एक और कृति भेंट की। स्वयं हेमचंद्राचार्य ने अपने शब्दानुशासन पर लघुवृत्ति एवं बृहद्बृत्ति नाम से दो टीकायें लिखीं। इसी व्याकरण पर और भी कितनी ही टीकायें मिलती हैं।

लेकिन वर्तमान में कातन्त्र व्याकरण सबसे सरल एवं सुबोध मानी जाती है। इस व्याकरण के रचयिता हैं शर्ववर्मन्[1] जो जैन विद्वान् थे। ये गुणाढ्य के समकालीन थे और इन्होंने प्रस्तुत व्याकरण सातवाहन राजा को पढ़ाने के लिए लिखी थी। इसका प्रथम सूत्र 'सिद्धोवर्णसमाम्नाय" है। जो प्राचीन

---

* तदा स्वायंभुवं नाम पदशास्त्रमभून् महत्। यत्तत्परशताध्यायैरतिगंभीरमब्धिवत् ॥११२॥ आदिपु० पर्व १६।
उस समय स्वायंभुव नाम का अथवा स्वयंभू भगवान् वृषभदेव का बनाया एक बड़ा भारी व्याकरण शास्त्र प्रसिद्ध हुआ था इसमें सौ से भी अधिक अध्याय थे और वह समुद्र के समान अत्यन्त गम्भीर था।

१. देवदेवं प्रमणम्यादौ सर्वज्ञं सर्वदर्शिनं।
कातन्त्रस्य भवक्ष्यामि व्याख्यानं शर्ववर्मिकं॥ १ ॥

काल में राजस्थान की छोटी-छोटी चटशालाओं के पंडितों को याद था और वे छात्रों को कातन्त्र व्याकरण के सूत्रों को पढ़ाया करते थे।

कातंत्र व्याकरण दो भागों में विभक्त है। पूर्वार्द्ध में ५७४ सूत्र हैं तथा उत्तरार्द्ध में ८०९ सूत्र हैं। व्याकरण का सन्धि, लिंग, कारक, समास एवं तद्धित भाग पूर्वार्द्ध में आता है तथा तिङन्त एवं कृदन्त भाग व्याकरण का उत्तरार्द्ध भाग है। कातन्त्ररूपमाला यह नाम भावसेन द्वारा दिया हुआ है। भावसेन ने ही इस व्याकरण के सूत्रों पर टीका लिखी है। वैसे इसका मूल नाम कलाप अथवा कौमार व्याकरण है[१]—

भावसेन त्रिविद्येन वादिपर्वतवज्रिणा।
कृतायां रूपमालायां कृदन्तः पर्यपूर्यत:॥ १॥

भावसेन ने यह भी लिखा है कि उसने मन्दबुद्धि वाले पाठकों के लिए इस व्याकरण पर टीका लिखी है।

मन्दबुद्धिमबोधार्थं भावसेनमुनीश्वरः।
कातन्त्ररूपमालाख्यां वृत्तिं व्यरचत्सुधीः॥ २॥

राजस्थान के शास्त्र भण्डारों में कातन्त्ररूपमाला की कितनी ही पाण्डुलिपियाँ मिलती हैं जो इस व्याकरण के पठन-पाठन में काम आने की द्योतक हैं। इन पाण्डुलिपियों में भावसेन के अतिरिक्त दौर्ग्यसिंह की वृत्ति भी मिलती है। जयपुर के भण्डार में एक पाण्डुलिपि कातन्त्र विभ्रमानचूरि के नाम से भी उपलब्ध होती है जिसका लेखन काल संवत् १६६९ कार्तिक सुदी ५ है। राजस्थान के जैन ग्रन्थागारों में अब तक उपलब्ध कातन्त्र व्याकरण से सम्बन्धित कुछ प्रमुख पाण्डुलिपियों का परिचय निम्न प्रकार से है—

१. आमेर शास्त्र भण्डार में जो वर्तमान में जैन विद्या संस्थान के नाम से जाना जाता है इसकी तीन पाण्डुलिपियाँ संगृहीत हैं लेकिन ये तीनों ही सूत्र मात्र हैं।

२. जयपुर के श्री दिगम्बर जैन बड़ा मंदिर तेरह पंथियान के शास्त्र भण्डार में दुर्गसिंह की टीका वाली प्रति है जिसकी पत्र संख्या ५२१ है।

३. कातन्त्र रूपमाला टीका-दौर्ग्यसिंह-पत्र संख्या ३६४। ले० काल संवत् १९३७। बाबा दुलीचंद शास्त्र भंडार, जयपुर।

४. कातन्त्ररूपमाला वृत्ति ····। पत्र संख्या १४ से ८९। लेखन काल-संवत् १५२४ कार्तिक सुदी ५। लिपि स्थान-टोंकनगर (राजस्थान), प्राप्ति स्थान-जैन विद्या संस्थान श्रीमहावीरजी।

५. जयपुर के छोटे दीवान जी के मंदिर के शास्त्र भण्डार में इसकी दो पाण्डुलिपियाँ हैं जिनमें ७७ एवं ३५ पत्र हैं। दोनों ही अपूर्ण प्रतियाँ हैं।

६. डूंगरपुर (राजस्थान) के शास्त्र भंडार में दौर्ग्यसिंह की टीका वाली पाण्डुलिपि संगृहीत है जिसकी पत्र संख्या ७३ है।

---

१. तेन ब्राह्म्यै कुमार्यै च कथितं पाठहेतवे।
कालापकं तत्कौमारं नाम्ना शब्दानुशासनम्॥ २॥

७. अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में भावसेन वाली पाण्डुलिपि उपलब्ध होती है जिसकी पत्र संख्या ६९ है।

८. उदयपुर के संभवनाथ दिगम्बर जैन मंदिर में भावसेनवाली टीका की दो पांडुलिपियाँ संगृहीत हैं। जिनकी पत्र संख्या क्रमश: ११७ व १३८ है तथा जिनका लेखन काल संवत् १५५५ एवं संवत् १६३७ है। दोनों ही पाण्डुलिपियाँ शुद्ध एवं सुन्दर अक्षरों वाली हैं।

९. नागौर (राजस्थान) के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में कातन्त्र व्याकरण की ४ प्रतियाँ संगृहीत हैं। इनमें एक पाण्डुलिपि संवत् १५२४ कार्तिक सुदी ७ सोमवार की है।[१]

उक्त पाण्डुलिपियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि राजस्थान में कातन्त्र व्याकरण के पठन-पाठन का खूब अच्छा प्रचार था।

माताजी द्वारा सम्पादन—

यह अत्यधिक प्रसन्नता की बात है कि पूज्य आर्यिकाशिरोमणि ज्ञानमतीजी माताजी ने कातन्त्र व्याकरण का हिन्दी अनुवाद करके सम्पादन किया है। यह संभवत: प्रथम अवसर है जब कि किसी व्याकरण का हिन्दी अनुवाद किया गया है। इससे प्रस्तुत व्याकरण के पठन-पाठन में अत्यधिक सुविधा मिलेगी। माताजी का वैदुष्य, सिद्धान्त ग्रन्थों का गम्भीर ज्ञान, उनका अनुवाद एवं सम्पादन देश एवं समाज को गौरवान्वित करने वाला है। अब तक उनके द्वारा लिखित, अनूदित एवं सम्पादित ग्रन्थों की संख्या इतनी अधिक है कि उनको सहज में याद रखना भी कठिन है। स्वास्थ्य खराब होने पर भी वे सतत साहित्य साधना में लगी रहती हैं जिस पर हम सबको गर्व है। आशा है पूज्य माताजी द्वारा इसी प्रकार साहित्य की अजस्र धारा बहती रहेगी।

पूज्य माताजी द्वारा सम्पादित ग्रन्थ पर दो शब्द लिखते हुए मुझे अतीव प्रसन्नता है और इसके लिए मैं माताजी के प्रति हार्दिक आभार प्रकट करता हूँ।

८६७ अमृत कलश
बरकत नगर, किसान मार्ग
टोंक फाटक, जयपुर-१५

डॉ० कस्तूरचंद कासलीवाल
निदेशक एवं प्रधान संपादक
श्री महावीर ग्रन्थ अकादमी, जयपुर

---

१ देखिये—नागौर शास्त्र भण्डार की ग्रंथ सूची डॉ० पी० सी० जैन। पृष्ठ संख्या १७१.

मेरी बात

सन् १९६७ में पूज्य आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संघ सहित सनावद आगमन हुआ। आगमन के बाद ही माताजी की ज्ञान गंगा प्रवाहित होने लगी। शिष्यों का शिक्षण एवं नगर के आबाल वृद्ध सभी के लिए शिविर की कक्षाएँ चलने लगीं। साथ ही साथ नूतन स्तुतियों का सृजन भी हो रहा था।

जब शिक्षण चलता तो मुझे कुछ भी समझ में नहीं आता। मैं पढ़ने से बहुत मना भी करता, किन्तु माताजी सदैव एक ही सूत्र कह देतीं "पठितत्वं खलु पठितव्यं अग्रे अग्रे स्पष्टं भविष्यति"। मैं भी माताजी की आज्ञा को शिरोधार्य करके पढ़ता चला गया।

मुझ जैसे शिष्यों पर अनुकम्पा करके माताजी ने कई ग्रन्थों का हिन्दी टीकानुवाद करना प्रारम्भ करके भावी पीढ़ी के लिए ज्ञान अर्जन का मार्ग सुलभ कर दिया, उन्हीं में से एक यह है "कातन्त्रव्याकरण"। पूज्य माताजी के असीम ज्ञान उपलब्धि का कोई मूलभूत बीज है तो कातन्त्र व्याकरण ही है। जिस कातन्त्र व्याकरण को अन्य विद्यार्थी दो वर्ष में पढ़ते हैं उसे पूज्य माताजी ने सन् १९५४ में जयपुर में केवल दो माह में कंठस्थ कर लिया। व्याकरण के बाद छंद, अलंकार आदि का भी ज्ञान शिष्यों को पढ़ाकर अर्जित कर लिया।

आचार्यरत्न श्री देशभूषणजी महाराज ने बताया कि जब माताजी को कातंत्र व्याकरण पढ़ने की भूख जाग्रत हुई तब अनेक पंडितों को क्रम से पढ़ाने के लिए बुलाया गया, किन्तु वे अगले दिन पढ़ाने आने के लिए इसलिए मना कर जाते कि जितनी शीघ्रता से ये पढ़ना चाहती हैं उतना पढ़ा पाने में हम असमर्थ हैं। बड़ी कठिनाई से एक ब्राह्मण विद्वान् पंडित मिले। उन्होंने इस शर्त पर अधिक पढ़ाना स्वीकार किया कि मैं जितना एक दिन में पढ़ा दूँ उतना ये अगले दिन मौखिक सुना दें। माताजी ने शर्त स्वीकार कर ली। अगले दिन की तो बात दूर रही माताजी ने पढ़ने के तत्काल बाद ही उसे सुना दिया। पढ़ाने वाले विद्वान् बहुत प्रभावित हुए और उन्होंने परिश्रम करके दो माह के अति अल्प समय में पूरी व्याकरण को पढ़ा दिया व माताजी ने कंठस्थ कर लिया। इसके बाद तो अन्य व्याकरण जैसे जैनेन्द्रप्रक्रिया, शब्दार्णवचन्द्रिका, जैनेन्द्रमहावृत्ति जैसी दुरूह व्याकरणों को अपने शिष्यों तथा मुनियों को पढ़ाकर हृदयंगम कर लिया। प्राचीन धर्म ग्रन्थों का रसास्वादन प्राप्त करने के लिए व्याकरण ज्ञान अति आवश्यक है। इसी दृष्टि से पूज्य माताजी ने अपने सभी शिष्यों को सर्वप्रथम इस कातंत्र व्याकरण को ही पढ़ाया।

इसी बीच जम्बूद्वीप रचना निर्माण की भी चर्चा चलती रही। मुझे प्रारम्भ से ही जम्बूद्वीप रचना निर्माण की रुचि रही और मैंने पूज्य माताजी को वचन दिया कि रचना निर्माण में आपके संयम में किसी भी प्रकार से बाधा नहीं आने देंगे। मात्र आपका आशीर्वाद आवश्यक है।

रचना निर्माण को मूर्तरूप प्रदान करने में अथक परिश्रम करने के बावजूद भी पूज्य माताजी की सहायता के प्रतिफल स्वरूप ही उस परिश्रम से कभी थकान का अनुभव नहीं हुआ। बल्कि उत्साह निरन्तर वृद्धिगत होता गया। इसी मध्य माताजी जो साहित्य सृजन का कार्य कर रही थीं उसको भी प्रकाशित करने का सम्यक् अवसर प्राप्त हुआ।

सन् १९७२ में पूज्य माताजी के संघ के साथ दिल्ली आगमन हुआ। दिल्ली आने से पहले पूज्य माताजी से शिक्षण प्राप्त कर शास्त्री एवं न्यायतीर्थ की परीक्षाएँ मैंने तथा पूज्य माताजी के अन्य शिष्यों ने उत्तीर्ण कर ली थीं।

दिल्ली आकर दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना की। सम्पूर्ण गतिविधियों में दिल्लीवासियों का भरपूर सहयोग मिला। जिसमें सर्वप्रथम पूज्य माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप रचना के लिए मैंने पच्चीस हजार रुपये की दान राशि घोषित की। और उक्त राशि भेजने के लिए पिताजी को पत्र दिया। मेरे मन में तो भय था, किन्तु पिताजी ने यह राशि बड़े प्रेमपूर्वक भेजकर मेरा उत्साह द्विगुणित कर दिया। आगे भी विपुल धनराशि जम्बूद्वीप रचना के लिए प्रदान करते रहे। इसे मैं अपना सौभाग्य ही समझता हूँ। साहित्य प्रकाशन के साथ ही सन् १९७४ में सम्यग्ज्ञान हिन्दी मासिक का प्रकाशन प्रारम्भ हुआ। जिसमें अब तक के सम्यग्ज्ञान अंकों की प्रकाशन संख्या ९ लाख एवं साहित्य प्रकाशन की संख्या १० लाख तक पहुँच चुकी है।

सन् १९७४ में भगवान महावीर का पच्चीस सौवाँ निर्माण महोत्सव के पावन प्रसंग पर हस्तिनापुर आकर जम्बूद्वीप रचना निर्माण के लिए नसिया मार्ग पर किसान से भूमि क्रय की। कई बार अनेक कठिनाइयाँ आने से मेरा उत्साह भंग होने लगता तो पूज्य माताजी धैर्य व साहस प्रदान करतीं। भूमि क्रय करके वापस दिल्ली पहुँचे। निर्वाण महोत्सव सम्पन्न होने के पश्चात् पुनः हस्तिनापुर आये। जम्बूद्वीप रचना निर्माण की गतिविधियाँ प्रारम्भ हो गईं। जहाँ अनेक धर्म स्नेही महानुभावों का सहयोग मिलता रहा। वहीं कुछ अपने ही लोगों से रुकावट के दुष्प्रयास भी चलते रहे। किन्तु सदैव सत्य की जीत होती रही। कार्य धीमी-तेज गति से चलता रहा। शूल फूल बनकर मार्ग प्रशस्त करते रहे।

सर्वप्रथम १९७५ में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान् महावीर की ९ फुट उत्तुङ्ग प्रतिमा पंचकल्याणक प्रतिष्ठापूर्वक विराजमान हुई। सन् १९७९ में २९ अप्रैल से ३ मई तक सुदर्शन मेरु जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा निर्विघ्न एवं सानन्द सम्पन्न हुई।

इस प्रकार ८४ फुट ऊँचे सुदर्शनमेरु निर्माण के साथ प्रथम चरण महान् सफलता एवं प्रभावनापूर्वक सम्पन्न हुआ। पुनः उल्लासपूर्ण वातावरण में दूसरे चरण का कार्य चलाने को योजनाबद्ध किया गया।

४ जून १९८२ को स्व० प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के कर-कमलों से जम्बूद्वीप ज्ञान-ज्योति का प्रवर्तन लाल किला मैदान दिल्ली से हुआ। मुझे पूज्य माताजी के कृपा प्रसाद से एक स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ। ज्ञानज्योति के साथ नगर-नगर, डगर-डगर भ्रमण करने का, हजारों जिनमन्दिरों के दर्शन, लाखों धर्म श्रद्धालुओं से भेंट एवं करोड़ों नर-नारियों तक भगवान् महावीर के पावन सिद्धान्तों को पहुँचाने का।

उधर ज्योति प्रवर्तन चल रहा था इधर द्रुत गति से निर्माण, और आ गया अप्रैल १९८५, जम्बूद्वीप जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का मंगल अवसर। इधर धूमधाम से प्रतिष्ठा प्रारम्भ होने जा रही थी और उधर से १०४५ दिनों का महाभ्रमण करके २८ अप्रैल को हस्तिनापुर आ पहुँची ज्ञानज्योति, जिसकी अगवानी के लिए आये थे भारत सरकार के तत्कालीन रक्षामन्त्री श्री पी० वी० नरसिंह राव। श्रवणबेलगोला के महामस्तकाभिषेक महोत्सव के अतिरिक्त यह पहली पंचकल्याणक प्रतिष्ठा थी जिसमें देश भर के सम्पूर्ण प्रदेशों से नर-नारी अपूर्व उल्लास को लेकर आये थे। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्यमन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने स्वयं दो बार जम्बूद्वीप स्थल पर पधार कर महोत्सव को सफल बनाने में अभूतपूर्व प्रशासनिक सहयोग प्रदान किया यह प्रतिष्ठा भी २ मई को विविध उपलब्धियों के साथ सम्पन्न हुई।

कुछ ही समय बीता था कि पूज्य माताजी का स्वास्थ्य एकदम कमजोर हो गया। एक वर्ष में दो बार ऐसी भी स्थिति आई जब उनका बच पाना कठिन प्रतीत होने लगा था। किन्तु आयु कर्म शेष होने से एवं हम सबके पुण्योदय से वह कठिन समय व्यतीत हो गया। माताजी को मानो नया जीवन ही प्राप्त हुआ। पुनः लग गईं ज्ञानध्यान में, नूतन साहित्य निर्माण में।

पुनः इन्दौर में गोमटगिरि प्रतिष्ठा के अवसर पर मैंने पूज्य माताजी के समक्ष अपने दीक्षा लेने के भाव प्रकट किये और उन्होंने क्षण मात्र विचार कर स्वीकृति प्रदान की, किन्तु उन्होंने यह मनोभावना व्यक्त की कि दीक्षा हस्तिनापुर में होगी। अगले ही दिन भाई रवीन्द्र एवं श्री जिनेन्द्र प्रसाद ठेकेदार इन्दौर गये एवं आचार्यप्रवर श्री विमलसागरजी महाराज से हस्तिनापुर पधारने का निवेदन किया। आचार्य श्री ने निर्णय दिया फिरोजाबाद चातुर्मास के बाद वे आवेंगे। और इस प्रकार दीक्षा के भावों को लिए हुए मेरा पूरा वर्ष व्यतीत हो गया।

पूज्य माताजी की आज्ञा एवं आशीर्वाद से मैं श्री राजेन्द्र प्रसादजी कम्मोजी श्री जिनेन्द्र प्रसादजी ठेकेदार एवं श्री सुरेशचन्दजी गोटे वालों के साथ फिरोजाबाद पहुँचकर कुँवार सुदी १० वीर नि. सं २५१२ (विजया दशमी-दशहरे) के दिन पूज्य आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज के चरणों में हस्तिनापुर पधार कर क्षुल्लक दीक्षा प्रदान करने के लिए श्रीफल चढ़ाया। जिस पर आचार्य श्री ने सहर्ष स्वीकृति प्रदान की। आचार्य श्री ने संसघ हस्तिनापुर पधारकर मुझे ८ मार्च १९८७ को क्षुल्लक दीक्षा देकर "मोतीसागर" नाम प्रदान किया।

इस कातन्त्र की हिन्दी टीका सहित प्रकाशन की कई वर्षों से आवश्यकता प्रतीत हो रही थी। माताजी को अनुवाद किये भी १४ वर्ष व्यतीत हो गये थे। इस बीच माताजी द्वारा लिखी गई पुस्तकों में से ८१ ग्रन्थ लाखों की संख्या में प्रकाशित हो चुके थे। तब मार्च १९८७ में इसका प्रथम संस्करण प्रकाशित हुआ।

पुनः यह दूसरा संस्करण प्रकाशित हो रहा है। आशा है इस हिन्दी टीका सहित प्रकाशन से और भी अनेकानेक विद्यार्थियों को संस्कृत के पठनपाठन में सहायता मिलेगी। जिससे माताजी की तरह ज्ञान अर्जित करके जिनवाणी के प्रचार-प्रसार में अग्रसर हो सकेंगे।

११ अक्टूबर १९९२ **पीठाधीश, क्षुल्लक मोतीसागर**

जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर।

ब्राह्मी की प्रतिमूर्ति-गणिनी आर्यिका ज्ञानमती जी

—आर्यिका चन्दनामती

जम्बूद्वीप रचना की पावन प्रेरिका परमपूज्य गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी, जिनके परिचय का प्रयास कर रही हूँ उन्हें एक कुशल शिल्पी कहूँ या कुमारियों की पथप्रदर्शिका, आशु कवयित्री कहूँ या विदुषी लेखिका, सरस्वती की चल प्रतिमा कहूँ या पूर्णिमा की चाँदनी। सारे ही विशेषण उनके चतुरक्षरी "ज्ञानमती" नाम में समाहित हो जाते हैं।

उत्तर प्रदेश के बाराबंकी जिले में छोटे से कस्बे टिकैतनगर के श्रेष्ठी छोटेलालजी क्या कभी सोच भी सके होंगे कि मेरी सुकुमार मैना सारे विश्व में मेरा और मेरे कस्बे का नाम रोशन करेगी ? उन्होंने सोचा हो या नहीं, माता मोहिनी ने तो मैना की बालदुर्लभ ज्ञानवर्धक वार्ताओं से अनुमानित कर लिया था कि यह एक गृहिणी के रूप में माँ न बनकर जगन्माता बनेगी। वि० सं० १९९१ (सन् १९३४) की शरद् पूर्णिमा ने तो मैना की जन्मकुण्डली ही खोल कर रख दी थी कि इसकी ज्ञान चाँदनी से समस्त संसार को शीतलता प्राप्त होने वाली है।

जीवन के १७ वर्ष पूर्ण हुए थे कि वैराग्य के बढ़ते कदमों को संबल मिला आचार्य श्री देशभूषण महाराज का, अतः वि० सं० २००८ (सन् १९५२) की शरद् पूर्णिमा को सप्तम प्रतिमा रूप ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया पुनः वि० सं० २००९ चैत्र कृ० एकम (सन् १९५३) को महावीरजी अतिशय क्षेत्र पर क्षुल्लिका दीक्षा ग्रहण कर "वीरमती" नाम प्राप्त किया। अनंतर आचार्य श्री शांतिसागर महाराज के दर्शन करके उनकी सल्लेखना के पश्चात् वि० सं० २०१३, वैशाख कृ० २ (सन् १९५६) को माधोराजपुरा (राज०) आचार्य श्री के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर महाराज से आर्यिका दीक्षा धारण कर ज्ञानमती नाम से अलंकृत हुई। संघर्षों की विजेत्री एवं दृढ़ता की मूर्ति स्वरूप आपका यह चार लाइनों का परिचय ही आपकी जीवन्त ज्योति को प्रज्वलित कर रहा है।

इन्होंने जैसे अपने जीवन का निर्माण किया उसी प्रकार कई पुरुषों के जीवन को संस्कारों की टांकी से उकेर-उकेर कर मुनि का रूप प्रदान कराया पुनः उन्हें स्वयं नमस्कार भी करने लगीं। इसलिए मैंने "कुशलशिल्पी" की संज्ञा से संबोधित किया है।

आप "कुमारियों की पथ प्रदर्शिका" इसलिए हैं कि उनका रत्नत्रय पथ आपने प्रशस्त किया है। उससे पूर्व बीसवीं शताब्दी में किसी कुमारी कन्या ने दीक्षा धारण नहीं की थी। इन्द्रध्वज, कल्पद्रुम आदि महाविधानों एवं विशाल टीकाग्रन्थों के सृजन से आशुकवयित्री एवं विदुषी लेखिका का रहस्य भी स्वयमेव प्रकट हो जाता है। सरस्वती का वरदान तो आपको प्राकृतिक रूप में ही प्राप्त है इसीलिए आज सारा विद्वज्जगत् मूक स्वर से यह स्वीकार करता है कि वर्तमान में पूज्य ज्ञानमती माताजी के समान ज्ञानवान अन्य कोई व्यक्तित्व नहीं है। शरद् पूर्णिमा की चाँदनी तो आपके पीछे-पीछे चलकर सबको ज्ञानामृत से संतृप्त कर रही है। इसीलिए ज्ञानमती इस नाम में आपका सारा अस्तित्व समाविष्ट हो जाता है।

शताधिक ग्रन्थों की रचना, जम्बूद्वीप रचना निर्माण में सम्प्रेरणा, ज्ञानज्योति की भारत यात्रा का प्रवर्तन, सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का लेखन आदि आपके चतुर्मुखी कार्यकलापों से सारा देश सुपरिचित है।

जहाँ हिन्दुस्तान भर में आपके विधानों की धूम मची हुई है वहीं हस्तिनापुर में निर्मित जम्बूद्वीप की रचना आपकी एक अमरकृति है। यहाँ आकर प्रत्येक नर-नारी के मुख से यही निकलता है यहाँ तो स्वर्ग जैसी सुखशान्ति है, पूज्य माताजी ने जंगल में मंगल ही कर दिया है। राजस्थान से आए कुछ तीर्थयात्री तो माताजी के चरण सानिध्य में आकर कहने लगे"अब तक तो हमने केवल शास्त्रों में पढ़ा था कि स्वर्ग से इन्द्र आकर तीर्थंकरों की जन्म नगरियों की रचना करते हैं, किन्तु वर्तमान का हस्तिनापुर देखकर तो ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सचमुच में ही इन्द्र ने आकर नगरी बसाई है।

साहित्य सृजन की शृंखला में इस "कातन्त्र रूपमाला" नामक संस्कृत व्याकरण का हिन्दी अनुवाद पूज्य माताजी ने सन् १९७३ में किया था उसके पश्चात् सन् १९८७ में इसका प्रकाशन हुआ तब से जैन समाज में साधुगण एवं ब्रह्मचारी-ब्रह्मचारिणियों में व्याकरण शिक्षा का तेजी से प्रचार हुआ। कुछ कारणवश इस मध्य व्याकरण की प्रतियाँ, शीघ्र समाप्त हो जाने के बाद भी इसका दुबारा प्रकाशन संभव न हो सका। अब ५ वर्षों के अनन्तर बढ़ती हुई व्याकरण अध्ययन की मांग देखते हुए इसका द्वितीय संस्करण प्रकाशित हो रहा है। अनेक संशोधनों के साथ प्रस्तुत संस्करण अवश्य ही जिज्ञासुओं की जिज्ञासा पूर्ण करेगा ऐसी आशा है।

भगवान् जिनेन्द्रदेव से यही प्रार्थना है कि पूज्य गणिनी आर्यिका श्री ज्ञानमती माताजी स्वस्थ रहते हुए चिरकाल तक भव्यों को मार्गदर्शन देती रहें।

दानतीर्थ हस्तिनापुर

—क्षुल्लक मोतीसागर

भगवान् आदिनाथ का प्रथम आहार

हस्तिनापुर तीर्थ तीर्थों का राजा है। यह धर्म प्रचार का आद्य केन्द्र रहा है। यहीं से धर्म की परम्परा का शुभारम्भ हुआ। यह वह महातीर्थ है जहाँ से दान की प्रेरणा संसार ने प्राप्त की।

भगवान् आदिनाथ से जब दीक्षा धारण की उस समय उनके देखा-देखी चार हजार राजाओं ने भी दीक्षा धारण की। भगवान् ने केशलोंच किये उन सबने भी केशलोंच किये, भगवान् ने वस्त्रों का त्याग किया उसी प्रकार से उन सब राजाओं ने भी नग्न दिगम्बर अवस्था धारण कर ली। भगवान् हाथ लटकाकर ध्यान मुद्रा में खड़े हो गये वे सभी राजागण भी उसी प्रकार से ध्यान करने लगे, किन्तु तीन दिन के बाद उन सभी को भूख-प्यास की बाधा सताने लगी। वे बार-बार भगवान् की तरफ देखते, किन्तु भगवान् तो मौन धारण करके नासाग्र दृष्टि किये हुए अचल खड़े थे, एक-दो दिन के लिए नहीं, पूरे छह माह के लिए। अतः उन राजाओं ने बेचैन होकर जंगल के फल खाना एवं झरनों का पानी पीना प्रारम्भ कर दिया।

उसी समय वन देवता ने प्रकट होकर उन्हें रोका कि "मुनि वेश में इस प्रकार से अनर्गल प्रवृत्ति मत करो।" यदि भूख-प्यास का कष्ट सहन नहीं हो पाता तो इस जगत् पूज्य मुनि पद को छोड़ दो तब सभी राजाओं ने मुनि पद को छोड़कर अन्य वेश धारण कर लिये। किसी ने जटा बढ़ा ली, किसी ने वल्कल धारण कर लिए, किसी ने भस्म लपेट ली, कोई कुटी बनाकर रहने लगे, इत्यादि।

भगवान् ऋषभदेव का छह माह के पश्चात् ध्यान विसर्जित हुआ। वैसे तो भगवान् का बिना आहार किये भी काम चल सकता था, किन्तु भविष्य में भी मुनि बनते रहें मोक्ष मार्ग चलता रहे इसके लिए आहार हेतु निकले। किन्तु उनको कहीं पर भी विधिपूर्वक एवं शुद्ध प्रासुक आहार नहीं मिल पा रहा था। सभी प्रदेशों में भ्रमण हो रहा था, किन्तु कहीं पर भी दातार नहीं मिल रहा था। कारण यह था उनसे पूर्व में भोग भूमि की व्यवस्था थी। लोगों को जीवनयापन की सामग्री-भोजन, मकान, वस्त्र, आभूषण आदि सब कल्पवृक्षों से प्राप्त हो जाते थे। जब भोग भूमि की व्यवस्था समाप्त हुई तब कर्मभूमि में कर्म करके जीवनोपयोगी सामग्री प्राप्त करने की कला भगवान् के पिता नाभिराय ने एवं स्वयं भगवान् ऋषभदेव ने सिखाई।

असि, मसि, कृषि, सेवा, शिल्प एवं वाणिज्य करके जीवन जीने का मार्ग बतलाया। सब कुछ बतलाया, किन्तु दिगम्बर मुनियों को किस विधि से आहार दिया जावे इस विधि को नहीं बतलाया। जिस इन्द्र ने भगवान् ऋषभदेव के गर्भ में आने से छह माह पहले से रत्नवृष्टि प्रारम्भ कर दी थी पाँचों कल्याणकों में स्वयं इन्द्र प्रतिक्षण उपस्थित रहता था, किन्तु जब भगवान् प्रासुक आहार प्राप्त करने के लिये भ्रमण कर रहे थे तब वह भी नहीं आ पाया।

सम्पूर्ण प्रदेशों में भ्रमण करने के पश्चात् हस्तिनापुर आगमन से पूर्व रात्रि के पिछले प्रहर में यहाँ के राजा श्रेयांस को सात स्वप्न दिखाई दिये, जिसमें प्रथम स्वप्न में सुदर्शन मेरु पर्वत दिखाई दिया। प्रातःकाल में उन्होंने ज्योतिषी को बुलाकर उन स्वप्नों का फल पूछा। तब बताया कि जिनका मेरु पर्वत पर अभिषेक हुआ है जो सुमेरु के समान महान् हैं ऐसे तीर्थंकर भगवान् के दर्शनों का लाभ प्राप्त होगा।

कुछ ही देर बाद भगवान् ऋषभदेव का हस्तिनापुर नगरी में मंगल पदार्पण हुआ। भगवान् का दर्शन करते ही राजा श्रेयांस को जाति स्मरण हो गया। उन्हें आठ भव पूर्व का स्मरण हो आया। जब भगवान् ऋषभदेव राजा वज्रजंघ की अवस्था में व स्वयं राजा श्रेयांस वज्रजंघ की पत्नी रानी श्रीमती की अवस्था में थे और उन्होंने चारण ऋद्धिधारी मुनियों को नवधा भक्तिपूर्वक आहारदान दिया था। तभी राजा श्रेयांस समझ गये कि भगवान् आहार के लिये निकले हैं।

यह ज्ञान होते ही वे अपने राजमहल के दरवाजे पर खड़े होकर मंगल वस्तुओं को हाथ में लेकर भगवान् का पड़गाहन करने लगे।

हे स्वामी ! नमोस्तु नमोस्तु नमोस्तु अत्र तिष्ठ तिष्ठ ······ विधि मिलते ही भगवान् राजा श्रेयांस के आगे खड़े हो गये। राजा श्रेयांस ने पुनः निवेदन किया—मन शुद्धि, वचन शुद्धि, काय शुद्धि आहार जल शुद्ध है भोजनशाला में प्रवेश कीजिये। चौके में ले जाकर पाद प्रक्षाल करके पूजन की एवं इक्षुरस का आहार दिया। आहार होते ही देवों ने पंचाश्चर्य की वृष्टि की। चार प्रकार के दानों में से केवल आहार दान के अवसर पर ही पंचाश्चर्य की वृष्टि होती है। भगवान् जैसे पात्र का लाभ मिलने पर राजा श्रेयांस की भोजनशाला में उस दिन भोजन अक्षय हो गया। शहर के सारे नर-नारी भोजन कर गये तब भी भोजन जितना था उतना ही बना रहा।

एक वर्ष के उपवास के बाद हस्तिनापुर में जब भगवान् का प्रथम आहार हुआ तो समस्त पृथ्वी मण्डल पर हस्तिनापुर के नाम की धूम मच गई सर्वत्र राजा श्रेयांस की प्रशंसा होने लगी। अयोध्या से भरत चक्रवर्ती ने आकर राजा श्रेयांस का भव्य समारोहपूर्वक सम्मान किया तथा उन्हें दानतीर्थंकर की पदवी से अलंकृत किया। प्रथम आहार की स्मृति में उन्होंने यहाँ एक विशाल स्तूप का निर्माण भी कराया।

दान के कारण ही भगवान् आदिनाथ के साथ राजा श्रेयांस को भी याद करते हैं। जिस दिन यहाँ प्रथम आहार दान हुआ वह दिन बैशाख सुदी तीज का था। तबसे आज तक वह दिन प्रतिवर्ष पर्व के रूप में मनाया जाता है। अब उसे आखा तीज या अक्षय तृतीया कहते हैं।

इस प्रकार दान की परम्परा हस्तिनापुर से प्रारम्भ हुई। दान के कारण ही धर्म की परंपरा भी तबसे अब तक बराबर चली आ रही है। क्योंकि मन्दिरों का निर्माण, मूर्तियों का निर्माण, शास्त्रों का प्रकाशन, मुनि संघों का विहार दान से ही सम्भव है। और यह दान श्रावकों के द्वारा ही होता है। श्रवणबेलगोल में एक हजार साल से खड़ी भगवान् बाहुबली की विशाल प्रतिमा भी चामुण्डराय के दान का ही प्रतिफल है जो कि असंख्य भव्य जीवों को दिगम्बरत्व का, आत्मशांति का पावन सन्देश बिना बोले ही दे रही है।

यहाँ बनी यह जम्बूद्वीप की रचना भी सम्पूर्ण भारतवर्ष के लाखों नर-नारियों के द्वारा उदार भावों से प्रदत्त दान के कारण ही मात्र दस वर्ष में बनकर तैयार हो गई जो कि सम्पूर्ण संसार के लिए आकर्षण का केन्द्र बन गई है। जम्बूद्वीप की रचना सारी दुनिया में अभी केवल यहाँ हस्तिनापुर में ही देखने को मिल सकती है। नंदीश्वरद्वीप की रचना, समवशरण की रचना तो अनेक स्थलों पर बनी है और बन रही है। यह हमारा व आप सबका परम सौभाग्य है कि हमारे जीवन काल में ऐसी भव्य रचना बनकर तैयार हो गई और उसके दर्शनों का लाभ सभी को प्राप्त हो रहा है।

भगवान् आदिनाथ के प्रथम आहार के उपलक्ष्य में यह तिथि पर्व के रूप में मनाई जाने लगी। वह दिन इतना महान् हो गया कि कोई भी शुभ कार्य उस दिन बिना किसी ज्योतिषी से पूछे कर लिया

जाता है। जितने विवाह अक्ष तृतीया के दिन होते हैं उतने शायद ही अन्य किसी दिन होते हों। और तो और जब से भगवान् का प्रथम आहार इक्षुरस का हुआ तबसे इस क्षेत्र में गन्ना भी अक्षय हो गया, जिधर देखो उधर गन्ना ही गन्ना नजर आता है। सड़क पर गाड़ी में आते-जाते बिना खाये मुँह मीठा हो जाता है। कदम-कदम पर गुड़, शक्कर बनता दिखाई देता है। हस्तिनापुर में आने वाले प्रत्येक यात्री को जम्बूद्वीप प्रवेश द्वार पर भगवान् के आहार के प्रसाद रूप में यहाँ लगभग बारह महीने इक्षुरस पीने को मिलता है।

भगवान् शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ के चार-चार कल्याणक

भगवान् आदिनाथ के पश्चात् अनेक महापुरुषों का इस पुण्य धरा पर आगमन होता रहा है। भगवान् शान्तिनाथ, कुंथुनाथ एवं अरहनाथ के चार-चार कल्याणक यहाँ हुए हैं। तीनों तीर्थंकर चक्रवर्ती एवं कामदेव पद के धारी भी थे। तीनों तीर्थंकरों ने यहाँ से समस्त छह खण्ड पृथ्वी पर राज्य किया, किन्तु उन्हें शान्ति की प्राप्ति नहीं हुई। छियानवे हजार रानियाँ भी उन्हें सुख प्रदान नहीं कर सकीं अतएव उन्होंने संपूर्ण आरम्भ परिग्रह का त्याग कर नग्न दिगम्बर अवस्था धारण की, मुनि बन गये। बारह भावनाओं में पढ़ते हैं—

कोटि अठारह घोड़े छोड़े चौरासी लख हाथी, इत्यादिक सम्पत्ति बहुतेरी जीरण तृण सम त्यागी।

भगवान् शान्तिनाथ, कुंथुनाथ, अरहनाथ ने महान् तपश्चर्या करके यहीं पर दिव्य केवलज्ञान की प्राप्ति की। उनकी ज्ञान ज्योति के प्रकाश से अनेकों भव्य जीवों का मोक्ष मार्ग प्रशस्त हुआ। अन्त में उन्होंने सम्मेदशिखर से निर्वाण प्राप्त किया। आज हजारों लोग उन तीर्थंकरों की चरण रज से पवित्र इस पुण्य धरा की वन्दना करने आते हैं। उस पुनीत माटी को मस्तक पर चढ़ाते हैं।

कौरव-पांडव की राजधानी

महाभारत की विश्व विख्यात घटना भगवान् नेमीनाथ के समय में यहाँ घटित हुई। यह वही हस्तिनापुर है जहाँ कौरव-पांडव ने राज्य किया। सौ कौरव भी पाँच पांडवों को हरा नहीं सके। क्या कारण था ? कौरव अनीतिवान थे, अन्यायी थे, अत्याचारी थे, ईर्ष्यालु थे, द्वेषी थे। उनमें अभिमान बाल्यकाल से कूट-कूटकर भरा हुआ था। पांडव प्रारम्भ से धीर-वीर-गम्भीर थे। सत्य आचरण करने वाले थे। न्यायनीति से चलते थे। सहिष्णु थे। इसीलिए पांडवों ने विजय प्राप्त की। यहाँ तक कि पांडव भी सती सीता की तरह अग्नि परीक्षा में सफल हुए। कौरवों के द्वारा बनाये गये जलते हुए लाक्षागृह से भी णमोकार महामन्त्र का स्मरण करते हुए एक सुरंग के रास्ते से बच निकले।

वे एक बार पुन: अग्नि परीक्षा में सफल हुए। जब शत्रुंजय में नग्न दिगम्बर मुनि अवस्था में ध्यान में लीन थे उस समय दुर्योधन के भानजे कुर्युधर ने लोहे के आभूषण बनवाकर गरम करके पहना दिये। जिसके फलस्वरूप बाहर से उनका शरीर जल रहा था और भीतर से कर्म जल रहे थे। उसी समय सम्पूर्ण कर्म जलकर भस्म हो गये और अन्तकृत केवली बनकर तीन पांडवों ने निर्वाण प्राप्त किया और नकुल, सहदेव उपशम श्रेणी का आरोहण करके ग्यारहवें गुणस्थान में मरण को प्राप्त करके सर्वार्थसिद्धि गये।

कौरव-पांडव तो आज भी घर-घर में देखने को मिलते हैं। यदि विजय प्राप्त करना है तो पांडवों के मार्ग का अनुसरण करना चाहिये। सदैव न्याय-नीति से चलना चाहिये तभी पांडवों की तरह यश की प्राप्ति होगी। धर्म की सदा जय होती है।

रक्षाबन्धन पर्व

एक समय हस्तिनापुर में अकंपनाचार्य आदि सात सौ मुनियों का संघ आया हुआ था। उस समय यहाँ महापद्म चक्रवर्ती के पुत्र राजा पद्म राज्य करते थे। कारणवश बली मन्त्री ने वरदान के रूप में उनसे सात दिन का राज्य माँग लिया। राज्य लेकर बली ने अपने पूर्व अपमान का बदला लेने के लिए जहाँ सात सौ मुनि विराजमान थे वहाँ उनके चारों ओर यज्ञ के बहाने अग्नि प्रज्वलित कर दी। उपसर्ग समझकर सभी मुनिराज शांत परिणाम से ध्यान में लीन हो गये।

दूसरी तरफ उज्जयिनी में विराजमान विष्णुकुमार मुनिराज को मिथिला नगरी में चातुर्मास कर रहे मुनि श्री श्रुतसागरजी के द्वारा भेजे गये क्षुल्लक श्री पुष्पदंत से सूचना प्राप्त हुई कि हस्तिनापुर में मुनियों पर घोर उपसर्ग हो रहा है और उसे आप ही दूर कर सकते हैं।

यह समाचार सुनकर परम करुणामूर्ति विष्णुकुमार मुनिराज के मन में साधर्मी मुनियों के प्रति तीव्र वात्सल्य की भावना जाग्रत हुई। तपस्या से उन्हें विक्रिया ऋद्धि उत्पन्न हो गई थी। वे वात्सल्य भावना से ओत-प्रोत होकर उज्जयिनी से चातुर्मास काल में हस्तिनापुर आते हैं। अपनी पूर्व अवस्था के भाई वहाँ के राजा पद्म को डाँटते हैं। राजा उनसे निवेदन करते हैं—हे मुनिराज ! आप ही इस उपसर्ग को दूर करने में समर्थ हैं। तब मुनि विष्णुकुमार ने वामन का वेष बनाकर बली से तीन कदम जमीन दान में माँगी। बलि ने देने का संकल्प किया। मुनिराज ने विक्रिया ऋद्धि से विशाल शरीर बनाकर दो कदम में सारा अढ़ाई द्वीप नाप लिया, तीसरा कदम रखने की जगह नहीं मिली। चारों तरफ त्राहि माम् होने लगा। रक्षा करो, क्षमा करो की ध्वनि गूँजने लगी। बली ने भी क्षमा मांगी। मुनिराज तो क्षमा के भंडार ही होते हैं। उन्होंने बली को क्षमा प्रदान की। उपसर्ग दूर होने पर विष्णुकुमार ने पुनः दिगम्बर मुनि दीक्षा धारण की। सभी ने मिलकर मुनि श्री विष्णुकुमार की बहुत भारी पूजा की।

अगले दिन श्रावकों ने भक्ति से मुनियों को खीर-सिवई का आहार दिया और आपस में एक-दूसरे को रक्षा सूत्र बाँधे। यह निश्चय किया कि विष्णुकुमार मुनिराज की तरह वात्सल्य भावनापूर्वक धर्म एवं धर्मायतनों की रक्षा करेंगे। तभी से वह दिन प्रतिवर्ष रक्षाबन्धन पर्व के रूप में श्रावण सुदी पूर्णिमा को मनाया जाने लगा। इसी दिन बहनें भाइयों के हाथ में राखी बाँधती हैं।

अब आगे से रक्षाबन्धन के दिन हस्तिनापुर का स्मरण करें। देव गुरु शास्त्र के प्रति तन-मन-धन न्यौछावर कर दें। साधर्मी के प्रति वात्सल्य की भावना रखें। तभी रक्षाबन्धन पर्व मनाना सार्थक हो सकता है।

दर्शन प्रतिज्ञा में प्रसिद्ध मनोवती

गजमोती चढ़ाकर भगवान् के दर्शन कर भोजन करने का अटल नियम निभाने वाली इतिहास प्रसिद्ध महिला मनोवती भी इसी हस्तिनापुर की थी। यह नियम इसने विवाह के पूर्व लिया था। विवाह के पश्चात् जब ससुराल गई तो वहाँ संकोचवश कह नहीं पाई। तीन दिन तक उपवास हो गया। जब उसके पीहर में सूचना पहुँची तो भाई आया, उसे एकान्त में मनोवती ने सब बात बता दी। उसके भाई ने मनोवती के श्वसुर को बताया। तो उसके श्वसुर ने कहा कि हमारे यहाँ तो गजमोती का कोठार भरा है। तभी मनोवती ने गजमोती चढ़ाकर भगवान् के दर्शन करके भोजन किया।

इसके बाद मनोवती को तो उसका भाई अपने घर लिवा ले गया। इधर उन मोतियों के चढ़ाने से इस परिवार पर राजकीय आपत्ति आ गई। जिसके कारण मनोवती के पति बुधसेन के छहों भाइयों ने मिलकर उन दोनों को घर से निकाल दिया। घर से निकलने के बाद मनोवती ने तब तक भोजन

नहीं क्रिया जब तक गजमोती चढ़ाकर भगवान् के दर्शनों का लाभ नहीं मिला। जब चलते-चलते थक गये तो रास्ते में सो गये। पिछली रात्रि में उन्हें स्वप्न होता है कि तुम्हारे निकट ही मन्दिर है, शिला हटाकर दर्शन करो। उठकर संकेत के अनुसार शिला हटाते ही भगवान् के दर्शन हुए। वहीं पर चढ़ाने के लिए गजमोती मिल गये। दर्शन करके भोजन किया। आगे चलकर पुण्ययोग से बुधसेन राजा के जमाई बन गये।

इधर वे छहों भाई अत्यन्त दरिद्र अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। गाँव छोड़कर कार्य की तलाश में घूमते-घूमते छहों भाई, उनकी पत्नियाँ व माता-पिता सभी वहाँ पहुँचते हैं जहाँ बुधसेन जिन मन्दिर का निर्माण करा रहे थे। लोगों ने उन्हें बताया कि आप बुधसेन के वहाँ जाओ, आपको वे काम पर लगा लेंगे। वे सभी वहाँ पहुँचे उनको काम पर लगाया, बुधसेन मनोवती उन्हें पहिचान गये अन्त में सबका मिलन हुआ। सभी भाइयों, भौजाइयों तथा माता-पिता ने क्षमा याचना की। धर्म की जय हुई। इस घटना से यही शिक्षा मिलती है कि आपस में सबको मिलकर रहना चाहिये। न मालूम किसके पुण्ययोग से घर में सुख-शांति समृद्धि होती है।

सुलोचना जयकुमार

महाराजा सोम के पुत्र जयकुमार भरत चक्रवर्ती के प्रधान सेनापति हुए। उनकी धर्म परायणा शील शिरोमणि ध० प० सुलोचना की भक्ति के कारण गंगा नदी के मध्य आया हुआ उपसर्ग दूर हुआ।

रोहिणी व्रत

रोहिणी व्रत की कथा का घटना स्थल भी यही हस्तिनापुर तीर्थ है।

जम्बूद्वीप की रचना

अनेक घटनाओं की शृंखला के क्रम में एक और मजबूत कड़ी के रूप में जुड़ गई जम्बूद्वीप की रचना। इस रचना ने विस्मृत हस्तिनापुर को पुन: संसार के स्मृति पटल पर अंकित कर दिया। न केवल भारत के कोने-कोने में, अपितु विश्व भर में जम्बूद्वीप रचना के दर्शन की चर्चा रहती है। जैन जगत् में ही नहीं प्रत्युत् वर्तमान दुनिया में पहली बार हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का विशाल खुले मैदान पर भव्य निर्माण हुआ है। जो कि आर्यिका ज्ञानमती माताजी के ज्ञान व उनकी प्रेरणा का प्रतिफल है।

सन् १९६५ में श्रवणबेलगोल स्थित भगवान् बाहुबली के चरणों में ध्यान करते हुए पूज्य श्री ज्ञानमती माताजी को जिस रचना के दिव्य दर्शन हुए थे, उसे बीस वर्ष के पश्चात् यहाँ हस्तिनापुर में साकाररूप प्राप्त हुआ। वर्तमान में जम्बूद्वीप रचना दर्शन के निमित्त से ही सन् १९७६ से अब तक लाखों जैन-जैनेतर दर्शनार्थियों को हस्तिनापुर आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। प्रतिदिन आने वाले दर्शनार्थियों में अधिकतम ऐसे होते हैं जो कि यहाँ पहली बार आने वाले होते हैं।

सभी दर्शनार्थियों के मुख से एक स्वर से यही कहते हुए सुनने में आता है कि हमें तो कल्पना भी नहीं थी कि इतनी आकर्षक जम्बूद्वीप की रचना बनी होगी। हस्तिनापुर आने वाले दर्शकों को जम्बूद्वीप रचना के साथ ही उसकी प्रेरिका पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी के दर्शनों का एवं उनका आशीर्वाद प्राप्त करने का भी स्वर्णिम अवसर सहज में प्राप्त हो जाता है।

पूज्य माताजी ने जम्बूद्वीप रचना की प्रेरणा तो दी ही साहित्य निर्माण के क्षेत्र में भी अद्भुत कीर्तिमान स्थापित किया। अढ़ाई हजार वर्ष में दिगम्बर जैन समाज में ज्ञानमती माताजी पहली महिला

हैं जिन्होंने ग्रन्थों की रचना की। अब से पहले के लिखे जितने भी ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं वे सब पुरुष वर्ग के द्वारा लिखे गये हैं आचार्यों ने लिखे, मुनियों ने लिखे या पण्डितों ने लिखे। किसी श्राविका अथवा आर्यिका द्वारा लिखा एक भी ग्रन्थ कहीं के भी ग्रन्थ भण्डार में देखने में नहीं आया।

पू० ज्ञानमती माताजी ने त्याग और संयम को धारण करते हुए एक-दो नहीं डेढ़ सौ छोटे-बड़े ग्रन्थों का निर्माण किया। न्याय, व्याकरण, सिद्धान्त, अध्यात्म आदि विविध विषयों के ग्रन्थों की टीका आदि की। भक्तिपरक पूजाओं के निर्माण में उल्लेखनीय कार्य किया है। इन्द्रध्वज विधान, कल्पद्रुम विधान, सर्वतोभद्र विधान, जम्बूद्वीप विधान जैसी अनुपम कृतियों का सृजन किया। सभी वर्ग के व्यक्तियों को दृष्टि में रखकर माताजी ने विभिन्न रुचि के साहित्य की रचनाएँ कीं। प्राचीन धार्मिक कथाओं को उपन्यास की शैली में लिखा। अब तक माताजी की एक सौ दस कृतियों का प्रकाशन विभिन्न भाषाओं में दस लाख से अधिक मात्रा में प्रकाशित हुआ है।

पूज्य माताजी की लेखनी अभी भी अविरल गति से चल रही है। आचार्य कुन्दकुन्द द्विसहस्राब्दि महोत्सव के इस पावन प्रसंग पर अभी-अभी समयसार की आचार्य अमृतचन्द्र एवं आचार्य जयसेनकृत टीकाओं का हिन्दी अनुवाद किया जिसका पूर्वार्द्ध छपकर जन-जन के हाथों में पहुंच चुका है। ग्रन्थों का प्रकाशन कार्य अभी भी सतत चल रहा है।

महान् दानतीर्थ हस्तिनापुर क्षेत्र का दर्शन महान् पुण्य फल को देने वाला है। यह तीर्थक्षेत्र युगों-युगों तक पृथ्वी तल पर धर्म की वर्षा करता रहे यही मंगल भावना है।

संस्थान का परिचय

जिस संस्थान द्वारा इस ग्रंथ का प्रकाशन हो रहा है उसकी संक्षिप्त जानकारी पाठकों को देना मैं आवश्यक समझता हूँ।

संस्थान का जन्म—

पू० गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से दिगंबर जैन त्रिलोक शोध संस्थान का जन्म सन् १९७२ में हुआ। इस संस्थान का रिजस्ट्रेशन दिल्ली सोसायटी एक्ट के अन्तर्गत सन् १९७२ में ही करा लिया गया।

संस्थान की कार्यकारिणी—

संस्थान के नियमानुसार प्रत्येक तीन वर्ष में संस्थान की कार्यकारिणी का गठन किया जाता है। डा० कैलाशचन्द्र जैन (राजा टायज) निवासी दिल्ली इस संस्थान के सर्वप्रथम १९७२ में अध्यक्ष मनोनीत किये गये थे। महामंत्री श्री वैद्य शांतिप्रसाद जैन (दिल्ली), कोषाध्यक्ष ब्र० श्री मोतीचंद जैन, मंत्री श्री कैलाशचंद जैन (करोल बाग) नई दिल्ली एवं उपमंत्री ब्र० श्री रवीन्द्र कुमार जैन आदि पदाधिकारी मनोनीत किये गये थे। उसके बाद संस्थान के अध्यक्ष पद पर श्री मदनलाल जी चांदवाड़ रामगंज मंडी (राज) ६ वर्ष तक रहे, पश्चात् ६ वर्ष तक श्री अमरचंद जी पहाड़िया (कलकत्ता) संस्थान के अध्यक्ष पद पर रहे। महामंत्री स्व० श्री कैलाशचंद जैन (खद्दर वाले) सरधना (उ०प्र०) तथा उनके बाद श्री गणेशीलाल जी रानीवाला (कोटा) राज० को महामंत्री पद पर मनोनीत किया गया। वर्तमान (१९९१) त्रिवर्षीय कार्यकारिणी में लगभग ९१ सदस्य सारे भारतवर्ष के मनोनीत हैं, जिसमें साहू श्री अशोक कुमार जैन, दिल्ली श्री अमरचंद जी पहाड़िया, कलकत्ता व श्री निर्मल कुमार जी सेठी लखनऊ संरक्षक पद पर, ब्र० श्री रवीन्द्र कुमार जैन अध्यक्ष, श्री गणेशीलाल रानीवाला, श्री जिनेन्द्रप्रसाद जैन ठेकेदार, दिल्ली-महामंत्री, श्री अमरचंद जैन, होम ब्रेड, मेरठ-मंत्री तथा श्री कैलाशचंद जैन (करोल बाग) नई दिल्ली-कोषाध्यक्ष पद पर मनोनीत हैं। इसके अतिरिक्त अनेक गणमान्य महानुभाव संस्थान के उपाध्यक्ष एवं अन्य पदों पर पदासीन हैं।

हिसाब एवं धन की व्यवस्था—

संस्थान का आय-व्यय प्रतिवर्ष आडीटर से आडिट कराया जाता है एवं कार्यकारिणी की बैठक में हिसाब पास किया जाता है। धन के सम्बन्ध में संस्थान की सम्पूर्ण आय रसीद अथवा कूपन से प्राप्त होती है तथा स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया, हस्तिनापुर, न्यू बैंक ऑफ इण्डिया हस्तिनापुर एवं बैंक आर्फ बड़ौदा, दिल्ली में संस्थान के नाम से खाते हैं जिसका संचालन संस्थान के अध्यक्ष, कोषाध्यक्ष एवं मंत्री उपर्युक्त तीन में से किन्हीं दो हस्ताक्षरों से होता है।

निर्माण—

सन् १९७४ से हस्तिनापुर में निर्माण कार्य प्रारम्भ किया गया। अब तक जम्बूद्वीप स्थल पर जम्बूद्वीप की रचना के निर्माण के साथ ही यात्रियों , शोधार्थियों एवं पर्यटकों के लिये लगभग २०० कमरे व फ्लेट बन चुके हैं। तीन मूर्ति मंदिर का निर्माण हुआ है, जिसमें तीन वेदियां हैं। मुख्य वेदी में भगवान आदिनाथ, भरत व बाहुबली की मूर्तियाँ विराजमान हैं तथा अगल-बगल की वेदी में भगवान् पार्श्वनाथ, भगवान् नेमिनाथ की प्रतिमा विराजमान हैं। भगवान् महावीर स्वामी का नया कमल मंदिर

बन चुका है, जिसका कलशारोहण व मंदिर वेदी प्रतिष्ठा महोत्सव मई १९९० में सम्पन्न हो चुका है। इसके अलावा साधुओं के रहने के लिये रत्नत्रय निलय, कार्य संचालन के लिये कार्यालय एवं पानी की सुविधा के लिये टंकी भी बनाई जा चुकी है। अन्य निर्माण कार्य भी योजनानुसार चल रहे हैं, जिनका वर्णन भविष्य में समाज के समक्ष प्रस्तुत होगा।

शैक्षणिक गतिविधियाँ—

निर्माण के अतिरिक्त संस्थान के द्वारा शिक्षा एवं धर्म प्रचार का कार्य भी समय-समय पर किया जाता है। शिक्षण-प्रशिक्षण शिविर, सेमिनार, अन्तर्राष्ट्रीय सेमिनार आदि के आयोजन भी कई बार किये जा चुके हैं।

सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन—

पू० गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित चारों अनुयोगों से युक्त एवं धर्म प्रभावना के समाचारों से रहित सम्यग्ज्ञान मासिक पत्रिका का प्रकाशन जुलाई १९७४ से इसी संस्थान के अन्तर्गत प्रारम्भ किया गया था, जिसका विमोचन, प० पू० आचार्य श्री धर्मसागार जी महाराज के करकमलों से ऐतिहासिक दिगम्बर जैन लाल मंदिर दिल्ली में जुलाई १९७४ को किया गया था। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रांत में लगभग सभी नगरों में इस पत्रिका के सदस्य हैं तथा पिछले १८ वर्षों से मासिक पत्रिका का प्रकाशन प्रतिमाह निरबाध चल रहा है।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला—

संस्थान के अन्तर्गत वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला की स्थापना सन् १९७४ में की गई, जिसमें प्रथम पुष्प के रूप में अष्टसहस्री के एक भाग का प्रकाशन १९७४ में हुआ था। उसके बाद पू० ज्ञानमती माताजी द्वारा लिखित लगभग १२५ से अधिक ग्रन्थों का प्रकाशन अब तक हो चुका है। बच्चों के लिये बालविकास (चार भाग) एवं इन्द्रध्वज मण्डल विधान, कल्पद्रुम मण्डल विधान, तीन लोक मण्डल विधान, सर्वतोभद्र मण्डल विधान, जम्बूद्वीप मण्डल विधान आदि अनेक प्रकाशन अत्यन्त लोकप्रिय रहे हैं।

आचार्य श्री वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ—

सन् १९७९ में पू० माताजी की प्रेरणा से जम्बूद्वीप स्थल पर आचार्य श्री वीरसागर संस्कृत विद्यापीठ का शुभारम्भ हुआ। अब तक इस विद्यापीठ से पढ़कर कई विद्वान् समाज सेवा में संलग्न हो चुके हैं।

जम्बूद्वीप पारमार्थिक औषधालय—

नवम्बर १९८५ से जम्बूद्वीप स्थल पर निःशुल्क आयुर्वेदिक औषधालय भी प्रारम्भ किया गया है, जिसमें राजवैद्य शीतल प्रसाद एण्ड सन्स दिल्ली एवं त्रिमूर्ति फार्मेसी बीकानेर के सौजन्य से आयुर्वेदिक औषधि प्राप्त होती हैं।

जम्बूद्वीप पुस्तकालय—

संस्थान के अन्तर्गत एक विशाल पुस्तकालय की योजना रखी गई है, जिसका नाम जम्बूद्वीप पुस्तकालय के नाम से रखा गया है। इस पुस्तकालय में विश्वविद्यालय के पुस्तकालयों के अनुसार ही पुस्तकों को संचित किया जा रहा है।

पंचकल्याणक प्रतिष्ठायें—

प्रथम पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सन् १९७५ में भगवान् महावीर स्वामी की सवा नौ फुट ऊँची प्रतिमा की हुई थी। इसके लिये उस समय कारणवश एक छोटे से कमरे का ही निर्माण हो सका था। इस कमरे को हटाकर वर्तमान में भव्य कमल मन्दिर का निर्माण कार्य सम्पन्न हुआ है। इस पंचकल्याणक में चारित्र चक्रवर्ती १०८ आचार्य श्री शांतिसागरजी महाराज के तृतीय पट्टाचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज विशाल संघ सहित एवं एलाचार्य श्री विद्यानंदजी व गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। प्रतिष्ठाचार्य पं० श्री वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री, सोलापुर निवासी थे।

द्वितीय पंचकल्याणक ८४ फुट ऊँचे सुमेरु पर्वत के १६ जिनबिम्बों का २९ अप्रैल से ३ मई १९७९ तक आयोजित किया गया। इस पंचकल्याणक महोत्सव में आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज के शिष्य आचार्यकल्प श्री श्रेयांससागरजी महाराज का सान्निध्य एवं गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। इस आयोजन के प्रतिष्ठाचार्य संहितासूरी ब्र० सूरजमल जी, बाबाजी निवाई थे।

तृतीय पंचकल्याणक प्रतिष्ठा २८ अप्रैल १९८५ से २ मई १९८५ तक सम्पन्न हुई। यह आयोजन जम्बूद्वीप के समस्त जिनबिम्बों के पंचकल्याणक का आयोजन था। यह समारोह राष्ट्रीय स्तर पर सम्पन्न हुआ। इसमें सान्निध्य प्राप्त हुआ आचार्य श्री धर्मसागरजी महाराज के संघस्थ साधुगणों का एवं आ० श्री सुबाहुसागर जी तथा गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के संघ का। प्रतिष्ठाचार्य ब्र० सूरजमलजी बाबाजी थे।

समारोह में भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त से धर्मानुरागी बंधुओं ने भाग लिया तथा उ० प्र० सरकार का भी प्रशासन की ओर से अच्छा सहयोग रहा। उत्तरप्रदेश के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री नारायणदत्त तिवारी ने जम्बूद्वीप का उद्घाटन किया था। अन्य केन्द्रीय व उत्तरप्रदेश के मंत्रीगण व सांसद भी समारोह में उपस्थित हुये थे। केन्द्रीय भारत सरकार के रक्षामंत्री श्री पी० वी० नरसिंहराव (वर्तमान प्रधानमंत्री) भी आयोजन में सम्मिलित हुये थे।

चतुर्थ पंचकल्याणक ६ मार्च से ११ मार्च १९८७ तक सम्पन्न हुआ। इस महोत्सव में भगवान् पार्श्वनाथ व भगवान् नेमिनाथ की दो विशाल पद्मासन प्रतिमाओं का पंचकल्याणक महोत्सव हुआ। इस कार्यक्रम में आचार्य श्री विमलसागरजी महाराज के विशाल संघ का सान्निध्य तथा पू० गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के संघ का सान्निध्य प्राप्त हुआ। इस प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठाचार्य पं० श्री शिखरचंद जी भिण्ड थे। इसी शुभ अवसर पर सुमेरु पर्वत पर स्वर्ग कलशारोहण भी किया गया। मुख्य अतिथि के रूप में माधव राव सिंधिया, केन्द्रीय रेल मन्त्री तथा श्री जे० के० जैन पूर्व सांसद भी आये।

ज्ञानज्योति प्रवर्तन—

४ जून १९८२ को लाल किला मैदान, दिल्ली से जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति का प्रवर्तन तत्कालीन-प्रधानमन्त्री स्व० श्रीमती इन्दिरा गांधी के करकमलों से हुआ था। निरंतर १०४५ दिनों तक इस ज्ञानज्योति का प्रवर्तन सम्पूर्ण भारतवर्ष के नगर-नगर में हुआ, जिससे अहिंसा, चारित्र निर्माण एवं विश्व-बन्धुत्व का व्यापक प्रचार-प्रसार हुआ। इस प्रवर्तन में अनेक प्रान्तों के राज्यपाल, मुख्यमंत्री, सांसद, कमिश्नर, डी.एम., एस.डी.एम. आदि अनेक राजकीय अधिकारियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। दिगंबर जैन आचार्यों, मुनियों, आर्यिकाओं और भट्टारकों का भी स्थान-स्थान पर आशीर्वाद व सान्निध्य प्राप्त

हुआ। प्रवर्तन में तत्कालीन सांसद श्री जे० के० जैन का सराहनीय सहयोग समय-समय पर प्राप्त होता रहा।

ज्ञानज्योति की हस्तिनापुर में अखण्ड स्थापना—

१०४५ दिनों तक सारे भारतवर्ष में प्रवर्तन के बाद ज्ञानज्योति की अखण्ड स्थापना २८ अप्रैल १९८५ को जम्बूद्वीप मैन गेट के ठीक सामने स्थाई तौर पर हस्तिनापुर में कर दी गई। यह स्थापना श्री जे० के० जैन, सांसद की अध्यक्षता में तत्कालीन रक्षामन्त्री, भारत सरकार श्री पी० वी० नरसिंहराव (वर्तमान प्रधानमंत्री) के कर कमलों से हुई थी।

जम्बूद्वीप स्थल पर भव्य दीक्षायें—

पू० गणिनी आर्यिकारत्न श्री माताजी के शिष्य एवं शिष्याओं के दीक्षा समारोह भी जम्बूद्वीप स्थल पर समय-समय पर आयोजित किये गये हैं। सर्वप्रथम संघस्थ ब्र० श्री मोतीचन्द जैन, सनावद (म० प्र०) की क्षुल्लक दीक्षा का कार्यक्रम ८ मार्च १९८७ को समपन्न हुआ। यह दीक्षा आचार्य श्री विमलसागर जी महाराज के कर कमलों से सम्पन्न हुई थी। दीक्षा के उपरान्त उनका नाम क्षुल्लक श्री मोतीसागर जी रखा गया ।

द्वितीय दीक्षा समारोह कु० माधुरी शास्त्री, जो कि पू० ज्ञानमती माताजी की शिष्या एवं गृहस्थावस्था की लघु भगिनी हैं, उनकी दीक्षा १३ अगस्त १९८९ को विशाल स्तर पर सम्पन्न हुई। गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के कर-कमलों से दीक्षा प्राप्त करके आर्यिका श्री 'चन्दनामती' नाम रखा गया।

तृतीय दीक्षा ब्र० श्यामाबाई की १५ अक्टूबर १९८९ को सम्पन्न हुई। पू० गणिनी आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी के कर-कमलों से उन्हें क्षुल्लिका दीक्षा प्रदान करके क्षुल्लिका 'श्रद्धामती' नाम रखा गया।

पंचम पंचकल्याणक एवं जम्बूद्वीप महामहोत्सव—

३ मई से ७ मई १९९० तक जम्बूद्वीप स्थल पर अखिल भारतीय स्तर पर पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महामहोत्सव सम्पन्न हुआ। इस महोत्सव में इन्द्रध्वज के ४५८ जिनबिम्बों की पंचकल्याणक प्रतिष्ठा सम्पन्न हुई।

इसी शुभ अवसर पर पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव का आयोजन किया गया। यह आयोजन जम्बूद्वीप निर्माण के बाद प्रथम बार किया गया है तथा यह निश्चय किया गया कि प्रति पांच वर्ष में जम्बूद्वीप महामहोत्सव का आयोजन विशाल स्तर पर आगामी वर्षों में होता रहेगा। इस महोत्सव में ४ मई १९९० को केन्द्रीय उद्योग मंत्री भारत सरकार श्री अजीतसिंह एवं ६ मई १९९० को उत्तर प्रदेश के महामहिम राज्यपाल श्री बी० सत्यनारायण रेड्डी मुख्य अतिथि के रूप में सम्मिलित हुए। राज्यपाल महोदय के करकमलों से कमल मंदिर का उद्घाटन कार्यक्रम भी सम्पन्न हुआ।

इस प्रकार दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान में विभिन्न बहुमुखी योजनायें चल रही हैं, जिनमें भारतवर्ष के समस्त दिगम्बर जैन समाज का सहयोग प्राप्त होता रहता है।

कर्मयोगी बाल ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन,

अध्यक्ष :

दिगंबर जैन त्रिलोक शोध संस्थान

जम्बूद्वीप, हस्तिनापुर (मेरठ) उ० प्र०

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के सहयोगी

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत "वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला" का निर्माण सन् १९७४ में किया गया। जब से अब तक लाखों की संख्या में ग्रन्थों का प्रकाशन हो चुका है और निरन्तर हो रहा है। ग्रन्थमाला से पाठकों को ग्रन्थ सस्ती कीमत में प्राप्त हो सकें इस दृष्टि से ग्रन्थमाला में एक संरक्षक योजना अगस्त सन् १९९० से प्रारम्भ की गई है। इस योजना के अन्तर्गत निम्न महानुभाव अब तक संरक्षक बनकर अपना सहयोग प्रदान कर चुके हैं।

परम संरक्षक—

१. श्री मांगीलाल बाबूलाल जी पहाड़े, हैदराबाद (आ० प्र०)
२. श्रीमती शकुन्तला देवी जैन ध० प० श्री लाला सुमतप्रकाश जैन गज्जू कटरा शाहदरा, दिल्ली

संरक्षक—

१. श्रीमती आदर्श जैन ध० प० स्व० श्री अनन्तवीर जैन के सुपुत्र श्री मनोज कुमार जैन, हस्तिनापुर
२. श्रीमती राजूबाई मातेश्वरी श्री शिखरचन्द भाई देवेन्द्र कुमार लखमीचन्द जैन, सनावद (म० प्र०)
३. श्री चिमनलाल चुन्नीलाल दोशी, कीका स्ट्रीट, बम्बई
४. श्रीमती अरुणाबेन मन्नूभाई कोटड़िया, सी० पी० टैंक रोड, बम्बई
५. श्रीमती ताराबेन चन्दूलाल दोशी, फ्रेन्च ब्रिज, बम्बई
६. श्री रतिलाल चुन्नीलाल दोशी, बम्बई
७. श्री मथुरा बाई खुशालचन्द जैन की पुण्य स्मृति में द्वारा—श्री रतनचन्द खुशालचन्द गांधी के सुपुत्र श्री धन्यकुमार, अशोक कुमार, शिरीष कुमार, धर्मराज गाँधी, फलटन (सातारा) महा०
८. श्री शांतिलाल खुशालचन्द गाँधी, फलटन (सातारा) महा०
९. श्री अनन्तलाल फूलचन्द फड़े, अकलूज (सोलापुर) महा०
१०. श्री हीरालाल माणिकलाल गांधी, अकलूज (सोलापुर) महा०
११. श्री जयकुमार खुशालचन्द गांधी, अकलूज (सोलापुर) महा०
१२. श्रीमती बदामी देवी मातेश्वरी श्री पद्म कुमार जैन गंगवाल, कानपुर (उ० प्र०)
१३. श्रीमती कमला देवी ध. प. स्व० श्री महेन्द्र कुमार जैन, घंटे वाले हलवाई, दरियागंज—नई दिल्ली
१४. श्रीमती उषादेवी ध. प. श्री श्रवणकुमार जैन, चावड़ी बाजार, दिल्ली
१५. श्री मुकेश कुमार जैन, कटरा शहनशाही, चाँदनी चौक, दिल्ली
१६. श्री हुकमीचन्द मांगीलाल शाह, धान मंडी, उदयपुर (राज०)
१७. श्री किरणचन्द जैन, कटरा धूलियान, चाँदनी चौक, दिल्ली
१८. श्रीमती विमला देवी ध. प. श्री महावीर प्रसाद जैन इंजीनियर विवेक विहार, दिल्ली
१९. श्रीमती उषादेवी ध. प. श्री अशोक कुमार जैन (खेकड़ा निवासी) पो० बहराइच (उ० प्र०)
२०. श्रीमती लीलावती ध. प. श्री हरीशचन्द जैन, शकरपुर, दिल्ली

२१. श्री दुलीचन्द जैन, बाहुबली एंक्लेव, दिल्ली
२२. श्री रतिलाल केवलचन्द गांधी की पुण्य स्मृति में, पापूलर परिवार सूरत, (गुजरात)
२३. श्रीमती भंवरीदेवी ध. प. स्व. श्री सदासुख जी जैन पांड्या की स्मृति में इन्दरचन्द सुमेरमल जैन पांड्या, शिलांग (मेघालय)
२४. श्रीमती सोहनी देवी ध० प० श्री तनसुखराय सेठी, फैंसी बाजार, गौहाटी (आसाम)
२५. श्रीमती धापूबाई ध. प. श्री कस्तूरचन्द जैन, रामगंजमंडी (राज०)
२६. श्री मिट्ठनलाल चन्द्रभान जैन, कविनगर गाजियाबाद (उ० प्र०)
२७. श्रीमती शकुन्तला देवी ध० प० श्री सुरेशचन्द जी जैन, बर्तन वाले, खुड मौहल्ला, देहरादून (उ० प्र०)
२८. श्री देवेन्द्र कुमार गुणवन्त कुमार टोंग्या, बड़नगर (म० प्र०)
२९. श्री दिगम्बर जैन समाज, तहसील फतेहपुर (बाराबंकी) उ० प्र० अध्यक्ष—श्री सरोज कुमार जैन, मन्त्री श्री मुन्नालाल जैन, कोषाध्यक्ष श्री प्रेमप्रकाश जैन
३०. श्री मन्नालाल रामलाल जैन डूंगरवाला, भानपुरा (मन्दसौर)
३१. श्री इन्दरचन्द कैलाशचन्द जैन चौधरी, सनावद (म० प्र०)
३२. श्री अमोलकचन्द प्रकाशचन्द जैन सर्राफ, सनावद (म० प्र०)
३३. श्री विमल चन्द जैन, रखबचन्द दशरथ सा, सनावद (म० प्र०)
३४. श्री आजाद कुमार जैन शाह (सनावद वाले), श्योपुर कलां, (म० प्र०)
३५. श्रीमती सुषमा देवी ध० प० श्री राकेश कुमार जैन, मवाना
३६. श्रीमती कुसुम जैन ध० प० श्री रमेश चन्द जैन, किशनपुरी, बागपत रोड, मेरठ (उ० प्र०)
३७. श्रीमती किरन जैन ध० प० श्री पद्मप्रसाद जैन एडवोकेट मेरठ (उ० प्र०)
३८. श्री प्रभा चन्द गोधा, सिविल लाइन, जयपुर (राज०)
३९. श्रीमती विमला देवी ध० प० श्री जिनेन्द्र प्रसाद जैन ठेकेदार, टोडरमल रोड, नई दिल्ली—११०००१
४०. श्रीमती क्षमा देवी जैन, मधुवन, दिल्ली—११००९२
४१. श्रीमती कमला देवी ध० प० श्री राजेन्द्र कुमार जैन टोडरका, थाणा (महा०)
४२. श्री अजीत प्रसाद जैन बब्बे जी, श्री राजकुमार श्रवणकुमार जैन, ताल कटोरा रोड, लखनऊ
४३. श्री गोपीचन्द विपिन कुमार, सुबोध कुमार जैन गंज बाजार सरधना (उ० प्र०)
४४. श्रीमती रतन सुन्दरी देवी ध० प० श्री वीर चन्द जैन, चिकन वाले लखनऊ (उ० प्र०)
४५. श्री अमितकुमार सुपुत्र डॉ० सुभाष चन्द जैन, जोधपुर (राज०)
४६. श्रीमती आशा जैन ध० प० श्री प्रमोद कुमार जैन, मुजफ्फरनगर वाले, रांची (बिहार)

बाल ब्र० रवीन्द्र कुमार जैन

सम्पादक

एकाक्षरीकोशः

अकारो वासुदेवः स्यादाकारस्तु पितामहः । पूजायां चापि मांगल्ये आकारः परिकीर्तितः ॥ १ ॥
इकार उच्यते कामो लक्ष्मीरीकार उच्यते । उकारः शंकरः प्रोक्त ऊकारश्चापि लक्षणम् ॥ २ ॥
रक्षणे चार्थ ऊकार ऊकारो ब्रह्मणि स्मृतः । ऋकारो देवमाता स्यादृकारो दनुजप्रसूः ॥ ३ ॥
लृकारो देवजातीनां माता सद्भिः प्रकीर्तितः । लृकारो-स्मर्यते दैत्यजननी शब्द कोविदैः ॥ ४ ॥
एकार उच्यते विष्णुरैकारः स्यान्महेश्वर । ओकारस्तु भवेद् ब्रह्मा औकारोऽनन्त उच्यते ॥ ५ ॥
अं स्यच्च परमं ब्रह्म अः स्याच्चैव महेश्वरः । कः प्रजापति रुद्दिष्टः कोऽर्कवाटवनलेषु च ॥ ६ ॥
कश्चात्मनि मयूरो च कः प्रकाश उदाहृतः । कं शिरो जलमाख्यातं कं सुखे च प्रकीर्तितः ॥ ७ ॥
पृथिव्यां कुः समाख्यातः कुः पापेऽपि प्रकीर्तितः । खमिंद्रिये खमाकारो खः स्वर्गेऽपि प्रकीर्तितः ॥ ८ ॥
सामान्ये च तथा शून्ये खशब्दः प्रकीर्तितः । गो गवेशः समुद्दिष्टो गंधर्वोगः प्रकीर्तितः ॥ ९ ॥
गं गीतं गा च गाथा स्याद्गौश्च धेनुः सरस्वती । घा घष्टाय समाख्याता घो घनश्च प्रकीर्तितः ॥ १० ॥
घो घष्टाहननेऽधर्मे घूघोर्णाघुर्ध्वनावपि । ङकारो भैरवः ख्यातो ङकारो विषयस्पृहा ॥ ११ ॥
चश्चंद्रमाः समाख्यातो भास्करो तस्करे मतः । निर्मलं छं समाख्यातं तरले छः प्रकीर्तितः ॥ १२ ॥
छेदके छः समाख्यातो विद्वद्भिः शब्दकोविदैः । जकारो गायने प्रोक्तो जयने जः प्रकीर्तितः ॥ १३ ॥
जेता जश्च प्रकथितः सूरिभिः शब्दशासने । खो झकारः कथितो नष्टे झश्चोच्यते बुधैः ॥ १४ ॥
झकारश्च तथा वायौ नेपथ्ये समुदाहृतः । जकारो गायने प्रोक्तो जकारो झर्झरध्वजौ ॥ १५ ॥
ये धीस्त्र्यां च करके रो ध्वजौ च प्रकीर्तितः । उकारो जनतायां स्याट्टो ध्वनौ च शठेऽपि ॥ १६ ॥
ठो महेशः समाख्यातष्ठः शून्यः प्रकीर्तितः । बृहद्ध्वानौ च ठः प्रोक्तस्तथा चंद्रस्य मंडले ॥ १७ ॥
डकारः शंकरे त्रासे ध्वनौ भीमे निरुच्यते । ढकारः कीर्तितो ढक्का निर्गुणे निर्धने मतः ॥ १८ ॥
णकारः सूकरे ज्ञाने निश्चयेते निर्णयेऽपि च । तकारः कीर्तितश्चोरे क्रीड पुच्छे प्रकीर्तितः ॥ १९ ॥
शिलोच्चये थकारः स्थाल्यकारो नयरक्षणे । दकारोऽभ्रे कलत्रे च च्छेदे दाने च दातरि ॥ २० ॥
धं धने सघने धः स्याद्विधातीर मनावय । धीषणा धीः समख्याता धूश्चैवं भारवित्तयोः ॥ २१ ॥
नेता नश्च समाख्यात स्तरणौ न प्रकीर्तितः । नकारः सौगते बुद्धौ स्तुतौ वृक्षे प्रकीर्तितः ॥ २२ ॥
न शब्दः स्वागते बन्धौ वृक्षे सूर्ये च कीर्तितः । पः कुवेरः समाख्यातः पश्चिमेपः प्रकीर्तितः ॥ २३ ॥
पवने पः समाख्यातः पः स्यात्पाने च पातरि । कफे वाते फकारः स्यात्तथाऽऽह्वाने प्रकीर्तितः ॥ २४ ॥
फूत्कारोऽपि च फः प्रोक्तस्तथा निष्फलभाषणे । वकारो वरुणः प्रोक्तो बलजेब फलेऽपि च ॥ २५ ॥
वक्षः स्थले च बः प्रोक्तो गदायां समुदाहृतः । नक्षत्रे भं बुधाः प्राहुर्भवने भः प्रकीर्तितः ॥ २६ ॥
दीप्तिर्भा स्याच्च भूर्भूमिभीर्भयं कथितं बुधैः । मः शिवश्चंद्रमा वेधाः महालक्ष्मीश्चकीर्तिता ॥ २७ ॥
मा च मातरि माने च बंधने मः प्रकीर्तितः । यशो यः कथितः प्राज्ञैर्या वायुरिति शब्दितः ॥ २८ ॥
याने मातरि यस्त्यागे कथितः शब्दवादिभिः । रश्चारोमेऽनिले ब्रह्मौ भूमावपिधनेऽपि च ॥ २९ ॥

इंद्रिये धनरोधे च रुर्भये च प्रकीर्तितः । लो दीप्तौ घांलश्च भूमौभये चाह्लादनेऽपि च ॥ ३० ॥
लो वाते लवणे च स्याल्लो दाने च प्रकीर्तितः । लः श्लेषे चाशये चैव प्रलये साधनेऽपि लः ॥ ३१ ॥
मानसे वरुणे चैव लकारः सांत्वनेऽपि च । विश्च पक्षी निगदितो गमने विः प्रकीर्तितः ॥ ३२ ॥
शं सुखं शंकर श्रेयः शश्च सीरी निगद्यते । शयने शः समाख्यातो हिंसायां शो निगद्यते ॥ ३३ ॥
षः कीर्तितो युधैः श्रेष्ठे षश्च गंभीर लोचने । उपसर्गे परोक्षे च षकारः परिकीर्तितः ॥ ३४ ॥
सः कोपे वरुणे सः स्यात्तथा शूलिनिकीर्तितः । सा च लक्ष्मीर्बुधैः प्रोक्ता गौरी सा च सः ईश्वर ॥ ३५ ॥
हः कोषे वारणे हश्च तथा शूली प्रकीर्तितः । हिः पद्यपूरणे प्रोक्तो हिः स्याद्धेत्ववधारणे ॥ ३६ ॥
क्षः क्षेत्रे वक्षसि प्रोक्तो बुधैः क्षः शब्दशासने । क्षिः क्षेत्रे क्षेत्ररक्षे च नृसिंहे च प्रकीर्तितः ॥ ३७ ॥
आगमेभ्योऽभिधानेभ्यो धातुभ्यः शब्दशासनात् । एवमेकाक्षरं नामाभिधानं सुकृतं मया ॥ ३८ ॥

॥इति पुरुषोत्तमकृत एकाक्षरीकोशः ॥

ॐ नमः सिद्धेभ्यः

श्रीशर्ववर्मकृत-कलापव्याकरणस्य

वादिपर्वतवज्रश्रीमद्भावसेनत्रैविद्यकृताटीका

कातन्त्ररूपमाला

मङ्गलम्

[1]वीरं प्रणम्य सर्वज्ञं, विनष्टाशेषदोषकम्।
कातन्त्ररूपमालेयं, बालबोधाय कथ्यते ॥१ ॥
नमस्तस्यै सरस्वत्यै[2], विमलज्ञानमूर्त्तये।
विचित्रालोकयात्रेयं, यत्प्रसादात्प्रवर्तते ॥२ ॥

मंगलाचरण का अर्थ

जिन्होंने सम्पूर्ण दोषों को नष्ट कर दिया है और जो संपूर्ण चराचर जगत् को जान लेने से सर्वज्ञ हो चुके हैं ऐसे वीर भगवान को नमस्कार करके बालकों को व्याकरण का ज्ञान कराने के लिये इस छोटी-सी कातंत्ररूपमाला नाम की व्याकरण को मैं कहता हूँ ॥१ ॥

भावार्थ—कु-ईषत् तंत्र-व्याकरणं। थोड़े से सूत्र जिसमें हैं उसे कातंत्र कहते हैं। इस कातंत्र व्याकरण में भी बहुत ही थोड़े सूत्रों के द्वारा व्याकरण के सारे ही नियम बता दिये गये हैं। इसमें संज्ञायें भी बहुत ही सरल हैं अतः इसका "कातंत्र" यह नाम सार्थक है।

विमलज्ञान—द्वादशांग ज्ञान की मूर्तिस्वरूप उस सरस्वती माता को मेरा नमस्कार है कि जिसके प्रसाद से एक स्थान में बैठे-बैठे ही सारे तीन लोक की विचित्र यात्रा का आनंद आ जाता है ॥२ ॥

---

१. वि विशिष्टां ईं लक्ष्मीं राति ददातीति वीरः। अथवा विशेषेण ईर्ते सर्वान् सकलपदार्थान् जानातीति वीरः। वि विशिष्टा इरा वाक् दिव्यध्वनिर्यस्यासौ वीरः। अथवा वि विशिष्टा इरा अष्टमपृथ्वी यस्यासौ वीरः। अथवा वीरयतीति वीरः कामराजयमराजमोहराजान् निराकरोतीति वीरः। वि विशिष्टा ईरा गगनगमनं यस्यासौ वीरः तं प्रणमनं पूर्वं पश्चात्किंचिदिति प्रणम्य ॥ सर्वं जानातीति सर्वज्ञः सर्वान् सकलपदार्थान् क्रमकरणव्यवधानराहित्येन युगपत् जानातीति सर्वज्ञः॥ नश्यंतिस्म नष्टाः। वि विशेषेण नष्टा विनष्टाः। अशेषाश्च ते दोषाश्च अशेषदोषा। विनष्टाः अशेषदोषा येनासौ विनष्टाशेषदोषकः तम्। कु ईषत्तन्त्रं कातन्त्रं, रूपाणां माला रूपमाला, कातन्त्रस्य रूपमाला कातन्त्ररूपमाला ॥ २. सरः प्रसरणं सर्वज्ञानमया मूर्त्तिरस्या अस्तीति सरस्वती तस्यै। विगतं मलं यस्मात्तद्विमलं। ज्ञायतेऽनेन इति ज्ञानं विमलं च तत् ज्ञानं च विमलज्ञानं। विमलज्ञानमेव मूर्त्तिर्यस्याः सा विमलज्ञानमूर्त्तिः तस्यै ॥

नमो वृषभसेनादि-गौतमान्त्यगणेशिने।
मूलोत्तरगुणाढ्याय, सर्वस्मै मुनये नमः ॥३ ॥
गुरुभक्त्या वयं, सार्द्धद्वीपद्वितयवर्त्तिनः।
वन्दामहे त्रिसङ्ख्योन-नवकोटिमुनीश्वरान् ॥४ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य, ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन, तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥५ ॥

अथ संज्ञासन्धिः

सिद्धो वर्णसमाम्नायः ॥१ ॥

भावार्थ—सरस्वती के माहात्म्य से—ग्रन्थों के पठन-पाठन रूप स्वाध्याय के प्रभाव से मनुष्य तीन लोक में स्थित जीव, अजीव आदि संपूर्ण तत्त्वों को, ऊर्ध्वलोक, मध्यलोक, अधोलोक आदि संपूर्ण जगत् के स्वरूप को जान लेता है। आप्तमीमांसा में भी कहा है कि—

स्याद्वादकेवलज्ञाने सर्वतत्त्वप्रकाशने।
भेदः साक्षादसाक्षाच्च ह्यवस्त्वन्य समं भवेत् ॥

स्याद्वाद—आगम और केवलज्ञान दोनों ही संपूर्ण तत्त्व को प्रकाशित करने वाले हैं अंतर केवल इतना ही है कि केवलज्ञान साक्षात् संपूर्ण पदार्थों का ज्ञान करा देता है और श्रुतज्ञान परोक्ष रूप से कुछ-कुछ पर्यायों सहित छहों द्रव्यों का ज्ञान करा देता है। मानस मतिज्ञान और दिव्य श्रुतज्ञान के द्वारा यह जीव परोक्ष रूप से सारे जगत् के स्वरूप को जान लेता है।

वृषभसेन को प्रमुख करके अंतिम गणधर श्री गौतम स्वामीपर्यंत चौदह सौ बावन गणधर देवों को मेरा नमस्कार होवे एवं मूल और उत्तर गुणों से सहित सभी मुनियों को मेरा नमस्कार होवे ॥३ ॥

अर्थात् वृषभदेव के चौरासी गणधर हैं—उनमें प्रमुख गणधर वृषभसेन हैं एवं महावीर स्वामी के १४ गणधरों में प्रथम गणधर गौतम स्वामी हैं। इनमें मध्य बाईस तीर्थंकरों के सभी गणधरों की संख्या चौदह सौ बावन मानी गई है।

ढाई द्वीप संबंधी तीन कम नव करोण मुनिराजों को हम गुरुभक्ति पूर्वक नमस्कार करते हैं ॥४ ॥

अर्थात् जंबूद्वीप, धातकीखंड ये दो द्वीप और पुष्करद्वीप के बीच में मानुषोत्तर पर्वत के निमित्त इधर के आधे पुष्कर द्वीप में ही मनुष्य लोक है अतः आधा पुष्कर द्वीप ऐसे ढाई द्वीपों में एक सौ सत्तर कर्मभूमियाँ हैं। इन कर्मभूमियों में अधिक से अधिक तीन कम नव करोड़ मुनिराज एक साथ हो सकते हैं यहाँ उन सभी को नमस्कार किया गया है।

ज्ञानरूपी अंजन की शलाका से अज्ञान रूपी अंधकार से अंधे हुये प्राणियों के ज्ञानरूपी नेत्रों को जिन्होंने खोल दिया है उन श्री गुरुओं को मेरा नमस्कार होवे ॥५ ॥

अथ संज्ञा संधि

वर्णों का समुदाय अनादि काल से सिद्ध है ॥१ ॥

सिद्धः[1] खलु वर्णानां [2]समाम्नायो वेदितव्यः। ते के,—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह इति।

तत्र चतुर्दशादौ [3]स्वराः ॥२॥

तस्मिन् वर्णसमाम्नाये आदौ ये चतुर्दश वर्णास्ते स्वरसंज्ञा भवन्ति। ते के, अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ इति।

दश समानाः ॥३॥

तस्मिन् वर्णसमाम्नाये आदौ ये दश वर्णास्ते समानसंज्ञा भवन्ति। ते के,—अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ इति।

तेषां द्वौ द्वावन्योऽन्यस्य सवर्णौ ॥४॥

तेषां समानानां मध्ये द्वौ द्वौ वर्णावन्योऽन्यस्य परस्परं सवर्णसंज्ञौ भवतः अआ इई। उऊ ऋॠ ऌॡ। तेषां ग्रहणं किमर्थं ? द्वयोर्ह्रस्वयोर्द्वयोर्दीर्घयोश्च सवर्णसंज्ञार्थम्।

श्लोकः

क्रमेण वैपरीत्येन, लघूनां लघुभिः सह।
गुरूणां गुरुभिः सार्धं, चतुर्धेति सवर्णता ॥१॥

इन वर्णों के समूह को आज तक न किसी ने बनाया है और न कोई नष्ट ही कर सकते हैं ये वर्ण अनादि निधन हैं। उनको जानना चाहिये। वे कौन हैं ? अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह। ये सैंतालीस वर्ण कहलाते हैं।

इनमें आदि के चौदह अक्षर स्वर कहलाते हैं ॥२॥

इन वर्णों के समुदायों में आदि के जो चौदह अक्षर हैं, वे स्वर संज्ञक हैं। वे कौन-कौन हैं ? अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ। ये चौदह स्वर हैं।

दश समान संज्ञक हैं ॥३॥

इन स्वरों में आदि के जो दश वर्ण हैं उनकी "समान" यह संज्ञा है। वे कौन हैं ? अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ।

इनमें दो-दो वर्ण आपस में सवर्णी हैं ॥४॥

इस समान संज्ञक स्वरों में दो-दो वर्ण आपस में सवर्ण संज्ञक हैं। अ आ, इ ई, उ ऊ, ऋ ॠ, ऌ ॡ।

सूत्र में "तेषां" शब्द का ग्रहण क्यों किया है ? दो ह्रस्व वर्ण एवं दो दीर्घ वर्ण भी आपस में सवर्ण संज्ञक हैं इस बात को स्पष्ट करने के लिए सूत्र में "तेषां" पद सार्थक है। अर्थात् चार प्रकार से सवर्णता मानी गई है।

श्लोकार्थ—क्रम से अर्थात् ह्रस्व ह्रस्व का दीर्घ दीर्घ का दीर्घ ह्रस्व का और ह्रस्व दीर्घ का यह चार भेद हैं।

---

१. अनादिकालेन प्रवृत्त इत्यर्थः। सिद्धशब्दः अनित्यार्थो वा निष्पन्नार्थो वा प्रसिद्धार्थो वा। कांपिल्ये सिद्धस्थित इत्यत्र सिद्धशब्दोऽनादिमङ्गलवाची॥ २. सम्यगाम्नायन्ते अभ्यस्यन्ते इति समाम्नायाः। श्लोकः। व्यञ्जनानि त्रयस्त्रिंशत्स्वराश्चैव चतुर्दश। अनुस्वारो विसर्गश्च जिह्वामूलीय एव च ॥१॥ गजकुम्भाकृतिर्वर्णः प्लुतश्च परिकीर्तितः॥ एवं वर्णास्त्रिपञ्चाशन्मातृकाया उदाहृताः ॥२॥ ३. स्वयं राजन्त इति स्वराः॥

ऋकारलृकारौ च ॥५ ॥

ऋकारलृकारौ च परस्परं सवर्णसंज्ञौ भवतः । ऋलृ ।

पूर्वो ह्रस्वः[1] ॥६ ॥

तयोः सवर्णसंज्ञयोर्मध्ये पूर्वो वर्णो ह्रस्वसंज्ञो भवति । अ इ उ ऋ लृ ॥

परो दीर्घः[2] ॥७ ॥

तयोः सवर्णयोर्मध्ये परो वर्णो दीर्घसंज्ञो भवति । आ ई ऊ ॠ ॡ ॥

स्वरोऽवर्णवर्जो नामि ॥८ ॥

अवर्णवर्जः स्वरो नामिसंज्ञो भवति । इई उऊ ऋॠ लृॡ एऐ ओऔ ॥ वर्णग्रहणे सवर्णग्रहणं । कारग्रहणे केवलग्रहणम् ।

एकारादीनि सन्ध्यक्षराणि ॥९ ॥

एकारादीनि स्वरनामानि सन्ध्यक्षरसंज्ञानि भवन्ति । तानि कानि । ए ऐ ओ औ ॥

नित्यं सन्ध्यक्षराणि दीर्घाणि ॥१० ॥

सन्ध्यक्षराणि नित्यं दीर्घाणि भवंति ।

कादीनि व्यञ्जनानि[3] ॥११ ॥

ऋकार और लृकार भी परस्पर सवर्ण हैं ॥५ ॥

ऋकार और लृकार भी परस्पर में सवर्ण संज्ञक हैं, जैसे—ऋ लृ ।

पूर्व के वर्ण ह्रस्व हैं ॥६ ॥

इन सवर्ण संज्ञक स्वरों में पूर्व-पूर्व पाँच स्वर ह्रस्व संज्ञक हैं । अ इ उ ऋ लृ ।

अंत के स्वर दीर्घ संज्ञक हैं ॥७ ॥

इन सवर्ण संज्ञक दश स्वरों में अंत-अंत के पाँच स्वर दीर्घ संज्ञक हैं । आ ई ऊ ॠ ॡ ।

अवर्ण को छोड़कर शेष स्वर नामि संज्ञक हैं ॥८ ॥

अवर्ण को छोड़कर शेष बारह स्वरों की 'नामि' यह संज्ञा है । इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ । वर्ण के ग्रहण करने से सवर्ण का अर्थात् दोनों स्वरों का ग्रहण हो जाता है और 'कार' शब्द से ग्रहण करने से केवल एक स्वर का ही ग्रहण होता है जैसे अवर्ण कहने से अ आ दोनों ही आ गये एवं अकार कहने से मात्र 'अ' शब्द ही आता है । यह नियम सर्वत्र व्याकरण में समझना चाहिये ।

एकार आदि स्वर संध्यक्षर कहलाते हैं ॥९ ॥

एकार आदि स्वर, संध्यक्षर संज्ञक होते हैं । वे कौन हैं ? ए ऐ ओ औ ।

ये संध्यक्षर हमेशा ही दीर्घ रहते हैं ॥१० ॥

'क' आदि वर्ण व्यंजन कहलाते हैं ॥११ ॥

---

१. ह्रस्यते एकमात्रतया उच्चार्यते इति ह्रस्वः । २. दृणाति विदारयति द्विमात्रतया मुखबिलमिति दीर्घः । ३. व्यज्यन्ते अकारादिभिः पृथक्क्रियन्ते इति व्यञ्जनानि अथवा विगतः अञ्जनः स्वरलेपो येभ्य इति व्यञ्जनानि ।

ककारादीनि हकारपर्य्यन्तान्यक्षराणि व्यञ्जनसंज्ञानि भवन्ति। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह[1]॥

ते वर्गाः पञ्च पञ्च पञ्च ॥१२॥

ते ककारादयो मावसाना वर्णाः पञ्च पञ्च भूत्वा पञ्चैव वर्गसंज्ञा भवन्ति। क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म॥

वर्गाणां प्रथमद्वितीयाः शषसाश्चाघोषाः[2] ॥१३॥

वर्गाणां प्रथमद्वितीया वर्णाः शषसाश्चाघोषसंज्ञा भवन्ति। कख चछ टठ तथ पफ श ष स॥

घोषवन्तोऽन्ये ॥१४॥

अघोषेभ्योन्ये तृतीयचतुर्थपञ्चमा वर्णा यरलवहाश्च घोषवत्संज्ञा भवन्ति। गघङ जझञ डढण दधन बभम यरलवह इति॥

अनुनासिका ङञणनमाः ॥१५॥

अनु पश्चान्नासिकास्थानमुच्चारणं येषां ते अनुनासिकाः। ङञणनमा वर्णा अनुनासिकसंज्ञा भवन्ति। ङञणनम इति॥

अन्तःस्था यरलवाः ॥१६॥

वर्गाणां ऊष्मणांच अन्तः तिष्ठन्तीत्यन्तःस्थाः। यरलवा इत्येते वर्णा अन्तःस्थसंज्ञा भवन्ति। यरलव॥

ककार से लेकर हकार पर्यंत अक्षर व्यंजन संज्ञक हैं। ये ३३ हैं।

क ख ग घ ङ। च छ ज झ ञ। ट ठ ड ढ ण। त थ द ध न। प फ ब भ म। य र ल व। श ष स ह।

उनमें पाँच-पाँच के पाँच वर्ग होते हैं ॥१२॥

ये ककारादि से 'म' पर्यंत पाँच-पाँच वर्ण मिलकर पाँच ही वर्ग होते हैं। क ख ग घ ङ ये कवर्ग संज्ञक हैं। कवर्ग कहने से ये पाँचों ही अक्षर आ जाते हैं उसी प्रकार से चवर्ग, टवर्ग, तवर्ग, पवर्ग होते हैं।

इन वर्गों में प्रथम द्वितीय अक्षर और श ष स अक्षर अघोष कहलाते हैं ॥१३॥

जैसे—कख, चछ, टठ, तथ, पफ, श ष स। ये तेरह अक्षर।

बचे हुये अक्षर घोषवान हैं ॥१४॥

अघोष अक्षर से बचे हुये शेष तृतीय, चतुर्थ, पंचम अक्षर और य र ल व ह ये घोषवान संज्ञक हैं। जैसे—ग घ ङ, ज झ ञ, ड ढ ण, द ध न, ब भ म, य र ल व, ह। ये २० अक्षर घोष हैं।

ङ, ञ, ण, न, म ये अनुनासिक संज्ञक हैं ॥१५॥

अनु-पश्चात् नासिका स्थान से जिनका उच्चारण होता है वे अनुनासिक कहलाते हैं। अर्थात् इन ङ, ञ, ण, न और म के उच्चारण में कुछ-कुछ ध्वनि नाक से भी निकलती है इसलिये ये अनुनासिक कहलाते हैं।

य र ल व अक्षर अंतस्थ संज्ञक हैं ॥१६॥

जो ओष्ठ आदि स्थानों के अंत में रहते हैं उन्हें अंतस्थ कहते हैं।

---

१. ककारादीनामकार उच्चारणार्थः। २. घोषो ध्वनिर्न विद्यते येषां ते अघोषाः।

ऊष्माणः शषसहाः ॥१७॥

ऊष्म उष्णं धर्ममुत्पादयन्तीति ऊष्माणः। शषसहा इत्येते वर्णा ऊष्मसंज्ञा भवन्ति। शषसह।

अः इति विसर्जनीयः ॥१८॥

येन विना यदुच्चारयितुं न शक्यते स उच्चारणार्थो भवति। अकार इहोच्चारणार्थः। यथा कादिषु। कुमारीस्तनयुगलाकृतिवर्णो विसर्जनीयसंज्ञो भवति।

शृङ्गवद्बालवत्सस्य कुमारीस्तनयुग्मवत्।
नेत्रवत्कृष्णसर्पस्य विसर्गोऽयमिति स्मृतः[१] ॥१॥

ᳵक इति जिह्वामूलीयः[२] ॥१९॥

ककार इहोच्चारणार्थः वज्राकृतिवर्णो जिह्वामूलीयसंज्ञो भवति। ᳵक ॥

ᳶप इत्युपध्मानीयः[३] ॥२०॥

पकार इहोच्चारणार्थः। गजकुम्भाकृतिवर्ण उपध्मानीयसंज्ञो भवति। ᳶप॥

श, ष, स, ह अक्षर ऊष्म संज्ञक हैं ॥१७॥

उष्ण धर्म को उत्पन्न करने वाले को 'ऊष्म' कहते हैं अर्थात् इनके उच्चारण काल में मुख से कुछ उष्ण वायु निकलती है।

"अः" यह विसर्ग कहलाता है ॥१८॥

जिसके बिना उच्चारण न किया जा सके वह उच्चारण के लिये होता है। यहाँ विसर्ग को बतलाने के लिये 'अकार' शब्द उच्चारण के लिये है। जैसे कः आदि में 'क' शब्द उच्चारण के लिये रहता है। यह विसर्ग सभी स्वर और व्यंजन में लगाया जाता है।

कुमारी कन्या के स्तन युगल की आकृति वाला जो वर्ण है वह विसर्ग संज्ञक है।

श्लोकार्थ—बाल बछड़े के छोटे-छोटे सींग के समान, कुमारी कन्या के स्तन युगल के समान और काले सर्प की दोनों आँखों के समान यह विसर्ग माना गया है।

'ᳵक' यह वर्ण जिह्वामूलीय कहलाता है ॥१९॥

यहाँ ककार उच्चारण के लिये है मतलब वज्राकृति वर्ण जिह्वामूलीय संज्ञक होता है। 'ᳵक'[1]

'ᳶप' यह उपध्मानीय संज्ञक है ॥२०॥

यहाँ 'प' शब्द उच्चारण के लिये है मतलब गजकुंभाकृति[2] वर्ण को उपध्मानीय संज्ञा है।

---

१. विसृज्यते विरम्यते येन स विसर्गः। २. जिह्वामूले भवो जिह्वामूलीयः। ३. उप समीपे ध्मायते शब्दायते इति उपध्मानीयः।

1. क के पीछे अर्ध चन्द्राकार जैसे, क ᳵ करोति। 2. प से पहले गज कुम्भाकृति जैसे क) (पठति।

अं इत्यनुस्वारः ॥२१ ॥

अकार इहोच्चारणार्थः। बिन्दुमात्रो वर्णोऽनुस्वारसंज्ञो[१] भवति ॥अं।

लोकोपचाराद्ग्रहणसिद्धिः ॥२२ ॥

लोकानामुपचारो व्यवहारः[२]। तस्मादिहानुक्तस्यापि ग्रहणस्य शब्दस्य[३] सिद्धिः प्रवृत्तिर्वेदितव्या। तत्कथं ? त्वया ग्रामो गम्यते इत्युक्तेस्त्वं ग्रामाय गच्छसीत्यर्थः।

इति संज्ञासन्धिः ॥१ ॥

अथस्वरसन्धिरुच्यते

कः सन्धिः। पूर्वोत्तरवर्णानामव्यवधानेन परस्परेण सन्धानं संश्लेषः[४]सन्धिः ॥ तव अभ्युदयः। कान्ता आगता। दधि इदम्। नदी ईहते। वसु उभयोः। वधू ऊढा। पितृ ऋषभः। मातृ ॠकारेण। कॄ ॠकारः ॥ कॄ ॠकारेण। इति स्थिते।

अनतिक्रमयन्विश्लेषयेत् ॥२३ ॥

'अं' यह वर्ण अनुस्वार संज्ञक है ॥२१ ॥

यहाँ भी अकार मात्र उच्चारण के लिये है। मतलब बिंदु मात्र वर्ण अनुस्वार संज्ञक है ऐसा समझना चाहिये।

लोकोपचार से शब्द ग्रहण की सिद्धि होती है ॥२२ ॥

लोक के उपचार को व्यवहार कहते हैं। इसलिये यहाँ नहीं कहे गये भी ग्रहण—शब्दों की सिद्धि-प्रवृत्ति समझ लेना चाहिये।

प्रश्न—वह कैसे ?

उत्तर—जैसे तुम्हारे द्वारा गाँव को जाया जाता है ऐसा वाक्य बनाने पर 'तुम गाँव को जाते हो' ऐसा अर्थ समझना चाहिये।

भावार्थ—जिसका दूसरा नाम है वाक्य या वृद्ध ज्ञानी जनका व्यवहार उससे तथा प्रसिद्ध पद के संयोग से निश्चय होता है। 'सहकारे पिको विरौति', यहाँ पिक-कोयल के संयोग से सहकारआम्र का निश्चय होता है।

संज्ञा सन्धि समाप्त हुई।

अथ स्वर संधि

संधि किसे कहते हैं ?

पूर्व और उत्तर वर्णों का—दो पदों या अनेक पदों का व्यवधान-अंतराल के बिना परस्पर में संश्लेष हो जाना संधि कहलाती है। जैसे—

तव + अभ्युदयः, कान्ता + आगता, दधि + इदम्, नदी + ईहते आदि दो-दो पद हैं।[1]

क्रम का उल्लंघन न करते हुये विश्लेषण करे ॥२३ ॥

---

१. अन्तमनुसृत्य संलीन उच्चार्यते स्वर्यत इति अनुस्वारः। २. व्यवहारो नाम शब्दप्रयोगः। ३. कालकारकसंख्यासाधनोपग्रहभेदाद् भिन्नमर्थं शयतीति शब्दः। ४. पूर्वोत्तरवर्णानामविरामेणोच्चारणं सन्धानमिति च पुस्तकान्तरे ॥

1. उन दोनों में रूपांतर होकर जो परिवर्तन होता है उसे संधि कार्य कहते हैं।

संघटितान्वर्णान् अनतिक्रमयन् विश्लेषयेत् इति विश्लेष्यः ॥

समानः सवर्णे दीर्घीभवति परश्च लोपम् ॥२४॥

समानसंज्ञको वर्णो दीर्घीभवति सवर्णे परे परश्च लोपमापद्यते। सर्वत्र ह्रस्वो दीर्घः। स्वभावतो ह्रस्वाभावे परलोपः। उक्तं च—

अदीर्घो दीर्घतां याति नास्ति दीर्घस्य दीर्घता।
पूर्वं दीर्घस्वरं दृष्ट्वा परलोपो विधीयते ॥१॥

व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत् ॥२५॥

अस्वरं व्यञ्जनं परवर्णं नयेत्। तवाभ्युदयः। कान्तागता। दधीदम्। नदीहते। वसूभयोः। वधूढा। पितृषभः। मातृकारेण। कृकारेण। इति सिद्धं पदम्। एवं होतृकारः। होतृ ऋकारः इति विग्रहः। अत्र समानः सवर्णे दीर्घीभवति इत्यादिना दीर्घत्वम्। होतृ ऋकार इति स्थिते।

ऋति ऋतोर्लोपो वा ॥२६॥

ऋति परे ऋतोर्लोपो वा भवति होतृकारः॥ देव इन्द्रः। कान्ता इयम्। इति स्थिते।

मिले हुये वर्णों में से क्रम का उल्लंघन न करते हुये पृथक्-पृथक् विश्लेषण करना चाहिये।[1] जैसे—

तव् + अ + अभ्युदयः। कान्त् + आ + आगता। दध् + इ + इदम्। नद् + ई + ईहते। वसु + उभयोः, वधू + उढा, पितृ + ऋषभः, मातृ + ऋकारेण, कृ + ऋकारः, कृ + ॠकारेण इत्यादि।

अब सूत्र लगता है—

सवर्ण के आने पर समान सवर्ण दीर्घ हो जाता है और पर का लोप हो जाता है ॥२४॥

समान संज्ञा वाले वर्ण, आगे सवर्ण—उसी समान वर्ण के आने पर दीर्घ हो जाते हैं और आगे वाले स्वर का लोप हो जाता है। सभी जगह ह्रस्व तो दीर्घ हो जाता है और स्वभाव से ह्रस्व का अभाव होने पर (अर्थात् दीर्घ होने पर) आगे के स्वर का लोप हो जाता है।

श्लोकार्थ—जो ह्रस्व है वह दीर्घ हो जाता है और जो पूर्व में दीर्घ है वह दीर्घ ही रहता है। पूर्व के दीर्घ स्वर को देखकर आगे के स्वर का लोप हो जाता है। जैसे—

तव् आ + भ्युदय, कान्त् आ + गता, दध ई + दम्, नद्ई + हते, इत्यादि।

इसके बाद—

स्वर रहित व्यंजन अगले स्वर को प्राप्त कर लेते हैं ॥२५॥

तो—तवाभ्युदयः, कांतागता, दधीदम्, नदीहते, वसूभयोः वधूढा, पितृषभः, मातृकारेण, कृकारः, कृकारेण। इस प्रकार संधि हो जाने से ये पद सिद्ध हो गये।

आगे 'होतृ + ऋकारः' यह विग्रह है—

इसमें 'समानः सवर्णे दीर्घो भवति परश्च लोपम्' इस सूत्र से एक बार दीर्घ होकर "होतृकारः" बन गया है। पुनः—

ऋकार के आने पर ऋकार का लोप विकल्प से होता है ॥२६॥

ऋकार के आने पर पूर्व के ऋकार को दीर्घ विकल्प से होता है और अगले ऋकार का लोप होता ही होता है। जैसे—

होतृ + ऋकारः = होतृकारः भी बना है। देव + इन्द्रः, कान्ता + इदम् ये शब्द स्थित हैं—

---

1. इसका नाम संधि—विच्छेद है।

अवर्ण इवर्णे ए ॥२७॥

इवर्णे परे अवर्ण ए् भवति परश्च लोपमापद्यते। वर्णग्रहणे सवर्णग्रहणम्। देवेन्द्रः। कान्तेयम्। हल ईषा। लाङ्गल ईषा। इति स्थिते।

हललाङ्गलयोरीषायामस्य लोपः ॥२८॥

हललाङ्गलयोरस्य लोपो भवति ईषायां परतः। हलीषा। लाङ्गलीषा॥ मनस् ईषा। इति स्थिते।

मनसः सस्य च ॥२९॥

मनसोऽस्य सस्य च लोपो भवति ईषायां परतः। मनीषा॥ गन्ध उदकम्। माला ऊढा। इति स्थिते।

उवर्णे ओ ॥३०॥

उवर्णे परे अवर्ण ओ भवति परश्च लोपमापद्यते। गन्धोदकम्। मालोढा॥ तव ऋकारः। सा ऋकारेण। इति स्थिते।

ऋवर्णे अर् ॥३१॥

ऋवर्णे परे अवर्ण अर् भवति परश्च लोपमापद्यते। पूर्वव्यञ्जनमुपरि परव्यञ्जनमधः॥

रेफाक्रान्तस्य द्वित्वमशिटो वा ॥३२॥

रेफाक्रान्तस्य वर्णस्य द्वित्वं भवत्यशिटो वा।

इवर्ण के आने पर अवर्ण को 'ए' होकर अगले स्वर का लोप हो जाता है ॥२७॥

यहाँ सूत्र में वर्ण के ग्रहण करने से सवर्ण का ग्रहण हुआ समझना चाहिये। अतः—

देव् अ + इन्द्रः = देव् ए + न्द्रः = देवेन्द्रः।

कान्त् आ + इयं = कान्त् ए + यं = कान्तेयम्। हल + ईषा, लांगल + ईषा।

ईषा के आने पर हल और लाङ्गल के 'अकार' का लोप हो जाता है ॥२८॥

हल् + ईषा = हलीषा, लाङ्गल + ईषा = लाङ्गलीषा। मनस् + ईषा।

ईषा के आने पर 'मनस्' के 'अस्' का लोप हो जाता है ॥२९॥

मन् अस् + ईषा = मनीषा। गंध + उदकम्, माला + ऊढा।

उवर्ण के आने पर अवर्ण को 'ओ' हो जाता है ॥३०॥

अर्थात् आगे उवर्ण के आने पर पूर्व के अवर्ण को 'ओ' होकर अगले उवर्ण का लोप हो जाता है। जैसे—गंध् ओ दकम् = गंधोदकम्, माल् ओ ढा = मालोढा। तव + ऋकारः, सा + ऋकारेण।

ऋवर्ण के परे अवर्ण को अर् हो जाता है ॥३१॥

अवर्ण से परे ऋवर्ण के आने पर 'अवर्ण' को 'अर्' हो जाता है और ऋवर्ण का लोप हो जाता है तब—

तव अर् कारः = 'तवर्कारः' बन जाता है पुनः यह अर्ध रकार यदि व्यञ्जन से पूर्व में रहता है तो ऊपर चला जाता है और यदि व्यञ्जन से आगे रहता है तो नीचे लग जाता है।

शिट् के न होने पर रेफ से सहित अक्षर को विकल्प से द्वित्व हो जाता है ॥३२॥

शिट् किसे कहते हैं?

तुंबुरुं तृणकाष्ठं च तैलं जलमुपागतम्।
स्वभावादूर्ध्वमायाति रेफस्यैतादृशी गतिः ॥१ ॥

इति जलतुम्बिकान्यायेन रेफस्योर्ध्वगमनं।

शिडिति शादयः ॥३३ ॥

शषसहा वर्णाः शिट्संज्ञा भवन्ति। तवक्कारः। सक्करिण। ऋण ऋणम्। प्र ऋणम्। वसन ऋणम्। वत्सतर ऋणम्। कम्बल ऋणम्। दश ऋणम्। इति स्थिते।

ऋणप्रवसनवत्सतरकम्बलदशानामृणेऽरो दीर्घः ॥३४ ॥

ऋणादीनां अरो दीर्घो भवति ऋण परे। एकदेशविकृतमनन्यवत्। ऋणार्णम्। प्रार्णम्। वसनार्णम्। वत्सतरार्णम्। कम्बलार्णम्। दशार्णम्॥ शीत ऋतः। दुःख ऋतः। इति स्थिते।

ऋते च तृतीयासमासे ॥३५ ॥

तृतीयासमासे अरो दीर्घो भवति ऋते च परे। शीतेन ऋतः शीतार्तः। दुःखेन ऋतः दुःखार्तः। तृतीयासमास इति किम् ? परमश्चासौ ऋतश्च परमर्तः॥ तव लृकारः। सा लृकारेण। इति स्थिते।

श्लोकार्थ—तुंबरु, तृण, लकड़ी और तेल ये जल में पड़ने के बाद स्वभाव से ही ऊपर आ जाते हैं उसी प्रकार रेफ की भी यही अवस्था है। इस प्रकार 'जल तुम्बिका' न्याय से रेफ वर्ण के मस्तक पर चढ़ जाता है जैसे—

तवर्कारः, प् र् अ कारः = प्रकारः। पुनः इस तवर्कारः में एक सूत्र लगता है—

श, ष, स, ह इन चार वर्णों की 'शिट्' संज्ञा है ॥३३ ॥

तवर्क्कारः, स् अर् क्कारेण = सक्करिण बन गया।

ऋण + ऋणम्, प + ऋणम् इत्यादि

सूत्र लगा 'ऋवर्णे अर्' इस सूत्र से ऋण अर् + णम् आदि बन गये। पुनः ३४वां सूत्र लगा।

ऋण से परे ऋण और प्र, वसन, वत्सतर, कम्बल और दश इनके अर् को दीर्घ हो जाता है ॥३४ ॥

तब—ऋण आर् ऋणम् = ऋणार्णम्, प्र आर् + णम् = प्रार्णम्, वसन् आर् + णम् = वसनार्णम्, वत्सतरार्णम्, कम्बलार्णम्, दशार्णम्। शीत + ऋतः, दुःख + ऋतः।

इसमें समास का प्रकरण है तो इनका विग्रह—शीतेन ऋतः। शीत टा स्थित है समास के प्रकरण में "तत्स्थालोप्या विभक्तयः" सूत्र से 'टा' विभक्ति का लोप होकर 'शीत + ऋतः' स्थित है। "ऋवर्णे अर्" इस सूत्र से शीत अर् + तः बन गया। पुनः सूत्र लगा—

तृतीया समास के प्रकरण में ऋवर्ण के आने पर अर् को दीर्घ हो जाता है ॥३५ ॥

तब शीतार्तः दुःखार्तः बना।

यहाँ 'तृतीया समास में' ऐसा क्यों कहा ?

कर्मधारय समास में अर् को दीर्घ नहीं होता है जैसे—परमश्चासौ ऋतश्च। परम + ऋतः = परमर्तः बन गया। तव + लृकारः, सा + लृकारेण।

लृवर्णे अल् ॥३६ ॥

लृवर्णे परे अवर्ण अल् भवति परश्च लोपमापद्यते । तवल्कारः । सल्कारेण ॥ तव एषा । सा ऐन्द्री । इति स्थिते ।

एकारे ऐ ऐकारे च ॥३७ ॥

एकारे ऐकारे च परे अवर्ण ऐर्भवति परश्च लोपमापद्यते । तवैषा । सैन्द्री ॥ स्व ईरम् । स्व ईरिणी । स्व ईरी इति स्थिते ।

स्वस्येरेरिणीरिषु ॥३८ ॥

स्वस्याकारस्य ऐत्वं भवति ईरईरिणीईरिषु परतः परश्च लोपमापद्यते । स्वैरम् । स्वैरिणी । स्वैरी । अद्य एव । इह एव । इति स्थिते ।

एवे चानियोगे नित्यम् ॥३९ ॥

अनियोगेऽवर्णस्य नित्यं लोपो भवति एवे च परे । अद्येव । इहेव । नियोगे तु अद्यैव गच्छ । इहैव तिष्ठ । तव ओदनम् । सा औपगवी । इति स्थिते ।

ओकारे औ औकारे च ॥४० ॥

ओकारे औकारे च परे अवर्ण और्भवति परश्च लोपमापद्यते । तवौदनम् । सौपगवी ॥ **"चकाराधिकारादुपसर्गावर्णलोपो धातोरेदोतोः ।"** प्र एलयति प्रेलयति । परा ओखति परोखति । **इणेधत्योर्न** । उप एति । उपैति । उप एधते उपैधते ॥ **नामधातोर्वा** । उप एलकीयति उपेलकीयति ॥ उपैलकीयति । प्र ओषधीयति प्रोषधीयति प्रौषधीयति । अद्य ओम् । सा ओम् । इति स्थिते ।

लृवर्ण के आने पर अवर्ण को अल् हो जाता है ॥३६ ॥

और अगले लृवर्ण का लोप हो जाता है ।

तव् अल् + कारः = तवल्कारः, स् अल् + कारेण = सल्कारेण बन गया । तव + एषा, सा + ऐन्द्री ।

आगे ए, ऐ के आने पर अवर्ण को 'ऐ' हो जाता है ॥३७ ॥

और अगले स्वर का लोप हो जाता है ।

तव् ऐ + षा = तवैषा, स् ऐ + न्द्री = सैन्द्री । स्व + ईरम्, स्व + ईरिणी, स्व + ईरी ।

इसमें 'अवर्ण इवर्णे ए' सूत्र लग रहा था किन्तु इसको बाधित करके आगे सूत्र लगता है—

ईर, ईरिणी और ईरी के आने पर 'स्व' के 'अकार' को 'ऐ' हो जाता है ॥३८ ॥

अगले ईवर्ण का लोप हो जाता है ।

स्व ऐ + रम् = स्वैरम्, स्व ऐ + रिणी = स्वैरिणी, स्व ऐ + री = स्वैरी । अद्य + एव, इह + एव ।

इसमें भी 'एकारे ऐ ऐकारे च' सूत्र से 'अद्यैव' 'इहैव' बनने वाला था किंतु अगले सूत्र से विकल्प हो गया ।

अनियोग अर्थ में आगे 'एव' शब्द के आने पर नियम से अवर्ण का लोप हो जाता है ॥३९ ॥

तब—अद्य् + एव = अद्येव, इह् + एव = इहेव बन गया । इसका अर्थ आज्ञा एवं प्रेरणा नहीं है जैसे कि कोई किसी को कह रहा है कि 'अद्येव गच्छ' आज ही जाना चाहिये । जावो या न जावो जबर्दस्ती नहीं है किन्तु पूर्ववत् सन्धि में नियोग अर्थ—आज्ञा या प्रेरणा अर्थ विशेष होता है जैसे "अद्यैव गच्छ" आज ही जावो । इत्यादि—तव + ओदनम्, सा + औपगवी ।

ओ औ के आने पर अवर्ण को 'औ' हो जाता है ॥४० ॥

ओमि च ॥४१ ॥

अवर्णस्य नित्यं लोपो भवति ओमि च परे । अद्योम् सोमित्यवोचत् ॥ बिम्ब ओष्ठः । स्थूल ओतुः । इति स्थिते ।

ओष्ठौत्वोः समासे वा ॥४२ ॥

अवर्णस्य लोपो वा भवति ओष्ठौत्वोः परतः समासविषये । बिम्बमिव ओष्ठौ यस्यासौ बिम्बोष्ठः । बिम्बौष्ठः । स्थूलोतुः । स्थूलौतुः । असमासे तु हे पुत्रौष्ठं पश्य । अद्यौतुं पश्य ॥ अक्ष ऊहिनी । इति स्थिते ।

अक्षस्य ऊहिन्याम् ॥४३ ॥

अक्षस्यौत्वं भवति ऊहिन्यां परतः परश्च लोपमापद्यते । अक्षौहिणी सेना । **प्रस्योढोढ्येष्ठ्** ॥ प्र ऊढः प्रौढः । प्र ऊढिः प्रौढिः ॥ **एषैष्ययोरैत्वं** । प्र एषः प्रैषः । प्र एष्यः प्रैष्यः ॥ दधि अत्र । नदी एषा । इति स्थिते ।

और पीछे ओ औ वर्ण का लोप हो जाता है ।

तव औ + दनम् = तवौदनम्, स् औ + पगवी = सौपगवी बन गया । 'ओकारे औ औकारे च' इस सूत्र में 'च' शब्द है इसका यह अर्थ होता है कि उपसर्ग से परे ए और ओ है आदि में जिसके ऐसी धातुओं के आने पर उपसर्ग के 'अ' का लोप हो जाता है ।

प्र् अ + एलयति = प्रेलयति, पर् आ + ओखति = परोखति ।

इण् और एध् धातु से एति और एधते क्रियायें बनती हैं यद्यपि इन दोनों क्रियाओं में आदि में 'एकार' है फिर भी 'इणेधत्योर्न' इस नियम के अनुसार इन धातुओं के आने पर पूर्व के उपसर्ग के अकार का लोप नहीं होता है । तो पूर्व के 'एकारे ऐ ऐकारे च' सूत्र से अवर्ण को 'ऐ' होकर अगले स्वर का लोप हो जाता है ।

उप + एति, उप् ए + ति = उपैति, उप + एधते उप् ऐ + धते = उपैधते ।

जो नामवाची शब्द से धातु बनकर क्रिया बने हैं उनमें विकल्प है अर्थात् 'अ' का लोप भी होता है और पूर्ववत् संधि हो जाती है जैसे—

उप + एलकीयति, उप् + एलकीयति = उपेलकीयति अथवा उप् ऐ + लकीयति = उपैलकीयति । प्र + ओषधयति प्र् + ओषधीयति = प्रोषधीयति, प्र् औ + षधीयति = प्रौषधीयति बन जाता है । अद्य + ओम्, सा + ओम् ।

ओम् शब्द के आने पर नित्य ही अवर्ण का लोप हो जाता है ॥४१ ॥

अद्य् अ ओम्, अद्य + ओम् = अद्योम्, स् आ + ओम्, स् + ओम् = सोम् बन गया ।

बिम्ब + ओष्ठः, स्थूल + ओतुः

समास के विषय में ओष्ठ और ओतु शब्द के आने पर विकल्प से अवर्ण का लोप होता है ॥४२ ॥

बिम्ब के समान है ओष्ठ जिसका ऐसा—

बिम्ब् अ + ओष्ठः 'अ' का लोप होने पर बिम्बोष्ठः और संधि होने पर बिम्बौष्ठः । स्थूल अ + ओतुः = स्थूलोतुः, स्थूलौतुः । जब समास का प्रकरण नहीं है तब अवर्ण का लोप नहीं होगा । जैसे—हे पुत्र ! ओष्ठं पश्य, पुत्र + ओष्ठं = पुत्रौष्ठं बन गया । अक्ष + ऊहिनी

ऊहिनी-सेना शब्द के आने पर अक्ष के 'अ' को औ होकर पर का लोप हो जाता है ॥४३ ॥

इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः ॥४४॥

इवर्णो यमापद्यते असवर्णे परे न च परो लोप्यः । दध्यत्र । नद्येषा ॥ मधु अत्र । वधू आसनम् । इति स्थिते ।

वमुवर्णः ॥४५॥

उवर्णो वमापद्यते असवर्णे परे न च परो लोप्यः । मध्वत्र । वध्वासनम् ॥ पितृ अर्थः । मातृ अर्थः । इति स्थिते ।

रमृवर्णः ॥४६॥

ऋवर्णो रमापद्यते असवर्णे परे न च परो लोप्यः । पित्रर्थः । मात्रर्थः ॥ लृ अनुबन्धः । लॄ आकृतिः । इति स्थिते ।

लम्लृवर्णः ॥४७॥

अर्थात् 'उवर्णे ओ' से 'ओ' होना चाहिये था किन्तु इस स्वतंत्र सूत्र से औ हो गया तो—

अक्ष् औ + हिनी = अक्षौहिनी बना पुनः 'रषृवर्णेभ्यो' इत्यादि सूत्र से 'न' को 'ण' होकर अक्षौहिणी हो गया।

प्र से परे ऊढः और ऊढिः शब्द के आने पर 'अ' को 'औ' होकर 'ऊ' का लोप हो जाता है[1]।

प्र् औ + ढः = प्रौढः, प्र् औ + ढिः = प्रौढिः ।

प्र से परे एषः और एष्यः के आने पर 'अ' को 'ऐ' होकर पर का लोप हो गया।

प्र् अ + एषः, प्र् ऐ + षः = प्रैषः, प्र् ऐ + ष्यः = प्रैष्यः बना। दधि + अत्र, नदी + एषा।

इवर्ण से परे-आगे असवर्ण वर्ण के आने पर इवर्ण को 'य्' होता है और पर का लोप नहीं होता है ॥४४॥

दध् इ + अत्र, दध् य् + अत्र 'व्यञ्जनमस्वरं परवर्णं नयेत्' इस सूत्र से स्वर रहित व्यंजन अगले स्वर में मिल जाते हैं तो दध्यत्र बन जाता है। नद् य् + एषा = नद्येषा। मधु + अत्र, वधू + आसनम्।

उवर्ण को 'व्' हो जाता है ॥४५॥

यदि आगे उवर्ण न होकर असवर्ण स्वर हों तो उवर्ण को 'व्' होकर अगले स्वर का लोप नहीं होता है जैसे—

मध् उ + अत्र, मध् व् + अत्र = मध्वत्र, वध् ऊ + आसनम् = वध्वासनम्।

पितृ + अर्थः, मातृ + अर्थः ।

ऋवर्ण को 'र्' हो जाता है ॥४६॥

असवर्ण स्वर के आने पर—पित् ऋ + अर्थः, पित् र् + अर्थः = पित्रर्थः, मात् र् + अर्थः = मात्रर्थः । लृ + अनुबंधः, लॄ + आकृतिः ।

असवर्ण स्वर के आने पर लृवर्ण को 'ल्' हो जाता है ॥४७॥

---

१. प्र + ऊहः इत्यादि में भी ओ की प्राप्ति थी।

लृवर्णो लमापद्यते असवर्णे परे न च परो लोप्यः। लनुबन्धः। लाकृतिः। ने अनम्। चे अनम्। इति स्थिते।

ए अय् ॥४८॥

एकारो अय् भवति असवर्णे परे न च परो लोप्यः। नयनम्। चयनम्॥ नै अकः। चै अकः। इति स्थिते।

ऐ आय् ॥४९॥

ऐकार आय् भवत्यसवर्णे परे न च परो लोप्यः। नायकः। चायकः। लो अनम्। पो अनम्। इति स्थिते।

ओ अव् ॥५०॥

ओकारो अव् भवति असवर्णे परे न च परो लोप्यः। लवनम्। पवनम्॥ लौ अकः। पौ अकः। इति स्थिते।

औ आव् ॥५१॥

औकार आव् भवत्यसवर्णे परे न च परो लोप्यः। लावकः। पावकः॥ गो अजिनम्। इति स्थिते।

गोर इति वा प्रकृतिः ॥५२॥

गोशब्दस्य वा प्रकृतिर्भवत्यकारे परे। गो अजिनम् गोऽजिनम्। गवाजिनम्॥ गो अश्वौ। गो ईहा। गो उष्ट्रौ। गो एलकौ। इति स्थिते।

एवं पर का लोप नहीं होता है।

ल् + अनुबंधः = लनुबंधः, ल् + आकृतिः = लाकृतिः। ने + अनम्, चे + अनम्।

आगे स्वर के आने पर एकार को अय् हो जाता है ॥४८॥

एवं पर का लोप नहीं होता है।

न् ए + अनम्, न् अ य् + अनम् = नयनम्, च् अ य् + अनम् = चयनम्। नै + अकः, चै + अकः।

ऐ को 'आय्' हो जाता है ॥४९॥

और पर का लोप नहीं होता है।

न् ऐ + अकः, न् आय् + अकः = नायकः, च् आय् + अकः = चायकः। लो + अनम्, पो + अनम्।

ओ को अव् हो जाता है ॥५०॥

और आगे का लोप नहीं होता है।

ल् ओ + अनम्, ल् अव् + अनम् = लवनम्, प् ओ + अनम्, प् अव् + अनम् = पवनम्।

लौ + अकः, पौ + अकः।

स्वर के आने पर औ को आव् हो जाता है ॥५१॥

एवं पर का लोप नहीं होता है।

ल् औ + अकः ल् आव् + अकः = लावकः, प् आव् + अकः = पावकः। गो + अजिनम्।

अकार के आने पर 'गो' शब्द की विकल्प से संधि नहीं भी होती है ॥५२॥

गो अजिनम् बना। आगे के ५७वें 'एदोत्परः पदांते लोपमकारः' सूत्र से 'अकार' का लोप हो जाता तो गोऽजिनम् बना। और अगले ५३वें सूत्र से गो के ओ को अव आदेश होकर 'समानः सवर्णे दीर्घी' इत्यादि से दीर्घ होकर ग् अव + अजिनम् = गवाजिनम् हो गया।

गो + अश्वौ, गो + ईहा, गो + उष्ट्रौ, गो + एलकौ।

अवः स्वरे ॥५३ ॥

गोशब्दस्य अवादेशो वा भवति स्वरे परे। गो अश्वौ। गवाश्वौ गोश्वौ। गवेहा। गवीहा। गवोष्ट्रौ। गवुष्ट्रौ। गवेलकौ। गवैलकौ॥ गो अक्षः। गो इन्द्रः। इति स्थिते।

अक्षेन्द्रयोर्नित्यम् ॥५४ ॥

गोशब्दस्य नित्यमवादेशो भवति अक्षेन्द्रयोः परतः। गवाक्षः। गवेन्द्रः॥ ते आहुः। तस्मै आसनम्। पटो इह। असौ इन्दुः। इति स्थिते।

अयादीनां यवलोपः पदान्ते न वा लोपे तु प्रकृतिः ॥५५ ॥

पदान्ते वर्तमानानां अय् इत्येवमादीनां यवयोर्लोपो भवति न वा लोपे तु प्रकृतिश्च भवति। त आहुः। तयाहुः। तस्माआसनम् तस्मायासनम्। पट इह पटविह। असाइन्दुः असाविन्दुः॥ नै ऋ अदः। रै उ अणः। मै ऋ उतः। ओ उ इन्दुः। रिपु इ उदयः। इति स्थिते।

गो शब्द को 'अव' आदेश हो जाता है ॥५३ ॥

स्वर के आने पर विकल्प से। जैसे—एक बार ५२वें सूत्र से प्रकृति ही रहता है तो 'गो अश्वौ' 'एदोत्परः' इत्यादि सूत्र से "अ" का लोप होकर गोश्वौ, और ओ को 'अव' होने से 'गवोश्वौ' बन गया।

वैसे ग् अव + ईहा = 'अवर्णे इवर्णे ए' से गवेहा। 'ओ अव्' सूत्र से ग् अव् + ईहा = गवीहा। ग् अव + उष्ट्रौ 'उवर्णे ओ' से गवोष्ट्रौ एवं 'गो अव्' से गव् + उष्ट्रौ = गवुष्ट्रौ बना। ग् अव + एलकौ = गवैलकौ, ग् अव् + एलकौ = गवेलकौ बना। गो + अक्षः, गो + इन्द्रः।

अक्ष और इन्द्र के आने पर नियम से गो के ओ को 'अव' आदेश हो जाता है ॥५४ ॥

ग् अव + अक्षः 'समानः सवर्णे' इत्यादि सूत्र से दीर्घ होकर गवाक्षः, ग् अव + इन्द्रः 'अवर्णे इवर्णे ए' से संधि होकर गव + इन्द्रः = गवेन्द्रः।

ते + आहुः, तस्मै + आसनम्, पटो + इह, असौ + इन्दुः।

पहले इनमें "ए अय्, ऐ आय्, ओ अव्, औ आव्" सूत्रों से संधि कर लीजिए।

तय् + आहुः, तस्माय् + आसनम्, पटव् + इह, असाव् + इंदुः।

पद के अंत में विद्यमान अय् अव् आदि के 'य् व्' का विकल्प से लोप हो जाता है और लोप होने पर संधि नहीं होती है ॥५५ ॥

तय् + आहुः य् का लोप होने पर त आहुः, लोप नहीं होने पर तयाहुः, लोप होने पर तस्मा आसनम्, नहीं होने पर तस्मायासनम्, पट इह, पटविह, असा इन्दुः, असाविंदुः।

नै + ऋ + अदः, रै + उ + अणः, मै + ऋ + उतः, ओ + उ + इंदुः, रिपु + इ + उदयः।

पहले 'ऐ आय्' सूत्र से नाय् + ऋ + अदः, राय् + उ + अणः, माय् + ऋ + उतः, 'ओ अव्' से अव् + उ + इंदुः 'वमुवर्णः' से रिप् व् + इ + उदयः है। पुनः 'रमृवर्णः' और 'वमुवर्णः' से ऋ को र्, उ को व् "इवर्णः समसवर्णे" इत्यादि से इ को य् हुआ तो नाय् + र् + अदः, राय् + व् + अणः, माय् + र् + उतः, अव् + व् + इंदुः, रिप् व् + य् + उदयः। पुनः सूत्र लगा।

स्वरजौ यवकारावनादिस्थौ लोप्यौ व्यञ्जने ॥५६ ॥

अनादिस्थौ स्वरजौ यवकारौ लोप्यौ भवतो व्यञ्जने परे। नारदः। रावणः, मारुतः। अविन्दुः। रिप्युदयः ॥ ते अत्र। पटो अत्र। इति स्थिते।

एदोत्परः पदान्ते लोपमकारः ॥५७ ॥

एदोद्भ्यां पदान्ते वर्तमानाभ्यां परोऽकारो लोपमापद्यते। तेऽत्र। पटोऽत्र। देवी गृहम्। पटु हस्तः। मातृ मुखम्। जले पद्मम्। रै धृतिः। गो गतिः। नौ यानम्।

न व्यञ्जने स्वराः सन्धेयाः ॥५८ ॥

व्यञ्जने परे स्वराः सन्धानीया न भवन्ति॥ पितृ यम्। भ्रातृ यम्। मातृ यम्। इति स्थिते।

र ऋतस्तद्धिते ये ॥५९ ॥

ऋतो रो भवति तद्धिते ये परे। पितुरिदम् पित्र्यम्। एवं भ्रात्र्यम्। मात्र्यम्॥ गो यूतिः इति स्थिते॥

गव्यूतिरध्वमाने ॥६० ॥

जो स्वर से उत्पन्न हुए 'य् व्' हैं और आदि में स्थित नहीं हैं, आगे व्यंजन के आने पर उन य् व् का लोप हो जाता है ॥५६ ॥

यहाँ विकल्प नहीं है अतः

नाय् + र् + अदः = य् का लोप होकर = नारदः, राय् व् + अणः य् का लोप होकर = रावणः, माय् + र् + उतः = य् का लोप = मारुतः। अव् + व् + इंदुः = व् का लोप = अविन्दुः, रिप् व् + य् + उदयः = व् का लोप = रिप्युदयः। ये शब्द सिद्ध हो गये।

ते + अत्र, पटो + अत्र।

पद के अंत में ए ओ के होने पर उससे परे 'अ' का लोप हो जाता है ॥५७ ॥

यहाँ एत् ओत् में जो तकार है उससे ऐसा समझना कि मात्र 'ए ओ' का ही नियम है 'ऐ औ' नहीं लिये जा सकेंगे। कार और त् के लगा देने से मात्र उसी अक्षर का बोध होता है जैसे अकार या अत् शब्द से मात्र 'अ' ही ग्रहण किया जाता है। अतः 'अ' का लोप होकर तेत्रं, पटो + त्र = पटोत्र बना। इस संधि में अ को समझने के लिये खंडाकार चिह्न भी दिया जाता है। जैसे तेऽत्र, पटोऽत्र।

देवी + गृहम्, पटु + हस्तः, मातृ + मुखम्, जले + पद्मम्, रै + धृतिः, गो + गतिः, नौ + यानम्।

आगे व्यंजन के आने पर पूर्व के स्वरों की संधि नहीं होती है ॥५८ ॥

अतः उपर्युक्त पद ज्यों के त्यों रह गये तो देवीगृहम्, पटुहस्तः आदि ही रहे। पितृ + यम्, भ्रातृ + यम्, मातृ + यम्।

आगे तद्धित के यकार के आने पर 'ऋ' को र् हो जाता है ॥५९ ॥

यहाँ व्यञ्जन के आने पर भी तद्धित के प्रत्यय यकार के लिये एवं 'ऋ' को र् के लिये ही यह संधि हुई है। तो—

पित् र् + यम् = पित्र्यम्, भ्रात् र् + यम् = भ्रात्र्यम्, मात् र् + यम् = मात्र्यम्। गो + यूतिः।

मार्ग के माप अर्थ में गव्यूति शब्द निपात से सिद्ध हो जाता है ॥६० ॥

अध्वमाने गव्यूतिरिति निपात्यते । गवां यूतिः गव्यूतिः ॥

॥इति स्वरसन्धिः ॥ ❑

अथ प्रकृतिभावसन्धिः

अथ तेषां स्वराणामेव सन्धिकार्य्ये प्राप्ते क्वचित्पूर्ववत् प्रकृतिभाव उच्यते । अहो आश्चर्य्यम् । नो एहि । अ अपेहि । इ इन्द्रं पश्य । उ उत्तिष्ठ । आ एवम् । इति स्थिते ॥

[१]ओदन्ता अइउआ निपाताः[२] स्वरे प्रकृत्या ॥६१ ॥

ओदन्ता निपाता अ इ उ आश्च केवला निपाताः स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठन्ति । यल्लक्षणेनानुत्पन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धं ।

ईषदर्थे क्रियायोगे[३] मर्यादाभिविधौ च यः ।
आङनुबन्धो विज्ञेयो वाक्यस्मरणयोर्न तु ॥१ ॥

ईषदर्थे—आ उष्णं—ओष्णं । क्रियायोगे—आ इहि—एहि । मर्यादायां—आ उदकान्तात् । ओदकान्तात् । अभिविधौ—आ आर्येभ्यः । आर्येभ्यो यशो गतमकलंकस्वामिनः । वाक्ये—आ एवं किल मन्यसे । स्मरणे—आ एवं किल तत् ।अन्तग्रहणमकारादीनां केवलार्थम् ॥ कवी ऐतौ । माले इमे । इति स्थिते ।

गवां + यूतिः—ग् अव् + यूतिः = गव्यूतिः बन गया ।

जिसमें सूत्र का नियम लगकर संधि आदि कार्य न होवें उसे 'निपात' कहते हैं ।

॥इस प्रकार से स्वर संधि समाप्त हुई ॥ ❑

अथ प्रकृतिभाव सन्धि

प्रकृतिभाव संधि किसे कहते हैं ?

इन्हीं स्वरों में संधि कार्य के प्राप्त होने पर किन्हीं-किन्हीं में सन्धि नहीं होती है—पूर्ववत् ही पद रह जाते हैं उसे प्रकृतिभाव संधि कहते हैं प्रकृति का अर्थ है जैसा का तैसा बना रहना या स्वाभाविक रहना ।

अहो + आश्चर्यम्, नो + एहि, अ + अपेहि, इ + इन्द्रं, उ + उत्तिष्ठ, आ + एवम् ।

ओ जिसके अन्त में है ऐसे शब्द और अ, इ, उ, आ इन निपात शब्दों से परे यदि स्वर आते हैं तो संधि नहीं होती है ॥६१ ॥

जो व्याकरण के किसी नियम से नहीं बनते हैं वे सभी निपात से सिद्ध हुए कहे जाते हैं । अतः ये उपर्युक्त शब्द ज्यों के त्यों ही रह गये जैसे अहो आश्चर्यम् इत्यादि ।

किन्हीं-किन्हीं में संधि हो भी जाती है उसी को श्लोक द्वारा स्पष्ट करते हैं—

श्लोकार्थ—किंचित् के अर्थ में, क्रिया के योग में, मर्यादा के अर्थ में एवं अभिविधि-व्याप्ति के अर्थ में 'आ' अव्यय को आङ् रूप समझना चाहिये इसमें ङ् का अनुबन्ध लोप हो जाता है; अतः इनमें 'आ' शब्द के साथ संधि हो जाती है तथा वाक्य और स्मरण अर्थ में 'आ' शब्द मात्र है उसमें संधि नहीं होती है ।

---

१. अहो आहो उताहो च भोहोहंहो अथो इमे । भ नोयुक्ताश्च ओदन्ता निपाता अष्टधा स्मृताः ॥ २. लोकप्रसिद्धशब्दमादाय स्वरूपेण कथनं निपाताः निश्चयेन पतन्त्येनकेष्वर्थेष्विति निपाताः ॥ ३. पूर्वापरीभूता साध्यमान रूपा प्रवृत्तिः क्रिया ।

द्विवचनमनौ ॥६२ ॥

अनौभूतं[1] द्विवचनं स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ॥

मणीवादीनां वा ॥६३ ॥

मणीवादीनां वा सन्धिर्भवति । मणी इव मणीव । जम्पती इव जम्पतीव । अमुके अत्र तिष्ठतः । इति स्थिते ।

न साकोऽदसः ॥६४ ॥

साकः अदसः परमनौभूतं द्विवचनं स्वरे परे प्रकृत्या न तिष्ठति । अमुकेऽत्र तिष्ठतः ॥ अमी अश्वाः ॥ अमी एडकाः । अमी उष्ट्राः । अमी आदित्यरश्मयः । इति स्थिते ।

बहुवचनममी ॥६५ ॥

ईषत् अर्थ में —आ + उष्णं = ओष्णं—किंचित् गरम ।

क्रिया योग में—आ + इहि = एहि—आओ ।

मर्यादा अर्थ में—आ + उदकांतात् = ओदकांतात् = ओदकांत्—जल के पहले तक ।

अभिविधि अर्थ में—आ + आर्येभ्यः = आर्येभ्यः—सभी आर्य पुरुषों तक श्री स्वामी का यश व्याप्त है ।

वाक्य अर्थ में—आ + एवं = आ एवं—आः तुम इस प्रकार से मानते हो ।

स्मरण अर्थ में—आ एवं—हाँ ! इसी प्रकार से वह है । सूत्र में 'ओदंता' पद में जो अन्त शब्द ग्रहण किया गया है वह ओ, अ आदि सभी को एक-एक को ही सूचित करता है ।

कवी + एतौ, माले + इमे

औ को छोड़कर यदि अन्य स्वर वाले द्विवचन[2] पूर्व में हैं और आगे स्वर है तो संधि नहीं होती है ॥६२ ॥

अर्थात् औकार को छोड़कर जो अन्य रूप को प्राप्त हो गये हैं ऐसे द्विवचन स्वर से परे संधि नहीं होती है । कवी-एतौ, माले-इमे ही रह गया । मणी + इव, जंपती + इव ।

मणि आदि शब्दों के द्विवचन से परे इव शब्द के आने पर विकल्प से प्रकृतिभाव होता है ॥६३ ॥

मणी + इव संधि होकर = मणीव, अन्यथा मणी इव, जम्पतीव, जम्पती इव दोनों बन गये । अमुके + अत्र ।

अदस् शब्द में यदि 'अक' का आगम हुआ है तो द्विवचन में औ न होते हुए भी संधि हो जाती है ॥६४ ॥

अमुके + अत्र = अमुकेऽत्र बना ।

अमी + अश्वाः, अमी + एडकाः, अमी + उष्ट्राः, अमी + आदित्यरश्मयः ।

बहुवचन के अमी शब्द से परे स्वर के आने पर संधि नहीं होती है ॥६५ ॥

---

१. औकार रूपं परित्यज्य रूपान्तरं प्राप्तमित्यर्थः । २. द्विवचनांत ।

बहुवचनान्तममीरूपं स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठति ॥ आगच्छ भो देवदत्त ३ अत्र । उत्तिष्ठ भो यज्ञदत्त ३ इह । आयाहि भो विष्णुमित्र ३ इह । इति स्थिते ।

अनुपदिष्टाश्च ॥६६ ॥

अक्षरसमाम्नायेऽनुपदिष्टाः प्लुताः स्वरे परे प्रकृत्या तिष्ठन्ति ॥ सुश्लोक ३ इति । इति स्थिते ।

नेतौ ॥६७ ॥

प्लुतस्य इतिशब्दे परे सन्धिकार्य्यनिषेधो न भवति । अहो सुश्लोकेति । दूरादाह्वाने गाने रोदने च प्लुतास्ते लोकतः सिद्धाः । उक्तं च—

एकमात्रो भवेद्ध्रस्वो द्विमात्रो दीर्घ उच्यते ।
त्रिमात्रस्तु प्लुतो ज्ञेयो व्यञ्जनं चार्द्धमात्रकम् ॥१ ॥

॥इति प्रकृतिभावसन्धिः ॥ ❑

अथ व्यञ्जनसन्धिरुच्यते

वाक् अत्र । वाक् जयति । अच् अत्र । अच् गच्छति । षट् अत्र । षट् गच्छन्ति । तत् अत्र । तत् गच्छति । ककुप् आसते । ककुप् जयति । इति स्थिते ।

अमी अश्वाः आदि ऐसे ही रह गये ।

आगच्छ भो देवदत्त ! अत्र उत्तिष्ठ भो यज्ञदत्त ! इह, आयाहि भो विष्णुमित्र इह !

अनुपदिष्ट से परे स्वर के आने पर भी संधि नहीं होती है ॥६६ ॥

अक्षरों के समुदाय में नहीं कहे गये जो प्लुत स्वर हैं उनसे परे स्वर के आने पर संधि नहीं होती है । अतः उपर्युक्त वाक्य वैसे ही रह गये ।

सुश्लोक ३ इति

प्लुत से परे इति शब्द के आने पर संधि हो जाती है ॥६७ ॥

अतः अहो ! सुश्लोक + इति = सुश्लोकेति—हे अच्छे [1]श्लोक ! इस प्रकार से—प्लुत किसे कहते हैं ?

दूर से बुलाने में—संबोधन में, गाने में और रोने में प्लुत संज्ञा होती है और प्लुत में तीन मात्रायें मानी जाती हैं । इसी को श्लोक में स्पष्ट किया है—

श्लोकार्थ—जिसमें एक मात्रा है उसे ह्रस्व कहते हैं । जिसमें दो मात्रायें हैं उसे दीर्घ कहते हैं । जिसमें तीन मात्रायें हैं उसे प्लुत कहते हैं एवं जिसमें अर्द्ध मात्रा हो उसे व्यंजन कहते हैं ।

॥इस प्रकार से प्रकृतिभाव संधि पूर्ण हुई ॥ ❑

अथ व्यंजन संधि

व्यंजन संधि किसे कहते हैं ?

व्यंजन के साथ स्वर या व्यंजन, के संश्लेष होने में जो व्यंजन में परिवर्तन होता है उसे व्यंजन संधि कहते हैं ।

---

१. कीर्तिवाला ।

वर्गप्रथमाः पदान्ताः स्वरघोषवत्सु तृतीयान् ॥६८ ॥

पदान्ता वर्गप्रथमाः स्वरेषु घोषवत्सु च परेषु स्ववर्गतृतीयानापद्यन्ते। वर्गप्रथमातिक्रमे कारणाभावात्। वागत्र। वाग्जयति। अजत्र। अज्गच्छति। षडत्र। षड्गच्छन्ति। तदत्र। तद्गच्छति। ककुबास्ते। ककुब्जयति। प्रकृतिप्रत्यययोः पदयोर्विभागे सन्धिस्वरात्प्रतिषेधश्च प्रकृतिप्रत्यययोर्विभागो यत्र तत्र नित्यं सन्धिकार्यं भवति। यत्र पदयोर्विभागस्तत्र विकल्पेन सन्धिकार्यं भवति। इति सिद्धम् ॥ वाक् मती। अच् मात्रम्। षट् मुखानि। तत् नयनम्। त्रिष्टुप् मिनोति। इति द्विः स्थिते।

पञ्चमे पञ्चमांस्तृतीयान्नवा ॥६९ ॥

पदान्ता वर्गप्रथमाः पञ्चमे परे स्ववर्गपञ्चमानापद्यन्ते तृतीयान्न वा। वाङ्मती वाग्मती।

अञ्मात्रम्। अज्मात्रम्। षण्मुखानि। षड्मुखानि। तन्नयनम्। तद्नयनम्। त्रिष्टुम्मिनोति। त्रिष्टुब्मिनोति ॥

प्रत्यये पञ्चमे पञ्चमान्नित्यम् ॥७० ॥

पदान्ता वर्गप्रथमा नित्यं स्ववर्गपञ्चमानापद्यन्ते प्रत्ययपञ्चमे परे। वाङ्मात्रम्। अञ्मात्रम्। षण्मात्रम्। तन्मयम्। ककुम्मात्रम् ॥ वाक् शूरः। अच् शेषः। षट् श्यामाः। तत् श्वेतम्। त्रिष्टुप् श्रुतम्। इति स्थिते।

वाक् + अत्र, वाक् + जयति, अच् + अत्र, अच् + गच्छति, षट् + अत्र, षट् + गच्छन्ति, तत् + अत्र, तत् + गच्छति, ककुप् + आस्ते, ककुप् + जयति।

इस प्रकार से दो-दो शब्द हैं।

स्वर और घोषवान् व्यंजनों के आने पर वर्ग का प्रथम अक्षर यदि पद के अन्त में है तो वह अपने वर्ग का तृतीय अक्षर हो जाता है ॥६८ ॥

वाग् + अत्र 'व्यंजनमस्वरं परवर्णं नयेत्' इस सूत्र से स्वर रहित व्यंजन, स्वर में मिल जाता है। अतः वागत्र, वाग्जयति, अज् + अत्र = अजत्र, अज्गच्छति, षडत्र, षड्गच्छन्ति, तदत्र, तद्गच्छति, ककुबास्ते, ककुब्जयति।

वाक् + मती, अच् + मात्रम्, षट् + मुखानि, तत् + नयनम्, त्रिष्टुप् + मिनोति।

पंचम अक्षर के आने पर प्रथम अक्षर के स्थान में पंचम या तृतीय अक्षर वैकल्पिक हैं ॥६९ ॥

पंचम अक्षर के आने पर पदांत वर्ग का प्रथम अक्षर अपने वर्ग का पंचम अक्षर या तृतीय अक्षर हो जाता है।

वाक् + मती = वाङ्मती या वाग्मती, अञ्मात्रं, अज्मात्रं, षण्मुखानि, षड्मुखानि, तन्नयनम्, तद्नयनम्। त्रिष्टुम्मिनोति, त्रिष्टुब्मिनोति।

वाक् + मात्रम्, अच् + मात्रम्, षट् + मात्रम, तत् + मयम्, ककुप् + मात्रम्।

प्रत्यय सम्बन्धी पंचम अक्षर के आने पर नियम से पंचम ही होता है ॥७० ॥

पदांत प्रथम अक्षर को स्ववर्ग का पंचम अक्षर ही होता है। प्रत्यय का पंचम अक्षर आने पर। वाङ्मात्रम्, अञ्मात्रम्, षण्मात्रम्, तन्मयम्, ककुम्मात्रम्।

वाक् + शूरः, अच् + शेषः, षट् + श्यामाः, तत् + श्वेतम्, त्रिष्टुप् + श्रुतम्।

वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरश्छकारं न वा ॥७१ ॥

पदान्तेभ्यो वर्गप्रथमेभ्यः शकारः स्वरयवरपरश्छकारमापद्यते न वा। वाक्छूरः। वाक् शूरः। अच्छेषः। अच्शेषः। षट्छ्यामाः। षट्श्यामाः। तच्छ्वेतम्। तच्श्वेतम्। त्रिष्टुप्छ्रुतम्। त्रिष्टुप्श्रुतम्॥ तत् श्लक्ष्णम्। तत् श्मशानम्। इति स्थिते। न वा ग्रहणेन।

लानुनासिकेष्वपीच्छन्त्यन्ये ॥७२ ॥

लानुनासिकेषु परतः शकारश्छकारमापद्यते न वा। तच्छ्लक्ष्णं तच्श्लक्ष्णं। तच्श्मशानं-तच्श्मशानं-इति सिद्धम्॥ वाक् हीनः। अच् हलौ। षट् हलानि। तत् हितम्। ककुप् हासः। इति द्विः स्थिते।

तेभ्य एव हकारः पूर्वचतुर्थं न वा ॥७३ ॥

तेभ्यः पदान्तेभ्यो वर्गप्रथमेभ्यः परो हकारः पूर्वचतुर्थमापद्यते न वा। वाग्घीनः। वाग्हीनः। अज्झलौ अज्हलौ। षड्ढलानि षड्हलानि। तद्धितम् तद् हितम्। ककुब्भासः ककुब्हासः। तेभ्यो ग्रहणं स्वरयवर-निवृत्त्यर्थम्। तेन वाग्ह्लादयति। एवेति ग्रहणं तृतीयमतव्यवच्छेदार्थम्। पुनरपि न वा ग्रहणमुत्तर-त्रयविकल्पनिवृत्त्यर्थम्॥ तत् लुनाति। तत् चरति। तत् छादयति। तत् जयति। तत् झषयति। तत् ञकारेण। तत् टीक्रते। तत् ठकारेण। तत् डीनम्। तत् ढौकते। तत् णकारेण। इति स्थिते।

पदांत में वर्ग के प्रथम अक्षर से परे शकार हो और यदि उस शकार से परे स्वर, य, व, र, होवें तो शकार को विकल्प से छकार हो जाता है ॥७१ ॥

वाक् + श् ऊरः = वाक्छूरः, वाक्शूरः, अच् + श् एषः = अच्छेषः, अच्शेषः। षट् + श्यामाः = षट्छ्यामाः, षट्श्यामाः। तत् + श्वेतम् = तत्छ्वेतम् बना। इसमें 'चं शे' इस ७८वें सूत्र से तकार को चकार हो गया तो तच्श्वेतम् बना और जब शकार को छकार हुआ है तब 'पररूपं तकारो लचटवर्गेषु' इस ७४वें सूत्र से पररूप होकर ७६वें सूत्र से धुट् को प्रथम अक्षर होकर तच्छ्वेतम् बना। तछ् + छ्वेतम् = तच्छ्वेतम्। त्रिष्टुप्छ्रुतं, त्रिष्टुप्श्रुतं।

तत् + श्लक्ष्णम्, तत् + श्मशानम्।

ल और अनुनासिक के आने पर शकार को छकार विकल्प से होता है ऐसा कोई आचार्य मानते हैं ॥७२ ॥

एवं तकार को ७४वें सूत्र से पररूप होकर "पदांते धुटां प्रथमः" सूत्र से चकार हो जाता है। तब तच्छ्लक्ष्णम्, बना। अन्यथा 'चं शे' सूत्र से तकार को चकार होकर तच्श्लक्ष्णम् है। तच्छ्मशानं, तच्श्मशानं। ये पद सिद्ध हुए।

वाक् + हीनः, अच् + हलौ, षट् + हलानि, तत् + हितम्, ककुप् + हासः।

वर्ग के प्रथम अक्षर से परे हकार को पूर्व वर्ग का चतुर्थ अक्षर विकल्प से हो जाता है ॥७३ ॥

एवं वर्ग के प्रथम अक्षर को "वर्गप्रथमाः पदांताः" इत्यादि ६८वें सूत्र से तृतीय अक्षर हो जाता है।

वाग् + घीनः = वाग्घीनः, वाग्हीनः। अज्झलौ, अज्हलौ। षड्ढलानि, षड्हलानि। तद्धितम्, तद्हितम्। ककुब्भासः, ककुब्हासः। सूत्र में जो 'तेभ्यो' पद है उससे स्वर और य, व, र की निवृत्ति हो जाती है इससे वाक् + ह्लादयति = वाग्ह्लादयति यह रूप बन गया। सूत्र में जो 'एव' शब्द का ग्रहण है वह तीसरे मत का निराकरण करने के लिये है। पुनरपि जो 'न वा' शब्द का ग्रहण है वह आगे तीन विकल्पों को दूर करने के लिये है।

पररूपं तकारो लचटवर्गेषु ॥७४॥

पदान्तस्तकारो लचटवर्गेषु परेषु पररूपमापद्यते[१]। तल्लुनाति। तच्चरति।

धुड् व्यञ्जनमनन्तस्थानुनासिकम् ॥७५॥

अन्तस्थानुनासिकवर्जितं व्यञ्जनं धुट्संज्ञं भवति।

पदान्ते धुटां प्रथमः ॥७६॥

पदान्ते वर्त्तमानानां धुटामन्तरतमः प्रथमो भवति॥

धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु ॥७७॥

धुटां तृतीयो भवति, चतुर्थेषु परेषु। तच्छादयति। तज्जयति। तज्झषयति। तञ्ञकारेण। तट्टीकते। तड्ठकारेण। तड्डीनम्। तड्ढौकते। तण्णकारेण॥ तत् शेते। तत् शयनम्। इति स्थिते।

चं शे ॥७८॥

पदान्तस्तकारश्चकारमापद्यते शकारे परे॥

चं शे व्यर्थमिदं सूत्रं यदुक्तं शर्ववर्मणा।
तस्योत्तरपदं ब्रूहि यदि वेत्सि कलापकम् ॥१॥

तत् + लुनाति, तत् + चरति, तत् + छादयति, तत् + जयति, तत् + झषयति, तत् + ञकारेण, तत् + टीकते, तत् + ठकारेण, तत् + डीनम्, तत् + ढौकते, तत् + णकारेण।

ल, चवर्ग और टवर्ग के आने पर पूर्व के तकार को पररूप हो जाता है ॥७४॥

तल्लुनाति, तच्चरति, तछ्छादयति बना। द्वितीय और चतुर्थ अक्षर को प्रथम और तृतीय करने के लिये आगे सूत्र बताते हैं।

अंतस्थ, अनुनासिक को छोड़कर बाकी व्यंजन धुट् संज्ञक हैं ॥७५॥

पद के अंत में धुट् को प्रथम अक्षर हो जाता है ॥७६॥

इस नियम से तछ् + छादयति में छ् धुट् संज्ञक है उसको प्रथम अक्षर हो गया तो तच्छादयति बना। तज्जयति, तझ् + झषयति।

चतुर्थ अक्षर के आने पर पदांत धुट् को तृतीय अक्षर हो जाता है ॥७७॥

तज्झषयति बना। तञ्ञकारेण। तट्टीकते, तट् + ठकारेण ७६वें सूत्र से तड्ठकारेण, तड्डीनम्, तढ् + ढौकते। ७७वें सूत्र से तड्ढौकते, तण्णकारेण ये पद सिद्ध हो गये।

तत् + शेते, तत् + शयनम्।

शकार के आने पर पदांत तकार को चकार हो जाता है ॥७८॥

तच्शेते, तच् शयनम् बन गये।

श्लोकार्थ—कोई शिष्य प्रश्न करता है कि श्री शर्मवर्म आचार्य ने जो यह 'चं शे' सूत्र कहा है वह व्यर्थ है यदि आप कलाप व्याकरण जानते हैं तो इसका उत्तर दीजिये ॥१॥

---

१. श्लोकः—पररूपं हि कर्तव्यं व्यञ्जनं स्वरवर्जितम्॥ सस्वरं तु परं दृष्ट्वा विस्वरं क्रियते बुधैः॥

मूढधीस्त्वं न जानासि छत्वं किल विभाषया।
अच्छत्वपक्षे वचनं नूनं चं शे व्यवस्थितम्॥२॥

तच् शेते। तच् शयनम्॥ क्रुङ् आस्ते। सुगण् अत्र। पचन् इह। कृषन् आसते। इति स्थिते।

अन्त्यात्पूर्व उपधा॥७९॥

धातुलिंगयोरन्त्यवर्णात्पूर्वो वर्ण उपधासंज्ञो भवति।

ङणना ह्रस्वोपधाः स्वरे द्विः॥८०॥

ह्रस्वोपधाः पदान्ता ङणनाः स्वरे परे द्विर्भवन्ति। क्रुङ्ङास्ते। सुगण्णत्र। पचन्निह। कृषन्नास्ते। अत्र रषृवर्णेभ्य इत्यादिना णत्वे प्राप्ते [असिद्धं बहिरंगमन्तरंगे] अन्तरंगे कार्य्ये कृते सति बहिरंगं कार्य्यमसिद्धं भवति। इति णत्वे सति द्वित्वनिषेधः। पूर्वं णत्वे कृते पश्चाद् द्वित्वे प्राप्ते सति। सकृद् बाधितो विधिर्बाधित एव सत्पुरुषवत्॥ भवान् चरति। भवान् छादयति। इति स्थिते।

नोऽन्तश्चछयोः शकारमनुस्वारपूर्वम्॥८१॥

पदान्तो नकारश्चछयोः परयोः शकारमापद्यते अनुस्वारपूर्वम्। भवांश्चरति। भवांश्छादयति॥ भवान् टीकते। भवान् ठकारेण। इति स्थिते।

इस प्रश्न पर श्री भावसेन आचार्य अपनी प्रक्रिया टीका में कहते हैं कि हे मूढ़ बुद्धे ! तू नहीं जानता कि शकार को छकार नहीं होता है तब यह सूत्र अपना कार्य करता है अर्थात् तकार को चकार कर देता है॥२॥

क्रुङ् + आस्ते, सुगण् + अत्र, पचन् + इह, कृषन् + आस्ते।

अन्त्य से पूर्व को 'उपधा' संज्ञा है॥७९॥

धातु और लिंग के अंतिम शब्द से पूर्व वर्ण को—स्वर को 'उपधा' संज्ञा है। यहाँ क्रुङ् में ङ् से पूर्व उ को , सुगण् में ण् से पूर्व अ को उपधा संज्ञा समझना।

पदांत ङ्, ण्, न् की ह्रस्व उपधा से परे स्वर के आने पर ङ् ण् न् दो हो जाते हैं॥८०॥

क्रुङ् ङ् + आस्ते = क्रुङ्ङास्ते, सुग् अ ण् ण् + अत्र = सुगण्णत्र, पच् अन् न् + इह = पचन्निह, कृष् अन् न् + आस्ते = कृषन्नास्ते।

यहाँ 'कृषन्नास्ते' में न को 'रषृवर्णे' इत्यादि सूत्र से णकार प्राप्त था किन्तु अंतरंग कार्य के हो जाने पर बहिरंग कार्य असिद्ध होता है इस नियम के अनुसार णकार कर देने पर द्वित्व का निषेध हो जाता है एवं पहले णकार करके पश्चात् द्वित्व के प्राप्त होने पर भी द्वित्व नहीं हो सकेगा क्योंकि असत् पुरुष के समान एक बार बाधित विधि बाधित ही समझना चाहिए।

भवान् + चरति, भवान् + छादयति।

च, छ के आने पर पदांत नकार अनुस्वारपूर्वक शकार हो जाता है॥८१॥

भवांश्चरति, भवांश्छादयति।

भवान् + टीकते, भवान् + ठकारेण।

टठयोः षकारम् ॥८२ ॥

पदान्तो नकारः टठयोः परयोः षकारमापद्यते अनुस्वारपूर्वम् । भवांष्टीकते । भवांष्ठकारेण ॥ भवान् तरति । भवान् थुडति । इति स्थिते ।

तथयोः सकारम् ॥८३ ॥

पदान्तो नकारस्तथयोः परयोः सकारमापद्यतेऽनुस्वारपूर्वम् । भवांस्तरति । भवांस्थुडति । नृन् पाहि । इति स्थिते ।

नृनः पे वा ॥८४ ॥

नृन्शब्दस्य पदान्तो नकारोऽनुस्वारपूर्वं सकारं वाऽऽपद्यते पकारे परे । नृंस्पाहि । नृन्पाहि ॥

प्रशानः शादीन् ॥८५ ॥

प्रशानो नकारः शादीन्न प्राप्नोति । प्रशान् चरति । प्रशान्छादयति । प्रशान्टीकते । प्रशान्ठकारेण । प्रशान् तरति । प्रशान् थुडति ॥ भवान् लुनाति । भवान् लिखति । इति स्थिते ।

ले लम् ॥८६ ॥

पदान्तो नकारो लकारमापद्यते लकारे परे ।

अनुस्वारहीनम् ॥८७ ॥

अधिकारस्येष्टत्वात् शकारादीनां हीनत्वादनुस्वारो नास्ति । भवाल्लुनाति । भवाल्लिखति ॥ भवान् जयति । भवान् झषयति । भवान् ञकारेण । भवान् शेते । इति स्थिते ।

ट् ठ् के आने पर षकार हो जाता है ॥८२ ॥

पद के अंत का नकार अनुस्वारपूर्वक षकार हो जाता है ट ठ के परे होने पर। भवांष्टीकते, भवांष्ठकारेण।

भवान् + तरति, भवान् + थुडति।

त थ के परे सकार हो जाता है ॥८३ ॥

पदांत नकार अनुस्वारपूर्वक सकार हो जाता है त, थ के आने पर। भवांस्तरति, भवांस्थुडति। नृन् + पाहि

नृन् शब्द का पदांत नकार अनुस्वारपूर्वक सकार विकल्प से होता है। पकार के आने पर ॥८४ ॥

नृंस्पाहि, नृन्पाहि। प्रशान् + चरति इत्यादि।

प्रशान् का नकार च, छ, ट आदि के आने पर श, ष आदि नहीं बनता है ॥८५ ॥

प्रशान् चरति, प्रशान् छादयति, प्रशान्टीकते, प्रशान्ठकारेण, प्रशान्तरति, प्रशान् थुडति।

भवान् + लुनाति, भवान् + लिखति।

लकार के आने पर पदांत नकार 'ल्' हो जाता है ॥८६ ॥ और

यह लकार अनुस्वार ही होता है ॥८७ ॥

यद्यपि यहाँ अनुस्वार का अधिकार इष्ट है—चला आ रहा है फिर भी यहाँ नकार, श, ष, स को नहीं प्राप्त करता है अतः अनुस्वार भी नहीं होता है। इसीलिए सूत्र पृथक् बनाया है।

भवाल्लुनाति, भवाल्लिखति।

भवान् + जयति, भवान् + झषयति, भवान् + ञकारेण, भवान् + शेते।

जझञशकारेषु ञकारम् ॥८८ ॥

पदान्तो नकारो जझञशकारेषु परेषु ञकारमापद्यते । भवाञ्जयति । भवाञ्झषयति । भवाञ्ञकारेण । भवाञ्शेते ॥ कुर्वन् शूरः । उभयविकल्पे त्रैरूप्यम् । इति स्थिते ।

शि ञ्चौ वा ॥८९ ॥

पदान्तो नकारो ञ्चौ वा प्राप्नोति शकारे परे । तवर्गश्चटवर्गयोगे चटवर्गौ । इति पञ्चमः स्यात् । कुर्वञ्शूरः कुर्वञ्छूरः कुर्वञ्शूरः ॥ भवान् डीनः । भवान् ढौकते । भवान् णकारेण । इति स्थिते ।

डढणेषु णम् ॥९० ॥

अत्र वा स्मर्यते । पदान्तो नकारो णकारमापद्यते डढणेषु परतः । भवाण्डीनः । भवाण्ढौकते । भवाण्णकारेण ॥ त्वम् लुनासि । त्वम् रमसे । त्वम् यासि । त्वम् वससि । इति स्थिते ।

मोऽनुस्वारं व्यञ्जने ॥९१ ॥

पदान्तो मकारोऽनुस्वारमापद्यते व्यञ्जने परे । त्वं लुनासि । त्वं रमसे । त्वं यासि । त्वं वससि । **(सम्राट् संज्ञायाम्)** सम्पूर्वात् राजतेश्च क्विप्यनुस्वाराभावो निपात्यते । सम् राजते सम्राट् ॥

ज, झ, ञ और श के आने पर पदांत नकार ञकार हो जाता है ॥८८ ॥

भवाञ्जयति, भवाञ्झषयति, भवाञ्ञकारेण, भवाञ्शेते । कुर्वन् + शूरः ।

दो प्रकार से विकल्प होने से इसके तीन रूप बनेंगे ।

आगे शकार के आने पर पदांत नकार विकल्प से 'न् च्' हो जाता है ॥८९ ॥

अर्थात् न् के पास च् का आगम हो जाता है । अतः कुर्वन् च् + शूरः बना पुनः "तवर्गश्चटवर्गयोगे चटवर्गौ" इस २९२वें सूत्र से पदांत तवर्ग, चवर्ग और टवर्ग के योग में चवर्ग, टवर्ग बन जाता है अर्थात् यदि चवर्ग का योग है तो तवर्ग भी चवर्ग हो जाता है और यदि आगे टवर्ग है तो पदांत तवर्ग भी टवर्ग हो जाता है तथा पूर्व में जो अक्षर है उसी के समान होता है जैसे यहाँ न् तवर्ग का अंतिम अक्षर है तो उसे चवर्ग का अंतिम अक्षर 'ञ्' करेंगे । इस नियम से एक रूप—'कुर्वञ्च्शूरः' बना । 'वर्गप्रथमेभ्यः' इत्यादि ७१वें सूत्र से शकार को विकल्प से छकार होकर दूसर रूप—'कुर्वञ्च्छूरः' । उपर्युक्त ८८वें सूत्र से 'कुर्वञ्शूरः' ऐसे तीन रूप बन गये ।

भवान् + डीनः, भवान् + ढौकते ।

ड ढ ण के आने पर पदांत नकार को णकार हो जाता है ॥९० ॥

भवाण्डीनः, भवाण्ढौकते, भवाण्णकारेण । त्वम् + लुनासि इत्यादि ।

व्यंजन के आने पर पदांत मकार को अनुस्वार हो जाता है ॥९१ ॥

त्वं लुनासि, त्वम् + यासि = त्वंयासि, त्वम् + रमसे = त्वं रमसे, त्वम् + वससि = त्वं वससि ।

सम्राट् इस नाम वाचक शब्द में अनुस्वार नहीं होता है । अर्थात् सम उपसर्गपूर्वक राजते धातु है । क्विप् प्रत्यय के होने पर कृदंत प्रकरण में यह सम्राट् शब्द बना है अतः क्विप् प्रत्यय के निमित्त अनुस्वार का न होना निपात से सिद्ध है अतः सं राजते इति 'सम्राट्' में अनुस्वार नहीं हुआ । देवानाम् इत्यादि ।

विरामे वा ॥९२ ॥

पदान्तो मकारोऽनुस्वारमापद्यते न वा विरामे । देवानां, देवानाम् । पुरुषाणां, पुरुषाणाम् । देवं, देवम् ॥ त्वम् करोषि । त्वम् चरसि । त्वम् टीकसे । त्वम् तरसि । त्वम् पचसि । इति स्थिते ।

वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा ॥९३ ॥

पदान्तो मकारो वर्गे परे तद्वर्गपञ्चममापद्यते न वा । त्वङ्करोषि, त्वं करोषि । त्वञ्चरसि । त्वं चरसि । त्वण्टीकसे, त्वं टीकसे । त्वन्तरसि, त्वं तरसि । त्वम्पचसि, त्वं पचसि ॥ त्वम् यासि । त्वम् वरसि । त्वम् लोकसे । इति स्थिते ।

यवलेषु वा ॥९४ ॥

पदान्तोमकारः पररूपमापद्यते वा यवलेषु परतः । त्वँय्यासि[1], त्वं यासि । त्वँव्वरसि, त्वं वरसि । त्वँल्लोकसे, त्वं लोकसे ॥

॥इति व्यञ्जनसंधिः ॥ ❑

अथ विसर्जनीयसन्धिरुच्यते

कः चरति । कः छादयति । इति स्थिते ।

विराम में पदांत मकार का अनुस्वार विकल्प से होता है ॥९२ ॥

जिस पद के आगे दूसरा पद न हो उसे विराम कहते हैं । जैसे देवानाम् में म् विराम—अंत में है इसको अनुस्वार हुआ तो देवानां अथवा देवानाम् । पुरुषाणां, पुरुषाणाम् । देवं, देवम् ।

विशेष—यह वैकल्पिक नियम इस कातंत्र व्याकरण के अतिरिक्त अन्यत्र किसी भी व्याकरण में नहीं है, सर्वत्र विराम में अनुस्वार न करने का विधान है अतः इसी व्याकरण में यह विशेष नियम है ।

त्वम् + करोषि, त्वम् + चरसि इत्यादि ।

आगे वर्ग के परे पदांत मकार को उसी वर्ग का पंचम अक्षर विकल्प से हो जाता है ॥९३ ॥

त्वङ्करोषि, विकल्प में ९१वें सूत्र से अनुस्वार होकर त्वं करोषि बना । तथैव त्वञ्चरसि, त्वं चरसि । त्वम् + टीकसे = त्वण्टीकसे, त्वं टीकसे ।

त्वम् + तरसि = त्वन्तरसि, त्वं तरसि । त्वम् + पचसि = त्वम्पचसि, त्वं पचसि । त्वम् + यासि ।

य, व, ल के आने पर पदांत मकार विकल्प से पर रूप हो जाता है ॥९४ ॥

त्वम् + यासि = त्वय्यासि, त्वं यासि । त्वम् + वरसि = त्वव्वरसि, त्वं वरसि । त्वम् + लोकसे = त्वल्लोकसे, त्वं लोकसे ।

॥इस प्रकार से व्यंजन संधि पूर्ण हुई ॥ ❑

अथ विसर्ग संधि

विसर्ग संधि किसे कहते हैं ?

विसर्ग से परे व्यंजन या स्वर के आने पर जो सम्बन्ध या परिवर्तन होता है उसे विसर्ग संधि कहते हैं । कः + चरति ।

---

१. सन्निधानात्सानुनासिकस्य मस्य स्थाने सानुनासिका एव यवलाः ।

विसर्जनीयश्चे छे वा शम् ॥९५ ॥

चे वा छे वा परे विसर्जनीयः शमापद्यते । कश्चरति । कश्छादयति । इति सिद्धम् ॥ कः टीकते । कः ठकारेण । इति स्थिते ।

टे ठे वा षम् ॥९६ ॥

टे वा ठे वा परे विसर्जनीयः षकारमापद्यते । कष्टीकते । कष्ठकारेण ॥ कः तरति । कः थुडति । इति स्थिते ।

ते थे वा सम् ॥९७ ॥

ते वा थे वा परे विसर्जनीयः समापद्यते । कस्तरति । कस्थुडति ॥ कः करोति । कः खनति । इति द्विः स्थिते ।

कखयोर्जिह्वामूलीयं न वा ॥९८ ॥

कखयोः परयोर्विसर्जनीयो जिह्वामूलीयमापद्यते न वा ।

जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ च ॥९९ ॥

जिह्वामूलीयमुपध्मानीयं च परं वर्णं नयेत् । क ×करोति, कः करोति । क ×खनति, कः खनति ॥ कः पचति । कः फलति । इति स्थिते ।

पफयोरुपध्मानीयं न वा ॥१०० ॥

पफयोः परयोर्विसर्जनीय उपध्मानीयमापद्यते न वा । क B पचति, कः पचति । क B फलति, कः फलति ॥ कः च्शावित्याचष्टे । कः ट्षावित्याचष्टे । पुरुषः त्सरुकः । यतः क्षमः । ततः प्साति । इति स्थिते ।

न शादीन् शषसस्थे ॥१०१ ॥

च अथवा छ के परे पदांत विसर्ग को 'श्' हो जाता है ॥९५ ॥

कश्चरति, कः + छादयति = कश्छादयति । कः टीकते, कः + ठकारेण ।

ट अथवा ठ के रहते पदांत विसर्ग को षकार होता है ॥९६ ॥

कष्टीकते, कष्ठकारेण ।

त अथवा थ के आने पर पदांत विसर्ग 'स्' हो जाता है ॥९७ ॥

कः + तरति = कस्तरति, कस्थुडति । कः + खनति ।

क और ख के परे रहने पर पदांत विसर्ग विकल्प से जिह्वामूलीय बन जाता है ॥९८ ॥

जिह्वामूलीय और उपध्मानीय पर वर्ण को प्राप्त हो जाते हैं ॥९९ ॥

कः + करोति = क ×करोति, कः करोति । कः + खनति = क ×खनति, कः खनति । ऊपरवज्राकार चिह्न जिह्वामूलीय है । कः पचति, कः फलति ।

प और फ के आने पर पदांत विसर्ग विकल्प से उपध्मानीय हो जाता है ॥१०० ॥

कः + पचति = क B पचति, कः पचति । कः + फलति = क B फलति कः + च्शोवित्याचष्टे, कः + ट्षावित्याचष्टे, पुरुषः + त्सरुकः, ततः + प्साति ।

यदि आगे च, ट, त, प ये वर्ण श, ष, स में स्थित हैं—मिले हुए हैं तो विसर्ग को श ष स नहीं होता है ॥१०१ ॥

विसर्जनीयः शादीन् न प्राप्नोति शषसस्थे निमित्ते परे ॥ कः श्च्योतति । कः ष्ठीवति । कः स्तौति । इति स्थिते ।

अघोषस्थेषु शषसेषु वा लोपम् ॥१०२॥

अघोषस्थेषु शषसेषु परतो विसर्जनीयो लोपमापद्यते वा। उभयविकल्पे त्रिरूपम्। कश्च्योतति, कश्श्च्यतति, कःश्च्योतति। कष्ठीवति, कष्ष्ठीवति, कः ष्ठीवति। कस्तौति, कस्स्तौति, कः स्तौति॥ कः शेते। कः षण्डः। कः साधुः। इति स्थिते।

शे षे से वा वा पररूपम् ॥१०३॥

शे वा षे वा से वा परे विसर्जनीयः पररूपमापद्यते न वा। कश्शेते, कः शेते। कष्षण्डः, कः षण्डः। कस्साधुः, कः साधुः॥ कः अर्थः। कः अत्र। इति स्थिते।

उमकारयोर्मध्ये ॥१०४॥

द्वयोरकारयोर्मध्ये विसर्जनीय उमापद्यते। कोऽर्थः॥ कोऽत्र॥ कः गच्छति। कः धावति। इति स्थिते।

अघोषवतोश्च ॥१०५॥

अकारघोषवतोर्मध्ये विसर्जनीय उमापद्यते। को गच्छति। को धावति।। कः इह। कः उपरि। कः एषः। इति स्थिते।

अपरो लोप्योऽन्यस्वरे यं वा ॥१०६॥

अतः कः च्शावित्याचष्टे इत्यादि ज्यों के त्यों रह गये, संधि नहीं हुई।

कः + श्च्योतति

अघोष में स्थित ऐसे श ष स के आने पर विसर्ग का लोप विकल्प से होता है ॥१०२॥

यहाँ दो बार विकल्प होने से तीन रूप बन जाते हैं। एक बार विसर्ग का लोप, दूसरी बार १०१वें सूत्र के नियम से संधि का अभाव और तीसरी बार ९५वें सूत्र से विसर्ग का शकार—

कः + श्च्योतति = कश्च्योतति, कः + श्च्योतति = कश्श्च्योतति,

कः + ष्ठीवति। कः + स्तौति = कस्तौति। कः स्तौति, कस्स्तौति। कः + शेते

श ष और स के आने पर विसर्ग को पर रूप विकल्प से होता है ॥१०३॥

कः + शेते = कश्शेते, कः शेते। कः + षण्डः = कष्षण्डः, कः षण्डः। कः + साधुः = कस्साधुः, कः साधुः, कः + अर्थः।

दो अकार के मध्य में स्थित विसर्ग को 'उ' हो जाता है ॥१०४॥

कः + अर्थः = क उ + अर्थः 'उवर्णे ओ' इस सूत्र से संधि होकर को + अर्थः, पुनः 'एदोत्परः' इत्यादि ५७वें सूत्र से 'अ' का लोप होकर कोऽर्थः बना। कः + अत्र, क उ + अत्र—को अत्र = कोऽत्र।

कः गच्छति

अकार से परे घोषवान् अक्षर के रहने पर मध्य में स्थित विसर्ग को 'उ' हो जाता है ॥१०५॥

क उ + गच्छति 'उ वर्णे ओ' से को + गच्छति = को गच्छति। कः धावति = को धावति।

कः + इह

अकार से परे विसर्ग का लोप हो जाता है अथवा 'य्' हो जाता है अकार से भिन्न अन्य कोई स्वर आने से ॥१०६॥

अकारात्परो विसर्जनीयो लोप्यो भवति यं वाऽऽपद्यते अन्यस्वरे परे। वाशब्दोऽत्र समुच्चयार्थः। न च विकल्पार्थः॥

न[1] विसर्जनीयलोपे[2] पुनः सन्धिः ॥१०७॥

विसर्जनीयलोपे कृते पुनः सन्धिर्न भवति। क इह, कयिह। क उपरि, कयुपरि। क एषः, कयेषः॥ देवाः आहुः। भोः अत्र। इति स्थिते।

आभोभ्यामेवमेव स्वरे ॥१०८॥

आकारभोशब्दाभ्यां परो विसर्जनीय एवमेव भवति (लोपं यं वाऽपद्यते) स्वरे परे। देवा आहुः, देवायाहुः। भो अत्र, भोयत्र॥ भगोः अत्र। अघोः अत्र। इति स्थिते।

भगोअघोभ्यां वा ॥१०९॥

भगोअघोभ्यां विसर्जनीय एवमेव भवति (लोपं यं वाऽपद्यते) स्वरे परे। भगो अत्र, भगोयत्र। अघो अत्र, अघोयत्रं॥ देवाः गताः। भोः यासि। भगोः व्रज। अघोः यज। इति स्थिते।

घोषवति लोपम् ॥११०॥

आकारभोभगोअघोशब्देभ्यः परो विसर्जनीयो लोपमापद्यते घोषवति परे। देवा गताः। भो यासि। भगो व्रज। अघो यज॥ लोपग्रहणं य वेति (एवमेवेति) निवृत्त्यर्थम्॥ सुपिः। सुतुः। इति स्थिते।

यहाँ 'वा' शब्द समुच्चय के लिये है विकल्प के लिये नहीं।

विसर्ग के लोप होने पर पुनः संधि नहीं होती है ॥१०७॥

कः + इह = क इह, क य् + इह = कयिह। कः + उपरि = क उपरि, क य् + उपरि = कयुपरि। कः + एषः = क एषः, क य् + एषः = कयेषः। देवाः + आहुः।

आगे स्वर के आने पर आकार और भो शब्द से परे विसर्ग का लोप हो जाता है अथवा यकार हो जाता है ॥१०८॥

देवाः + आहुः = देवा आहुः, देवा य् + आहुः = देवायाहुः। भोः + अत्र = भो अत्र, भो य् + अत्र = भोयत्र। भगोः + अत्र, अघोः + अत्र।

भगो, अघो से परे विसर्ग का लोप हो जाता है अथवा यकार हो जाता है आगे स्वर के आने पर ॥१०९॥

भगोः + अत्र = भगो अत्र, भगोयत्र। अघोः + अत्र = अघो अत्र, अघोयत्र।

देवाः + गताः

घोषवान के आने पर आकार और भो, भगो और अघो इनसे परे विसर्ग का लोप नित्य हो जाता है ॥११०॥

देवाः + गताः = देवागताः, भोः + यासि = भो यासि, भगोः + व्रज = भगोव्रज, अघोः + यज = अघो यज। यहाँ पर सूत्र में लोप शब्द का ग्रहण विकल्प से यकार की निवृत्ति के लिये किया गया है।

सुपिः, सुतुः

---

१. न तदः पादपूर्णे चेत्। तदो विसर्जनीयलोपेपुनस्सन्धिकार्यनिषेधो न भवति पादपूर्णे चेत्॥ श्लोकः। सैष दाशरथी रामः सैष राजा युधिष्ठिरः॥ सैष कर्णो महात्यागी सैष पार्थो धनुर्धरः॥ २. लोपग्रहणं एवमेवेति निवृत्त्यर्थम्।

नामिपरो रम् ॥१११॥

नामिनः परो विसर्जनीयो रमापद्यते निरपेक्षः। ईरूरर्थं वचनम्।

इरुरोरीरूरौ ॥११२॥

अत्र धातोरिरुरोरीरूरौ भवतो विरामे व्यञ्जनादौ च। रेफसोर्विसर्जनीयः। सुपीः सुतूः ॥ अग्निः गच्छति। अग्निः अत्र। रविः गच्छति। रविः अत्र। मुनिः आयाति। मुनिः गच्छति। पटुः वदति। पटुः अत्र। इति स्थिते।

घोषवत्स्वरेषु ॥११३॥

नामिनः परो विसर्जनीयो रमाऽपद्यते घोषवत्स्वरेषु। अग्निर्गच्छति। अग्निरत्र। रविर्गच्छति। रविरत्र। मुनिरायाति। मुनिर्गच्छति। पटुर्वदति। पटुरत्र ॥ पितः याहि ॥ पितः अत्र। पुनः गच्छति। पुनः अत्र। इति स्थिते।

रप्रकृतिरनामिपरोऽपि ॥११४॥

रेफप्रकृतिर्विसर्ज्जनीयो नामिपरोऽप्यनामिपरोऽपि रमापद्यते घोषवत्स्वरेषु परतः। पितर्याहि। पितरत्र। पुनर्गच्छति। पुनरत्र ॥ अहः गणः। अहः अत्र। अहः जयति ॥ अहः आयाति। अहः हसति। अहः अपि। इति स्थिते।

अह्नोऽरेफे ॥११५॥

नामि स्वर से परे विसर्ग को 'र्' हो जाता है ॥१११॥

अर्थात् अवर्ण को छोड़कर शेष किसी भी स्वर से परे विसर्ग को रकार हो जाता है और यह किसी की अपेक्षा नहीं रखता है मतलब आगे किसी स्वर व्यंजन की अपेक्षा नहीं रहती है।

सुपिर्, सुतुर्

इर् और उर् को ईर् और ऊर् हो जाता है ॥११२॥

अर्थात् विराम और व्यंजन के आने पर धातु के इर् उर् को दीर्घ ईर् ऊर् हो जाता है। सुपीर्, सुतूर्—'रेफसोर्विसर्जनीयः' इस १३०वें सूत्र से र् का विसर्ग हो जाता है अतः सुपीः, सुतूः बन जाता है।

अग्निः + गच्छति

स्वर और घोषवान् के आने पर नामि से परे विसर्ग को रकार हो जाता है ॥११३॥

अग्निः + गच्छति = अग्निर्गच्छति। अग्निः + अत्र = अग्निरत्र। रविः + गच्छति = रवि-र्गच्छति। रविः + अत्र = रविरत्र। मुनिः + आयाति = मुनिरायाति। मुनिः + गच्छति = मुनिर्गच्छति। पटुः + वदति = पटुर्वदति। पटुः + अत्र = पटुरत्र।

घोषवान् और स्वर के आने पर रेफ से बना हुआ विसर्ग चाहे नामि से परे हो चाहे अनामि से फिर भी 'र्' हो जाता है ॥११४॥

पितः + याहि = पितर्याहि, पितः + अत्र = पितरत्र, पुनः + गच्छति = पुनर्गच्छति, पुनः + अत्र = पुनरत्र। अहः + गणः।

रेफ रहित घोषवान् व्यञ्जन और स्वर के आने पर अहन् के विसर्ग का रकार हो जाता है ॥११५॥

अहो विसर्जनीयो रमापद्यते अरेफे घोषवति च स्वरे परे। अहर्गणः। अहरत्र। अहर्जयति अहरायाति। अहर्हसति। अहरपि। रेफे तु अहो राजते। अहो रात्रम्। अहो रूपम्॥ अहः भ्याम्। अहः भिः। इति स्थिते॥

न स्यादिभे ॥११६॥

अहो विसर्जनीयो न रमापद्यते स्यादिभे परे। अहोभ्याम्। अहोभिः। स्यादिभे इति किम्। अहर्भुक्तिः। अहर्भवति॥ अहः पतिः। इति स्थिते।

अहरादीनां पत्यादिषु ॥११७॥

अहरादीनां विसर्जनीयो वा रमापद्यते पत्यादिषु परतः। अहर्पतिः अहः पतिः। इत्यादि॥ एषः करोति। सः गच्छति। इति स्थिते।

एषसपरो व्यञ्जने लोप्यः ॥११८॥

एषसाभ्याम् परो विसर्जनीयो लोप्यो भवति व्यञ्जने परे। एष करोति। स गच्छति। अग्निः रथेन। पुनः रात्रिः। इति स्थिते।

रो रे लोपं स्वरश्च पूर्वो दीर्घः ॥११९॥

रे परे रो लोपमापद्यते पूर्वस्वरश्च दीर्घो भवति। अग्नीरथेन। पुनारात्रिः।। वट छाया। कवि छन्दः। तनु छविः। इति स्थिते।

अर्थात् दिनवाची अहन् के न् के विसर्ग का यह नियम है जबकि आगे रकार नहीं होना चाहिये।

अहः + गणः = अहर्गणः, अहः + अत्र = अहरत्र। अहः + जयति = अहर्जयति। अहः + आयाति = अहरायाति, अहः + हसति = अहर्हसति। अहः + अपि = अहरपि। यदि आगे रेफ है तो विसर्ग को 'उ' होकर संधि हो जाती है। अहः + राजते = अह उ + राजते = अहोराजते। अहः रात्रम् = अह उ + रात्रम् = अहोरात्रम्। अहः + रूपम् = अहोरूपम्। अहः + भ्याम्।

सि आदि विभक्ति के भ्याम्, भिस् के आने पर विसर्ग का रकार नहीं होता है ॥११६॥

अहः + भ्याम् = अहोभ्याम्, अहः + भिस् = अहोभिः। सि आदि विभक्ति के भ्याम् भिस् के नहीं आने पर रकार हो जायेगा जैसे अहः + भुक्तिः = अहर्भुक्तिः। अहः + भवति = अहर्भवति। अहः + पतिः।

पति आदि शब्दों के आने पर अहः के विसर्ग को विकल्प से रकार हो जाता है ॥११७॥

अहः + पतिः = अहर्पतिः, अहःपतिः। एषः + करोति।

व्यंजन के आने पर एष और स के विसर्ग का लोप हो जाता है ॥११८॥

एषः + करोति = एष करोति, सः + गच्छति = स गच्छति।

अग्निः + रथेन

'नामि परो रम्' इस सूत्र से विसर्ग को रकार होकर पुनः—

रकार के आने पर पूर्व के रकार का लोप होकर पूर्व को दीर्घ हो जाता है ॥११९॥

अग्नि र् + रथेन = अग्नी रथेन, पुनर् + रात्रि = पुनारात्रिः।

वट + छाया

द्विर्भावं स्वरपरश्छकारः ॥१२० ॥

स्वरात्परश्छकारो द्विर्भावमापद्यते ।

अघोषे प्रथमः ॥१२१ ॥

अघोषे परे धुटां प्रथमो भवति । वटच्छाया । कविच्छन्दः । तनुच्छविः ॥ बाला छादयति । वेला छादयति । इति स्थिते ।

दीर्घात्पदान्ताद्वा ॥१२२ ॥

पदान्ताद्दीर्घात्परश्छकारो वा द्विर्भावमापद्यते । बालाच्छादयति, बाला छादयति । वेलाच्छादयति, वेलाछादयति । इति सिद्धम् ॥ आ छादयति । मा छिदत् । इति स्थिते ।

आङ्माङ्भ्यां नित्यम् ॥१२३ ॥

आङ्माङ्भ्यां परश्छकारो नित्यं द्विर्भावमापद्यते । आच्छादयति । माच्छिदत् । इति सिद्धम् । दध्यत्र इति स्थिते ।

अस्वरे ॥१२४ ॥

व्यञ्जनं द्विर्भवति व्यञ्जने परे । दद्ध्यत्र ॥

इति विसर्जनीयसन्धिः

स्वर से परे छकार के आने पर वह छकार को द्वित्व हो जाता है ॥१२० ॥

वट छ् + छाया

अघोष से परे धुट् को प्रथम अक्षर हो जाता है ॥१२१ ॥

वटच्छाया, कवि + छन्दः = कवि + छ् छन्दः = कविच्छन्दः, तनु + छविः = तनुच्छविः ।

बाला + छादयति

दीर्घ पद से परे छकार विकल्प से होता है ॥१२२ ॥

बाला + छ् छादयति 'अघोषे प्रथमः' इस सूत्र से पूर्व छ् को प्रथम अक्षर होकर बालाच्छादयति, दूसरा रूप—बाला छादयति । बेला + छादयति = बेलाच्छादयति । बेला छादयति ।

आ + छादयति, मा + छिदत्

आङ् माङ् से परे छकार के आने पर नित्य ही छकार द्वित्व होता है ॥१२३ ॥

आ + छ् छादयति = आच्छादयति, मा + छ् छिदत् = माच्छिदत् ।

दध्यत्र—

व्यंजन के परे व्यंजन को द्वित्व हो जाता है ॥१२४ ॥

दुध्ध् यत्र 'धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु' इस ७७वें सूत्र से चतुर्थ अक्षर को तृतीय हो गया । दद्ध्यत्र बना ।

॥इस प्रकार से विसर्गसंधि पूर्ण हुई ॥

अथ लिङ्गाद्विभक्तय उच्यन्ते

सर्वज्ञं तमहं वन्दे परं ज्योतिस्तमोपहम्।
प्रवृत्ता यन्मुखाद्देवी सर्वभाषा सरस्वती ॥१ ॥

किं लिङ्गम् ?

धातुविभक्तिवर्जमर्थवल्लिङ्गम् ॥१२५ ॥

अर्थोऽभिधेयः ॥ धातुविभक्तिवर्जमर्थवच्छब्दरूपं लिङ्गसंज्ञं भवति। तच्च लिङ्गं द्विविधम्। स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं चेति। तत्पुनः प्रत्येकं त्रिविधिम्। पुल्लिङ्गं स्त्रीलिङ्गं नपुंसकलिङ्गं चेति। तत्रादावकारान्तात्पुल्लिङ्गात्पुरुषशब्दाद्विभक्तयो योज्यन्ते। लोकोपचारात्स्यादीनां विभक्तिसंज्ञायां पुरुष इति स्थिते ॥

तस्मात्परा विभक्तयः ॥१२६ ॥

अथ लिंग प्रकरण

अब लिंग से विभक्तियाँ कही जाती हैं।

परं ज्योति—सर्वोत्कृष्ट ज्ञानस्वरूप, मोह और अज्ञानरूपी अंधकार को नष्ट करने वाले उन सर्वज्ञ भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ कि जिनके मुखारविंद से सर्वभाषामय सरस्वती प्रकट हुई है ॥१ ॥

भावार्थ—मोहनीय कर्म के नष्ट हो जाने के बाद ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय कर्मों का नाश हो जाता है तब इस आत्मा में सम्पूर्ण लोकालोक को प्रकाशित करने वाला केवलज्ञान प्रकट हो जाता है और यह आत्मा 'सर्वं जानाति इति सर्वज्ञः' इस सार्थक नाम से सर्वज्ञ कही जाती है उस समय इन्द्र की आज्ञा से कुबेर दिव्य समवशरण की रचना करता है। उस समवशरण में १२ सभाओं में असंख्य देवगण, मनुष्य और तिर्यंच भी उपदेश सुनते हैं। भगवान् की दिव्यध्वनि सात सौ लघुभाषाओं और अठारह महाभाषाओं, इस तरह सात सौ अठारह भाषाओं में खिरती है अथवा संपूर्ण श्रोताओं के कान में पहुँचकर उन-उनकी भाषा रूप परिणत होकर सर्वभाषामय हो जाती है।

लिंग किसे कहते हैं ?

धातु और विभक्ति से रहित अर्थवान् शब्द लिंग कहलाते हैं ॥१२५ ॥

अर्थ किसे कहते हैं ? वाच्य—कहने योग्य विषय को अर्थ कहते हैं। धातु और विभक्तियों को छोड़कर जो अपने वाच्य अर्थ को कहने वाले शब्द हैं उनकी यहाँ लिंग संज्ञा है। जैनेन्द्र व्याकरण में इसे ही "मृत" संज्ञा है। उस लिंग के दो भेद हैं—स्वर है अंत में जिनके ऐसे स्वरांत और व्यंजन है अंत में जिनके ऐसे व्यंजनांत। स्वरांत और व्यंजनांत के भी पुल्लिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसकलिंग के भेद से तीन-तीन भेद हैं।

स्वरांत में भी अकारांतपर्यंत शब्द माने गये हैं और व्यंजनांत में ककारांत से लेकर हकारांतपर्यंत शब्द आते हैं।

अब यहाँ स्वरांत पुल्लिंग का प्रकरण पहले आवेगा। उसमें भी सर्वप्रथम अकारांत पुल्लिंग शब्द से विभक्तियाँ लगाई जावेंगी।

लोक व्यवहार में सि आदि की विभक्ति संज्ञा होने पर 'पुरुष' यह शब्द स्थित है। इससे परे विभक्तियाँ आती हैं ॥१२६ ॥

सि औ जस्। अम् औ शस्। टा भ्याम् भिस्। ङे भ्याम् भ्यस्। ङसि भ्याम् भ्यस्। ङस् ओस् आम्। ङि ओस् सुप्। तस्मादर्थवतो लिङ्गात्परा: स्यादयो विभक्तयो भवन्ति। ता: पुन: सप्त। सि औ जस् इति प्रथमा। अम् औ शस् इति द्वितीया। टा भ्याम् भिस् इति तृतीया। ङे भ्याम् भ्यस् इति चतुर्थी। ङसि भ्याम् भ्यस् इति पञ्चमी। ङस् ओस् आम् इति षष्ठी। ङि ओस् सुप् इति सप्तमी। एवं युगपत् सर्वप्रत्ययप्रसङ्गे वक्तुर्विवक्षया शब्दार्थप्रतिपत्तिरिति लिङ्गार्थविवक्षायाम्।

प्रथमा विभक्तिर्लिङ्गार्थवचने ॥१२७॥

लिङ्गार्थवचने प्रथमा विभक्तिर्भवति। इति लिङ्गार्थे प्रथमा। तत्रापि युगपदेकवचनादिप्राप्तौ।

एकं द्वौ बहून् ॥१२८॥

अर्थान् वक्तीति, एकस्मिन्नर्थे एकवचनं द्वयोरर्थयोर्द्विवचनं बहुष्वर्थेषु बहुवचनं भवति। इति लिङ्गार्थैकत्वविवक्षायां प्रथमैकवचनं सि। पुरुष सि इति स्थिते।

योऽनुबन्धोऽप्रयोगी ॥१२९॥

य: अनुबन्ध: स अप्रयोगी भवति। अनुबन्ध: क: ? इजशटङपा विभक्तिष्वनुबन्धा:। वा विरामे इति वर्तमाने।

सि औ जस्—ये प्रथमा विभक्तियाँ हैं।
अम् औ शस्—ये द्वितीया विभक्तियाँ हैं।
टा भ्याम् भिस्—ये तृतीया विभक्तियाँ हैं।
ङे भ्याम् भ्यस्—ये चतुर्थी विभक्तियाँ हैं।
ङसि भ्याम् भ्यस्—ये पंचमी विभक्तियाँ हैं।
ङस् ओस् आम्—ये षष्ठी विभक्तियाँ हैं।
ङि ओस् सुप्—ये सप्तमी विभक्तियाँ हैं।

इस प्रकार से पुरुष शब्द से एक साथ संपूर्ण विभक्तियों के लगने का प्रसंग प्राप्त हो गया तो वक्ता की विवक्षा से शब्द के अर्थ का ज्ञान होता है इसलिये लिंग—शब्दमात्र के अर्थ की विवक्षा के होने पर अगला सूत्र लगता है।

लिंग के अर्थ को कहने में प्रथमा विभक्ति होती है ॥१२७॥

इसलिये शब्दमात्र के अर्थ में प्रथम विभक्ति आ गई। उसमें भी एक साथ ही एकवचन आदि सभी प्राप्त हो गये तब—

एक दो और बहुवचन होते हैं ॥१२८॥

जो अर्थ को कहता है वह लिंग है इस नियम के अनुसार एक के अर्थ में एकवचन, दो में द्विवचन और तीन आदि में बहुत के अर्थ में बहुवचन होता है। इस प्रकार से यहाँ शब्द के अर्थ में एक ही विवक्षा होने पर प्रथमा विभक्ति का एकवचन 'सि' आया तो पुरुष + सि ऐसी स्थिति हुई।

जो अनुबंध है वह अप्रयोगी है ॥१२९॥

अनुबंध किसे कहते हैं ?

इन सातों ही विभक्तियों में इ ज् श् ट् ङ् और प् ये अनुबंध संज्ञक हैं। इससे सि के इ का लोप होकर पुरुष + स् रहा।

"वा विरामे" यह सूत्र, सूत्र के क्रम में चला आ रहा है। अर्थात् सूत्रकार सूत्रों को क्रम से लिखते हैं और टीकाकार अपने अपने प्रकरणों से सूत्रों को आगे-पीछे कर लेते हैं। सूत्रकार के सूत्रों के क्रम से जो सूत्र होता है वह अनुवृत्ति में चला आता है उसी प्रकार से यहाँ पर 'वा विरामे' यह सूत्र अनुवृत्ति में है।

रेफसोर्विसर्जनीयः ॥१३० ॥

विरामे व्यञ्जनादौ च रेफसकारयोर्विसर्जनीयो भवति। परवर्णाभावो विरामः। अथवा यदनन्तरं वर्णान्तरं नोच्यते स विरामः। पुरुषः इति सिद्धं पदम्। तथैव लिङ्गार्थे द्वित्वविवक्षायां द्विवचन औ। सन्धिः। पुरुषौ॥ तथैव लिङ्गार्थे बहुत्वविवक्षायां बहुवचनं जस्। अनुबन्धलोपः। पुरुष अस् इति स्थिते। अकारे लोपमिति प्राप्ते तत्प्रतिषेधः। अकारो दीर्घं घोषवतीति वर्तते। सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्। लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधिर्बलवान्।

जसि ॥१३१ ॥

लिङ्गान्तोऽकारो दीर्घमापद्यते जसि परे। (एकदेशविकृतमनन्यवत्)। यथा कर्णपुच्छादिस्वाङ्गेषु भिन्नेषु सत्सु श्वा न गर्दभः किंतु श्वा श्वैव। पुनः सवर्णे दीर्घः। सस्य विसर्जनीयः। पुरुषाः॥ तथैवामंत्रणार्थविवक्षायाम्।

आमन्त्रणे च ॥१३२ ॥

दूरस्थानामभिमुखीकरणमामंत्रणम्। तत्र प्रथमा विभक्तिर्भवति।

रेफ और सकार को विसर्ग हो जाता है ॥१३० ॥

विराम और व्यंजन आदि के आने पर रेफ और सकार को विसर्ग हो जाता है। यहाँ टीकाकार ने अनुवृत्ति के 'वा विरामे' सूत्र से विराम शब्द को टीका में लिया है।

विराम किसे कहते हैं ? पर वर्ण के अभाव को विराम कहते हैं। अथवा जिसके बाद दूसरा वर्ण न कहा जावे उसे विराम कहते हैं। पुरुष + स् यहाँ स् को विसर्ग होकर पुरुषः बन गया।

उसी प्रकार लिंग के अर्थ दो वचन की विवक्षा होने पर द्विवचन 'औ' विभक्ति आई।

पुरुष + औ 'ओकारे औ औकारे च' इस सूत्र से संधि होकर पुरुषौ बना।

पुनः लिंग के अर्थ में बहुत की विवक्षा में विभक्ति आई जस्। इसमें ज् का अनुबंध लोप हो गया तो पुरुष + अस्—यहाँ 'अकारे लोपम्' इस सूत्र से अकार का लोप प्राप्त था, किन्तु 'अकारो दीर्घं घोषवति' सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है। 'सभी विधि में लोप विधि बलवान् होती है' इस नियम से लोप विधि बलवान् हो रही थी कि लोप और स्वर आदेश इन दोनों में स्वर आदेश विधि बलवान् है।

जस् के आने पर लिंगांत अकार दीर्घ हो जाता है ॥१३१ ॥

जस् के ज् का अनुबंध लोप हो जाने के बाद अस् रहा पुनः 'जसि' इस सूत्र में जस् के आने पर ऐसा क्यों कहा ? क्योंकि अब यहाँ जस् है ही नहीं। "एक देश विकृतमनन्यवत्" इस नियम के अनुसार ज् का अनुबंध लोप होने पर भी यह जस् ही माना जावेगा जैसे कुत्ते के कान या पूँछ आदि अंगों के छिन्न कर देने पर भी कुत्ता कुत्ता ही कहलाता है। अतः पुरुष + अस्। सवर्ण को दीर्घ करके स् को विसर्ग करके पुरुषाः बना।

उसी प्रकार से आमंत्रण के अर्थ की विवक्षा होने पर—

आमंत्रण में भी प्रथमा विभक्ति होती है ॥१३२ ॥

आमंत्रण किसे कहते हैं ? दूर में स्थित जनों को अपने अभिमुख करना, बुलाना आमंत्रण कहलाता है। पुरुष + सि।

आमन्त्रणे सिः सम्बुद्धिः ॥१३३॥

आमंत्रणार्थे विहितः सिः सम्बुद्धिसंज्ञो भवति ॥

ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम् ॥१३४॥

ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः परः संबुद्धिसंज्ञकः सिर्लोपमापद्यते। कैश्चिदामन्त्रणाभिव्यक्तये अहो हे भो शब्दाः प्राक्प्रयोज्यन्ते। हे पुरुष। द्विवचनबहुवचनयोः पूर्ववत्। हे पुरुषौ। हे पुरुषाः। तथैव कर्म्मविवक्षायाम् ॥

शेषाः कर्मकरणसंप्रदानापादानस्वाम्याद्यधिकरणेषु ॥१३५॥

शेषा द्वितीयाद्याः षड् विभक्तयः कर्मादिषु षट्सु कारकेषु यथासंख्यं भवन्ति। इति कर्मणि द्वितीया। पुरुष अम् इति स्थिते।

अकारे लोपम् ॥१३६॥

लिङ्गान्तो[1]ऽकारो लोपमापद्यते सामान्ये अकारे परे। पुरुषम्। द्विवचने सन्धिः। पुरुषौ। बहुत्वे—पुरुष अस इति स्थिते।

शशि सस्य च नः ॥१३७॥

शसि परे लिङ्गान्तोऽकारो दीर्घमापद्यते सस्य च नो भवति। पुनः सवर्णे दीर्घः। पुरुषान्। तथैव करणविवक्षायाम् ॥ शेषाः कर्मेत्यादिना करणे तृतीया। पुरुष टा इति स्थिते।

इन टा ॥१३८॥

आमंत्रण में 'सि' की संबुद्धि संज्ञा है ॥१३३॥

ह्रस्व स्वर नदी और श्रद्धा से परे 'सि' विभक्ति का लोप हो जाता है ॥१३४॥

ह्रस्व स्वर से परे नदी संज्ञक एवं श्रद्धा संज्ञक शब्दों से परे 'सि' विभक्ति का लोप हो जाता है। कोई-कोई जन आमंत्रण अर्थ को अभिव्यक्त करने के लिए शब्दों से पहले अहो, हे, भो शब्दों का प्रयोग करते हैं। अतः—हे पुरुष ! द्विवचन और बहुवचन पूर्ववत् ही होते हैं। हे पुरुषौ, हे पुरुषाः।

कर्म की विवक्षा होने पर—

शेष छहों विभक्तियाँ क्रम से कर्म, करण, संप्रदान, अपादान स्वामी आदि और अधिकरण अर्थों में होती हैं ॥१३५॥

शेष द्वितीया आदि छहों विभक्तियाँ कर्म आदि छह कारकों में होती हैं। इस प्रकार से कर्म अर्थ में द्वितीया विभक्ति आई।

पुरुष + अम्।

अकार के आने पर लोप हो जाता है ॥१३६॥

सामान्य अकार के आने पर लिंगांत अकार का लोप हो जाता है। पुरुष + अम् = पुरुषम्।

द्विवचन में सन्धि—पुरुषौ। पुरुष + शस् है। शानुबंध होकर पुरुष + अस् है।

बहुवचन में शस् के आने पर अकार दीर्घ होकर स् को न् हो जाता है ॥१३७॥

पुरुषा + अन् सवर्ण को दीर्घ होकर पुरुषान्।

करण अर्थ की विवक्षा में—तृतीया विभक्ति आई तो पुरुष + टा

अकारान्त लिंग से परे 'टा' को 'इन' आदेश हो जाता है ॥१३८॥

---

१. शब्दान्त इत्यर्थः।

अकारान्ताल्लिङ्गात्परष्टा इनो भवति। सन्धिः।

रषृवर्णेभ्यो नो णमनन्त्यः स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरोऽपि ॥१३९॥

रेफषकारऋवर्णेभ्यः परोऽनन्त्यो नकारः णमापद्यते स्वरहयवकवर्गपवर्गान्तरोऽपि शब्दान्तरोऽपि। स्वरान्तरस्तावत्। पुरुषेण। द्विवचने।

अकारो दीर्घं घोषवति ॥१४०॥

लिङ्गान्तोऽकारो दीर्घमापद्यते घोषवति परे। पुरुषाभ्याम्।

भिसैस्वा ॥१४१॥

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो भिस् ऐस् वा भवति। सन्धिः। पुरुषैः। तथैव सम्प्रदानविवक्षायाम्। शेषाः कर्मेत्यादिना सम्प्रदाने चतुर्थी।

ङेर्यः ॥१४२॥

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङेर्यो भवति। घोषवति दीर्घः। पुरुषाय। द्वित्वे पूर्ववत्। पुरुषाभ्याम्। बहुत्वे।

पुरुष + इन—'अवर्ण इवर्णे ए' से संधि होकर पुरुषेन बना। पुनः

रेफ, षकार और ऋवर्ण से परे यदि णकार अंत में नहीं है और वह स्वर ह, य, व कवर्ग और पवर्ग के अनंतर है तो वह नकार णकार हो जाता है ॥१३९॥

अर्थात् यदि स्वर ह, य, व आदि उस नकार के अनंतर हैं तो नकार णकार हो जाता है। अतः 'पुरुषेण' बना।

द्विवचन में—पुरुष + भ्याम् है।

घोषवान् के आने पर लिंगांत अकार दीर्घ हो जाता है ॥१४०॥

तो पुरुषाभ्याम् बना।

बहुवचन में पुरुष + भिस् है।

भिस् को ऐस् हो जाता है ॥१४१॥

लिंगांत अकार से परे—पुरुष + ऐस् 'एकारे ऐ ऐकारे च' सूत्र से संधि हुई तो पुरुषैस्। पुनः 'रेफसोर्विसर्जनीयः' से विसर्ग होकर पुरुषैः बना।

सम्प्रदान की विवक्षा के होने पर 'शेषाः कर्मकरण' इत्यादि सूत्र से चतुर्थी विभक्ति आती है। पुरुष + ङे।

ङे को 'य' हो जाता है ॥१४२॥

लिंगांत अकार से परे ङे को य आदेश हो जाता है और 'अकारो दीर्घं घोषवति' से दीर्घ होकर पुरुषाय बन जाता है।

द्विवचन में पूर्ववत् पुरुषाभ्याम्।

बहुवचन में—पुरुष + भ्यस् है।

धुड् व्यञ्जनमनन्तःस्थानुनासिकम् ॥७५ ॥ *

अन्तःस्थानुनासिकवर्जितं व्यञ्जनं धुट्संज्ञं भवति। क ख ग घ। च छ ज झ। ट ठ ड ढ। त थ द ध। प फ ब भ। श ष स ह इति।

धुटि बहुत्वे त्वे ॥१४३ ॥

लिङ्गान्तोऽकार ए भवति बहुत्वे धुटि परे। पुरुषेभ्यः। तथैव अपादानविवक्षायां शेषाः कर्मेत्यादिना अपादाने पञ्चमी।

ङसिरात् ॥१४४ ॥

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङसिराद्भवति। पुरुषात्। द्वित्वबहुत्वयोः पूर्ववत्। दीर्घोच्चारणं किमर्थम्। अकारे लोपे प्राप्ते सति तन्निमित्तम्[१]। पुरुषाभ्यां। पुरुषेभ्यः। तथैव स्वाम्यादिविवक्षायां शेषाः कर्मेत्यादिना स्वाम्यादौ षष्ठी।

ङस् स्यः ॥१४५ ॥

अकारान्ताल्लिङ्गात्परो ङस् स्यो भवति। पुरुषस्य। द्वित्वे, धुटि बहुत्वे त्वे इति वर्त्तते।

ओसि च ॥१४६ ॥

बहुवचन में धुट् के आने पर लिंगांत अकार को 'ए' हो जाता है ॥१४३ ॥

पुरुषे + भ्यस्—'स' का विसर्ग होकर पुरुषेभ्यः बना।

यहाँ ७५वें सूत्र के नियम से अंतस्थ और अनुनासिक को छोड़कर बाकी व्यंजन को धुट् संज्ञा है।

अपादान अर्थ की विवक्षा में 'शेषाः कर्म' इत्यादि सूत्र से पंचमी विभक्ति आती है।

पुरुष + ङसि। ङ और इ का अनुबंध लोप हो जाता है।

ङसि को आत् हो जाता है ॥१४४ ॥

लिंगांत अकार से परे ङसि विभक्ति को आत् आदेश हो जाता है। तो पुरुष + आत् = पुरुषात् बन जाता है। यहाँ आत् में दीर्घ 'आ' किसलिए है ? यदि अकार का लोप प्राप्त हो तो उसके लिए दीर्घ आकार है। द्विवचन और बहुवचन पूर्ववत् बनते हैं—पुरुषाभ्याम्, पुरुषेभ्यः।

स्वामी आदि की विवक्षा के होने पर 'शेषाः' इत्यादि सूत्र से षष्ठी विभक्ति आती है।

पुरुष + ङस्

ङस् को 'स्य' होता है ॥१४५ ॥

लिंगांत अकार से परे ङस् को स्य आदेश होकर पुरुषस्य बन जाता है।

पुरुष + ओस्

'धुटिबहुत्वेत्त्वे' सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

ओस् के आने पर लिंगांत अकार 'ए' हो जाता है ॥१४६ ॥

---

१. ह्रस्वोऽकारः सुतरामेव, तस्य सवर्णे दीर्घे कृते रूपसिद्धिर्भवति, तथापि दीर्घविधेर्बाधकं वचनं अकारे लोपमिति, तद् बाधकं मा भूदिति, दीर्घोच्चारणं कृतमित्यर्थः।

लिङ्गान्तोऽकार ए भवति ओसि च परे। सन्धिः। ए अय्। रेफसोर्विसर्जनीयः। पुरुषयोः। बहुत्वे—पुरुष आम् इति स्थिते। ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्य इति वर्त्तते।

आमि च नुः ॥१४७॥

ह्रस्वनदीश्रद्धाशब्देभ्यः[1] परो नुरागमो भवति आमि परे।

तृतीयादौ तु परादिः ॥१४८॥

उदनुबन्ध आगमः परादिर्भवति तृतीयादौ विभक्तौ।

दीर्घमामि सनौ ॥१४९॥

ह्रस्वान्तं लिङ्गं दीर्घमापद्यते सनावामि परे। रषृवर्णेत्यादिना णत्वं घोषवति दीर्घः। पुरुषाणाम्॥ तथैव अधिकरणे सप्तमी। अनुबन्धलोपः। सन्धिः। पुरुषे। द्विवचने पूर्ववत्। पुरुषयोः। बहुत्वे-धुटि एत्वं च।

नामिकरपरः प्रत्ययविकारागमस्थः सिः षं नुविसर्जनीयषान्तरोऽपि ॥१५०॥

पुरुषे + ओस् 'ए अय्' से संधि होकर पुरुष अय् + ओस्-पुरुषयोस्। स् को विसर्ग होकर पुरुषयोः बन गया।

बहुवचन में—पुरुष + आम्।

'ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्' सूत्र, अनुवृत्ति से चला आ रहा है।

आम् विभक्ति के आने पर 'नु' का आगम हो जाता है ॥१४७॥

ह्रस्व स्वर, नदी संज्ञक और श्रद्धा संज्ञक स्वर से परे आम् विभक्ति के आने पर 'नु' का आगम हो जाता है। और इसमें 'उ' का अनुबंध लोप हो जाता है।

जिसमें 'उ' का अनुबंध लोप हुआ है ऐसा आगम पर की आदि में होता है तृतीयादि विभक्ति के आने पर ॥१४८॥ तो पुरुष+न् आम् बना।

आम् विभक्ति में स् और न् का आगम होने पर ह्रस्वांत लिंग दीर्घ हो जाता है ॥१४९॥

तो पुरुषानाम् बना। पुनः 'रषृवर्णेभ्यो' इत्यादि सूत्र से न् को ण् होकर—

पुरुषाणाम् बन जाता है।

अधिकरण अर्थ में सप्तमी विभक्ति आती है।

पुरुष + ङि ङ् का अनुबंध लोप होकर पुरुष + इ रहा।

अवर्ण इवर्णे ए से संधि होकर पुरुषे बना।

द्विवचन में पूर्ववत् पुरुषयोः बना। एवं बहुवचन में पुरुष + सुप् प् का अनुबंध का लोप होकर। धुटि बहुत्वे त्वे सूत्र से ए होकर पुरुषे + सु बना।

नामि, क, र, से परे प्रत्यय का विकार और आगम में स्थित स् को ष् हो जाता है एवं नु विसर्ग और ष से अन्तरित स् को भी ष् हो जाता है ॥१५०॥

---

१. श्रद्धासंज्ञा आकारान्तस्त्रीलिङ्गस्य नदीसंज्ञा च ईकारान्तस्त्रीलिङ्गस्य अग्रे वक्ष्यते।

नामिकरेभ्य: पर: प्रत्ययविकारागमस्थ: सि: षमापद्यते नुविसर्जनीयषान्तरोऽपि पुरुषेषु। नीतक:— पुरुष:, पुरुषौ, पुरुषा:। हे पुरुष, हे पुरुषौ, हे पुरुषा:। पुरुषम्, पुरुषौ, पुरुषान्। पुरुषेण, पुरुषाभ्याम्, पुरुषै:। पुरुषाय, पुरुषाभ्याम्, पुरुषेभ्य:। पुरुषात्, पुरुषाभ्याम्, पुरुषेभ्य:। पुरुषस्य, पुरुषयो: पुरुषाणाम्। पुरुषे, पुरुषयो:, पुरुषेषु ॥ एवं धर्म वीर वेद वृक्ष सूर्य सागर स्तम्भ वाण मृग दन्त राघव मास पक्ष शिव शैल गुह्यक व्रात गण्ड कट कपाट नाग शङ्कर घट पटादय: ॥

पूर्वपरयोरर्थोपलब्धौ पदम् ॥१५१॥

पूर्वपरयोरिति कोऽर्थ:। प्रकृतिविभक्त्योरित्यर्थ:। प्रकृतय: का:। पुरुषादिशब्दा भूप्रभृतयो धातवश्चक प्रकृतयो भवन्ति। विभक्तय: का:। स्यादिस्त्यादिश्च। तयो: प्रकृतिविभक्त्योरर्थोपलब्धौ सत्यां समुदायस्य पदसंज्ञा भवति। एवं विभक्त्यन्तानां सर्वत्र पदसंज्ञा भवति। सर्वशब्दस्य क्वचिद्विशेष:। सर्व:। सर्वौ। जसि—सर्वनाम्न इति वर्तते।

जः[1] सर्व इः ॥१५२॥

अकारान्तात्सर्वनाम्न: परो जस् सर्व इर्भवति। सर्वे। हे सर्व। हे सर्वौ। हे सर्वे। सर्वं। सर्वौ। सर्वान्। सर्वेण। सर्वाभ्यां। सर्वै: ॥ ङयि।

यहाँ नामि से परे स् होने पर ष् हो गया तो पुरुषेषु बन गया।

अब पुरुष का पूरा रूप चलाइए—

पुरुष:	पुरुषौ	पुरुषा:	पुरुषाय	पुरुषाभ्याम्	पुरुषेभ्य:
हे पुरुष !	हे पुरुषौ !	हे पुरुषा: !	पुरुषात्	पुरुषाभ्याम्	पुरुषेभ्य:
पुरुषम्	पुरुषौ	पुरुषान्	पुरुषस्य	पुरुषयो:	पुरुषाणाम्
पुरुषेण	पुरुषाभ्याम्	पुरुषै:	पुरुषे	पुरुषयो:	पुरुषेषु

इसी प्रकार से धर्म, वीर, वेद, वृक्ष, सूर्य, सागर, स्तंभ, वाण, मृग, राघव, मास, पक्ष, शिव, शैल, गुह्यक, त्रास, गण्डक, कट, पाट, नाग, शंकर, घट और पट आदि शब्दों के रूप चलते हैं।

पूर्व और पर के मिलने से अर्थ की उपलब्धि होने पर उसे 'पद' संज्ञा होती है ॥१५१॥

पूर्व और पर का क्या अर्थ है ? प्रकृति और विभक्ति को पूर्व और पर कहते हैं। प्रकृति किसे कहते हैं ? वृक्षादि शब्द और भू आदि धातु प्रकृति कहलाते हैं। विभक्ति किसे कहते हैं ? सि आदि विभक्तियाँ और ति, तस् आदि प्रत्यय विभक्ति कहलाते हैं।

इन प्रकृति और विभक्ति के मिलने पर जो रूप बनता है उससे अर्थ का बोध होता है। अत: इस समुदाय का नाम 'पद' है जैसे यहाँ 'पुरुष' यह पद है। इस प्रकार से सर्वत्र विभक्ति हैं अन्त में जिनके ऐसे शब्दों को पद संज्ञा होती है। अर्थात् पुरुष शब्द को लिंग संज्ञा थी जब उसमें विभक्तियाँ लग गईं तब उन्हें पद संज्ञा हो गई।

सर्वशब्द सर्वनाम संज्ञक है अत: उसमें कुछ विशेषता है।

सर्व + सि = सर्व:, सर्व + औ = सर्वौ।

सर्व + जस् है—'जसि सर्वनाम्न:' यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

यहाँ सूत्र लगा ज: सर्व इ: अकारांत सर्वनाम से परे जस् को 'इ' हो जाता है ॥१५२॥

सर्व + इ—संधि होकर = सर्वे बना।

सम्बोधन में—हे सर्व, हे सर्वौ, हे सर्वे। द्वितीया, तृतीया में भी अन्तर नहीं है।

सर्व + ङे है।

---

१. जस्—शब्दस्य प्रथमैकवचनम्।

स्मै सर्वनाम्नः ॥१५३॥

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङे स्मै भवति। सर्वस्मै। सर्वाभ्यां। सर्वेभ्यः॥ ङसौ।

ङसिः स्मात् ॥१५४॥

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङसि स्माद् भवति। सर्वस्मात्। सर्वाभ्याम्। सर्वेभ्यः। सर्वस्य। सर्वयोः।

सुरामि सर्वतः ॥१५५॥

सर्वनाम्नः परः सुरागमो भवत्यामि परे। धुटि एत्वम्। नामिकरपरेत्यादिना षत्वम्। सर्वेषाम्। ङौ।

ङिः स्मिन् ॥१५६॥

अकारान्तात्सर्वनाम्नः परो ङिः स्मिन् भवति। सर्वस्मिन्। सर्वयोः। सर्वेषु।। नीतकः—सर्वः, सर्वौ, सर्वे। हे सर्व, हे सर्वौ, हे सर्वे। सर्वम्, सर्वौ, सर्वान्। सर्वेण, सर्वाभ्याम्, सर्वैः। सर्वस्मै, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। सर्वस्मात्, सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः। सर्वस्य, सर्वयोः, सर्वेषाम्। सर्वस्मिन्, सर्वयोः, सर्वेषु। किं तत्सर्वनाम्। सर्व विश्व उभ उभय अन्य अन्यतर इतर इतम कतर कतम यतर यतम ततर ततम एकतर एकतम (एते डतरडतमप्रत्ययान्ताः। वृत्[१]।) त्व नेम सम सिम पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर स्व अन्तर ([१]वृत्।) त्यद् तद् यद् अदस् इदम् एतद् किम् एक द्वि (वृत्[१]) युष्मद् अस्मद् भवत् इति सर्वादि। अल्पशब्दस्य तु भेदः। अल्पः। अल्पौ। जसि।

अकारांत सर्वनाम से परे ङे को 'स्मै' हो जाता है ॥१५३॥

सब सर्वस्मै बना। सर्वाभ्याम्, सर्वेभ्यः।

सर्व + ङसि—

ङसि को स्मात् होता है ॥१५४॥

अकारांत सर्वनाम से परे ङसि को स्मात् हो जाता है। तो सर्वस्मात् ...... सर्वयोः।

सर्व + आम्

सर्वनाम से परे आम् विभक्ति के आने पर 'सु' का आगम होता है ॥१५५॥

'धुटि बहुत्वे त्वे' से ए होकर सर्वे + साम् बना "नामिकरपरः" इत्यादि से स् को ष् होकर सर्वेषाम् बन गया।

सर्व + ङि

ङि को स्मिन् होता है ॥१५६॥

अकारांत सर्वनाम से परे ङि को स्मिन् आदेश हो जाता है। तो सर्वस्मिन् बना।

अब इसका पूरा रूप देखिये—

सर्वः	सर्वौ	सर्वे	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
हे सर्व !	हे सर्वौ !	हे सर्वे !	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वम्	सर्वौ	सर्वान्	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

ये सर्वनाम कौन-कौन हैं ?

सर्व, विश्व, उभ, उभय, अन्य, अन्यतर, इतर, इतम्, कतर, कतम, यतर, यतम, ततर, ततम एकतर, एकतम। इनमें अन्यतर से लेकर एकतम तक शब्द उतर, उतम प्रत्यय से बने हैं। त्व, नेम, अम्, सिम,

अल्पादेर्वा ॥१५७॥

अल्पादेर्गणात्परो जस् सर्व इर्भवति वा। अल्पे, अल्पाः। अन्यत्र पुरुषशब्दवत्। कोऽल्पादिर्गणः। अल्प प्रथम चरम त्रितय द्वितय द्वय त्रय (ऐते तयअयप्रत्ययान्ताः) कतिपय नेम अर्द्ध पूर्व पर अवर दक्षिण उत्तर अपर अधर एव अन्तर (वृत्[1]) इति अल्पादिः। पूर्वशब्दस्य तु भेदः। पूर्वः। पूर्वौ। पूर्वे। पूर्वाः। हे पूर्व। हे पूर्वौ। हे पूर्वे, हे पूर्वाः। पूर्वम्। पूर्वौ। पूर्वान्। पूर्वेण। पूर्वाभ्याम्। पूर्वैः। पूर्वस्मै। पूर्वाभ्याम्। पूर्वेभ्यः। ङसिङ्योः

विभाष्येते पूर्वादेः ॥१५८॥

पूर्वादेर्गणात्परयोर्ङसिङ्योः [2]स्मात्स्मिनौ विभाष्येते। पूर्वस्मात्, पूर्वात्, पूर्वाभ्याम्। पूर्वेभ्यः। पूर्वस्य। पूर्वयोः। पूर्वेषाम्। ङौ तथैव विकल्पः। पूर्वस्मिन्, पूर्वे। पूर्वयोः। पूर्वेषु। कः पूर्वादिः। प्रागेवोक्तः। इत्यकारान्ताः। आकारान्तः पुल्लिङ्गः क्षीरपाशब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ। क्षीरपाः। क्षीरपौ क्षीरपाः। सम्बुद्धावविशेषः। क्षीरपाम्। क्षीरपौ। शसादौ तु विशेषः।

पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व, अंतर, त्यद, तद, अदस्, इदम्, एतद, किम् एक द्वि युष्मद् अस्मद् भवत्। ये सब सर्वनाम कहलाते हैं।

अल्प शब्द में कुछ भेद हैं— अल्पः, अल्पौ—अल्प + जस् है।

अल्प आदि गण से परे जस् को 'इ' विकल्प से होता है ॥१५७॥

अल्पे बना और एक बार 'जसि' सूत्र से अकार को दीर्घ होकर और संधि की एवं स् को विसर्ग होकर अल्पाः बना। बाकी सभी रूप पुरुष के समान हैं।

अल्पादि गण में कौन-कौन-से आते हैं ?

अल्प, प्रथम, चरम, त्रितय, द्वितय, द्वय, त्रय ये चार रूप तय और अय प्रत्यय से बनते हैं। कतिपय, नेम, अर्द्ध, पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अंतर ये अल्पादि गण हैं।

पूर्व शब्द में भी भेद हैं।

इसमें भी जस् में दो रूप बनते हैं। ये पूर्वादि शब्द सर्वनाम में हैं। जिनमें अंतर है उनके रूप—

पूर्व + ङसि, पूर्व + ङि

पूर्व आदि गण से परे ङसि और ङि को विकल्प से स्मात् और स्मिन् आदेश होता है ॥१५८॥ पूर्वस्मात्, पूर्वात्, पूर्वस्मिन् पूर्वे।

पूर्वः	पूर्वौ	पूर्वे, पूर्वाः	पूर्वस्मै	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
हे पूर्व !	हे पूर्वौ !	हे पूर्वे, पूर्वाः !	पूर्वस्मात्, पूर्वात्	पूर्वाभ्याम्	पूर्वेभ्यः
पूर्वम्	पूर्वौ	पूर्वान्	पूर्वस्य	पूर्वयोः	पूर्वेषाम्
पूर्वेण	पूर्वाभ्याम्	पूर्वैः	पूर्वस्मिन्, पूर्वे	पूर्वयोः	पूर्वेषु

पूर्वादिगण क्या है ? पहले ही बता दिया है अर्थात् पूर्व, पर, अवर, दक्षिण, उत्तर, अपर, अधर, स्व और अंतर।

इस प्रकार से अकारांत शब्दों का प्रकरण हुआ। अब आकारांत पुल्लिग शब्दों में क्षीरपा शब्द आता है। और क्षीरपा से परे सि आदि विभक्तियाँ आती हैं।

क्षीरपा + सि = क्षीरपाः, क्षीरपा + औ = क्षीरपौ, क्षीरपा + जस् = क्षीरपाः। संबोधन में भी ये ही रूप बनेंगे। शस् आदि विभक्ति के आने पर कुछ विशेषता है। क्षीरपा + शस्।

---

१. समाप्तिद्योतको वृच्छब्द इति॥ २. 'ङसि स्मात्' 'ङिः स्मिन्' इति सूत्रद्वयमनुवर्त्तते।

पञ्चादौ घुट ॥१५९ ॥

स्यादीनामादौ पञ्चवचनानि घुट्संज्ञानि भवन्ति।

आधातोरघुट्स्वरे ॥१६० ॥

धातोराकारस्य लोपो भवति अघुट्स्वरे परे। धातोरिति किम्। शन्तृङन्तक्विबन्तौ धातुत्वं न त्यजत इति। एतदुपलक्षणम्। उपलक्षणं किं। स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकमुपलक्षणं। तेन विजन्तमपि धातुत्वं न जहाति। क्षीरपः। क्षीरपा। क्षीरपाभ्याम्। क्षीरपाभिः। क्षीरपे। क्षीरपाभ्याम्। क्षीरपाभ्यः। क्षीरपः। क्षीरपाभ्याम्। क्षीरपाभ्यः। क्षीरपः। क्षीरपोः। क्षीरपाम्। क्षीरपि। क्षीरपोः। क्षीरपासु। एवं सोमपा सीधुपा कीलालपा सौवीरपा मण्डपा अग्रेगा विवस्वा अब्जजा उदधिका [1]हाहा पुरोगादयः। इत्याकारान्ताः। इकारान्तः पुलिङ्गे मुनिशब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ। मुनिः। द्वित्वे।

इदुदग्निः ॥१६१ ॥

सि आदि विभक्तियों में आदि की पाँच विभक्तियाँ 'घुट' संज्ञक हैं ॥१५९ ॥

इस सूत्र से सि औ जस् अम् औ को घुट संज्ञा हो गई। बाकी सब अघुट् हैं। इन अघुट् में शस्, टा, ङे, ङसि, ङस्, ओस्, आम्, ङि, ओस् ये नव विभक्तियाँ स्वर वाली हैं।

एवं भ्याम् भिस् भ्याम् भ्यस् भ्याम् भ्यस् और सुप् ये ७ विभक्तियाँ व्यंजन वाली हैं।

अघुट् स्वर वाली विभक्तियों के आने पर धातु के आकार का लोप हो जाता है ॥१६० ॥

यहाँ धातु के आकार ऐसा क्यों कहा ? यहाँ क्षीरं पिबतीति क्षीरपा इस प्रकार से क्षीर शब्द से पा धातु आकर कृदंत में क्विप् प्रत्यय हुआ है और क्विप् का सर्वापहारी लोप हो गया है, फिर भी शतृङ् प्रत्यय जिसके अंत में है एवं क्विप् जिनमें अंत में है ऐसे शब्द लिंग संज्ञक हो गये हैं फिर भी अपने धातुपने को नहीं छोड़ते हैं। यह कथन यहाँ उपलक्षण मात्र है। उपलक्षण किसे कहते हैं ? अपने और अपने सदृश को ग्रहण करने वाले को उपलक्षण कहते हैं। उससे 'विच्' प्रत्यय भी जिनके अंत में है ऐसे शब्द भी धातुपने को नहीं छोड़ते हैं ऐसा समझना चाहिए। अब यहाँ क्षीरपा + अस् में क्षीरपा के आ का लोप होकर क्षीरप् + अस् = क्षीरपः बन गया।

क्षीरपा + टा, क्षीरप् + आ = क्षीरपा, क्षीरपाभ्याम्, क्षीरपा + ङे, क्षीरप् + = क्षीरपे।

क्षीरपा + ङसि = क्षीरपः, क्षीरपा + ङस् = क्षीरपः, क्षीरपा + ओस् = क्षीरपोः, क्षीरपा + आम् = क्षीरपाम्, क्षीरपा + ङि = क्षीरपि इत्यादि व्यंजन वाली विभक्तियों के आने पर कुछ भी अंतर नहीं होता है।

क्षीरपाः	क्षीरपौ	क्षीरपाः	क्षीरपे	क्षीरपाभ्याम्	क्षीरपाभ्यः
हे क्षीरपाः !	हे क्षीरपौ !	हे क्षीरपाः !	क्षीरपः	क्षीरपाभ्याम्	क्षीरपाभ्यः
क्षीरपाम्	क्षीरपौ	क्षीरपः	क्षीरपः	क्षीरपोः	क्षीरपाम्
क्षीरपा	क्षीरपाभ्याम्	क्षीरपाभिः	क्षीरपि	क्षीरपोः	क्षीरपासु

इसी प्रकार से आकारांत सोमपा, सीधुपा, कोलालपा, सौवीरपा, मंडपा, अग्रेगा, विषस्वा अब्जजा उदधिका, हाहा, पुरोगा आदि शब्द क्षीरपावत् ही चलते हैं।

इस प्रकार से आकारांत शब्दों के रूप हुए। अब इकारांत मुनि शब्द से सि आदि विभक्तियाँ आती हैं।

मुनि + सि = मुनिः। द्विवचन में—मुनि + औ

इकारांत और उकारांत लिंग को अग्नि संज्ञा हो जाती है ॥१६१ ॥

---

१. जहतीति हाहा इति व्युत्पत्तिपक्षे, न तु गन्धर्ववाचीति पक्षे।

इकारान्तमुकारान्तञ्च लिङ्गं अग्निसंज्ञं भवति। तपरकरणमसन्देहार्थं।

औकारः पूर्वं ॥१६२॥

अग्निसंज्ञकात्पर औकारः पूर्वस्वररूपमापद्यते। सन्धिः। मुनी। जसि।

इरेदुरोज्जसि ॥१६३॥

अग्निसंज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति जसि परे। मुनयः।

सम्बुद्धौ च ॥१६४॥

अग्निसंज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति सम्बुद्धौ परतः। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति न्यायात्। हे मुने। हे मुनी। हे मुनयः।

अग्नेरमोकारः ॥१६५॥

अग्निसंज्ञकात्परस्य अमोऽकारो लोपमापद्यते। मुनिम्। मुनी। शसादौ।

शसोऽकारः सश्च नोऽस्त्रियाम् ॥१६६॥

अग्निसंज्ञकात्परस्य शसोऽकारः पूर्वस्वररूपमापद्यते सर्वत्र सस्य च नो भवत्यस्त्रियाम्। मुनीन्।

सूत्र में इत् उत् में त् का प्रयोग क्यों किया है ? इस तकार का प्रयोग संदेह को दूर करने के लिए किया गया है। इ और उ से इवर्ण उवर्ण भी लिये जाते हैं और तकार से केवल ह्रस्व इकार और उकार ही लिए जाते हैं। अतः ह्रस्व इकारांत उकारांत ही अग्नि संज्ञक है।

अग्नि संज्ञक से परे औ विभक्ति पूर्व स्वर रूप हो जाती है ॥१६२॥

मुनि + इ संधि होकर मुनी बन गया। मुनि + जस्।

जस् के आने पर अग्नि संज्ञक इ को ए और उ को 'ओ' हो जाता है ॥१६३॥

मुन् ए + अस्। 'ए अय्' से संधि होकर मुनयः बन गया।

संबोधन में मुनि + सि—'ह्रस्व नदी' इत्यादि सूत्र से सि का लोप हो गया।

संबुद्धि संज्ञक सि से परे इ को ए और उ को ओ हो जाता हैं ॥१६४॥

हे मुने ! बना।

मुनि + अम्

अग्नि संज्ञक से परे अम् के अकार का लोप हो जाता है ॥१६५॥

मुनिम्, मुनी।

मुनि + शस्

शस् के अकार को पूर्व स्वर रूप और अस्त्रीलिंग में स् को न् हो जाता है ॥१६६॥

अग्नि संज्ञक से परे शस् का 'अ' पूर्व स्वर रूप हो जाता है और स्त्रीलिंग को छोड़कर पुल्लिग और नपुंसकलिंग में श् को न् हो जाता है। तो

मुनि + इन् = मुनीन् बन गया।

मुनि + टा

अस्त्रियां टा ना ॥१६७॥

अग्निसंज्ञकात्परस्य टा ना भवत्यस्त्रियाम्। मुनिना। मुनिभ्यां। मुनिभिः। ङयि।

ङे ॥१६८॥

अग्निसंज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति ङयि परे। मुनये। मुनिभ्यां। मुनिभ्यः।

ङसिङसोरलोपश्च ॥१६९॥

अग्निसंज्ञकस्य इः एद्भवति उः ओद्भवति ङसिङसोः परतः तयोरकारश्च लोप्यो भवति। मुनेः। मुनिभ्याम्। मुनिभ्यः। मुनेः। मुन्योः। आमि नुरागमः।

दीर्घमामि सनौ ॥१७०॥

नाम्यन्तं लिङ्गं दीर्घमापद्यते सनावामि परे। मुनीनाम्।

ङिरौ सपूर्वः ॥१७१॥

अग्निसंज्ञकात्परो ङिः पूर्वस्वरेण सह और्भवति। मुनौ। मुन्योः। मुनिषु। एवमग्नि गिरि रवि ऋषि यति कवि विधि राशि शीतरश्मि शालि दानवारि दैत्यारि सौरि सूरि विघ्नारि हेमाद्रि अद्रि हरि सारि वह्नि शकुनि पाकशासनि धूमयोनि पद्मयोनि अपांपति अतिथि ग्रन्थि पदाति मैत्रि बलि ध्वनि पाणि कपि अलि मणि जलधि अब्धि पयोधि निधि उपाधि नीरधि व्याधि शेवध्यादयः॥ द्विशब्दस्य तु भेदः। तस्य द्व्यर्थवाचित्वात् द्विवचनमेव भवति। द्वि औ अति स्थिते।

अग्नि संज्ञक से परे स्त्रीलिंग के सिवाय बाकी में टा विभक्ति को 'ना' आदेश हो जाता है ॥१६७॥

तो मुनिना बना। मुनि + भ्याम् = मुनिभ्याम्। मुनि + भिस् = मुनिभिः।

मुनि + ङे

अग्नि संज्ञक से परे ङे विभक्ति के आने पर इ को ए और उ को ओ हो जाता है ॥१६८॥

मुन् ए + ए 'ए अय्' सूत्र से संधि होकर मुनय् + ए = मुनये बना।

मुनि + ङसि, मुनि + ङस्

ङसि ङस् विभक्ति के आने पर अग्नि संज्ञक इ को ए और उ को ओ हो जाता है और ङसि ङस् के अकार का लोप हो जाता है ॥१६९॥

तब मुने + स्। स् को विसर्ग होकर मुनेः बन गया। मुनि + ओस् 'इवर्णो यम् सवर्णे' इस—४४वें सूत्र से संधि होकर मुन्योस्, स् का विसर्ग होकर मुन्योः बना।

मुनि + आम् "आमि च नुः" सूत्र से नु का आगम होकर मुनि + नाम् बना पुनः स् न् सहित आम् विभक्ति के आने पर नाम्यंत लिंग दीर्घ हो जाता है ॥१७०॥

तो मुनीनाम् बना।

मुनि + ङि

अग्नि संज्ञक से परे 'ङि' विभक्ति पूर्व स्वर के साथ ही 'औ' हो जाती है ॥१७१॥

मुन् इ + ङि मुन् औ = मुनौ बन गया। पुनः मुन्योः और नामिकरपरः इत्यादि सूत्र से नामि से परे स् को 'ष्' करके मुनिषु बन गया।

त्यदादीनामविभक्तौ ॥१७२ ॥

त्यदादीनामन्तः अकारो भवति विभक्तौ परतः । सन्धिः । द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः ॥ त्रिशब्दस्य तु भेदः । तस्य बह्वर्थवाचित्वात् बहुवचनमेव भवति । त्रयः । हे त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः । त्रिभ्यः । आमि ।

त्रेस्त्रयश्च ॥१७३ ॥

त्रिशब्दस्य त्रयादेशो भवति नुरागमश्चामि परे । त्रयाणाम् । त्रिषु । कतिशब्दस्य तु भेदः । तस्यापि बहुवचनमेव भवति ।

कतेश्च जस्शसोर्लुक् ॥१७४ ॥

मुनिः	मुनी	मुनयः	मुनये	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
हे मुने !	हे मुनी !	हे मुनयः !	मुनेः	मुनिभ्याम्	मुनिभ्यः
मुनिम्	मुनी	मुनीन्	मुनेः	मुन्योः	मुनीनाम्
मुनिना	मुनिभ्याम्	मुनिभिः	मुनौ	मुन्योः	मुनिषु

इसी प्रकार से अग्नि, गिरि, रवि आदि उपर्युक्त शेवधिपर्यन्त इकारांत शब्द मुनिवत् ही चलते हैं।

द्विशब्द में कुछ भेद हैं और वह द्विवचन में ही चलता है। अतः—

द्वि + औ है।

त्यद् आदि शब्दों के अन्त व्यंजन या स्वर को अकार हो जाता है, विभक्ति के आने पर ॥१७२ ॥

तब द्वि को द्व होकर द्व + औ संधि होकर = द्वौ बन गया। द्वि + भ्याम् है। सर्वत्र द्वि को द्व किया जाता है। पुनः "अकारो दीर्घं घोषवति" सूत्र से दीर्घ होकर द्वाभ्याम् ३ बन गया। द्वि + ओस् में भी द्व + ओस् 'ओसि च' सूत्र से ए होकर संधि होकर द्वयोः २ बन गया।

तो—

द्वौ । द्वौ । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः ।

त्रिशब्द में भी कुछ भेद हैं तीन संख्या बहु अर्थवाची ही है अतः विभक्ति भी बहुवचन की ही आती है तो त्रि + जस् हैं—सूत्र से अग्नि संज्ञा होकर 'इरेदुरोज्जसि'—सूत्र से ए होकर संधि होकर त्रयः बना। त्रि + शस् है मुनिवत् सब सूत्र लगकर त्रीन् बना।

त्रिभिः इत्यादि।

त्रि + आम्। आमि च नुः से नु का आगम होकर—

नु और आम् विभक्ति से परे 'त्रि' को त्रय आदेश हो जाता है ॥१७३ ॥

त्रय + नाम् दीर्घमामिसनौ से दीर्घ होकर न् को ण् होकर त्रयाणाम् बन जाता है। त्रि + सु स् को ष् होकर त्रिषु बन गया।

त्रयः । त्रीन् । त्रिभिः । त्रिभ्यः । त्रिभ्यः । त्रयाणाम् । त्रिषु ।

कति शब्द में भेद है यह कति शब्द भी बहुवचन में ही चलता है।

कति अर्थात् कितने।

कति + जस्

संख्यावाची शब्द से परे षकारांत नकारांत से परे और कति शब्द से परे जस् शस् विभक्ति को लुक् हो जाता है ॥१७४ ॥

संख्यायाः ष्णान्तायाः कतेश्च परयोर्जस्शसोर्लुग्भवति। (सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवान्) प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणमिति प्राप्ते सति।

लुग्लोपे न प्रत्ययकृतम् ॥१७५॥

लुगिति लोपे सति प्रत्ययलोपे परे यत्कृतं कार्य्यं प्रकृतेस्तत्र भवति। इरेदुरोज्जसीत्येत्वं न भवति। कति। कति। कतिभिः। कतिभ्यः। कतिभ्यः। कतीनाम्। कतिषु। सखिशब्दस्य तु भेदः। सावनन्तः इति वर्त्तते।

सख्युश्च ॥१७६॥

सख्युरन्तोऽन् भवति असम्बुद्धौ सौ परे।

घुटि चासम्बुद्धौ ॥१७७॥

नान्तस्य चोपधाया दीर्घो भवति असम्बुद्धौ घुटि परे।

व्यञ्जनाच्च ॥१७८॥

व्यञ्जनाच्च परः सिर्लोपमापद्यते।

लिङ्गान्तनकारस्य ॥१७९॥

लिङ्गान्तनकारस्य लोपो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। सखा।

[सभी विधि में लोप विधि बलवान् है]

यहाँ "प्रत्यय लोपे प्रत्यय लक्षणं" इस सूत्र से कुछ कार्य जिसमें गुण शस् में दीर्घ प्राप्त था उसे बाधित करने के लिए सूत्र लगता है।

लुक् इस शब्द से प्रत्यय के लोप करने पर प्रत्यय के निमित्त से प्रकृति का जो कार्य होता था वह नहीं होगा ॥१७५॥

जैसे 'इसेदुरोज्जसि' सूत्र से यहाँ इ को ए प्राप्त था वह नहीं होगा क्योंकि लुक् शब्द से जस् शस् का लोप किया गया है। अतः जस् शस् का लोप होकर कति + जस् = कति ही रहा।

कति। कति। कतिभिः। कतिभ्यः। कतिभ्यः। कतीनाम्। कतिषु।

सखि शब्द में कुछ भेद हैं।

'सावनंत' यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

सखि + सि है।

संबोधन से रहित 'सि' विभक्ति के आने पर सखि शब्द के अंत 'इ' को अन् आदेश हो जाता है ॥१७६॥

तब सखन् + सि हो गया।

असंबुद्धि घुट सि विभक्ति के आने पर नकार की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥१७७॥

तब सखान् + सि

व्यंजन से परे सि विभक्ति का लोप हो जाता है ॥१७८॥

विराम और व्यंजन के आने पर लिंगांत नकार का लोप हो जाता है ॥१७९॥

अतः सखा बना।

सखि + औ है।

घुटि त्वैः ॥१८० ॥

सख्युरन्तः ऐर्भवति असंबुद्धौ घुटि परे । सखायौ । सखायः । संबुद्धौ मुनिशब्दवत् । हे सखे । हे सखायौ । हे सखायः । सखायम् ॥ सखायौ । शसि मुनिशब्दवत् । सखीन् । टादौ ।

न सखिष्टादावग्निः ॥१८१ ॥

सखिशब्दष्टादौ स्वरे परे नाग्निर्भवति । सख्या । सखिभ्याम् । सखिभिः । सख्ये । सखिभ्याम् । सखिभ्यः ॥

ङसिङसोरुमः ॥१८२ ॥

सखिपतिभ्यां परयोर्ङसिङसोरकारः उमापद्यते । सख्युः । सखिभ्याम् । सखिभ्यः । सख्युः । सख्योः । सखीनाम् ॥

सखिपत्योर्ङिः ॥१८३ ॥

सखिपतिभ्यां परो ङिरेव और्भवति । पुनर्ङिग्रहणं किमर्थं । सपूर्वस्वरनिवृत्त्यर्थं ॥ सख्यौ । सख्योः । सखिषु । एवं सुसखि अतिसखि असखि प्रभृतयः । पतिशब्दस्य तु भेदः । पतिः । पती । पतयः । हे पते । हे पती । हे पतयः । पतिम् । पती । पतीन् । टादौ ।

घुट् विभक्ति के आने पर सखि शब्द के इ को 'ऐ' हो जाता है ॥१८० ॥

सखि के अंत इ को ऐ हो जाता है असंबुद्धि स्वर वाली घुट् विभक्ति के आने पर । तब सखै + औ 'ऐ आय्' से संधि होकर सखायौ, सखायः बना । संबोधन में मुनि शब्द के समान इ को ए होकर हे सखे बना ।

सखि + शस् मुनिवत् अ को पूर्व स्वर और स् को न् होकर । संधि होकर सखीन् बन गया ।

सखि + टा

टा आदि स्वर वाली विभक्तियों के आने पर सखि शब्द को अग्नि संज्ञा नहीं होती है ॥१८१ ॥

तब "इवर्णो यम सवर्णे" इत्यादि सूत्र से संधि होकर 'सख्या' बना । सखि + ङे = सख्ये बना ।

सखि + ङसि सखि + ङस्

सखि और पति से परे ङसि और ङस् के अकार को उकार हो जाता है ॥१८२ ॥

तब सखि + उस् संधि होकर सख्युः बना । सखि + ङि ।

सखि और पति से परे ङि को 'औ' हो जाता है ॥१८३ ॥

सूत्र में पुनः ङि शब्द क्यों ग्रहण किया ?

सूत्र में पूर्व स्वर सहित ङि को औ होता था । यहाँ मात्र ङि को ही औ होता है इस बात को स्पष्ट करने के लिए ही यहाँ पुनः 'ङि' शब्द को ग्रहण किया है ।

सखि + औ = सख्यौ बना ।

सखा	सखायौ	सखायः	सख्ये	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
हे सखे !	हे सखायौ !	हे सखायः !	सख्युः	सखिभ्याम्	सखिभ्यः
सखायम्	सखायौ	सखीन्	सख्युः	सख्योः	सखीनाम्
सख्या	सखिभ्याम्	सखिभिः	सख्यौ	सख्योः	सखिषु

पति शब्द में टा आदि विभक्ति के आने पर कुछ भेद है ।

पति + टा

पतिरसमासे ॥१८४॥

पतिशब्दोऽसमासे टादौ स्वरे परे नाग्निर्भवति। पत्या। पतिभ्याम्। पतिभिः। पत्ये। पतिभ्याम्। पतिभ्यः। पत्युः। पतिभ्याम्। पतिभ्यः। पत्युः। पत्योः। पतीनाम्। पत्यौ। पत्योः। पतिषु। भूपत्यादिशब्दानां समासत्वान्मुनिशब्दवत्। पन्थिशब्दस्य तु भेदः। पन्थि स् इति स्थिते। अम्शसोरा इति वर्त्तते।

पन्थिमन्थिऋभुक्षीणां सौ ॥१८५॥

पन्थ्यादीनामन्त आकारो भवति सौ परे। पन्थाः।

अनन्तो घुटि ॥१८६॥

पन्थ्यादीनामन्तोऽन् भवति घुटि परे। पन्थानौ। पन्थानः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। हे पन्थाः। हे पन्थानौ। हे पन्थानः। अग्नेरमोकार इति प्राप्ते। अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गो विधिर्बलवान्। अल्पाश्रितमन्तरङ्गम्। बह्वाश्रितं बहिरङ्गम्। पन्थानम्। पन्थानौ।

समान से रहित पति शब्द को टा आदि स्वर वाली विभक्ति के आने पर अग्नि संज्ञा नहीं होती है ॥१८४॥

अर्थात् घुट् विभक्ति में पति को अग्नि संज्ञा होकर मुनिवत् रूप बने हैं पुनः—

संधि होकर पत्या, पति + ङे = पत्ये बना।

पति + ङसि।

पूर्वोक्त १८२ सूत्र से ङसि ङस् के अ को उ होकर पत्युः बन गया।

पतिः	पती	पतयः	पत्ये	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
हे पते !	हे पती !	हे पतयः !	पत्युः	पतिभ्याम्	पतिभ्यः
पतिम्	पती	पतीन्	पत्युः	पत्योः	पतीनाम्
पत्या	पतिभ्याम्	पतिभिः	पत्यौ	पत्योः	पतिषु

सूत्र में असमासे क्यों कहा ?

यहाँ पति शब्द अकेला है तो उपर्युक्त प्रकार से चलेगा और यदि भू, धन आदि शब्दों का पति के साथ समास हो जाए तो भूपति, धनपति आदि शब्द मुनि के समान चलते हैं।

पन्थि शब्द में कुछ भेद है।

पन्थि + सि

'अम् शसोरा' यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

पन्थि आदि शब्दों के अंत 'इ' को 'आ' हो जाता है सि विभक्ति के आने पर ॥१८५॥

पंथा + सि, स् का विसर्ग होकर पन्थाः बना।

पन्थि + औ।

पन्थि आदि शब्दों के अन्त को 'अन्' हो जाता है घुट् स्वर विभक्ति के आने पर ॥१८६॥

तब पन्थन् + औ बना 'घुटि चा संबुद्धौ' १७७वें सूत्र से न् की उपधा को दीर्घ होकर पन्थानौ बना। संबोधन में भी इसी प्रकार से है।

अघुट्स्वरे लोपम् ॥१८७॥

पन्थ्यादीनामन्तो लोपमापद्यते अघुट्स्वरे परे।

व्यञ्जने चैषां निः ॥१८८॥

पन्थ्यादीनां नकारो लोपमापद्यते व्यञ्जने चाघुट्स्वरे परे। पथः। पथा। पथिभ्याम्। पथिभिः। पथे। पथिभ्याम्। पथिभ्यः। पथः। पथिभ्याम्। पथिभ्यः। पथः। पथोः। पथाम्। पथि। पथोः। पथिषु। एवं मन्थि ऋभुक्षि शब्दौ। इति इकारान्ताः। ईकारान्तः पुल्लिङ्गो यवक्री शब्दः। ततः स्याद्युत्पत्तिः। सौ—यवक्रीः। स्वरादौ। आधातोरिति वर्तमाने।

ईदूतोरियुवौ स्वरे ॥१८९॥

पन्थान् + अम् "अग्नेरमोकारः" इस सूत्र से अम् के अकार का लोप प्राप्त था, किंतु (अंतरंग और बहिरंग में अंतरंग विधि बलवान् होती है) इस नियम से यहाँ अंतरंग विधि बलवान् हो गई। अतः 'अ' का लोप नहीं हुआ। यहाँ अल्प के आश्रित को अंतरंग और बहुत के आश्रित को बहिरंग कहते हैं। अतः पन्थानम् बन गया।

पन्थि + शस् है।

अघुट् स्वर विभक्ति के आने पर पन्थि आदि के अंत 'इ' का लोप हो जाता है ॥१८७॥

पन्थ् + अस् रहा।

व्यंजन और अघुट् स्वर वाली विभक्तियों के आने पर पन्थ् आदि के नकार का लोप हो जाता है ॥१८८॥

पथ् + अस् विसर्ग होकर पथः बना।

पन्थि + भ्याम् १८८वें सूत्र से न का लोप होकर पथिभ्याम् बना।

पन्थि + टा १८७वें सूत्र से 'इ' का लोप एवं १८८वें सूत्र से 'न' का लोप होकर पथा बना।

पन्थाः	पन्थानौ	पन्थानः	पथे	पथिभ्याम्	पथिभिः
हे पन्थाः !	हे पन्थानौ !	हे पन्थानः !	पथः	पथिभ्याम्	पथिभ्यः
पन्थानम्	पन्थानौ	पथः	पथः	पथोः	पथाम्
पथा	पथिभ्याम्	पथिभिः	पथि	पथोः	पथिषु

इसी प्रकार से मन्थि और ऋभुक्षि के रूप चलते हैं जैसे—

मन्थाः	मन्थानौ	मन्थानः
ऋभुक्षाः	ऋभुक्षाणौ	ऋभुक्षाणः

इस प्रकार से इकारांत शब्द पूर्ण हुए। अब दीर्घ ईकारांत शब्द चलेंगे।

यवक्री + सि = यवक्रीः।

यवक्री + औ है।

'आधातोः' यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

स्वर वाली विभक्ति के आने पर धातु से ईत्, ऊत् को इय् उव् आदेश हो जाता है ॥१८९॥

धातोरीदूतोरियुवौ भवतो विभक्तिस्वरे परे। पुनः स्वरग्रहणं किमर्थम्। अघुट्स्वरनिवृत्त्यर्थम्। यवक्रियौ। यवक्रियः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। यवक्रियम्। यवक्रियौ। यवक्रियः। यवक्रिया। यवक्रीभ्याम्। यवक्रीभिः। इत्यादि। एवं सुश्रीनीप्रभृतयः। सेनानीशब्दस्य तु भेदः। सौ—सेनानीः। स्वरादावीदूतोरिति प्राप्ते।

अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ ॥१९०॥

अनेकाक्षरयोर्लिङ्गयोत्संयोगात्परयोरीदूतार्य्वौ भवतो विभक्तिस्वरे परे। सेनान्यौ। सेनान्यः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। सेनान्यम्। सेनान्यौ। सेनान्यः। सेनान्या। सेनानीभ्याम्। सेनानीभिः। सेनान्ये। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनानीभ्याम्। सेनानीभ्यः। सेनान्यः। सेनान्योः। सेनान्याम्॥ अनेकाक्षरयोरिति किं। नियौ। नियः। लुवौ। लुवः। असंयोगादिति किं॥ यवक्रियौ। कटप्रुवौ। ङौ।

नियो ङिराम् ॥१९१॥

नियः परो ङिराम् भवति। सेनान्याम्। सेनान्योः। सेनानीषु। एवमग्रणीग्रामणीप्रभृतयः। सुधीशब्दस्य तु भेदः। सौ—सुधीः। स्वरादावनेकाक्षरयोरिति यत्वे प्राप्ते। ईदूतोरियुवौ स्वरे इति वर्त्तते।

यहाँ सूत्र में स्वर शब्द को पुनः क्यों ग्रहण किया है ? अघुट् स्वर की निवृत्ति के लिए पुनः स्वर का ग्रहण किया है क्योंकि घुट् अघुट् दोनों ही विभक्तियों के स्वरों में यह सूत्र लागू होता है।

यवक्री + औ—यवक्र् इय् + औ = यवक्रियौ। यवक्रियः बना। संबोधन में भी इसी प्रकार से है।

यवक्रीः	यवक्रियौ	यवक्रियः	यवक्रिये	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
हे यवक्रीः !	हे यवक्रियौ !	हे यवक्रियः !	यवक्रियः	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभ्यः
यवक्रियम्	यवक्रियौ	यवक्रियः	यवक्रियः	यवक्रियोः	यवक्रियाम्
यवक्रिया	यवक्रीभ्याम्	यवक्रीभिः	यवक्रियि	यवक्रियोः	यवक्रीषु

इसी प्रकार से सुश्री और नी शब्द के रूप चलेंगे।

सेनानी शब्द में कुछ भेद है—

सेनानी + सि = सेनानीः

सेनानी + औ

यहाँ पूर्व सूत्र से ई, ऊ को इय् उव् प्राप्त था किंतु उसे बाधित कर आगे का सूत्र लगता है—

यदि अनेक अक्षर वाले ईकारांत, ऊकारांत शब्द हैं और संयुक्ताक्षर वाले नहीं हैं तब ई, ऊ को य् व् आदेश होता है स्वर वाली विभक्ति के आने पर ॥१९०॥

सेनान् ई + औ—

सेनान्य् + औ सेनान्यौ बना।

संबोधन में भी इसी प्रकार है।

अनेक अक्षर वाले हों ऐसा क्यों कहा ? तो नी + औ में नियौ, लू + औ = लुवौ बनेगा। संयुक्ताक्षर न हो ऐसा क्यों कहा ? यवक्री में संयुक्त अक्षर है अतः यवक्रियौ बनेगा। कटप्रू + औ = कटप्रुवौ बनेगा।

सेनानी + ङि

नी से परे ङि को आम् आदेश हो जाता है ॥१९१॥

सेनानी + आम् = सेनान्याम् बना।

सुधीः ॥१९२ ॥

सुधीशब्द इयं प्राप्नोति विभक्तिस्वरे परे। सुधियौ। सुधियः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। सुधियम्। सुधियौ। सुधियः। सुधिया। सुधीभ्याम्। सुधीभिः। सुधिये। सुधीभ्याम्। सुधीभ्यः। सुधियः। सुधीभ्याम्। सुधीभ्यः। सुधियः। सुधियोः। सुधियाम्। सुधियि। सुधियोः। सुधीषु॥ इति ईकारान्ताः। उकारान्तः पुल्लिङ्गो भानुशब्दः॥ स च मुनिशब्दवत्। अयं भेदः—उत ओत्वमवादेशश्च। भानुः। भानू। भानवः। हे भानो। हे भानू। हे भानवः। भानुम्। भानू। भानून्। भानुना। भानुभ्याम्। भानुभिः। भानवे। भानुभ्याम्। भानुभ्यः। भानोः। भान्वोः। भानूनाम्। भानौ भान्वोः। भानुषु। एवमृतु मेरु गुरु तरु धातु सेतु बाहु वायु बहुप्रभृतयः। इत्युकारान्ताः। ऊकारान्तः पुल्लिङ्गः कटप्रू शब्दः। स च यवक्रीशब्दवत्। उवादेशोऽत्र भेदः। कटप्रूः। कटप्रुवौ। कटप्रुवः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। कटप्रुवम्। कटप्रुवौ। कटप्रुवः। कटप्रुवा। कटप्रूभ्याम्। कटप्रूभिः। इत्यादि। खलपू शरलू काण्डलू प्रभृतीनां सेनानीशब्दवत्। वत्वं भेदः। प्रतिभूशब्दस्य तु भेदः। सौप्रतिभूः। स्वरादौ—

सेनानीः	सेनान्यौ	सेनान्यः	सेनान्ये	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः
हे सेनानीः !	हे सेनान्यौ !	हे सेनान्यः !	सेनान्यः	सेनानीभ्याम्	सेनानीभ्यः
सेनान्यम्	सेनान्यौ	सेनान्यः	सेनान्यः	सेनान्योः	सेनान्याम्
सेनान्या	सेनानीभ्याम्	सेनानीभिः	सेनान्याम्	सेनान्योः	सेनानीषु

इसी प्रकार से ग्रामणी और अग्रणी शब्द चलेंगे।

सुधी + सि = सुधीः।

सुधी + औ उपर्युक्त १९०वें सूत्र से अनेक अक्षर होने से स्वर वाली विभक्ति के आने पर ई को य् प्राप्त था कि उसे बाधित करके आगे का सूत्र लगता है—

सुधी शब्द के ई को इय् आदेश होता है ॥१९२ ॥

स्वर वाली विभक्ति के आने पर।

सुधियौ बना। संबोधन में तथैव है।

सुधीः	सुधियौ	सुधियः	सुधिये	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
हे सुधीः !	हे सुधियौ !	हे सुधियः !	सुधियः	सुधीभ्याम्	सुधीभ्यः
सुधियम्	सुधियौ	सुधियः	सुधियः	सुधियोः	सुधियाम्
सुधिया	सुधीभ्याम्	सुधीभिः	सुधियि	सुधियोः	सुधीषु

इस प्रकार से ईकारान्त शब्द पूर्ण हुए। अब उकारांत भानु शब्द आता है।

भानु + सि = भानुः बना।

मुनि के समान 'इदुदग्निः' इस १६१वें सूत्र से अग्नि संज्ञा हो गई, यह पूरा रूप मुनि के समान चलेगा अंतर इतना ही है कि उसमें 'इ' को 'ए' हुआ था और उसमें 'उ' को 'ओ होगा। और 'ओ' को अव् आदेश होगा। सूत्र सभी वे ही लगेंगे। यथा—

भानुः	भानू	भानवः	भानवे	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
हे भानो !	हे भानू !	हे भानवः !	भानोः	भानुभ्याम्	भानुभ्यः
भानुम्	भानू	भानून्	भानोः	भान्वोः	भानूनाम्
भानुना	भानुभ्याम्	भानुभिः	भानौ	भान्वोः	भानुषु

इसी प्रकार से ऋतु, मेरु, गुरु, धातु, सेतु, बाहु, वायु, बहु आदि रूप चलेंगे।

भूरवर्षाभूरपुनर्भूः ॥१९३ ॥

भूरुवं प्राप्नोति विभक्तिस्वरे परे वर्षाभूपुनर्भ्वौ वर्जयित्वा। प्रतिभुवौ। प्रतिभुवः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। एवं स्वयंभू मित्रभू आत्मभू अग्निभू मनोभू प्रभृतयः। वर्षाभू पुनर्भू सेनानीवत्। वत्वं भेदः। इत्यूकारान्ताः। ऋकारान्तः पुल्लिङ्गः पितृशब्दः। सौ—

उकारांत शब्द पूर्ण हुए।

अब ऊकारांत शब्द चलेंगे।

कटप्रू + सि है

यह यवक्री के समान चलेगा अन्तर इतना ही है कि यहाँ 'ऊ' को उव् हो जाएगा।

कटप्रूः	कटप्रुवौ	कटप्रुवः	कटप्रुवे	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
हे कटप्रूः !	हे कटप्रुवौ !	हे कटप्रुवः !	कटप्रुवः	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभ्यः
कटप्रुवम्	कटप्रुवौ	कटप्रुवः	कटप्रुवः	कटप्रुवोः	कटप्रुवाम्
कटप्रुवा	कटप्रूभ्याम्	कटप्रूभिः	कटप्रुवि	कटप्रुवोः	कटप्रूषु

आगे खलपू, शरलू, काण्डलू शब्द सेनानी के समान चलेंगे। मात्र यहाँ 'ऊ' को 'उव्' न होकर व् हो जाएगा। यथा—

खलपूः	खलप्वौ	खलप्वः	खलप्वे	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
हे खलपूः !	हे खलप्वौ !	हे खलप्वः !	खलप्वः	खलपूभ्याम्	खलपूभ्यः
खलप्वम्	खलप्वौ	खलप्वः	खलप्वः	खलप्वोः	खलप्वाम्
खलप्वा	खलपूभ्याम्	खलपूभिः	खलप्वि	खलप्वोः	खलपूषु

प्रतिभू शब्द में कुछ भेद है।

प्रतिभू + सिः + प्रतिभूः, प्रतिभू + औ है।

वर्षाभूः और पुनर्भूः को छोड़कर स्वर वाली विभक्ति के आने पर भू को उव् आदेश हो जाता है ॥१९३ ॥

प्रतिभुव् + औ = प्रतिभुवौ बना।

संबोधन में भी इसी प्रकार है। यथा—

स्वयंभूः	स्वयंभुवौ	स्वयंभुवः	स्वयंभुवे	स्वयंभूभ्याम्	स्वयंभूभ्यः
हे स्वयंभूः !	हे स्वयंभुवौ !	हे स्वयंभुवः !	स्वयंभुवः	स्वयंभूभ्याम्	स्वयंभूभ्यः
स्वयंभुवम्	स्वयंभुवौ	स्वयंभुवः	स्वयंभुवः	स्वयंभुवोः	स्वयंभुवाम्
स्वयंभुवा	स्वयंभूभ्याम्	स्वयंभूभिः	स्वयंभुवि	स्वयंभुवोः	स्वयंभूषु

इसी प्रकार से मित्र भू आदि उपर्युक्त मनोभू पर्यन्त रूप चलेंगे।

वर्षाभू पुनर्भू छोड़कर सूत्र में ऐसा क्यों कहा ? इन दोनों के रूप सेनानी के समान चलेंगे। अर्थात् ऊ को व् होकर वर्षाभ्वौ आदि रूप बनेंगे।

यथा— वर्षाभूः (मेंढक)

वर्षाभूः	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वे	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
हे वर्षाभूः !	हे वर्षाभ्वौ !	हे वर्षाभ्वः !	वर्षाभ्वः	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभ्यः
वर्षाभ्वम्	वर्षाभ्वौ	वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वः	वर्षाभ्वोः	वर्षाभ्वाम्
वर्षाभ्वा	वर्षाभूभ्याम्	वर्षाभूभिः	वर्षाभ्वि	वर्षाभ्वोः	वर्षाभूषु

आ सौ सिलोपश्च ॥१९४ ॥

ऋदन्तस्य लिङ्गस्य आ भवति सौ परे सिलोपश्च । पिता ।

घुटि च ॥१९५ ॥

ऋदन्तस्य अर् भवति घुटि परे । पितरौ । पितरः । सम्बुद्धौ च ।

आ च न सम्बुद्धौ ॥१९६ ॥

ऋदन्तस्य आर् आ च न भवति सम्बुद्धौ परतः । अपि तु घुटि चेत्यर्भति । हे पितः । हे पितरौ । हे पितरः । पितरम् । पितरौ ।

अग्निवच्छसि ॥१९७ ॥

ऋदन्तस्य अग्निवत्कार्य्यं भवति शसि परे । पितॄन् । पित्रा । पितृभ्याम् । पितृभिः । पित्रे । पितृभ्याम् । पितृभ्यः । ङसिङसोः ।

ऋदन्तात्सपूर्वः ॥१९८ ॥

इस प्रकार से ऊकारांत शब्द पूर्ण हुए ।

अब ऋकारांत शब्द चलेंगे ।

पितृ + सि—

सि के आने पर लिंगात ऋकार को 'आ' होकर 'सि' का लोप हो जाता हैं ॥१९४ ।।

अतः पिता बना ।

पितृ + औ

घुट् स्वर के आने पर ऋकार को अर् हो जाता है ॥१९५ ॥

पित् अर् + औ = पितरौ, पितरः

संबोधन में पितृ + सि—

संबोधन में सि के आने पर ऋकार को आर् एवं आ नहीं होता है ॥१९६ ॥

अपि च 'घुटि च' इस १९५वें सूत्र से अर् हो जाता है तो पितर् + स् ए 'व्यंजनाच्च' सूत्र से व्यंजन से परे सि का लोप होकर "रेफसोर्विसर्जनीयः" से रकार को विसर्ग हो गया । तो हे पितः ! बना । द्विवचन, बहुवचन पूर्ववत् हैं ।

पितृ + शस्

शस् के आने पर ऋदंत को अग्निवत् कार्य हो जाता है ॥१९७ ॥

अर्थात् अग्नि संज्ञा होकर 'शसोऽकारः सश्चनोऽस्त्रियाम्' १६६वें सूत्र से अकार को पूर्व स्वर रूप एवं स् को न् हो गया तो ।

पितृ + ऋन् संधि होकर पितॄन् बन गया ।

पितृ + टा 'रमृवर्णः' ४६वें सूत्र से ऋ को र् होकर पित्रा बना । व्यंजन वाली विभक्ति में कुछ भी नहीं होगा तो पितृ + भ्याम् = पितृभ्याम् ।

पितृ + ङसि, पितृ + ङस्

ऋकार से परे ङसि ङस् को अकार पूर्व स्वर ऋ के साथ 'उ' हो जाता है ॥१९८ ॥

ऋदन्तात्परयोर्ङसिङसोरकारः पूर्वस्वरेण सह उमापद्यते। पितुः। पितृभ्याम्। पितृभ्यः। पितुः। पित्रोः। पितॄणाम्।

अर्ङौ ॥१९९॥

ऋदन्तस्य अर् भवति ङौ परे। पितरि। पित्रोः। पितृषु। एवं भ्रातृ जामातृ सवितृ प्रभृतयः। कर्तृशब्दस्य तु भेदः। सौ—कर्त्ता घुटि।

धातोस्तृशब्दस्यार् ॥२००॥

धातोर्विहितस्य तृशब्दस्य ऋत आर्भवति घुटि परे। कर्त्तारौ। कर्त्तारः। हे कर्तः। हे कर्त्तारौ। हे कर्त्तारः। कर्त्तारम्। कर्त्तारौ। कर्तॄन्। अन्यत्र पितृशब्दवत्। धातोर्विहितस्य किं ? मातरौ। मातरः। यती प्रयत्ने। यतेः ऋत् दीर्घश्च उणादिप्रत्ययः। तृशब्दस्येति किं ? ननान्दरौ। ननान्दरः। एवं धातृ भत्तृ ज्ञातृ वेतृ श्रोतृ नेतृ पक्तृ भोक्तृ पक्तृ प्रभृतयः। क्रोष्टृशब्दस्य तु भेदः। क्रोष्टा। क्रोष्टारौ। क्रोष्टारः। सम्बुद्धौ।

और स् को विसर्ग होकर पित् + उस् = पितुः बना। पितृ + ओस्—संधि होकर पित्रोः।

पितृ + आम् नु का आगम, पूर्व स्वर को दीर्घ, एवं न् को ण् होकर पितॄणाम् बना।

पितृ + ङि

ङि के आने पर ऋ को अर् हो जाता है ॥१९९॥

पितर् + इ = पितरि + पित्रोः, पितृषु।

पिता	पितरौ	पितरः	पित्रे	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
हे पितः !	हे पितरौ !	हे पितरः !	पितुः	पितृभ्याम्	पितृभ्यः
पितरम्	पितरौ	पितॄन्	पितुः	पित्रोः	पितॄणाम्
पित्रा	पितृभ्याम्	पितृभिः	पितरि	पित्रोः	पितृषु

इसी प्रकार से भ्रातृ, जामातृ और सवितृ के रूप चलते हैं।

कर्तृ शब्द में कुछ भेद है।

कर्तृ + सि "आसौ सिर्लोपश्च" सूत्र से कर्त्ता बना कर्तृ + औ धातु में कहे गये 'तृ' शब्द के ऋ को आर् हो जाता है घुट् स्वर के आने पर ॥२००॥

कर्त् आर् + औ कर्त्तारौ, कर्त्तारः।

संबोधन में पूर्ववत्—हे कर्तः इत्यादि। रेफ से आक्रांत वर्ण को कहीं-कहीं द्वित्व होने से कर्त्ता बन जाता है।

शस् से सुप् तक बाकी सब रूप पितृवत् चलते हैं।

यहाँ सूत्र में 'धातु से तृ' प्रत्यय ऐसा क्यों कहा ?

यती धातु प्रयत्न अर्थ में है उणादि प्रत्यय के गण में यत् के य को दीर्घ और ऋ प्रत्यय हुआ है तो यहाँ धातु से तृ प्रत्यय नहीं है अतः आर् न होकर पितृवत् अर् ही हुआ तो यातरौ बना। तृ शब्द को ऋ का आर् हो ऐसा क्यों कहा ? तो ननान्दृ शब्द है इसमें तृ नहीं है अतः इसमें दीर्घ आर् न होकर अर् ही होगा।

तब ननान्दरौ बनेगा। इस कर्त्ता के समान ही घुट् स्वर में आर् होकर ही ऊपर मूल में लिखे धातृ से लेकर वप्तृ आदि रूप चलते हैं।

क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च ॥२०१ ॥

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्भवति। सम्बुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च परे। अग्निसंज्ञां विधाय भानुवत्कुर्यात्। हे क्रोष्टो। हे क्रोष्टारौ। हे क्रोष्टारः। क्रोष्टारम्। क्रोष्टारौ। क्रोष्टून्।

टादौ स्वरे वा ॥२०२ ॥

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्वा भवति टादौ स्वरे परे। क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना। क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टुभिः। क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे। क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टुभ्यः। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। क्रोष्टुभ्याम्। क्रोष्टुभ्यः। क्रोष्टुः, क्रोष्टोः। क्रोष्ट्रोः। क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टॄणाम्, क्रोष्टूनाम्। क्रोष्टरि, क्रोष्टौ। क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः। क्रोष्टुषु। स्वसृशब्दस्य तु भेदः। सौ—स्वसा। घुटि।

स्वस्रादीनां च ॥२०३ ॥

जैसे—

कर्त्ता	कर्त्तारौ	कर्त्तारः	कर्त्रे	कर्तृभ्याम	कर्तृभ्यः
हे कर्त्तः !	हे कर्त्तारौ !	हे कर्त्तारः !	कर्त्तुः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
कर्त्तारम्	कर्त्तारौ	कर्तॄन्	कर्त्तुः	कर्त्रोः	कर्तॄणाम्
कर्त्रा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	कर्त्तरि	कर्त्रोः	कर्तृषु

क्रोष्टृ (शृगाल) शब्द में कुछ भेद है।

क्रोष्टृ + सि—कर्तृवत् क्रोष्टा क्रोष्टारौ क्रोष्टारः संबोधन में—क्रोष्टृ + सि—

क्रोष्टृ शब्द के ऋकार को संबुद्धि संज्ञकसि, शस् व्यंजन वाली विभक्ति एवं नपुंसकलिंग के आने पर उकार हो जाता है ॥२०१ ॥

जब 'उ' हो जाता है तब अग्नि संज्ञा करके भानु के समान रूप चलाना अतः क्रोष्टु + सि = हे क्रोष्टो ! क्रोष्टृ + शस् उकार होकर क्रोष्टु + शस् अ को उ एवं स् को न् होकर क्रोष्टून् बना।

क्रोष्टृ + टा

टा आदि स्वर वाली विभक्ति के आने पर क्रोष्टृ शब्द के ऋ को उ विकल्प से होता है ॥२०२ ॥

'रमृवर्णः' से संधि होकर क्रोष्ट्रा बना ऋ को उ होकर अग्नि संज्ञा में क्रोष्टुना बना।

यह सर्वत्र ध्यान रखना कि 'उ' होने के बाद अग्नि संज्ञा होकर भानुवत् रूप बनते हैं। अन्यथा पितृवत् बनते हैं। व्यंजन वाली विभक्ति में भी क्रोष्टु + भ्याम् = क्रोष्टुभ्याम् बना।

देखिए—

क्रोष्टा	क्रोष्टारौ	क्रोष्टारः	क्रोष्ट्रे, क्रोष्टवे	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
हे क्रोष्टो !	हे क्रोष्टारौ !	हे क्रोष्टारः !	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभ्यः
क्रोष्टारम्	क्रोष्टारौ	क्रोष्टून्	क्रोष्टुः, क्रोष्टोः	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टॄणाम्, क्रोष्टूनाम्
क्रोष्ट्रा, क्रोष्टुना	क्रोष्टुभ्याम्	क्रोष्टुभिः	क्रोष्टरि, क्रोष्टौ	क्रोष्ट्रोः, क्रोष्ट्वोः	क्रोष्टुषु

स्वसृ शब्द में कुछ भेद है—

स्वसृ + सि = 'आसौ सिर्लोपश्च' सूत्र से ऋ को आ और सि का लोप होकर स्वसा बना।

स्वसृ + औ—

घुट् स्वर के आने पर स्वसृ आदि शब्दों के ऋ को आर् हो जाता है ॥२०३ ॥

स्वस्रादीनां च ऋत आर्भवति घुटि परे। स्वसारौ। स्वसारः। हे स्वसः। इत्यादि। अन्यत्र पितृशब्दवत्। के स्वस्रादयः ?

स्वसा नप्ता च नेष्टा च त्वष्टा क्षत्ता तथैव च।

होता पोता प्रशास्ता चेत्यष्टौ स्वस्रादयः स्मृताः ॥१॥

नृशब्दस्य तु भेदः। नृशब्दस्यामि विशेषः। ना। नरौ। नरः। हे नः। हे नरौ। हे नरः। नरम्। नरौ। नॄन्। न्रा। नृभ्याम्। नृभिः। न्रे। नृभ्याम्। नृभ्यः। नुः। नृभ्याम्। नृभ्यः। नुः। न्रोः। न नामि दीर्घमिति वर्तते।

नृ वा ॥२०४॥

नृशब्दो वा दीर्घं प्राप्नोति सनावामि परे। नृणाम्, नॄणाम्। नरि। न्रोः। नृषु॥ इति ऋदन्ताः। ॠकारलृकारलॄकारकारान्ता अप्रसिद्धाः। ऐकारान्तः। पुल्लिङ्गो रैशब्दः। आत्वं व्यञ्जनादौ इति वर्तते।

रैः ॥२०५॥

स्वस् आर् + औ = स्वसारौ स्वसारः।

हे स्वसः, स्वसृ + शस् में स् को न् नहीं होगा क्योंकि 'शसोऽकारः सश्चनोऽस्त्रियाम्' सूत्र में स्त्रीलिंग में स् को न् का निषेध किया है और यह स्वसावहन का वाचक स्त्रीलिंग है।

अतः स् को विसर्ग होकर स्वसृः बनेगा। बाकी शब्द पितृवत् चलेंगे।

सूत्र में स्वस्रादि शब्द है तो आदि से कौन कौन लेना ?

श्लोकार्थ—स्वसृ, नप्तृ, नेष्टृ, त्वष्टृ, क्षत्तृ, होतृ, पोतृ, प्रशास्तृ ये आठ शब्द आदि शब्द से लिए जाते हैं॥

इनके रूप भी स्वसृ के समान ही चलते हैं। अंतर यही है कि ये शब्द पुल्लिग हैं अतः स को न् होकर पितॄन् शब्द के समान रूप बनते हैं। जैसे नप्तॄन्, नेष्टॄन् इत्यादि।

नृ शब्द में आम् विभक्ति के आने पर ही अंतर है बाकी सब रूप पितृ के समान ही हैं।

नृ + आम्

"न नामि दीर्घ" यह सूत्र अनुवृत्ति से आ रहा है।

आम् के आने पर नृ शब्द के ऋ को दीर्घ विकल्प से होता है ॥२०४॥

नृ + नु आम् = नृणाम्, दीर्घ होकर, नॄणाम् बना।

ना	नरौ	नरः	न्रे	नृभ्याम्	नृभ्यः
हे नः !	हे नरौ	हे नरः	नुः	नृभ्याम्	नृभ्यः
नरम्	नरौ	नॄन्	नुः	न्रोः	नृणाम्, नॄणाम्
न्रा	नृभ्याम्	नृभिः	नरि	न्रोः	नृषु

इस प्रकार से ऋकारांत शब्द हुये दीर्घ ॠकारान्त, लृकारांत और लॄकारांत और एकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं।

अब ऐकारांत पुल्लिग "रै" शब्द है।

रै + सि

"आत्वं व्यंजनादौ" यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर रै शब्द आकारांत हो जाता है ॥२०५॥

रैशब्दस्य आद् भवति व्यञ्जनादौ परतः। राः। रायौ। रायः। हे राः। हे रायौ। हे रायः। रायम्। रायौ। रायः। राया। राभ्याम्। राभिः। राये। राभ्याम्। राभ्यः। रायः। राभ्याम्। राभ्यः। रायः। रायोः। रायाम्। रायि। रायोः। रासु। इत्यैकारान्तः॥ ओकारान्तः पुल्लिङ्गो गो शब्दः।

गोरौ घुटि॥२०६॥

गोशब्दस्यान्त और्भवति घुटि परे। गौः। गावौ। गावः। हे गौः। हे गावौ। हे गावः।

अम्शसोरा॥२०७॥

गोशब्दस्यान्त आ भवति अम्शसोः परतः। गाम्। गावौ। गाः। गवा। गोभ्याम्। गोभिः। गवे। गोभ्याम्। गोभ्यः। ङसिङसोरलोपश्चेति वर्तते।

गोश्च॥२०८॥

गोशब्दात्परयोर्ङसिङसोरकारो लोपमापद्यते। गोः। गोभ्याम्। गोभ्यः। गोः। गवोः। गवाम्। गवि। गवोः। गोषु। इत्योकारान्तः। औकारान्तः पुल्लिङ्गो ग्लौशब्दः। ग्लौः। ग्लावौ। ग्लावः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। ग्लावम्। ग्लावौ। ग्लावः ग्लावा। ग्लौभ्याम्। ग्लौभिः। इत्यादि। इत्यौकारान्तः।

इति स्वरान्ताः पुल्लिङ्गाः ❑

रा + स्—विसर्ग होकर राः, रै + औ—'ऐ आय्' से आय् रायौ, रायः बन जाता है। सर्वत्र व्यंजनवाली विभक्ति के आने पर आकार होकर राभ्याम्, राभिः आदि बनता है।

ऐकारांत शब्द हुये। अब ओकारांत पुल्लिग गो शब्द है।

गो + सि

गो शब्द के अंत के ओ को औ हो जाता है घुट् विभक्ति के परे रहने पर॥२०६॥

गौ + सि = गौः, गौ + औ 'औ आव' सूत्र से आव् होकर गावौ, गावः बना। संबोधन में भी इसी प्रकार है।

गो + अम्, गो + औ, गो + शस्।

अम् और शस् के आने पर गो शब्द के अन्त के ओ को 'आ' हो जाता है॥२०७॥

गा + अम् = गाम्, गावौ, गा + अस् = गावः।

गो + टा 'ओ अव' से संधि होकर गवा बना। गो + भ्याम् = गोभ्याम्, गोभिः। गो + ङे = गवे। गो + ङसि, गो + ङस्।

गो शब्द से परे ङसि और ङस् के अकार का लोप हो जाता है॥२०८॥

गो + स् विसर्ग होकर गोः बना।

गो + ओस् 'ओ अव' से संधि होकर गवोः बना।

गौः	गावौ	गावः।	गवे	गोभ्याम्	गोभ्यः।
हे गौः	हे गावौ	हे गावः।	गोः	गोभ्याम्	गोभ्यः।
गाम्	गावौ	गाः।	गोः	गवोः	गवाम्।
गवा	गोभ्याम्	गोभिः।	गवि	गवोः	गोषु।

इस प्रकार ओकारांत शब्द हुआ। अब औकारांत ग्लौ शब्द है।

ग्लौ + सि = ग्लौः, ग्लौ + औ = ग्लावौ। ग्लौ + अस् = ग्लावः। ग्लौ + भ्याम् = ग्लौभ्याम्। इसी प्रकार से औकारांत शब्द हुए।

॥इस प्रकार से स्वरांत पुल्लिग प्रकरण पूर्ण हुआ॥ ❑

अथ स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गा उच्यन्ते

अकारान्तः स्त्रीलिङ्गोऽप्रसिद्धः। आकारान्तः स्त्रीलिङ्गो रम्भाशब्दः। सौ।

आ श्रद्धा ॥२०९॥

आकारान्तः स्त्र्याख्यः श्रद्धासंज्ञो भवति।

श्रद्धायाः सिर्लोपम् ॥२१०॥

श्रद्धायाः परः सिर्लोपमापद्यते। रम्भा।

औरिम् ॥२११॥

श्रद्धायाः पर औरिमापद्यते। रम्भे। रम्भाः।

सम्बुद्धौ च ॥२१२॥

श्रद्धाया एत्वं भवति सम्बुद्धौ परे। हे रम्भे। हे रम्भे। हे रम्भाः। रम्भां रम्भे। रम्भाः।

टौसोरे ॥२१३॥

श्रद्धाया एत्वं भवति टौसोः परतः। रम्भया। रम्भाभ्याम्। रम्भाभिः। ङवत्सु।

ङवन्ति यैयास्यास्याम् ॥२१४॥

अथ स्वरांत स्त्रीलिंग प्रकरण

अब स्वरांत स्त्रीलिंग प्रकरण कहा जाता है।

अकारांत स्त्रीलिंग अप्रसिद्ध है। आकारांत स्त्रीलिंग 'रम्भा' शब्द है।

रम्भा + सि

आकारांत स्त्रीलिंग शब्दों की श्रद्धा संज्ञा हो जाती है ॥२०९॥

श्रद्धा संज्ञक से परे सि का लोप हो जाता है ॥२१०॥

अतः रम्भा बना।

रम्भा + औ

श्रद्धा संज्ञक से परे औ विभक्ति को 'इ' आदेश हो जाता है ॥२११॥

रम्भा + इ 'अवर्णे इवर्णे ए' से संधि होकर रम्भे बना। जस् में रम्भाः बना। संबोधन में—

रम्भा + सि।

संबुद्धि संज्ञक सि के आने पर श्रद्धा संज्ञक आ को 'ए' हो जाता है ॥२१२॥

और 'श्रद्धायाः सिर्लोपम्' से सि का लोप होकर—हे रम्भे ! बना। हे रम्भे ! हे रम्भाः !

रम्भा + टा

टा और ओस् के परे श्रद्धा संज्ञक को 'ए' हो जाता है ॥२१३॥

रम्भे + आ 'ए अय' से संधि होकर रम्भया बना। रम्भाभ्याम्, रम्भाभिः।

रम्भा + ङे, रम्भा + ङसि, रम्भा + ङस्, रम्भा + ङि।

श्रद्धा संज्ञक से ङवंति अर्थात् ङे, ङसि, ङस्, ङि के आने पर क्रम से यै, यास्, यास्, याम् आदेश हो जाता है ॥२१४॥

श्रद्धायाः पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासंख्यम् । रम्भाभ्याम् । रम्भाभ्यः । रम्भायाः । रम्भाभ्याम् । रम्भाभ्यः । रम्भायाः । रम्भयोः । रम्भाणाम् । रम्भायाम् । रम्भयोः । रम्भासु । एवं शाला माला दोला भार्या कान्ता अङ्गना वनिता जाया माया प्रभृतयः । सर्वनाम्नस्त्रिलिङ्गत्वात्स्त्रीलिङ्गे ।

स्त्रियामादा ॥२१५ ॥

स्त्रियां वर्तमानादकारान्तादाप्रत्ययो भवति विभक्तिपरे । सर्वा । सर्वे । सर्वाः । हे सर्वे । हे सर्वे । हे सर्वाः । सर्वाम् । सर्वे । सर्वाः । सर्वया । सर्वाभ्याम् । सर्वाभिः । ङवत्सु ।

सर्वनाम्नस्तु ससवो ह्रस्वपूर्वाश्च ॥२१६ ॥

सर्वनाम्नः श्रद्धायाः पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् याम् भवन्ति यथासंख्यं सह सुना ह्रस्वपूर्वाश्च । सर्वस्यै । सर्वाभ्याम् । सर्वाभ्यः । सर्वस्याः । सर्वाभ्याम् । सर्वाभ्यः । सर्वस्याः । सर्वयोः । आमि । सुरामि सर्वतः । सर्वासाम् । सर्वस्याम् । सर्वयोः । सर्वासु । एवं विश्वादीनामेकशब्दपर्यन्तानां रूपं ज्ञेयम् । अल्पादीनां तु सप्तानां रम्भाशब्दवत् । अल्प प्रथम चरम तय अय कतिपय अर्ध एते सप्त । द्वितीयाशब्दस्य तु भेदः । द्वितीया । द्वितीये । द्वितीयाः । हे द्वितीये । हे द्वितीये । हे द्वितीयाः । द्वितीयाम् । द्वितीये । द्वितीयाः । द्वितीयया । द्वितीयाभ्याम् । द्वितीयाभिः । ङवत्सु ।

रम्भा + यै = रम्भायै, रम्भायाः, रम्भायाः, रम्भाभ्याम् । रम्भा + ओस् 'टौसोरे' सूत्र से आ को ए होकर संधि होकर रम्भयोः बना ।

रम्भा	रम्भे	रम्भाः	रम्भायै	रम्भाभ्याम्	रम्भाभ्यः
हे रम्भे !	हे रम्भे !	हे रम्भाः !	रम्भायाः	रम्भाभ्याम्	रम्भाभ्यः
रम्भाम्	रम्भे	रम्भाः	रम्भायाः	रम्भयोः	रम्भाणाम्
रम्भया	रम्भाभ्याम्	रम्भाभिः	रम्भायाम्	रम्भयोः	रम्भासु

इस प्रकार से ऊपर लिखे हुआ शाला आदि शब्द चलते हैं ।

सर्वनाम तीनों लिंगों में चलते हैं अतः स्त्रीलिंग में 'सर्व' शब्द आया ।

स्त्रीलिंग में वर्तमान अकारांत शब्द को 'आ' प्रत्यय हो जाता है विभक्ति के आने पर ॥२१५ ॥

सर्व + आ = सर्वा + सि—श्रद्धा संज्ञा करके 'श्रद्धायाः सिर्लोपम्' से सि का लोप होकर सर्वा बना ।

ङ्वान्—ङे, ङसि, ङस्, ङि इन चार विभक्तियों को ङवान् कहते हैं इनके आने पर कुछ अंतर है ।

सर्वा + ङे, सर्वा + ङसि, सर्वा + ङस्, सर्वा + ङि ।

सर्वनाम श्रद्धासंज्ञक से परे जो ङवान् वचन को यै, यास्, यास्, याम् आदेश हुआ है उसमें क्रम से विभक्ति के पूर्व में सकार एवं पूर्व स्वर को ह्रस्व आदेश हो जाता है ॥२१६ ॥

सर्व + स्यै = सर्वस्यै, सर्वस्याः, सर्वस्याः, सर्वस्याम् ।

सर्वा + आम् 'सुरामि सर्वतः' १५५वें सूत्र से सु का आगम होकर सर्वासाम् बना ।

सर्वा	सर्वे	सर्वाः	सर्वस्यै	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
हे सर्वे !	हे सर्वे !	हे सर्वाः !	सर्वस्याः	सर्वाभ्याम्	सर्वाभ्यः
सर्वाम्	सर्वे	सर्वाः	सर्वस्याः	सर्वयोः	सर्वासाम्
सर्वया	सर्वाभ्याम्	सर्वाभिः	सर्वस्याम्	सर्वयोः	सर्वासु

इसी प्रकार से विश्वा, उभा, उभया, अन्या, अन्यतरा, इतरा, इतमा, कतरा, कतमा, यतरा, यतमा, ततरा, ततमा, एकतरा, एकतमा, त्वा, नेमा, समा, सिमा, पूर्वा, परा, अवरा, दक्षिणा, उत्तरा, अपरा, अधरा, स्वा, अंतरा, त्या, ता, या इत्यादि एक पर्यंत रूप सर्वा के समान ही चलेंगे ।

द्वितीयातृतीयाभ्यां वा ॥२१७॥

द्वितीयातृतीयाभ्यां पराणि ङवन्ति वचनानि यै यास् यास् याम् भवन्ति यथासंख्यं सह सुना ह्रस्वपूर्वाश्च वा। द्वितीयस्यै, द्वितीयायै। द्वितीयाभ्याम्। द्वितीयाभ्यः। द्वितीयस्याः, द्वितीयायाः। द्वितीयाभ्याम्, द्वितीयाभ्यः। द्वितीयस्याः द्वितीयायाः। द्वितीययोः। सर्वादौ अपठितत्वात् न सुरागमः। द्वितीयानाम्। द्वितीयस्याम्, द्वितीयायाम्। द्वितीययोः। द्वितीयासु। एवं तृतीयाशब्दोऽपि। अन्यत्र रम्भाशब्दवत्। जराशब्दस्य तु भेदः। व्यञ्जने रम्भाशब्दवत्।

जरा जरः स्वरे वा ॥२१८॥

जराशब्दो जरस् वा भवति विभक्तिस्वरे परे। जरे, जरसौ। जराः, जरसः। हे जरे। हे जरे, हे जरसौ। हे जराः, हे जरसः। जरां, जरसं। जरे, जरसौ। जराः, जरसः। जरसा, जरया। जराभ्याम्। जराभिः। जरायै, जरसे। जराभ्याम्। जराभ्यः। जरायाः, जरसः। जराभ्यां, जराभ्यः। जरायाः, जरसः। जरयोः, जरसोः। जराणाम्, जरसाम्। जरायां, जरसि। जरयोः, जरसोः। जरासु।

ये सभी शब्द अकारांत हैं इनमें 'स्त्रियामादा' इस २१५वें सूत्र से स्त्रीलिंग बनाने के लिये 'आ' प्रत्यय करना होता है। सर्वत्र अकारांत को स्त्रीलिंग में 'अद' प्रत्यय करना ही होगा।

अल्पा, प्रथमा, चरमा, कतिपया शब्द और जिसमें तय, अय प्रत्यय लगे हैं ऐसे शब्द रम्भा के समान चलतें हैं।

द्वितीया शब्द में कुछ भेद हैं।

द्वितीया + सि = द्वितीया इत्यादि। द्वितीया + ङे

द्वितीया और तृतीया से परे ङ वान् को क्रम से यै, यास्, यास्, याम् विकल्प से होता है ॥२१७॥

अर्थात् एक बार स् सहित यै, यास्, यास्, याम् होकर पूर्व को ह्रस्व हो जाता है अतः इन चार विभक्तियों के दो रूप बनते हैं यथा द्वितीया + ङे = द्वितीयायै, द्वितीयस्यै, द्वितीयायाः, द्वितीयस्याः इत्यादि। ये द्वितीया, तृतीया शब्द सर्वादि गण में कहे नहीं गये हैं। अतः आम् के आने पर सु का आगम न होकर नु का आगम हुआ। तब द्वितीयानाम् बना। शेष सभी रूप रंभा के समान हैं।

द्वितीया	द्वितीये	द्वितीयाः	द्वितीयायै, द्वितीयस्यै	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
हे द्वितीये !	हे द्वितीये !	हे द्वितीयाः !	द्वितीयायाः, द्वितीयस्याः	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभ्यः
द्वितीयाम्	द्वितीये	द्वितीयाः	द्वितीयायाः, द्वितीयस्याः	द्वितीययोः	द्वितीयानाम्
द्वितीयया	द्वितीयाभ्याम्	द्वितीयाभिः	द्वितीयायाम्, द्वितीयस्याम्	द्वितीययोः	द्वितीयासु

जरा शब्द में स्वर के आने पर भेद है व्यंजन में रम्भावत् ही है।

जरा + सि = जरा, जरा + औ

स्वर वाली विभक्ति के आने पर जरा शब्द को जरस् आदेश विकल्प से हो जाता है ॥२१८॥

अर्थात् एक बार रंभावत् जरे बना। दूसरी बार जरस् + औ = जरसौ जरा + जस् = जराः, जरसः बना।

जरा	जरे, जरसौ	जराः, जरसः	जरायै, जरसे	जराभ्याम्	जराभ्यः
हे जरे !	हे जरे !, हे जरसौ !	हे जराः !, हे जरसः !	जरायाः, जरसः	जराभ्याम्	जराभ्यः
जराम्, जरसम्	जरे, जरसौ	जराः, जरसः	जरायाः, जरसः	जरयोः, जरसोः	जराणाम्, जरसाम्
जरया, जरसा	जराभ्याम्	जराभिः	जरायाम्, जरसि	जरयोः, जरसोः	जरासु

ह्रस्वोऽम्बार्थानाम् ॥२१९ ॥

अम्बार्थानां द्विस्वराणां श्रद्धासंज्ञकानां सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवति । हे अम्ब । हे अक्क । हे अल्ल । हे अत्त । एवमादयोऽम्बार्थाः । अन्यत्र रम्भाशब्दवत् ।

न बहुस्वराणाम् ॥२२० ॥

बहुस्वराणामम्बार्थानां श्रद्धासंज्ञकानां ह्रस्वो न भवति सम्बुद्धौ सौ परे । हे अम्बाडे । हे अम्बाले । हे अम्बिके । इत्याकारान्ताः । इकारान्तः स्त्रीलिङ्गे रुचिशब्दः । रुचिः । रुची । रुचयः । हे रुचे । हे रुची । हे रुचयः । रुचिम् । रुची । स्त्रीलिङ्गत्वात्सस्य नत्वाभावः । रुचीः । तृतीयैकवचनेऽपि तस्मान्नत्वाभावः । रुच्या । रुचिभ्याम् । रुचिभिः । ङवत्सु ।

ह्रस्वश्च ङवति ॥२२१ ॥

स्त्र्याख्यावियुवौ स्थानिनौ च ह्रस्वश्च ङवति परे नदीसंज्ञौ वा भवतः । यत्र नदीसंज्ञा तत्र ।

माता अर्थ के वाचक दो स्वर वाले श्रद्धासंज्ञक शब्दों को संबुद्धि में ह्रस्व हो जाता है ॥२१९ ॥

हे अम्बा + सि = हे अम्ब ! हे अक्क ! हे अल्ल ! हे अत: ! सम्बोधन में माता अर्थ के वाचक शब्दों में ही यह नियम है। बाकी सभी विभक्तियों में इनके रूप रम्भावत् चलेंगे। जैसे—

अम्बा	अम्बे	अम्बाः	अम्बायै:	अम्बाभ्याम्	अम्बाभ्यः
हे अम्ब !	हे अम्बे !	हे अम्बाः !	अम्बायाः	अम्बाभ्याम्	अम्बाभ्यः
अम्बाम्	अम्बे	अम्बाः	अम्बायाः	अम्बयोः	अम्बानाम्
अम्बया	अम्बाभ्याम्	अम्बाभिः	अम्बायाम्	अम्बयोः	अम्बासु

बहुत स्वर वाले माता के वाचक, श्रद्धा संज्ञक शब्दों को संबोधन में ह्रस्व नहीं होता है ॥२२० ॥

जैसे—अम्बाडा + सि = हे अम्बाडे ! हे अम्बाले ! हे अम्बिके ! इस प्रकार से आकारांत शब्द हुये।

अब इकारान्त स्त्रीलिंग रुचि शब्द है।

रुचि + सि = रुचिः, रुचि + औ 'औरिम्' इस २११वें सूत्र से 'इ' होकर रुची। रुचि + जस् अग्नि संज्ञा करके 'इरेदुरोज्जसि' सूत्र से ए होकर रुचयः बना।

रुचि + शस् स्त्रीलिंग में स् को न् नहीं होने से विसर्ग होकर रुचीः बना। अर्थात् 'शसोऽकारः सश्च नोऽस्त्रियाम्' इस १६६वें सूत्र से शस् के अकार को पूर्व स्वर रूप होकर स् को विसर्ग हुआ और समान सवर्ण को दीर्घ होकर रुचीः बना।

रुचि + टा, टा के ट् का अनुबंध लोप होकर रुचि + आ 'अस्त्रियां टा ना' इस १६७वें सूत्र से स्त्रीलिंग में टा को ना का निषेध होने से संधि हो गई तो रुच्या बना। रुचि + भ्याम् = रुचिभ्याम्।

रुचि + ङे आदि चारों वचन हैं।

ङे आदि विभक्ति के आने पर स्त्रीलिंग में वाची इय् उव् स्थानीय और ह्रस्व इकारान्त उकारान्त स्त्रीलिंग वाचक शब्द वह विकल्प से नदीसंज्ञक भी हो जाते हैं ॥२२१ ॥

अर्थात् आगे आने वाले २२६वें सूत्र से दीर्घ ई ऊ को स्त्रीलिंग में नदी संज्ञा होती है।

नद्या ऐआसासाम् ॥२२२ ॥

नदीसंज्ञकात्पराणि ङवन्ति वचनानि ऐ आस् आस् आम् भवन्ति यथासंख्यम्। नदीसंज्ञाभावे मुनिशब्दवत्। रुच्यै, रुचये। रुचीभ्याम्। रुचिभ्यः। रुच्याः, रुचेः। रुचिभ्याम्। रुचिभ्यः। रुच्याः, रुचेः। रुच्योः। रुचीनाम्। रुच्याम्, रुचौ। रुच्योः। रुचिषु। एवं बुद्धि वृद्धि कीर्ति कान्ति कृति युक्ति श्रेणि पङ्क्ति प्रभृतयः। द्विशब्दस्य तु भेदः। त्यदादित्वात् अ आदेश आ प्रत्ययश्च। द्वे। हे द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। त्रिशब्दस्य तु भेदः।

त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ ॥२२३ ॥

स्त्रियां वर्तमानयोस्त्रिचत्वार्शब्दयोः तिसृ चतसृ आदेशौ भवतः विभक्तौ परतः। धुटि चेत्यरि प्राप्ते बाधकबाधनार्थोऽयं योगः।

तौ रं स्वरे ॥२२४ ॥

नदी संज्ञक से परे ङे आदि के आने पर क्रम से चारों को ऐ, आस्, आस्, आम् आदेश होते हैं ॥२२२ ॥

और जब नदी संज्ञा नहीं हुई तब मुनि शब्द के समान रूप चलेंगे। ङे आदि चार विभक्तियों में ही दो-दो रूप हैं।

रुचि + ङे = मुनिवत् में 'ङे' इस सूत्र से इ को ए होकर संधि हुई तो रुचये, नदीसंज्ञक में ऐ होकर रुचि + ऐ = रुच्यै बना तथैव रुचि + ङसि अग्नि संज्ञक में 'ङसिङसोरलोपश्च' १६९वें सूत्र से इ को अ का लोप होकर रुचेः बना। और नदी संज्ञा होकर ङसि को आस् आदेश होकर रुच्याः बना।

रुचि + ङि—अग्नि संज्ञा में रुचौ, नदी संज्ञा में रुच्याम्।

रुचिः	रुची	रुचयः	रुच्यै, रुचये	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
हे रुचे !	हे रुची !	हे रुचयः !	रुचेः, रुच्याः	रुचिभ्याम्	रुचिभ्यः
रुचिम्	रुची	रुचीः	रुचेः, रुच्याः	रुच्योः	रुचीनाम्
रुच्या	रुचिभ्याम्	रुचिभिः	रुचौ, रुच्याम्	रुच्योः	रुचिषु

इसी प्रकार से ऊपर लिखे हुये बुद्धि, वृद्धि, आदि रूप चलते हैं। द्वि शब्द में कुछ भेद हैं—

द्वि + औ

'त्यदादीनाम् विभक्तौ' इस १७२वें सूत्र से 'अ' आदेश होकर 'द्व' 'स्त्रियामादा' सूत्र से आ होकर द्वा बना 'औरिम्' से औ को 'इ' होकर द्वे बना। द्वा + भ्याम् = द्वाभ्याम्।

द्वा + ओस् 'टौ सो रे' २१३वें सूत्र से ए होकर द्वयोः बना।

त्रि शब्द में कुछ भेद हैं। त्रि + जस्

स्त्रीलिंग में वर्तमान त्रि और चत्वार् शब्द विभक्ति के आने पर तिसृ, चतसृ आदेश हो जाता है ॥२२३।

तिसृ + अस्

यहाँ 'घुटि च' १९५वें सूत्र से ऋ को अर् प्राप्त था किंतु इसे बाधित करने के लिये आगे के सूत्र का योग है।

स्वर वाली विभक्ति के आने पर तिसृ, चतसृ के ऋ को र् आदेश हो जाता है ॥२२४ ॥

तौ तिसृ चतसृ आदेशौ रं प्राप्नुतो विभक्तौ स्वरे परे। तिस्रः। हे तिस्रः। तिस्रः। तिसृभिः। तिसृभ्यः। तिसृभ्यः।

न नामि दीर्घम् ॥२२५॥

तौ तिसृ चतसृ आदेशौ दीर्घत्वं न प्राप्नुवतः सनावामि परे। तिसृणाम्। तिसृषु। इति इकारान्तः। ईकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नदीशब्दः।

ईदूतो स्त्र्याख्यौ नदी ॥२२६॥

स्त्र्याख्यावीदूतौ नदीसंज्ञौ भवतः।

ईकारान्तात्सिः ॥२२७॥

नदीसंज्ञकादीकारान्तात्परः सिर्लोपमापद्यते। नदीसंज्ञादन्तग्रहणाधिक्यान्नदाद्यञ्चीत्यादिना विहितादीकारात्परः सिर्ल्लोपमापद्यते। नदी। नद्यौ। नद्यः।

संबुद्धौ ह्रस्वः ॥२२८॥

नद्याः संबुद्धौ ह्रस्वो भवति। हे नदि। हे नद्यौ। हे नद्यः।

अम्शसोरादिर्लोपम् ॥२२९॥

नदीसंज्ञकात्परयोः अम्शसोरादिर्लोपमापद्यते। नदीम्। नद्यौ। नदीः। नद्या। नदीभ्याम्। नदीभिः। ङवत्सु। नद्या ऐआसासामित्यादयः। नद्यै। नदीभ्याम्। नदीभ्यः। नद्याः। नदीभ्याम्। नदीभ्यः। नद्याः। नद्योः। नदीनाम्। नद्याम्। नद्योः। नदीषु। एवं गौरी गान्धारी वाणी भारती गायत्री सावित्री सरस्वती गोमती गोमिनी भामिनि क्राष्ट्री महिषी मही प्लवी सौरभेयी प्रभृतयः॥

तिसृ + अस् = तिस्रः, चतस्रः। तिसृ + शस् = तिस्रः। तिसृ + भिः = तिसृभिः। तिसृ + आम् नु का आगम न् को ण् हुआ।

सु नु आम् विभक्ति के आने पर तिसृ, चतसृ आदेश ऋ को दीर्घ नहीं हुआ ॥२२५॥

तो तिसृणाम् बना।

इस प्रकार से इकारांत शब्द हुये।

अब ईकारांत स्त्रीलिंग नदी शब्द है।

स्त्रीलिंग के ईकारांत और ऊकारांत शब्दों को 'नदी' यह संज्ञा हो जाती है ॥२२६॥

नदी + सि

नदी संज्ञक ईकारांत से परे 'सि' का लोप हो जाता है ॥२२७॥

नदी संज्ञक से और अंत ग्रहण की अधिकता से 'नदाद्यञ्ची' इत्यादि सूत्र से किये गये ईकार प्रत्यय से परे सि का लोप हो जाता है।

नदी, नदी + औ 'इवर्णो यमसवर्णे' इत्यादि सूत्र से संधि होकर नद्यौ बना। सम्बोधन में नदी + सि

संबुद्धि सि के आने पर नदी संज्ञक को ह्रस्व हो जाता है ॥२२८॥

पुनः 'ह्रस्व नदी श्रद्धाभ्यः सिर्लोपम्' सूत्र से नदी संज्ञक से संबोधन में सि का लोप हो गया। हे नदि ! हे नद्यौ ! हे नद्यः !

नदी + अम्, नदी + शस्

नदी संज्ञक से परे अम् और शस् के आदि के 'अ' का लोप हो जाता है ॥२२९॥

नदीम्, नदीः। नदी + टा संधि होकर नद्या बना। नदीभ्याम्, नदीभिः नदी + ङे आदि चार विभक्तियाँ हैं।

महीं मन्दाकिनी गौरी सखी भागीरथी नदी।
पुरी नारी पुरन्ध्री च सैरन्ध्री सुरसुन्दरी ॥१॥
मृगी वनचरी देवी शर्वरी वरवर्णिनी।
सिंही हैमवती धात्री धरित्रीत्येवमादयः ॥२॥

स्त्रीशब्दस्य तु भेदः। सौ—

स्त्री नदीवत् ॥२३० ॥

स्त्रीशब्दो नदीवद्भवति विभक्तौ परतः। स्त्रीशब्दस्य पृथक्नदीसंज्ञाकरणं किमर्थं ? ह्रस्वश्च ङवति वा इति सूत्रोक्तविकल्पनिषेधार्थम्। स्त्री।

स्त्री च ॥२३१ ॥

स्त्रीशब्दौ धातुवद्भवति विभक्तिस्वरे परे। स्त्रियौ। स्त्रियः। हे स्त्रि। हे स्त्रियौ। हे स्त्रियः।

वाम्शसोः ॥२३२ ॥

'नद्या ऐ आसासाम्' इस २२२वें सूत्र से ङे को ऐ ङसि को आस्, ङस् को आस् और ङि को आम् आदेश हो जाता है पुनः 'इवर्णो यमसवर्णे' इत्यादि से संधि होकर नद्यै, नद्याः, नद्याः, नद्याम् बना।

नदी	नद्यौ	नद्यः	नद्यै	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
हे नदि !	हे नद्यौ !	हे नद्यः !	नद्याः	नदीभ्याम्	नदीभ्यः
नदीम्	नद्यौ	नदीः	नद्याः	नद्योः	नदीनाम्
नद्या	नदीभ्याम्	नदीभिः	नद्याम्	नद्योः	नदीषु

इसी प्रकार से गौरी, गांधारी आदि शब्दों के रूप चलेंगे।

श्लोकार्थ—मही, मंदाकिनी, गौरी, सखी, भागीरथी, नदी, पुरी, नारी, पुरन्ध्री, सैरन्ध्री, सुरसुन्दरी, मृगी, वनेचरी, देवी, शर्वरी, वरवर्णिनी, सिंही, हैमवती, धात्री, धरित्री इन शब्दों को आदि में लेकर बहुत से शब्द हैं जो नदीसंज्ञक हैं और नदीवत् चलते हैं ॥१-२॥

स्त्री शब्द में कुछ भेद है।

स्त्री + सि

विभक्तियों के आने पर स्त्री शब्द नदीवत् हो जाता है ॥२३०॥

स्त्री शब्द को नदी संज्ञा पृथक् रूप से क्यों की ? 'ह्रस्वश्च ङवति वा' २२१वें सूत्र में कहे गये विकल्प का निषेध करने के लिये। स्त्री + सि—सि का लोप होकर स्त्री।

स्त्री + औ

स्वर वाली विभक्ति के आने पर स्त्री शब्द धातुवत् हो जाता है ॥२३१॥

स्त्री शब्द को धातुवत् कर लेने के बाद 'ईदूतोरियुवौ स्वरे' इस १८९वें सूत्र से धातु के ईकार ऊकार को इय् उव् आदेश हो जाता है। अतः स्त्रिय् + औ = स्त्रियौ, स्त्रियः बन गया।

संबोधन में ह्रस्व होकर हे स्त्रि ! आदि।

स्त्री + अम्, स्त्री + शस्

अम् शस् विभक्ति के आने पर स्त्री शब्द धातुवत् विकल्प से होता है ॥२३२॥

स्त्रीशब्दो वा धातुवद्भवति अम्शसोः परतः । स्त्रीम्, स्त्रियम् । स्त्रियौ । स्त्रीः, स्त्रियः । स्त्रिया । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभिः । स्त्रियै । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभ्यः । स्त्रियाः । स्त्रीभ्याम् । स्त्रीभ्यः । स्त्रियाः । स्त्रियोः । स्त्रीणाम् । स्त्रियां । स्त्रियोः । स्त्रीषु ॥ श्रीशब्दस्य तु भेदः । श्रीः । ईदूतोरियुवौ स्वरे इति स्वरादावियादेशः । श्रियौ । श्रियः । अनित्यनदीत्वात्संबुद्धौ ह्रस्वो नास्ति । हे श्रीः । हे श्रियौ । हे श्रियः । श्रियम् । श्रियौ । श्रियः । श्रिया । श्रीभ्याम् । श्रीभिः । ङवत्सु—नद्या ऐआसासाम् । पश्चादीदूतोरियुवौ स्वरे । नदीपक्षे ऐआसादयः । श्रियै, श्रिये । श्रीभ्याम् । श्रीभ्यः । श्रियाः, श्रियः । श्रीभ्याम् । श्रीभ्यः । श्रियाः, श्रियः । श्रियोः । आमि ।

स्त्र्याख्यावियुवौ वामि ॥२३३ ॥

स्त्र्याख्यावियुवस्थानिनौ आमि परे वा नदीसंज्ञौ भवतः । सिद्धे सत्यारम्भो नियमाय । किं नदीवत्कार्यं आमि च नुः इति नुरागमः । अन्यत्र "ईदूतोरियुवौ स्वरे" इति इय् उव् । श्रीणाम्, श्रियाम् । श्रियाम्, श्रियि । श्रियोः । श्रीषु । लक्ष्मीशब्दस्य तु भेदः । लक्ष दर्शनाङ्कनयोः ।

धातुवत् होने से स्त्रियम् और स्त्रियः बना तथा नदीसंज्ञक में 'अम् शसोरादिर्लोपम्' से 'अ' का लोप होकर स्त्रीम्, स्त्रीः बना । स्त्री + टा = स्त्रिया । स्त्री + ङे, ङसि आदि । 'ह्रस्वश्च ङवति' इस सूत्र से ङे आदि के आने पर विकल्प से नदी संज्ञा होती थी किन्तु इस विकल्प को ही बाधित करने के लिये 'स्त्री नदीवत्' यह २३०वाँ सूत्र लगा था अतः यहाँ विकल्प का निषेध होने से स्त्री शब्द में ङे आदि के आने पर धातुवत् कार्य होकर इय् भी हुआ और नदी संज्ञा होने से विभक्तियों को ऐ आस् आस् आम् भी हुआ तो स्त्रिय् + ऐ = स्त्रियै स्त्रिय् + आस् = स्त्रियाः, स्त्रियाः, स्त्रियाम् बन गया । सर्वत्र स्वर वाली विभक्ति के आने पर ई को इय् हुआ है ।

स्त्री	स्त्रियौ	स्त्रियः	स्त्रियै	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
हे स्त्रि !	हे स्त्रियौ !	हे स्त्रियः!	स्त्रियाः	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभ्यः
स्त्रीम्, स्त्रियम्	स्त्रियौ	स्त्रीः, स्त्रियः	स्त्रियाः	स्त्रियोः	स्त्रीणाम्
स्त्रिया	स्त्रीभ्याम्	स्त्रीभिः	स्त्रियाम्	स्त्रियोः	स्त्रीषु

श्री शब्द में कुछ भेद हैं ।

श्री + सि = श्रीः

श्री + औ 'ईदूतोरियुवौ स्वरे' इस सूत्र से इय् आदेश होकर श्रियौ, श्रियः आदि । संबोधन में —श्री + सि श्री शब्द की नदी संज्ञा अनित्य है; अतः संबोधन में ह्रस्व नहीं होगा अंतः हे श्रीः ! बना ।

श्री + ङे, ङसि आदि ।

नदी संज्ञा होने पर ऐ, आस्, आस्, आम् आदेश होकर इय् आदेश हो जाता है । तब 'श्रियै' और जब नदी संज्ञा नहीं हुई इय् होकर श्रिये बना ।

श्री + आम्

आम् विभक्ति के आने पर स्त्रीलिंग में इय् उव् स्थानीय शब्दों की नदी संज्ञा विकल्प से होती है ॥२३३ ॥

किसी कार्य के सिद्ध होने पर भी जो पुनः सूत्र का आरंभ होता है वह नियम के लिये होता है । नदीवत् कार्य क्या है ? 'आमि च नुः' इस सूत्र से नु का आगम होकर न् को ण् होकर श्रीणाम् बना, अन्यत्र इय् आगम होकर श्रियाम् बना । श्री + ङि नदी संज्ञा होने पर श्रियाम्, अन्यत्र श्रियि बनेगा ।

श्रीः	श्रियौ	श्रियः	श्रियै, श्रिये	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
हे श्रीः !	हे श्रियौ !	हे श्रियः !	श्रियाः, श्रियः	श्रीभ्याम्	श्रीभ्यः
श्रियम्	श्रियौ	श्रियः	श्रियाः, श्रियः	श्रियोः	श्रीणाम्, श्रियाम्
श्रिया	श्रीभ्याम्	श्रीभिः	श्रियाम्, श्रियि	श्रियोः	श्रीषु ।

लक्षेरीमोऽन्तश्च ॥२३४॥

लक्षधातोरीप्रत्ययो भवति मोऽन्तश्च ॥ ईकारोऽन्ते यस्य लिङ्गस्येति वचनात् ईकारान्तात्सिरिति सेर्लोपो न भवति।

अवीलक्ष्मीतरीतन्त्री-ह्रीधीश्रीणामुणादितः।
अपि स्त्रीलिङ्गजातीनां सिलोपो न कदाचन॥१॥

लक्ष्मीः। लक्ष्म्यौ। लक्ष्म्यः। अन्यत्र नदीशब्दवत्। इति ईकारान्ताः। उकारान्तः स्त्रीलिङ्गश्चञ्चुशब्दः। स च रुचिशब्दवत्। विशेषस्तु उत ओत्वमवादेशश्च। चञ्चुः। चञ्चू। चञ्चवः। हे चञ्चो। हे चञ्चू। हे चञ्चवः। चञ्चुम्। चञ्चू। चञ्चूः। चञ्च्वा। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभिः। ह्रस्वश्च ङवतीति वा नदीवद्भावादैआसादयः। पक्षे भानुशब्दवत्। चञ्च्वै, चञ्चवे। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभ्यः। चञ्च्वाः, चञ्चोः। चञ्चुभ्याम्। चञ्चुभ्यः। चञ्च्वाः, चञ्चोः। चञ्च्वोः। चञ्चूणाम्। चञ्च्वाम्, चञ्चौ। चञ्च्वोः। चञ्चुषु। एवं उडु तनु प्रियङ्गु स्नायु ऊरु करेणु धेनुप्रभृतयः। इत्युकारान्ताः॥ ऊकारान्तः स्त्रीलिङ्गो वधूशब्दः। सौ—अनीकारान्तत्वात् ईकारान्तात्सिरिति सेर्लोपो न भवति। वधूः। वध्वौ। वध्वः। संबुद्धौ ह्रस्वः। हे वधु। हे वध्वौ। हे वध्वः। अन्यत्र नदीवत्। एवं अलाबू कच्छू यवागू चमू तण्डू कमण्डलू कद्रू कण्डू कासूप्रभृतयः भ्रूशब्दस्य तु भेदः। सौ-भ्रूः।

लक्ष्मी शब्द में कुछ भेद है।

'लक्ष' धातु देखने और गिनती करने अर्थ में है।

लक्ष धातु से 'ई' प्रत्यय होकर अंत में म् का आगम हो जाता है ॥२३४॥

इस नियम से लक्ष्मी बना।

ईकारांत शब्द से सि विभक्ति के आने पर 'ईकारांतात्सिः' इस सूत्र से सि का लोप होता था सो नहीं हुआ है अतः लक्ष्मीः बना।

श्लोकार्थ—अवी, लक्ष्मी, तरी, तन्त्री, ह्री, धी, श्री शब्दों में उणादि गण के स्त्रीलिंग वाची शब्दों में कदाचित् भी सि का लोप नहीं होता है।

लक्ष्मीः	लक्ष्म्यौ	लक्ष्म्यः	लक्ष्म्यै	लक्ष्मीभ्यां	लक्ष्मीभ्यः
हे लक्ष्मि !	हे लक्ष्म्यौ !	हे लक्ष्म्यः !	लक्ष्म्याः	लक्ष्मीभ्याम्	लक्ष्मीभ्यः
लक्ष्मीम्	लक्ष्म्यौ	लक्ष्मीः	लक्ष्म्याः	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीणाम्
लक्ष्म्या	लक्ष्मीभ्यां	लक्ष्मीभिः	लक्ष्म्याम्	लक्ष्म्योः	लक्ष्मीषु

र ष के बाद पवर्ग का अन्तर होने पर भी न को ण होता है।

ईकारांत शब्द पूर्ण हुये।

अब उकारांत स्त्रीलिंग चञ्चु शब्द है।

चञ्चु + सि। चञ्चुः, चञ्चू, चञ्चवः।

यह शब्द रुचि शब्द के समान चलेगा। विशेष इतना है कि 'उ' को 'ओ' और 'ओ' को पुनः अव् आदेश हो जाता है अतः हे चञ्चो ! बनेगा।

चञ्चु + ङे, ङसि आदि 'ह्रस्वश्च ङवति' सूत्र से नदी संज्ञावत् कार्य करने से ऐ आस् आस् आम् हो जाता है अन्यथा भानु शब्दवत् रूप चलता है।

चञ्चुः	चञ्चू	चञ्चवः	चञ्च्वै, चञ्चवे	चञ्चुभ्याम्	चञ्चुभ्यः
हे चञ्चो !	हे चञ्चू !	हे चञ्चवः	चञ्च्वाः, चञ्चोः	चञ्चुभ्याम्	चञ्चुभ्यः
चञ्चुम्	चञ्चू	चञ्चूः	चञ्च्वाः, चञ्चोः	चञ्च्वोः	चञ्चूनाम्
चञ्च्वा	चञ्चुभ्याम्	चञ्चुभिः	चञ्च्वाम्, चञ्चौ	चञ्च्वोः	चञ्चुषु

भ्रूर्धातुवत् ॥२३५॥

भ्रूशब्दो धातुवद्भवति विभक्तिस्वरे परे। भ्रुवौ। भ्रुवः। सम्बोधनेऽप्यनित्यनदीत्वात् संबुद्धौ ह्रस्वो नास्ति। अन्यत्र नदीवत्। हे भ्रूः। हे भ्रुवौ। हे भ्रुवः। भ्रुवम्। भ्रुवौ भुवः। भ्रुवा। भ्रूभ्याम्। भ्रूभिः। भ्रुवे, भ्रुवै। भ्रूभ्याम्। भ्रूभ्यः। भ्रुवाः, भ्रुवः। भ्रूभ्याम्। भ्रूभ्यः। भ्रुवाः, भ्रुवः। भ्रुवोः। भ्रूणाम्। भ्रुवि, भ्रुवाम्। भ्रुवोः। भ्रूषु॥ इत्यूकारान्ताः॥ ऋकारान्तः स्त्रीलिङ्गो मातृशब्दः। माता। मातारौ। मातरः। हे मातः। हे मातरौ। हे मातरः। मातरम्। मातरौ। मातॄः। स्त्रीलिङ्गत्वात्सस्य नत्वाभावः। इत्यादि। अन्यत्र पितृशब्दवत्। एवं दुहितृ ननान्दृप्रभृतयः। स्वस्रादीनां च पूर्ववत्। स्वस्रादयः के ?

इसी प्रकार से उडु, तनु, प्रियंगु, स्नायु, ऊरू, करेणु, धेनु आदि शब्द चलते हैं। इस प्रकार उकारांत शब्द हुये।

ऊकारांत स्त्रीलिंग वधू शब्द है।

वधू + सि, ईकारांत न होने से 'ईकारांतात्सिः' इस सूत्र से सि का लोप न होने से वधूः बना। संबोधन में ह्रस्व होकर हे वधु ! अन्यत्र नदीवत्।

वधूः	वध्वौ	वध्वः	वध्वै	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
हे वधु !	हे वध्वौ !	हे वध्वः !	वध्वाः	वधूभ्याम्	वधूभ्यः
वधूम्	वध्वौ	वधूः	वध्वाः	वध्वोः	वधूनाम्
वध्वा	वधूभ्याम्	वधूभिः	वध्वाम्	वध्वोः	वधूषु

इसी प्रकार से अलाबू आदि शब्द चलेंगे।

भ्रू + सि = भ्रूः। भ्रू + औ

स्वर वाली विभक्ति के आने पर भ्रू शब्द धातुवत् हो जाता है.॥२३५॥

भ्रुवौ, भ्रुवः। भ्रू शब्द की भी नदी संज्ञा अनित्य है अतः संबोधन में ह्रस्व नहीं होता है अतः हे भ्रूः ! हे भ्रुवौ ! हे भ्रुवः ! नदी संज्ञा के पक्ष में ङे आदि विभक्ति को क्रमशः ऐ आस् आस् आम् होकर ऊ को उव् होगा। अतः

भ्रू	भ्रुवौ	भ्रुवः	भ्रुवै, भ्रुवे	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
हे भ्रूः !	हे भ्रुवौ !	हे भ्रुवः !	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रूभ्याम्	भ्रूभ्यः
भ्रुवम्	भ्रुवौ	भ्रुवः	भ्रुवाः, भ्रुवः	भ्रुवोः	भ्रुवाम्, भ्रूणाम्
भ्रुवा	भ्रूभ्याम्	भ्रूभिः	भ्रुवाम्, भ्रुवि	भ्रुवोः	भ्रूषु

इस प्रकार से उकारांत शब्द हो गये। ऋकारांत स्त्रीलिंग मातृ शब्द है।

मातृ + सि 'आसौ सिर्लोपश्च' इस सूत्र से ऋ को आ होकर सि का लोप हो गया तो माता बना। यह शब्द पितृ शब्द के समान ही चलता है केवल शस् में स् को न् नहीं होता है अतः मातॄः बना।

माता	मातरौ	मातरः	मात्रे	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
हे मातः !	हे मातरौ !	हे मातरः !	मातुः	मातृभ्याम्	मातृभ्यः
मातरम्	मातरौ	मातॄः	मातुः	मात्रोः	मातॄणाम्
मात्रा	मातृभ्याम्	मातृभिः	मातरि	मात्रोः	मातृषु

इसी प्रकार से दुहितृ, ननान्दृ आदि शब्द चलते हैं। स्वसृ आदि शब्द भी पूर्ववत् चलते हैं। स्वसृ आदि शब्द भी पूर्ववत् चलते हैं। स्वसृ आदि में आदि शब्द से कितने रूप आवेंगे ?

स्वसा तिस्रश्चतस्रश्च ननान्दा दुहिता तथा।

याता मातेति सप्तैते स्वस्रादिष्वध्यगीषत ॥१ ॥

शसादौ मातृशब्दवत्। इति ऋकारान्ताः। ॠकार लृकार ॡकार एकारान्ता अप्रसिद्धाः। ऐकारान्तः स्त्रीलिङ्गो सुरैशब्दः। स च रैशब्दवत्। सुराः सुरायौ सुरायः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। सुरायम् सुरायौ सुरायः। सुराया सुराभ्याम् सुराभिः। सुरायै सुराभ्याम् सुराभ्यः। सुरायः सुराभ्याम् सुराभ्यः। सुरायः सुरायोः सुरायाम्। सुरायि सुरायोः सुरासु। इत्यैकारान्ताः। ओकारान्तः स्त्रीलिङ्गो गोशब्दः। स च पूर्ववत्। औकारान्तः स्त्रीलिङ्गो नौशब्दः। स च ग्लौशब्दवत्। इत्यौकारान्ताः।

इति स्वरान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ❑

अथ स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गा उच्यन्ते

अकारान्तो नपुंसकलिङ्गः कुलशब्दः। सौ—

अकारादसम्बुद्धौ मुश्च ॥२३६ ॥

अकारान्तान्नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति मुरागमश्चासम्बुद्धौ। कुलं।

श्लोकार्थ—स्वसृ, तिसृ, चतसृ, ननान्दृ, दुहितृ, यातृ, मातृ ये सात शब्द यहाँ आदि शब्द से लिये गये हैं।

इनमें भी शस् विभक्ति में मातृ शब्दवत् रूप बनते हैं। इस प्रकार से ऋकारांत शब्द हुए।

ॠकारांत, लृकारांत और ॡकारांत और एकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब ऐकारांत स्त्रीलिंग 'सुरै' शब्द है।

सुरै + सि है। 'रैः' इस सूत्र से व्यंजनवाली विभक्ति के आने पर ऐ को आ हो जाता है तब 'राः' बना।

सुराः	सुरायौ	सुरायः	सुरायै	सुराभ्याम्	सुराभ्यः
हे सुराः !	हे सुरायौ !	हे सुरायः !	सुरायः	सुराभ्याम्	सुराभ्यः
सुरायम्	सुरायौ	सुरायः	सुरायः	सुरायोः	सुरायाम्
सुराया	सुराभ्याम्	सुराभिः	सुरायि	सुरायोः	सुरासु

इस प्रकार से ऐकारांत शब्द हुए। अब ओकारांत यो शब्द है जो कि पूर्ववत् चलता है। औकारांत स्त्रीलिंग 'नौ' शब्द है। यह ग्लौ शब्दवत् चलता है। इस प्रकार से औकारांत शब्द हुये।

स्वरांत स्त्रीलिंग प्रकरण पूर्ण हुआ। ❑

अब स्वरांत नपुंसकलिंग प्रकरण कहा जाता है।

अकारांत नपुंसकलिंग कुल शब्द है।

कुल + सि, कुल + अम्

अकारांत नपुंसकलिंग से परे संबुद्धि को छोड़कर सि, अम् विभक्ति का लोप हो जाता है और मु का आगम हो जाता है ॥२३६ ॥

एक को हटाकर उसी स्थान पर दूसरे प्रत्यय के आने पर उसे आदेश कहते हैं एवं पृथक् रूप से किसी प्रत्यय के आने को आगम कहते हैं। आदेश शत्रुवत् माना गया है एवं आगम मित्रवत् माना गया है।

कुल + मु 'उ' का अनुबंध लोप होकर कुलम् बना।

कुल + औ

औरीम् ॥२३७॥

नपुंसकलिङ्गात्परः औरीमापद्यते । कुले ।

जस्शसौ नपुंसके ॥२३८॥

जस्शसौ नपुंसकलिङ्गे घुट्संज्ञौ भवतः ।

जस्शसोः शिः ॥२३९॥

सर्वनपुंसकलिङ्गात्परयोर्जस्शसोः शिर्भवति । शकारः सर्वादेशार्थः ।

धुट्स्वराद्घुटि नुः ॥२४०॥

धुटः पूर्वः स्वरात्परश्च नपुंसकलिङ्गे घुटि परे नुरागमो भवति । घुटि चासम्बुद्धौ इति दीर्घः । कुलानि । हे कुल । हे कुले । हे कुलानि । पुनरपि । कुलम् । कुले । कुलानि । कुलेन । कुलाभ्याम् । कुलैः । अतः परं पुरुषशब्दवत् ॥ एवं दान धन धान्य मित्र वस्त्र वसन वदन नयन पुण्य पाप सुख दुःखादयः । सर्वनाम्नः प्रथमाद्वितीययोः कुलशब्दवत् । सर्वम् । सर्वे । सर्वाणि । पुनरपि । अन्यत्र पुंलिङ्गवत् । अन्यशब्दस्य तु भेदः ।

नपुंसक लिंग से परे औ को 'ई' हो जाता है ॥२३७॥

कुल + ई = कुले बना ।　　　　　　　　कुल + जस्, कुल + शस्

नपुंसक लिंग में जस् शस् को घुट संज्ञा हो जाती है ॥२३८॥

नपुंसक लिंग से परे जस् शस् को शि आदेश हो जाता है ॥२३९॥

यहाँ शकार सर्वादेश के लिये है अर्थात् श् का अनुबन्ध लोप हो जाता है एवं श के निमित्त से यह आदेश संपूर्ण विभक्ति को हो जाता है उसके एक अंश को नहीं अतः—

कुल + इ

पूर्व के धुट् से परे नपुंसक लिंग की घुट् विभक्ति के आने पर 'नु' का आगम हो जाता है ॥२४०॥

तब कुल न् इ हुआ पुनः 'घुटि चासंबुद्धौ' इस १७७वें सूत्र से अ को दीर्घ होकर कुलानि बना । संबोधन में कुल + सि 'ह्रस्वनदीश्रद्धाभ्यः' इत्यादि सूत्र से सि का लोप होकर हे कुल ! बना । आगे पुरुषवत् समझना ।

कुलम्	कुले	कुलानि	कुलाय	कुलाभ्याम्	कुलेभ्यः
हे कुल !	हे कुले !	हे कुलानि !	कुलात्	कुलाभ्याम्	कुलेभ्यः
कुलम्	कुले	कुलानि	कुलस्य	कुलयोः	कुलानाम्
कुलेन	कुलाभ्याम्	कुलैः	कुले	कुलयोः	कुलेषु

इसी प्रकार से दान आदि उपर्युक्त शब्द नपुंसकलिंग में चलते हैं ।

सर्वनाम संज्ञक शब्दों में भी प्रथमा द्वितीया विभक्ति में कुल शब्द के समान एवं तृतीया से सभी पुल्लिंग सर्वनाम के ही समान समझना । जैसे—

सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	सर्वस्मै	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
हे सर्व !	हे सर्वे !	हे सर्वाणि !	सर्वस्मात्	सर्वाभ्याम्	सर्वेभ्यः
सर्वम्	सर्वे	सर्वाणि	सर्वस्य	सर्वयोः	सर्वेषाम्
सर्वेण	सर्वाभ्याम्	सर्वैः	सर्वस्मिन्	सर्वयोः	सर्वेषु

अन्य शब्द में कुछ भेद है ।

अन्य + सि, अन्य + अम्

अन्यादेस्तु तुः ॥२४१ ॥

अन्यादेर्नपुसंकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति तुरागमश्च। द्वितीयस्तुशब्दः किमर्थम् ? असम्बुद्ध्यधिकारनिवृत्त्यर्थम्।

वा विरामे ॥२४२ ॥

विरामे धुटां प्रथमस्तृतीयो वा भवति। अन्यत्, अन्यद्। अन्ये। अन्यानि। हे अन्यद्, हे अन्यत्। हे अन्ये। हे अन्यानि॥ शेषं पुंवत्। एवमेकतरं वर्जयित्वान्यतरप्रभृतयः।

नैकतरस्य ॥२४३ ॥

एकतरशब्दस्य नपुंसकलिङ्गे तुरागमो न भवति। एकतरम्। एकतरे। एकतराणि। हे एकतर। हे एकतरे। हे एकतराणि। पुनरपि। अन्यत्र सर्वशब्दवत्। इत्यकारान्ताः। आकारान्तो नपुंसकलिंगः सोमपाशब्दः।

स्वरे ह्रस्वो[1] नपुंसके ॥२४४ ॥

नपुंसक लिंग में अन्य आदि से परे सि और अम् का लोप होकर 'तु' का आगम हो जाता है ॥२४१ ॥

उ का अनुबन्ध लोप होकर अन्यत् बना। सूत्र में दूसरा तु शब्द किसलिये है ? असम्बुद्धि अधिकार की निवृत्ति के लिये है।

विराम में धुट् को तृतीय अक्षर विकल्प से होता है ॥२४२ ॥

अन्यत्, अन्यद्	अन्ये	अन्यानि	अन्यस्मै	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
हे अन्यत् !, हे अन्यद् !	हे अन्ये !	अन्यानि !	अन्यस्मात्, द्	अन्याभ्याम्	अन्येभ्यः
अन्यत्, अन्यद्	अन्ये	अन्यानि	अन्यस्य	अन्ययोः	अन्येषाम्
अन्येन	अन्याभ्याम्	अन्यैः	अन्यस्मिन्	अन्ययोः	अन्येषु

इस प्रकार से एकतर को छोड़कर अन्यतर आदि शब्द चलते हैं। एकतर + सि, एकतर + अम्

एकतर शब्द से परे सि, अम् विभक्ति के आने पर तु का आगम नहीं होता है ॥२४३ ॥

अतः मु का आगम होकर एकतरम् एकतरे एकतराणि।

अकारांत शब्द हुये। अब आकारांत नपुंसकलिंग 'सोमपा' शब्द है। नपुंसक लिंग में वर्तमान स्वर ह्रस्व हो जाता है ॥२४४ ॥

अतः सोमप + सि है।

'अकारादसंबुद्धौ मुश्च' २३६वें सूत्र से अकारांत नपुंसक लिंग से परे 'सि, अम्' का लोप होकर 'मु' का आगम हो गया तब सोमपम् बना।

सोमपम्	सोमपे	सोमपानि	सोमपाय	सोमपाभ्याम्	सोमपेभ्यः
हे सोमप !	हे सोमपे !	हे सोमपानि !	सोमपात्, द्	सोमपाभ्याम्	सोमपेभ्यः
सोमपम्	सोमपे	सोमपानि	सोमपस्य	सोमपयोः	सोमपानाम्
सोमपेन	सोमपाभ्याम्	सोमपैः	सोमपे	सोमपयोः	सोमपेषु

---

१. पर्जन्यवल्लक्षणप्रवृत्तया ह्रस्वस्यापि ह्रस्वः। काण्डे कुण्ड्ये काण्डीभूतं कुलमित्यत्र नपुंसके इति लिङ्गोपादानान्न भवति। युगवरत्राय युगवरत्रार्थमित्यत्रासिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे इति न भवति॥

नपुंसकलिङ्गे वर्तमानः स्वरो ह्रस्वो भवति। सोमपम्। सोमपे। सोमपानि। हे सोमप। हे सोमपे! हे सोमपानि। पुनरपि। सोमपं। सोमपे। सोमपानि। शेषं पुल्लिङ्गवत्। इत्याकारान्ताः। इकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वारिशब्दः। सौ—

नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तं ॥२४५॥

नपुंसकात्परयोः स्यमोर्लोपो भवति तदुक्तं कार्यं न भवति। वारि।

नामिनः स्वरे ॥२४६॥

नाम्यन्तान्नपुंसकलिङ्गान्नुरागमो भवति स्वरे परे। औरीमिति ईत्वं णत्वञ्च। वारिणी। जसि पूर्ववत्। नुरागमः। सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात्। उक्तञ्च।

सामान्यशास्त्रतो नूनं विशेषो बलवान् भवेत्।
परेण पूर्वबाधो वा प्रायशो दृश्यतामिह ॥१॥

धुट्स्वराद्घुटि नुः इत्यनेन सूत्रेण नुरागमो भवतीत्यर्थः॥

इन्हन्पूषार्यम्णां शौ च ॥२४७॥

इन् हन् पूषन् अर्यमन् इत्येतेषामुपधाया दीर्घो भवति नपुंसकलिङ्गे जस्शसोरादेशे शौ चासम्बुद्धौ सौ च परे। वारीणि।

इस प्रकार से आकारांत शब्द हुये। अब इकारांत नपुंसक लिंग वारि शब्द है।

वारि + सि, वारि + अम्

नामि है अन्त में जिनके ऐसे शब्दों में नपुंसकलिंग से परे सि, अम् का लोप होकर 'मु' तु का आगम नहीं होता है ॥२४५॥

अतः वारि, वारि बना। वारि + औ

नाम्यंत नपुंसक लिंग से परे नु का आगम हो जाता है स्वर वाली विभक्ति के आने पर ॥२४६॥

अतः 'औरीम्' सूत्र से औ को 'ई' एवं रषृवर्णेभ्यः इत्यादि सूत्र के निमित्त से न् को ण् होकर वारिणी बना।

जस् विभक्ति के आने पर पूर्ववत् जस् को 'इ' और नु का आगम तथा 'घुटि चासंबुद्धौ' से दीर्घ प्राप्त था। यद्यपि यहाँ 'नामिनः स्वरे' सूत्र से नु का आगम हो सकता था फिर भी सामान्य और विशेष में विशेष विधि बलवान होती है इस न्याय से 'धुट् स्वराद् घुटि नः' २४०वें सूत्र से जस्, शस् के आने पर नु का आगम हुआ है। इसी बात को श्लोक में भी कहा है—

श्लोकार्थ—सामान्य शास्त्र की अपेक्षा से निश्चित ही विशेष शास्त्र बलवान् होता है अथवा प्रायः करके व्याकरण में पर सूत्र की अपेक्षा पूर्व सूत्र बाधित हो जाया करते हैं।

इन् हन् पूषन् अर्यमन् इन शब्दों की उपधा को दीर्घ हो जाता है नपुंसक लिंग में जस् शस् को शि आदेश होने पर एवं असंबुद्धि सि के आने पर ॥२४७॥

अतः 'वारि न् इ' इसमें न् की उपधा को दीर्घ हो गया पश्चात् 'रषृवर्णेभ्यः' इत्यादि सूत्र से न् को ण् होकर वारीणि बना।

संबोधन में वारि + सि

नाम्यन्तचतुरां वा[1] ॥२४८॥

नाम्यन्तस्य नपुंसकलिंगस्य चत्वार् शब्दस्य च यदुक्तं कार्यं तद् वा भवति सम्बुद्धौ परे। प्रत्ययलोपे प्रत्ययलक्षणं न याति इति न्यायात्, हे वारि, हे वारे। हे वारिणी। हे वारीणि। पुनरपिवारि। वारिणी। वारीणि। वारिणा। वारिभ्याम्। वारिभि:। वारिणे। वारिभ्याम्। वारिभ्य:। वारिण:। इत्यादि। आमि। 'नामिन: स्वरे' प्राप्ते सति सामान्यविशेषयोर्विशेषो विधिर्बलवान् इति न्यायात् आमि च नुरिति नुरागमो भवति। दीर्घमामि सनौ। वारीणाम्। वारिणि। वारिणो:। वारिषु॥ अस्थि दधि सक्थि अक्षिशब्दानां प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। अस्थि। अस्थिनी। अस्थीनि। पुनरपि-अस्थि। अस्थिनी। अस्थीनि। टादौ—

अस्थिदधिसक्थ्यक्ष्णामनन्तष्टादौ ॥२४९॥

नपुंसकलिंगानामस्थ्यादीनामन्तोऽन् भवति टादौ स्वरे परे।

अवमसंयोगादनोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ[2] ॥२५०॥

नपुंसक लिंग में नाम्यन्त और चत्वार् शब्द से परे जो कार्य कहा गया है वह विकल्प से होता है॥२४८॥

सम्बोधन में—अत: सि का लोप होकर हे वारि बना इसमें सि प्रत्यय का लोप होने से प्रत्यय लक्षण कोई कार्य नहीं होता है इस न्याय से एक बार हे वारि ! पुन: 'संबुद्धौ च' सूत्र से इ को ए हो गया।

वारि + आम् 'नामिन: स्वरे' से नु का आगम प्राप्त था किन्तु सामान्य और विशेष में विशेष विधि ही बलवान् होती है। इस न्याय से 'आमि च नु:' सूत्र से नु का आगम होकर 'दीर्घ होकर वारीणाम्' बना।

वारि	वारिणी	वारीणि	वारिणे	वारिभ्याम्	वारिभ्य:
हे वारि, वारे !	हे वारिणी !	हे वारीणि !	वारिण:	वारिभ्याम्	वारिभ्य:
वारि	वारिणी	वारीणि	वारिण:	वारिणो:	वारीणाम्
वारिणा	वारिभ्याम्	वारिभि:	वारिणि	वारिणो:	वारिषु

आगे अस्थि, सक्थि और अक्षि शब्दों में प्रथमा और द्वितीया विभक्तियों में वारि शब्द के समान है टा आदि विभक्तियों में कुछ भेद है।

टा आदि स्वर वाली विभक्ति के आने पर नपुंसक लिंग में अस्थि आदि के अन्तिम 'इ' को अन् आदेश हो जाता है॥२४९॥

अत: अस्थन् + आ है।

जिसमें व, म संयुक्त नहीं है ऐसे अस्थन् आदि के अकार का लोप हो जाता है अघुट स्वर के आने पर और अलुप्तवत् होता है। पूर्ववर्ण की विधि होने पर॥२५०॥

---

१. तदुक्तं च कार्यं किं ? हे वारे इत्यत्र "संबुद्धौ च" इति सूत्रेण एत्वं विकल्पेन भवति॥

२. संयोगादेर्धुट इति सस्य लोपो भवति तस्मात्कारणात् अलुप्तवदिति वचनं।

अवमसंयोगात्परस्य अनोऽकारस्य लोपो भवति अघुटि स्वरे परे स चालुप्तवद्भवति पूर्वस्य वर्णस्य विधौ कर्तव्ये। अस्थ्ना । अस्थिभ्याम्। अस्थिभिः। अस्थ्ने। अस्थिभ्याम्। अस्थिभ्यः। अस्थ्नः। अस्थिभ्याम्। अस्थिभ्यः। अस्थ्नः। अस्थ्नोः। अस्थ्नाम्।

ईङ्योर्वा ॥२५१॥

अवमसंयोगात्परस्य अनोऽकारस्य लोपो भवति वा ईङ्योः नपुंसकलिंगे औकारादेशे ईकारे सप्तम्येकवचने परतः स चालुप्तवद्भवति पूर्वस्य वर्णस्य विधौ कर्तव्ये। अस्थ्नि, अस्थनि। अस्थ्नोः। अस्थिषु। एवं दधि सक्थि अक्षिशब्दाः। शुचिशब्दस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। शुचि। शुचिनी। शुचीनि। सम्बुद्धावविशेषः। पुनरपि—शुचि। शुचिनी। शुचीनि।

टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद्वा[1] ॥२५२॥

नाम्यन्तं भाषितपुंस्कं नपुंसकलिङ्गं टादौ स्वरे वा पुंवद्भवति।

अस्थन् + आ = अस्थ्ना, अस्थिभ्याम् आदि।

अस्थन् + ङि

ई और ङि के आने पर अन् के अकार का लोप विकल्प से होता है ॥२५१॥

जिसमें व, म संयुक्त नहीं है ऐसे शब्दों से परे औ के ई आदेश वाली ङि विभक्ति के आने पर अन् के अकार का लोप विकल्प से होता है। तब अस्थ्न् + इ = अस्थ्नि, अस्थनि।

अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि	अस्थ्ने	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्यः
हे अस्थे ! हे अस्थि !	हे अस्थिनी !	हे अस्थीनि !	अस्थ्नः	अस्थिभ्याम्	अस्थिभ्यः
अस्थि	अस्थिनी	अस्थीनि	अस्थ्नः	अस्थ्नोः	अस्थ्नाम्
अस्थ्ना	अस्थिभ्याम्	अस्थिभिः	अस्थ्नि, अस्थनि	अस्थ्नोः	अस्थिषु

इसी प्रकार से दधि, सक्थि और अक्षि शब्दों के रूप चलते हैं। यथा—

अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	अक्ष्णे	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
हे अक्षे, हे अक्षि !	हे अक्षिणी !	हे अक्षीणि !	अक्ष्णः	अक्षिभ्याम्	अक्षिभ्यः
अक्षि	अक्षिणी	अक्षीणि	अक्ष्णः	अक्ष्णोः	अक्ष्णाम्
अक्ष्णा	अक्षिभ्याम्	अक्षिभिः	अक्ष्णि, अक्षणि	अक्ष्णोः	अक्षिषु

शुचि शब्द के रूप प्रथमा द्वितीया में अक्षिवत् ही चलेंगे। टा आदि विभक्ति के आने पर शुचि शब्द के रूपों में कुछ भेद है।

शुचि + आ

टा आदि स्वर वाली विभक्ति के आने पर नाम्यंत भाषितपुंस्क शब्द, नपुंसक लिंग में विकल्प से पुरुष लिंगवत् हो जाते हैं ॥२५२॥

भाषित पुंस्क किसे कहते हैं ?

---

१. एक एव हि यः शब्दस्त्रिषु लिंगेषु वर्त्तते। एकमेवार्थमाख्याति तद्धि भाषितपुंसकं।

यन्निमित्तमुपादाय[1] पुंसि लिङ्गे प्रवर्त्तते।
क्लीबवृत्तौ तदेव स्यात्तद्धि भाषितपुंसकम्॥१॥
शुचि भूमिगतं तोयं शुचिर्नारी पतिव्रता।
शुचिर्धर्मपरो राजा ब्रह्मचारी सदा शुचिः॥२॥

शुच्या, शुचिना। शुचिभ्यां। शुचिभिः। शुचिने, शुचये। शुचिभ्याम्। शुचिभ्यः। इत्यादि॥ द्विशब्दस्य तु भेदः। त्यदाद्यत्वं औरीमिति ईत्वं च। द्वे। हे द्वे। द्वे। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वाभ्याम्। द्वयोः। द्वयोः। त्रिशब्दस्य जस्शसोर्वारिशब्दवत्। त्रीणि। त्रीणि। त्रिभिः। अन्यत्र पुंलिङ्गवत् इति इकारान्ताः। ईकारान्तो नपुंसकलिङ्गो ग्रामणीशब्दः। तस्य स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वत्वे शुचिशब्दवत्। टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद्भावो भवति विकल्पेन। ग्रामणि। ग्रामणिनी। ग्रामणीनि। पुनरपि-ग्रामणि। ग्रामणिनी। ग्रामणीनि। ग्रामणिना। अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद् य्वौ इति यत्वम्। ग्रामण्या। ग्रामणिभ्याम्। ग्रामणिभिः। ग्रामणिने। ग्रामणिभ्याम्। ग्रामणिभ्यः। इत्यादि। आमिनुरागमः। दीर्घमामि सनौ इति दीर्घः। ग्रामणीनाम्। पुंवद्भावे। ग्रामण्याम्। ग्रामणिनि। पुंवति—नियो ङिराम् इति आम्। यत्वं पूर्ववत्। ग्रामण्याम्। ग्रामणिनोः, ग्रामण्योः। ग्रामणिषु। सम्बोधने-नाम्यन्तचतुरां वा। हे ग्रामणे, हे ग्रामणि। हे ग्रामणिनी। हे ग्रामणीनि। एवमग्रणी सेनानीप्रभृतयः॥ इति ईकारान्ता। उकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वस्तुशब्दः। स च वारिशब्दवत्। वस्तु। वस्तुनी। वस्तूनि। सम्बोधने—हे वस्तु, हे वस्तो। हे वस्तुनी। हे वस्तूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे परे नित्यं नपुंसकं। आमि परे-आमि च नुः। दीर्घमामि सनौ इति दीर्घः। वस्तूनां। वस्तुनि। वस्तुनोः। वस्तुषु। मृदुशब्दस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। मृदु।

श्लोकार्थ—जो शब्द जिस निमित्त को लेकर के पुरुष लिंग में प्रवृत्ति करता है और वही नपुंसक लिंग में भी चल जाता है उसे भाषित पुंस्क कहते हैं॥

अर्थात् जो शब्द स्वयं में पुल्लिग हैं, किन्तु निमित्त से नपुंसक लिंग में भी चल जाता है वह भाषित पुंस्क है। उदाहरण के लिए देखिये।

श्लोकार्थ—भूमिगत जल पवित्र है, पतिव्रता स्त्री पवित्र है, धर्म में तत्पर राजा पवित्र है एवं ब्रह्मचारी जन सदा पवित्र हैं॥

इस श्लोक में एक शुचि शब्द तीन के निमित्त या विशेषण से तीन लिंगों में बदल गया। जैसे—तोय शब्द नपुंसक का विशेषण 'शुचि' शब्द नपुंसक लिंग हो गया। पतिव्रता नारी का विशेषण 'शुचिः' शब्द स्त्रीलिंग हो गया और राजा का विशेषण 'शुचिः' शब्द पुल्लिग में चल गया है।

शुचि + टा एक बार पुल्लिगवत् में 'अस्त्रियां टा ना' सूत्र से 'ना' हुआ दूसरी बार 'नामिनः स्वरे' से न् होकर शुचिना बना।

शुचि + ङे पुल्लिग में 'ङे' सूत्र से इ को ए होकर शुचये अन्यथा शुचिने बना।

शुचि	शुचिनी	शुचीनि	शुचये, शुचिने	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
हे शुचे, शुचि !	हे शुचिनी !	हे शुचीनि !	शुचेः, शुचिनः	शुचिभ्याम्	शुचिभ्यः
शुचि	शुचिनी	शुचीनि	शुचेः, शुचिनः	शुच्योः, शुचिनोः	शुचीनाम्
शुचिना	शुचिभ्याम्	शुचिभिः	शुचौ, शुचिनि	शुच्योः, शुचिनोः	शुचिषु

---

१. अत्र। त्रिषु लिंगेषु वर्त्तते। एकमेवार्थमाख्याति तद्धि भाषितपुंसकं। इति पाठोस्ति। उत्तरपद्यस्थोदाहरणैरयमेव समीचीनो भाति।

मृदुनी । मृदूनि । पुनरपि । टादौ स्वरे परे भाषित-पुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः । शुचिवत् । मृदुना २ । मृदुभ्यां । मृदुभिः । इत्यादि । एवं पटु लघु गुरु प्रभृतयः । इत्युकारान्ताः । ऊकारान्तो नपुंसकलिङ्गः खलपूशब्दः । तस्य स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इति ह्रस्वत्वे सेनानीशब्दवत् । खलपु । खलपुनी । खलपूनि । पुनरपि । टादौ भाषितपुंस्कमिति विकल्पेन यत्र पुंवद्भावस्तत्र सेनानीशब्दवत् । खलपुना, खलप्वा । खलपूभ्यां । खलपूभिः । इत्यादि । एवं सरलू । काण्डलू प्रभृतयः । इत्यूकारान्ता । ऋकारान्तो नपुंसकलिङ्गः कर्तृशब्दः । तस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत् । कर्तृ । कर्तृणी । कर्तॄणि । पुनरपि । टादौ पुंवद्भावात्पुल्लिङ्ग-

---

द्वि + औ

'त्यदादीनाम् विभक्तौ' इस १७२वें सूत्र से 'अ' प्रत्यय होकर द्व 'औरीम्' से ई होकर संधि होकर द्वे बना।

द्वे । द्वे । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वाभ्याम् । द्वयोः । द्वयोः ।

त्रि शब्द जस् शस् में वारि शब्दवत् है ।

यथा—त्रि + जस्, त्रि + शस् 'जश्शसोः शिः' इस सूत्र से 'शि' आदेश होकर 'धुट् स्वराद् घुटि नुः' इस २४०वें सूत्र से नु का आगम 'इन् हन् पूषार्यम्णां शौच' इस २४७वें सूत्र से दीर्घ न् को ण् होकर त्रीणि बना।

त्रीणि । त्रीणि । त्रिभिः । त्रिभ्यः । त्रिभ्यः । त्रयाणाम् । त्रिषु ।

इस प्रकार से इकारांत नपुंसक लिंग हुये । अब ईकारांत नपुंसक लिंग में ग्रामणी शब्द है—

ग्रामणी + सि

'स्वरो ह्रस्वो नपुंसके' इस २४४वें सूत्र से ह्रस्व होकर ग्रामणि + सि है ।

'नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तं' इस २४५वें सूत्र से ह्रस्व होकर सि अम् का लोप होकर और कुछ कार्य नहीं होने से 'ग्रामणि' शब्द बना । टा आदि विभक्ति के आने पर 'टादौ भाषितपुंस्कंपुंवद्वा' इस २५२वें सूत्र से विकल्प से पुंवत् होने से एक बार वारिवत् एक बार 'अनेकाक्षरयोस्त्वसंयोगाद्य्वौ' १९०वें सूत्र से ई को य् होकर रूप चलेंगे । आम् विभक्ति के आने पर 'आमि च नुः' से नु का आगम 'दीर्घमामिसनौ' से दीर्घ होकर 'ग्रामणीनाम्' पुंवद् भाव में ग्रामण्याम् बना । ग्रामणि + ङि में ग्रामणिनि पुल्लिग में 'नियोङिराम्' १९१वें सूत्र से आम् होकर ग्रामण्याम् बना।

संबोधन में 'नाम्यंतचतुरां वा' से हे ग्रामणि, हे ग्रामणे ! बना।

ग्रामणि	ग्रामणिनी	ग्रामणीनि
हे ग्रामणि !, हे ग्रामणे !	हे ग्रामणिनी !	हे ग्रामणीनि !
ग्रामणि	ग्रामणिनी	ग्रामणीनि
ग्रामणिना, ग्रामण्या	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभिः
ग्रामणिने, ग्रामण्ये	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभ्यः
ग्रामणिनः, ग्रामण्यः	ग्रामणिभ्याम्	ग्रामणिभ्यः
ग्रामणिनः, ग्रामण्यः	ग्रामणिनोः, ग्रामण्योः	ग्रामणीनाम्, ग्रामण्याम्
ग्रामणिनि, ग्रामण्याम्	ग्रामणिनोः, ग्रामण्योः	ग्रामणिषु

इसी प्रकार से अग्रणी, सेनानी शब्द के रूप चलेंगे।

इस प्रकार ईकारांत नपुंसक लिंग शब्द हुये अब उकारांत नपुंसक लिंग वस्तु शब्द है वह वारि शब्द के समान चलता है । यह वस्तु टा आदि स्वर वाली विभक्तियों के आने पर 'आमि च नुः' से नु का आगम होकर 'दीर्घमामिसनौ' से दीर्घ होकर वस्तूनाम् बनता है । यथा—

वद्वा। कर्त्रा, कर्तृणा। कर्तृभ्यां। कर्तृभिः। कर्त्रे, कर्तृणे। कर्तृभ्यां। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्तृभ्यां। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्तृभ्यां। कर्तृभ्यः। कर्तुः, कर्तृणः। कर्त्रोः, कर्तृणोः। आमि परे नुरागमः। कर्तृणाम्। कर्तृणि, कर्तरि। कर्त्रोः कर्तृणोः। कर्तृषु। सम्बोधने—हे कर्तृ, हे कर्तः। हे कर्तृणी। हे कर्तॄणि। बहुक्रोष्टृशब्दस्य तु भेदः। क्रोष्टुः ऋत उत्सम्बुद्धौ इत्यादिना उर्भवति। शसि व्यञ्जने नपुंसके च इति ऋत उकारः। बहुक्रोष्टु। बहुक्रोष्टुनी। बहुक्रोष्टूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः अयमेकविकल्पः।

वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि	वस्तुने	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
हे वस्तु ! हे वस्तो !	हे वस्तुनी !	हे वस्तूनि !	वस्तुनः	वस्तुभ्याम्	वस्तुभ्यः
वस्तु	वस्तुनी	वस्तूनि	वस्तुनः	वस्तुनोः	वस्तूनाम्
वस्तुना	वस्तुभ्याम्	वस्तुभिः	वस्तुनि	वस्तुनोः	वस्तुषु

'मृदु' शब्द प्रथमा द्वितीया में वारि शब्द के समान चलता है एवं टा आदि स्वर वाली विभक्तियों के आने पर "टादौ भाषित पुंस्कं पुंवद्वा" २५२वें सूत्र से विकल्प से पुल्लिंग में चल जाता है। तब पुल्लिंग में शुचिवत् हो जाता है। यथा—

मृदु	मृदुनी	मृदूनि	मृदुने, मृदवे	मृदुभ्याम्	मृदुभ्यः
हे मृदु ! हे मृदो !	हे मृदुनी !	हे मृदूनि !	मृदुनः, मृदोः	मृदुभ्याम्	मृदुभ्यः
मृदु	मृदुनी	मृदूनि	मृदुनः, मृदोः	मृदुनोः, मृद्वोः	मृदूनाम्
मृदुना, मृदुना	मृदुभ्याम्	मृदुभिः	मृदुनि, मृदौ	मृदुनोः, मृद्वोः	मृदुषु

इसी प्रकार से लघु गुरु आदि शब्दों के रूप चलते हैं। उकारांत शब्द पूर्ण हुये। अब ऊकारांत नपुंसक लिंग में खलपू शब्द है।

खलपू + सि 'स्वरो ह्रस्वे नपुंसके' सूत्र से ह्रस्व होकर सेनानी के समान चलेगा। टा आदि स्वरवाली विभक्तियों के आने पर भाषित पुंस्क होने से विकल्प से पुंवद् हो जावेगा।

खलपु	खलपुनी	खलपूनि
हे खलपु ! हे खलपो !	हे खलपुनी !	हे खलपूनि !
खलपु	खलपुनी	खलपूनि
खलपुना, खलप्वा	खलपुभ्याम्	खलपुभिः
खलपुने, खलप्वे	खलपुभ्याम्	खलपुभ्यः
खलपुनः, खलप्वः	खलपुभ्याम्	खलपुभ्यः
खलपुनः, खलप्वः	खलपुनोः, खलप्वोः	खलपूनाम्, खलप्वाम्
खलपुनि, खलप्वि	खलपुनोः, खलप्वोः	खलपुषु

इसी प्रकार से सरलू, काण्डलू आदि शब्द नपुंसक लिंग में चलते हैं।

ऊकारांत शब्द हुये। अब ऋकारांत नपुंसक लिंग कर्तृ शब्द है। यह शब्द प्रथमा, द्वितीया में वारि शब्दवत् चलता है और टा आदि स्वर वाली विभक्तियों के आने पर पुंवद्भाव होने से विकल्प से पुल्लिग में भी चलता है।

कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	कर्त्रे, कर्तृणे	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
हे कर्तृ !, हे कर्तः !	हे कर्तृणी !	हे कर्तॄणि !	कर्तुः, कर्तृणः	कर्तृभ्याम्	कर्तृभ्यः
कर्तृ	कर्तृणी	कर्तॄणि	कर्तुः, कर्तृणः	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तॄणाम्
कर्त्रा, कर्तृणा	कर्तृभ्याम्	कर्तृभिः	कर्तरि, कर्तृणि	कर्त्रोः, कर्तृणोः	कर्तृषु

×टादौ स्वरे वा ॥२०२ ॥

क्रोष्टृशब्दस्य ऋत उर्वा भवति टादौ स्वरे परे। इति द्वितीयविकल्पः। इति उभयविकल्पे त्रैरूप्यं। बहुक्रोष्टुना, बहुक्रोष्ट्वा, बहुक्रोष्ट्रा। बहुक्रोष्टुभ्यां। बहुक्रोष्टुभिः। इत्यादि। सम्बोधने। हे बहुक्रोष्टु, हे बहुक्रोष्टो। हे बहुक्रोष्टुनी। हे बहुक्रोष्टूनि। इत्यादि। ॠकार लृकार ॡकारान्ता एकारान्ताश्चाप्रसिद्धाः॥ ऐकारान्ता नपुंसकलिङ्गो अतिरैशब्दः। तस्य ह्रस्वत्वे—

सन्ध्यक्षराणामिदुतौ ह्रस्वादेशे ॥२५३ ॥

सन्ध्यक्षराणां ह्रस्वादेशे सति इदुतौ भवतः। तपरकरणमसन्देहार्थं। इति एकारस्यैकारस्य च ह्रस्व इकारः। ओकारस्यौकारस्य च ह्रस्व उकारः। अतिरि। नामिनः स्वरे इति नुरागमः। अतिरिणी। अतिरीणि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पेन पुंवद्भावः। यत्र पुंवद्भावस्तत्र सुरैशब्दवत्। अतिरिणा, अतिराया। व्यञ्जनादौ प्रत्यये परे रैरिति आत्वं। कुतः ? एकदेशविकृतमनन्यवत् इति न्यायात्। अतिराभ्यां। अतिराभिः। अतिरिणे, अतिराये। अतिराभ्यां। अतिराभ्यः। इत्यादि। इति ऐकारान्ताः। ओकारान्तो नपुंसकलिङ्गश्चित्रगोशब्दः। तत्र ओकारस्य ह्रस्व उकारः। मृदुशब्दवत्। चित्रगु।

बहु क्रोष्टृ शब्द है।

"क्रोष्टुः ऋत उत् संबुद्धौ शसि व्यञ्जने नपुंसके च" इस २०१वें सूत्र से नपुंसक लिंग में, क्रोष्टृ के ऋकार को उकार हो जाता है अतः

बहु क्रोष्टु बहुक्रोष्टुनी बहुक्रोष्टूनि

"टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद्वा" इस २५२वें सूत्र से टा आदि स्वर वाली विभक्ति के आने पर विकल्प से पुंवद्भाव हुआ। इस एक विकल्प से पुंवद्भाव हुआ। इस एक विकल्प से दो रूप बनेंगे। पुनः

×टा आदि स्वरवाली विभक्ति के आने पर क्रोष्टृ शब्द के ऋकार को विकल्प से उकार हो जाता है ॥२०२ ॥

यह दूसरा विकल्प हुआ। इस प्रकार से दो विकल्प से तीन रूप बनेंगे अर्थात् एक बार उकारांत शब्द को पुल्लिंगवत् करने से भानु के समान रूप चलेंगे। दूसरी बार 'खलपु' के समान, तीसरी बार पितृवत् रूप चलेंगे। यथा—

ॠकारान्त, लृकारांत, ॡकारांत एवं एकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं।

ऐकारांत नपुंसक लिंग अतिरै शब्द है।

'स्वरो ह्रस्वो नपुंसके' इस २४४वें सूत्र से ह्रस्व प्राप्त था—

संध्यक्षर को ह्रस्व आदेश करने पर ह्रस्व इकार और उकार हो जाता है ॥२५३ ॥

इत् उत् में त् शब्द से ह्रस्व ही लेना। इसमें सन्देह को दूर करने के लिये ही त् शब्द है इसलिये ए ऐ को ह्रस्व इकार और ओ और को ह्रस्व उकार हो गया। अतः अतिरि बना। यह अतिरि शब्द वारिवत् चलेगा। अतः 'नामिनः स्वरे' से नु का आगम हो जावेगा और टा आदि विभक्ति के आने पर "टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा" इस सूत्र से विकल्प से पुंवद् भाव होने से 'रै' शब्दवत् रूप चलेंगे।

व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर 'रै' सूत्र से आकार हो जाता है। प्रश्न यह होता है कि जब अतिरि शब्द में 'रै' नहीं है तब यह सूत्र कैसे लगा ? तो "एकदेशविकृतमनन्यवत्" इस न्याय से एक देश विकृत होने से कुछ अन्तर नहीं पड़ता है अतः—

---

x यह सूत्र पहले आ चुका है।

चित्रगुणी। चित्रगूणि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पः। चित्रगुणा, चित्रगवा इत्यादि। इति ओकारान्ताः। औकारान्तो नपुंसकलिङ्गोऽतिनौशब्दः। तत्रापि औकारस्य ह्रस्व उकारः। तस्य प्रथमाद्वितीययोर्वारिशब्दवत्। अतिनु। अतिनुनी। अतिनूनि। पुनरपि। टादौ स्वरे भाषितपुंस्कं पुंवद्वा इति विकल्पः। अतिनुना, अतिनावा। इत्यादि। इत्यौकारान्ताः॥

इति स्वरान्ता नपुंसकलिङ्गाः

अतिरि	अतिरिणी	अतिरीणि
हे अतिरि !	हे अतिरिणी !	हे अतिरीणि !
अतिरि	अतिरिणी	अतिरीणि
अतिरिणा, अतिराया	अतिराभ्याम्	अतिराभिः
अतिरिणे, अतिराये	अतिराभ्याम्	अतिराभ्यः
अतिरिणः, अतिरायः	अतिराभ्याम्	अतिराभ्यः
अतिरिणः, अतिरायः	अतिरिणोः, अतिरायोः	अतिरीणाम्, अतिरायाम्
अतिरिणि, अतिरायि	अतिरिणोः, अतिरायोः	अतिरासु

ऐकारांत शब्द हुये अब ओकारांत चित्र गो शब्द है। उपर्युक्त सूत्र २५३वें से ओकार को ह्रस्व उकार होकर चित्र गु बना इसके रूप मृदु शब्दवत् चलेंगे। टा आदि विभक्तियों में 'भाषित पुंस्कं' होने से विकल्प से पुंवत् होने से चित्रगवा बन जाता है।

चित्रगु	चित्रगुणी	चित्रगूणि
हे चित्रगु ! हे चित्रगो !	हे चित्रगुणी !	हे चित्रगूणि !
चित्रगु	चित्रगुणी	चित्रगूणि
चित्रगुणा, चित्रगवा	चित्रगुभ्याम्	चित्रगुभिः
चित्रगुणे, चित्रगवे	चित्रगुभ्याम्	चित्रगुभ्यः
चित्रगुणः, चित्रगोः	चित्रगुभ्याम्	चित्रगुभ्यः
चित्रगुणः, चित्रगोः	चित्रगुणोः, चित्रगवोः	चित्रगूणाम्, चित्रगवाम्
चित्रगुणि, चित्रगवि	चित्रगुणोः, चित्रगवोः	चित्रगुषु

इस प्रकार से ओकारांत शब्द हुये। अब औकारांत नपुंसक लिंग अतिनौ शब्द है। सूत्र २५३वें से औ को ह्रस्व होकर उकार हो जाता है अतः 'अतिनु' बना आगे भाषित पुंस्कं होने से विकल्प से पुंवद् होने से दो रूप बनेंगे।

अतिनु	अतिनुनी	अतिनूनि
हे अतिनु, अतिनो !	हे अतिनुनी !	हे अतिनूनि !
अतिनु	अतिनुनी	अतिनूनि
अतिनुना, अतिनावा	अतिनुभ्याम्	अतिनुभिः
अतिनुने, अतिनावे	अतिनुभ्याम्	अतिनुभ्यः
अतिनुनः, अतिनावः	अतिनुभ्याम्	अतिनुभ्यः
अतिनुनः, अतिनावः	अतिनुनोः, अतिनावोः	अतिनूनाम्, अतिनावाम्
अतिनुनि, अतिनावि	अतिनुनोः, अतिनावोः	अतिनुषु

इस प्रकार से औकारांत शब्द हुये।

स्वरांत नपुंसकलिंग प्रकरण समाप्त हुआ।

---

१. अत्र अग्रे च अतिनावादिषु मतान्तरमन्यतो दृष्टव्यम्।

अथ व्यञ्जनान्ताः पुल्लिङ्गशब्दा यथाक्रमेणोच्यन्ते

कवर्गान्ताः पुल्लिङ्गशब्दा अप्रसिद्धाः। चकारान्तः पुल्लिङ्गः सुवाच्शब्दः। सौ—व्यञ्जनाच्चेति सिलोपः। दादेर्हस्य ग इत्यनुवर्तते।

चवर्गदृगादीनां च ॥२५४॥

चवर्गान्तस्य दृश् इत्येवमादीनां च गो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च।

पदान्ते धुटां प्रथमः ॥७६॥ [1]

पदान्ते वर्तमानानां धुटां वर्णानां प्रथमो भवति अघोषे। प्रथम इत्यनुवर्तते।

वा विरामे ॥२४२॥ [2]

विरामे धुटां प्रथमस्तृतीयश्च वा भवति। सुवाक् सुवाग्, सुवाचौ। सुवाचः। एवं सम्बुद्धौ। सुवाचं। सुवाचौ। सुवाचः। सुवाचा। सुवाग्भ्यां। सुवाग्भिः। सुवाचे। सुवाग्भ्यां। सुवाग्भ्यः। सुवाचः। सुवाचोः। सुवाचां। सुवाचि। सुवाचोः। सुपि। गत्वं।

अघोषे प्रथमः ॥२५५॥

अघोषे परे धुटां प्रथमो भवति। इति कत्वं। नामिकरेत्यादिना सस्य षत्वं।

कषयोगे क्षः ॥२५६॥

अथ व्यंजनांत शब्दों में क्रम से प्रथम व्यञ्जनांत पुल्लिग शब्द चलेंगे।

कवर्गांत पुल्लिग शब्द अप्रसिद्ध है।

चकारांत पुल्लिग सुवाच् शब्द है। सुवाच् + सि 'व्यञ्जनाच्च' १७८वें सूत्र से सि का लोप हो गया 'दादेर्हस्यगः' यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

चवर्गान्त और दृश् के अंत को विराम या व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर ग् हो जाता है ॥२५४॥

सुवाच् = सुवाग् बना।

पद के अन्त में धुट् को प्रथम अक्षर हो जाता है[1] ॥७६॥

'अघोषे प्रथमः' यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

विराम् में धुट् को प्रथम अथवा तृतीय अक्षर हो जाता है[2] ॥२४२॥

इस सूत्र से सुवाक् + सुप्

'चवर्गदृगादीनां च' इस २५४वें सूत्र से च् को ग् हुआ पुनः—

अघोष के आने पर धुट् को प्रथम अक्षर होता है ॥२५५॥

इस सूत्र से क् हो गया 'नामिकरपरः' इत्यादि १५०वें सूत्र से क् से स् को ष् हो गया तब सुवाक् + षु रहा।

ककार और षकार का योग होने पर क्ष हो जाता है ॥२५६॥

---

१. यह सूत्र पहले आ चुका है। २. यह सूत्र पहले आ चुका है।

ककारषकारयोर्योगे क्षो भवति सुवाक्षु।

कवर्गप्रथमः शषसेषु द्वितीयो वा ॥२५७॥

कवर्गप्रथमस्य द्वितीयो भवति शषसेषु परतो वा। सुवाख्षु। प्रत्यञ्च्शब्दस्य तु भेदः। चवर्गदृगादीनां चेत्यत्र चवर्गग्रहणबलादश्च युज् क्रुञ्चां प्रागेव गत्वं।

मनोरनुस्वारो धुटि ॥२५८॥

अनन्त्ययोर्मकारनकारयोरनुस्वारो भवति धुटि परे।

वर्गे वर्गान्तः ॥२५९॥

अनुस्वारो वर्गे परे वर्गान्तो भवति।

संयोगान्तस्य लोपः ॥२६०॥

पदस्य संयोगान्तस्य लोपो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। प्रत्यङ्। प्रत्यञ्चौ। प्रत्यञ्चः। प्रत्यञ्चं। प्रत्यञ्चौ।

व्यञ्जनान्नोऽनुषङ्गः ॥२६१॥

इससे सुवाक्षु बना।

श् ष् स् के आने पर क वर्ग का प्रथम अक्षर विकल्प से द्वितीय अक्षर हो जाता है ॥२५७॥

अतः सुवाख्षु बन गया।

सुवाक्, सुवाग्	सुवाचौ	सुवाचः	सुवाचः	सुवाग्भ्याम्	सुवाग्भ्यः
सुवाचम्	सुवाचौ	सुवाचः	सुवाचः	सुवाचोः	सुवाचाम्
सुवाचा	सुवाग्भ्याम्	सुवाग्भिः	सुवाचि	सुवाचोः	सुवाक्षु, सुवाख्षु
सुवाचे	सुवाग्भ्याम्	सुवाग्भ्यः			

प्रत्यञ्च् शब्द में कुछ भेद हैं।

'चवर्गदृगादीनां च' इस सूत्र से च् को ग् हो गया तब

प्रत्यन् ग् + सि 'व्यञ्जनाच्च' इस सूत्र से सि का लोप हो गया। यहाँ च् के निमित्त से न् को ञ् हुआ था अतः च् को ग् करने पर ञ् मूल न् के रूप में आ गया।

धुट् के आने पर अंत में न हो ऐसे मकार और नकार अनुस्वार हो जाता है ॥२५८॥

आगे वर्ग के आने पर अनुस्वार उसी वर्ग का अंतिम अक्षर हो जाता है ॥२५९॥

अतः प्रत्यङ् ग् रहा।

विराम और व्यंजनादि विभक्ति के आने पर अन्त के संयोगी अक्षर का लोप हो जाता है ॥२६०॥

अतः प्रत्यङ् बना। प्रत्यञ्च् + औ = प्रत्यञ्चौ आदि।

प्रत्यञ्च् + शस्

धातु और लिंग के अंतिम व्यंजन से पूर्व में जो नकार है वह 'अनुषंग' संज्ञक हो जाता है ॥२६१॥

धातुलिङ्गयोरन्त्याद्व्यञ्जनाद्यः पूर्वो नकारः सोऽनुषङ्गसंज्ञो भवति। अधुट् स्वरे लोपमित्यनुवर्तते। व्यञ्जने चैषां निरिति च।

अनुषङ्गश्चाक्रुञ्चेत् ॥२६२॥

अक्रुञ्चेरिदनुबन्धवर्जितस्यानुषङ्गो लोपमापद्यते अघुट्स्वरे व्यञ्जने च परे।

अञ्चेरलोपः पूर्वस्य च दीर्घः ॥२६३॥

अञ्चेरलोपो भवति पूर्वस्य च दीर्घो भवति अघुट् स्वरादौ। प्रतीचः। प्रतीचा। प्रत्यग्भ्यां। प्रत्यग्भिः। इत्यादि। एवं प्राञ्च् सम्यञ्च् प्रभृतयः। अक्रुञ्चेरिति किं ? क्रुङ्। क्रुञ्चौ। क्रुञ्चः। क्रुञ्चं। क्रुञ्चौ। क्रुञ्चः। क्रुञ्चा क्रुङ्भ्यां। क्रुङ्भिः। सप्तम्यां तु—

ङात् ॥२६४॥

ङात्परस्य सस्य षो भवति। क्रुङ्षु। इत्यादिः। इदनुबन्धवर्जितस्येति किं ? सुकन्स्शब्दः। कसि गतिशासनयोः। अत एव वर्जनादिदनुबन्धानां धातूनां नुरागमोऽस्तीति। सूपूर्वकः सुष्ठु कंस्ते क्विप्।

इस सूत्र से प्रत्यञ्च् के न् को अनुषंग संज्ञा हो गई। 'अघुट स्वरे लोपम्' एवं 'व्यंजने चैषां निः' ये सूत्र अनुवृत्ति में चले आ रहे हैं।

क्रुञ्च् और इकार अनुबंध वाले शब्दों को छोड़कर आगे अघुट् स्वर और व्यंजन के आने पर अनुषंग का लोप हो जाता है ॥२६२॥

अतः प्रति + अच् + अस् रहा।

अघुट् स्वर वाली विभक्तियों के आने पर अञ्च् के 'अ' का लोप होकर पूर्व के स्वर को दीर्घ हो जाता है ॥२६३॥

तब प्रतीच् + अस् = प्रतीचः बना। प्रत्यञ्च् + भ्याम्

२५४वें सूत्र से च् को ग्। २६१वें सूत्र से न् को अनुषंग संज्ञा होकर २६२वें सूत्र से अनुषंग का लोप हुआ और प्रत्यग्भ्याम् बन गया।

संबोधन में भी यही रूप बनते हैं।

प्रत्यङ्	प्रत्यञ्चौ	प्रत्यञ्चः	प्रतीचः	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः
प्रत्यञ्चम्	प्रत्यञ्चौ	प्रतीचः	प्रतीचः	प्रतीचोः	प्रतीचाम्
प्रतीचा	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भिः	प्रतीचि	प्रतीचोः	प्रत्यक्षु
प्रतीचे	प्रत्यग्भ्याम्	प्रत्यग्भ्यः			

इसी प्रकार से प्राञ्च् एवं सम्यञ्च् शब्द भी चलते हैं। सूत्र में क्रुञ्च् को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? तो इस क्रुञ्च् में अघुट् स्वर और व्यंजन के आने पर अनुषंग का लोप नहीं होता।

क्रुङ् + सु

ङ से परे सकार को षकार हो जाता है ॥२६४॥

अतः क्रुङ्षु बना।

क्रुङ्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः	क्रुञ्चः	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः
क्रुञ्चम्	क्रुञ्चौ	क्रुञ्चः	क्रुञ्चः	क्रुञ्चोः	क्रुञ्चाम्
क्रुञ्चा	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भिः	क्रुञ्चि	क्रुञ्चोः	क्रुङ्षु
क्रुञ्चे	क्रुङ्भ्याम्	क्रुङ्भ्यः			

क्विप् सर्वापहारिलोपः। कृत्तद्धितसमासाश्चेति लिङ्गसंज्ञा। प्रथमैकवचनं सि। व्यञ्जनाच्चेति सेर्लोपः। मनोरनुस्वारे धुटि इति नकारस्यानुस्वारे प्राप्ते सर्वविधिभ्यो लोपविधिर्बलवानिति न्यायात् संयोगान्तस्य लोप इति नित्यं सकारलोपः। सुकन्। स्वरे परे मनोरनुस्वारो धुटि इति अनुस्वारः। महत्साहचर्याद्धातादीर्घो न स्यात्। सुकंसौ। सुकंसः। सुकंसं। सुकंसौ। सुकंसः। सुकंसा। सुकन्भ्यां। सुकन्भिः। इत्यादि। सम्बोधनेऽपि तद्वत्।

नाञ्चेः पूजायां ॥२६५॥

पूजार्थे वर्तमानस्य अञ्चेरनुषङ्गस्य लोपो न भवति अघुट्स्वरे व्यञ्जने च परे। प्राङ्। प्राञ्चौ। प्राञ्चः। हे प्राङ्। हे प्राञ्चौ। हे प्राञ्चः। प्राञ्चं। प्राञ्चौ। प्राञ्चः। प्राञ्चा। प्राङ्भ्याम्। प्राङ्भिः। इत्यादि। सुपि विशेषः। ङात्परस्य सस्य षो भवति। प्राङ्षु। अञ्चु गतिपूजनयोः। प्रपूर्वकः प्राञ्चतीति क्विप्

२६२वें सूत्र में कहा कि इकार अनुबंध जिसमें हुआ है ऐसे शब्दों के अनुषंग का लोप नहीं होगा सो ऐसा क्यों कहा ? सुकन्स् शब्द है यह कैसे बना सो देखिये ! 'कसि' धातु गमन और शासन अर्थ में है इसमें इकार का अनुबंध लोप हुआ है अतः इकार अनुबंध धातु में कृदन्त में नु का आगम होता है सु उपसर्गपूर्वक अर्थात् अच्छी तरह से गमन या शासन करता है इस अर्थ में क्विप् प्रत्यय हुआ तो सु क नु स = सुकन्स् बना क्योंकि क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो जाता है। पुनः 'कृत्तद्धितसमासाश्च' इस ४२३वें सूत्र से लिंग संज्ञा होकर सि आदि विभक्तियाँ आ गईं।

सुकन्स् + सि 'व्यंजनाच्च' इस सूत्र से सि का लोप 'मनोरनुस्वारोधुटि' इस २५८वें सूत्र से नकार को अनुस्वार प्राप्त था किन्तु सर्वविधि से लोप विधि बलवान् होती है इस नियम से 'संयोगांतस्य लोपः' इस १६३वें सूत्र से संयुक्त के अन्त सकार का लोप होकर 'सुकन्' बना। सुकन्स् + औ 'मनोरनुस्वारो धुटि' से न् को अनुस्वार होकर 'सुकंसौ' बना। यहाँ महत् के साहचर्य से धातु को दीर्घ नहीं हुआ।

सुकन्स् + भ्याम् 'संयोगांतस्य लोपः' से स् का लोप होकर सुकन्भ्याम् बना।

सुकन्	सुकन्सौ	सुकंसः	सुकंसे	सुकन्भ्याम्	सुकन्भ्यः
हे सुकन्	हे सुकन्सौ	हे सुकंसः	सुकंसः	सुकन्भ्याम्	सुकन्भ्यः
सुकंसम्	सुकन्सौ	सुकंसः	सुकंसः	सुकंसोः	सुकंसाम्
सुकंसा	सुकन्भ्याम्	सुकन्भिः	सुकंसि	सुकंसोः	सुकन्सु

प्राञ्च + सि

पूजा अर्थ में वर्तमान अञ्च् के अनुषंग का लोप नहीं होता है ॥२६५॥

अघुट् स्वर और व्यंजन वाली विभक्तियों के आने पर अञ्च के नकार का लोप नहीं होता है पूजा अर्थ में विद्यमान रहने पर। अतः

प्राञ्च् + शस् = प्राञ्चः। प्राञ्च् + भ्याम् च् को ग् ञ् को अनुस्वार होकर ङकार हुआ। संयुक्त के अंत का लोप होकर प्राङ्भ्याम्। प्राञ्च + सु = प्राङ् सु 'ङात्' २६४वें सूत्र से स् को ष् होकर प्राङ्षु बन गया।

प्राङ्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	प्राञ्चे	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
हे प्राङ् !	हे प्राञ्चौ !	हे प्राञ्चः !	प्राञ्चः	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भ्यः
प्राञ्चम्	प्राञ्चौ	प्राञ्चः	प्राञ्चः	प्राञ्चोः	प्राञ्चाम्
प्राञ्चा	प्राङ्भ्याम्	प्राङ्भिः	प्राञ्चि	प्राञ्चोः	प्राङ्षु [प्राङ्क्षु]

अञ्चु धातु गति और पूजा अर्थ में है।

सर्वापहारिलोपः । कृत्तद्धितसमासाश्चेति लिङ्गसंज्ञा । यत्र गत्यर्थस्तत्र अनुषङ्गश्चाक्रुञ्चेत् इत्यनुषङ्गलोपः । यत्र पूजार्थस्तत्र नाञ्चेः पूजायामिति अघुट्स्वरे व्यञ्जने अनुषङ्गलोपो न भवति । अदद्र्यञ्चशब्दस्य तु भेदः । अञ्चु अदस्पूर्वः—अमुमञ्चतीति क्विप् चेति क्विप् प्रत्ययः । क्विपि सति—

विष्वग्देवयोश्चान्त्यस्वरादेरद्र्यञ्चतौ क्वौ ॥२६६ ॥

विष्वग्देवयोः सर्वनाम्नश्चान्त्यस्वरादेरवयवश्चाञ्चतौ क्विबन्ते परेऽद्रिरादेशो भवति । इति सकारसहितस्य अकारस्य अद्रिरादेशः । इवर्णो यत्वं । अदद्र्यञ्चु इति स्थिते सति—

अदद्र्यञ्चो दस्य बहुलं ॥२६७ ॥

अद्र्यञ्चो दकारस्य बहुलं मकारो भवति, मात् परस्य रस्य उत्वं च । अदमुयङ् । अदमुयञ्चौ । अदमुयञ्चः । एवं सम्बुद्धौ । अदमुयञ्चं । अदमुयञ्चौ ।

'प्र' उपसर्गपूर्वक अञ्चति है, क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से लिंग संज्ञा होकर प्राञ्च बना । जब इस प्राञ्च् का गति अर्थ लेंगे तब शसादि विभक्ति के आने पर 'अनुषंगश्चाक्रुञ्चेत्' सूत्र से अघुट् स्वर और व्यञ्जनादि विभक्तियों के आने पर अनुषंग का लोप होगा । अतः उपर्युक्त प्रकार से दो तरह से रूप चलते हैं ।

अदद्र्यञ्च् शब्द में कुछ भेद हैं—

यहाँ भी अञ्चु धातु गति और पूजन अर्थ में है ।

अदस् शब्दपूर्वक अञ्चु धातु से अमुम् अञ्चति इस प्रकार से 'क्विप्' इस ६५६वें सूत्र से क्विप् प्रत्यय हुआ एवं क्विप् प्रत्यय के होने पर आगे का सूत्र लगता है ।

अञ्च् धातु से क्विप् प्रत्यय के आने पर विष्वक्, देव और सर्वनाम के अन्त्य स्वर की आदि के अवयव को 'अद्रि' आदेश हो जाता है ॥२६६ ॥

यहाँ पर अदस् शब्द सर्वनाम है अतः इसके अवयव—सकार सहित दकार के अकार को 'अद्रि' आदेश हो गया तब अदद्रि + अञ्च् ।

इ वर्ण को य् होकर 'अदद्र्यञ्च्' बन गया । अदद्र्यञ्च् के दकार को बहुलता से मकार हो जाता है ॥२६७ ॥

और मकार से परे रकार को उकार हो जाता है तब अदमु इकार को य् होकर अञ्च् मिलकर अदमुयञ्च् बना । अर्थात् अद द्रि + अञ्च् है । द्रि में तीन अक्षर हैं । द् को 'म्' र् को 'उ' और इ को 'य्' आदेश हो गया ।

अदमुय् + अञ्च् = अदमुयञ्च् बना ।

इसी विषय में आगे के श्लोक का अर्थ देखिये !

श्लोकार्थ—कोई आचार्य पर के दकार को मकार एवं कोई आचार्य पूर्व के दकार को मकार करते हैं एवं कोई आचार्य दोनों ही दकार को मकार स्वीकार करते हैं तथा कोई आचार्य दोनों ही दकारों को मकार नहीं मानते हैं अतः इस अदस् शब्द से अञ्च् धातु के आने पर चार प्रकार के रूप बन जाते हैं ।

प्रथम पर के दकार को मकार करने पर 'अदमुयञ्च्' द्वितीय—पूर्व के दकार को मकार करने पर अमुद्र्यञ्च् ।

तृतीय में—दोनों ही दकारों को मकार करने पर 'अमुमुयञ्च्' चतुर्थ में—दोनों ही दकारों को मकार न करने पर 'अदद्र्यञ्च्' ऐसे चार रूप बने हैं अब 'कृत्तद्धित समासाश्च' से लिंग संज्ञा होकर सि आदि विभक्तियाँ आकर क्रम से एक-एक के रूप चलेंगे ।

नोतो वः ॥२६८॥

अदद्र्यञ्च् इत्येतस्य उतो वत्वं च भवति। अनुषङ्गश्चाक्रुञ्चेत् इति नलोपः। अञ्चेरलोपः पूर्वस्य च दीर्घ इति अकारलोपः पूर्वस्य च दीर्घो भवति। अदमुईचः। अदमुईचा। अनुषङ्गश्चाक्रुञ्चेत् नलोपः। चवर्गदृगादीनां च गत्वं। अदमुयग्भ्यां। अदमुयग्भिः। पूर्ववत् अनुषङ्गलोपो गत्वं च। अघोषे प्रथमः। क्। नामिकरेत्यादिना षत्वं। अदमुयक्षु। अमुद्र्यङ्। अमुद्र्यञ्चौ। अमुद्र्यञ्चः। अमुद्र्यञ्चं। अमुद्र्यञ्चौ। अमुद्रीचः। अमुद्रीचा। अमु[illegible]भ्यां। अमुद्र्यग्भिः। अमुद्र्यक्षु। अमुमुयङ्। अमुमुयञ्चौ। अमुमुयञ्चः। अमुमुयञ्चं। अमुमुयञ्चौ। अमुमुईचः। अमुमुईचा। अमुमुयग्भ्यां। अमुमुयग्भिः। अमुमुयक्षु। अदद्र्यङ्। अदद्र्यञ्चौ। अदद्र्यञ्चः। अदद्र्यञ्चं। अदद्र्यञ्चौ। अदद्रीचः। अदद्रीचा। अदद्र्यग्भ्यां। अदद्र्यग्भिः। अदद्र्यक्षु।

पहले 'अदमुयञ्च्' शब्द चलाया है। जो कि प्रत्यञ्च् के समान है। अदमुयञ्च्+शस् 'अनुषंगश्चाक्रुञ्चेत्' से न् का लोप हो गया। 'अञ्चेरलोपः पूर्वस्य च दीर्घः' इस २६३वें सूत्र से अदमुइ+अञ्च के 'अ' का लोप होकर पूर्व के स्वर 'इ' को दीर्घ हुआ एवं अदमुईचः बना।

अदमुयञ्च् के उकार को 'व्' नहीं होता है ॥२६८॥

अदमुयञ्च्+भ्याम् 'अनुषंगश्चाक्रुञ्चेत्' से अनुषंग का लोप होकर 'चवर्गदृगादीनां च' सूत्र से च् को ग् होकर 'अदमुयग्भ्याम्' बना।

सुप् में अदमुयग्+सु 'अघोषे प्रथमः' से ग् को क् एवं 'नामिकरपरः' इत्यादि सूत्र से स् को ष् होकर 'कषयोगे क्षः' से क्ष् होकर अदमुयक्षु बना।

दूसरा शब्द अमुद्र्यञ्च् है। पाँच रूप बनने के बाद अमुद्र्यञ्च्+शस् अनुषंग का लोप। अञ्च् के अ का लोप होकर पूर्व को दीर्घ—अमुद्रि अञ्च्+शस्=अमुद्रीचः बना।

अमुद्र्यञ्च्+भ्याम् अनुषंग का लोप एवं च् को ग् होकर 'अमुद्र्यग्भ्याम्' बना।

अमुद्र्यञ्च्+सुप्=अमुद्र्यक्षु बना

तीसरा—अमुमुयञ्च् है। पाँच रूप बनने के बाद अमुमुयञ्च्+शस् अमुमुइ अञ्च्+शस् अनुषंग का लोप, अ का लोप पूर्व की इ को दीर्घ होकर अमुमुईचः बना। अमुमुयञ्च्+भ्याम् अनुषंग का लोप च् को ग् होकर अमुमुयग्भ्याम् बना। अमुमुयञ्च्+सु। अनुषंग का लोप होकर च् को ग् एवं क् तथा सु को षु होकर 'कषयोगे क्षः' से क्षु होकर अमुमुयक्षु बना।

चौथा अदद्र्यञ्च् है। पाँच रूप बनने के पश्चात् अदद्र्यञ्च् +शस् अदद्रि अञ्च्+शस् अनुषंग का लोप 'अ' का लोप होकर पूर्व स्वर को दीर्घ हुआ तो अदद्रीचः बना।

अदद्र्यञ्च्+भ्याम् अनुषंग का लोप एवं च् को ग् होकर अदद्र्यग्भ्याम्।

अदद्र्यञ्च्+सु अनुषंग का लोप च् को ग् एवं क् तथा सु को षु होकर अदद्र्यक्षु बना।

क्रमशः—

अदमुयङ्	अदमुयञ्चौ	अदमुयञ्चः	अदमुईचे	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयग्भ्यः
हे अदमुयङ् !	हे अदमुयञ्चौ !	हे अदमुयञ्चः !	अदमुईचः	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयग्भ्यः
अदमुयञ्चम्	अदमुयञ्चौ	अदमुईचः	अदमुईचः	अदमुईचोः	अदमुईचाम्
अदमुईचा	अदमुयग्भ्याम्	अदमुयग्भिः	अदमुईचि	अदमुईचोः	अदमुयक्षु

अमुद्र्यङ्	अमुद्र्यञ्चौ	अमुद्र्यञ्चः	अमुद्रीचे	अमुद्र्यग्भ्याम्	अमुद्र्यग्भ्यः,
हे अमुद्र्यङ् !	हे अमुद्र्यञ्चौ !	हे अमुद्र्यञ्चः !	अमुद्रीचः	अमुद्र्यग्भ्याम्	अमुद्र्यग्भ्यः
अमुद्र्यञ्चम्	अमुद्र्यञ्चौ	अमुद्रीचः	अमुद्रीचः	अमुद्रीचोः	अमुद्रीचाम्
अमुद्रीचा	अमुद्र्यग्भ्याम्	अमुद्र्यग्भिः	अमुद्रीचि	अमुद्रीचोः	अमुद्र्यक्षु

परतः केचिदिच्छन्ति केचिदिच्छन्ति पूर्वतः।
उभयोः केचिदिच्छन्ति केचिन्नेच्छन्ति चोभयोः ॥१॥

उदञ्च्शब्दस्य तु भेदः। उदङ्। उदञ्चौ। उदञ्चः। उदञ्चं। उदञ्चौ। शसादौ—

उदङ् उदीचिः ॥२६९॥

उदङ् उदीचिर्भवति। अघुट्स्वरादौ। उदीचः। उदीचा। उदग्भ्यां। उदग्भिः। इत्यादि। तिर्यञ्च् शब्दस्य तु भेदः। तिर्यङ्। तिर्यञ्चौ। तिर्यञ्चः। तिर्यञ्चं। तिर्यञ्चौ। शसादौ—

तिर्यङ् तिरश्चिः ॥२७०॥

तिर्यङ्शब्दः तिरश्चिर्भवति अघुट्स्वरादौ। तिरश्चः। तिरश्चा। तिर्यग्भ्यां। तिर्यग्भिः। इत्यादि। छकारान्तः पुल्लिङ्गः प्राच्छ्शब्दः। सौ—विरामे व्यञ्जनादिष्विति वर्तते।

अमुमुयङ्	अमुमुयञ्चौ	अमुमुयञ्चः	अमुमुईचे	अमुमुयग्भ्याम्	अमुमुयग्भ्यः
हे अमुमुयङ्!	हे अमुमुयञ्चौ!	हे अमुमुयञ्चः!	अमुमुईचः	अमुमुयग्भ्याम्	अमुमुयग्भ्यः
अमुमुयञ्चम्	अमुमुयञ्चौ	अमुमुईचः	अमुमुईचः	अमुमुईचोः	अमुमुईचाम्
अमुमुईचा	अमुमुयग्भ्याम्	अमुमुयग्भिः	अमुमुईचि	अमुमुईचोः	अमुमुयक्षु

अदद्र्यङ्	अदद्र्यञ्चौ	अदद्र्यञ्चः	अदद्रीचे	अदद्र्यग्भ्याम्	अदद्र्यग्भ्यः
हे अदद्र्यङ्!	हे अदद्र्यञ्चौ!	हे अदद्र्यञ्चः!	अदद्रीचः	अदद्र्यग्भ्याम्	अदद्र्यग्भ्यः
अदद्र्यञ्चम्	अदद्र्यञ्चौ	अदद्रीचः	अदद्रीचः	अदद्रीचोः	अदद्रीचाम्
अदद्रीचा	अदद्र्यग्भ्याम्	अदद्र्यग्भिः	अदद्रीचि	अदद्रीचोः	अदद्र्यक्षु

उदञ्च् शब्द में कुछ भेद हैं।

घुट् पर्यंत पाँच रूप तो पूर्ववत् ही हैं।

उदञ्च् + शस्

अघुट स्वर के आने पर उदञ्च् को उदीच् आदेश हो जाता है ॥२६९॥

अतः उदीचः बना। उदञ्च् + भ्याम् अनुषंग का लोप एवं च् को ग् होकर उदग्भ्याम् बना।

उदञ्च् + सु अनुषंग का लोप च् को ग् और ग् को क् होकर सु को 'नामिकरपरः' इत्यादि सूत्र १५०वें से षु हो गया पुनश्च 'कषयोगे क्षः' इस सूत्र से क्ष होकर उदक्षु बना।

उदङ्	उदञ्चौ	उदञ्चः	उदीचे	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
हे उदङ्!	हे उदञ्चौ!	हे उदञ्चः!	उदीचः	उदग्भ्याम्	उदग्भ्यः
उदञ्चम्	उदञ्चौ	उदीचः	उदीचः	उदीचोः	उदीचाम्
उदीचा	उदग्भ्याम्	उदग्भिः	उदीचि	उदीचोः	उदक्षु

तिर्यञ्च् शब्द है। घुट् विभक्ति के आने पर पूर्ववत् है।

तिर्यञ्च् + शस्

अघुट् स्वर के आने पर तिर्यञ्च् को तिरश्च् आदेश हो जाता है ॥२७०॥

तिरश्च् + अस् = तिरश्चः

तिर्यञ्च् + भ्याम् अनुषंग का लोप होकर च् को ग् हुआ। तिर्यग्भ्याम् बना।

तिर्यङ्	तिर्यञ्चौ	तिर्यञ्चः	तिरश्चे	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
हे तिर्यङ्!	हे तिर्यञ्चौ!	हे तिर्यञ्चः!	तिरश्चः	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भ्यः
तिर्यञ्चम्	तिर्यञ्चौ	तिरश्चः	तिरश्चः	तिर्यश्चोः	तिरश्चाम्
तिरश्चा	तिर्यग्भ्याम्	तिर्यग्भिः	तिरश्चि	तिरश्चोः	तिर्यक्षु

इस प्रकार से चकारांत पुल्लिंग शब्द हुए। अब छकारांत प्राच्छ् शब्द है।

प्राच्छ् + सि "सौ विरामे व्यञ्जनादिषु" यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

हशषछान्तेजादीनां डः ॥२७१ ॥

हशषछान्तानां यजादीनां च डो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च । प्राट्, प्राड् । द्विर्भावं स्वरपरश्छकारः । प्राच्छौ । प्राच्छः । संबोधनेऽपि तद्वत् । प्राच्छं । प्राच्छौ । प्राच्छः । प्राच्छा । प्राड्भ्यां । प्राड्भिः । इत्यादि । इति । छकारान्ताः । जकारान्तः पुल्लिङ्गो युज्शब्दः ।

युजेरसमासे नुर्घुटि ॥२७२ ॥

युज्शब्दस्य असमासे नुरागमो भवति घुटि परे ।

आगम उदनुबन्धः स्वरादन्त्यात्परः ॥२७३ ॥

उदनुबन्ध आगमोऽन्त्यात्स्वरात् परो भवति । मित्रवदागमः । अथवा प्रकृतिप्रत्यययोरनुपघाती आगम उच्यते । शत्रुवदादेशः । युङ् । युञ्जौ । युञ्जः । सम्बोधनेऽपि तद्वत् । युञ्जं । युञ्जौ । युजः । युजा । युग्भ्यां । युग्भिः । इत्यादि । अश्वयुजादीनां समासत्वान्नुरागमो नास्ति । अश्वयुग्, अश्वयुक् । अश्वयुजौ । अश्वयुजः । सम्बोधनेऽपि तद्वत् । इत्यादि । एवं ऋत्विज् गुणभाज् प्रभृतयः । साधुमस्ज् शब्दस्य तु भेदः ।

ह् श् ष् छ् है अंत में जिसके वे शब्द और यज् आदि शब्द के अंत में ड् हो जाता है ॥२७१ ॥

विराम और व्यञ्जन वाली विभक्ति के आने पर । अतः प्राड् + सि 'व्यंजनाच्च' इस सूत्र से सि का लोप होकर 'वा विरामे' इस सूत्र से विकल्प के प्रथम अक्षर हो जाता है अतः प्राट्, प्राड् बना ।

प्राट्, प्राड्	प्राच्छौ	प्राच्छः	प्राच्छे	प्राड्भ्याम्	प्राड्भ्यः
हे प्राट्, प्राड् !	हे प्राच्छौ !	हे प्राच्छः !	प्राच्छः	प्राड्भ्याम्	प्राड्भ्यः
प्राछम्	प्राच्छौ	प्राच्छः	प्राच्छः	प्राच्छोः	प्राच्छाम्
प्राच्छा	प्राड्भ्याम्	प्राड्भिः	प्राच्छि	प्राच्छोः	प्राट्सु

जकारांत पुल्लिग युज् शब्द है ।

युज् + सि

असमास में घुट् विभक्ति के आने पर युज् शब्द को नु का आगम अंतिम स्वर से परे होता है ॥२७२ ॥

उकार अनुबंध वाला आगम अंतिम स्वर से परे होता है ॥२७३ ॥

आगम किसे कहते हैं ? जो मित्रवत् हो उसे आगम कहते हैं अथवा प्रकृति और प्रत्यय का उपघात (क्षति) न करने वाला आगम कहलाता है । आदेश शत्रुवत् होता है । अर्थात् वह किसी को हटाकर उसके स्थान पर होता है अतः शत्रुवत् कहलाता है ।

युन् ज् + सि 'व्यंजनाच्च' इस सूत्र से सि का लोप होकर युञ्ज् बन गया । ज् को ग् एवं न् को अनुस्वार होकर वर्ग का अंतिम अक्षर ङ् हुआ पुनश्च 'संयोगांतस्य लोपः' से ग् का लोप होकर युङ् बना ।

युज् + भ्याम् 'चवर्गदृगादीनां च' से ज् को ग् होकर युग्भ्याम् बना ।

युङ्	युञ्जौ	युञ्जः	युजे	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
हे युङ् !	हे युञ्जौ !	हे युञ्जः !	युजः	युग्भ्याम्	युग्भ्यः
युञ्जम्	युञ्जौ	युजः	युजः	युजोः	युजाम्
युजा	युग्भ्याम्	युग्भिः	युजि	युजोः	युक्षु

अश्वयुज् आदि शब्दों में समास के होने से नु का आगम नहीं हुआ है ।

संयोगादेर्धुटः ॥२७४॥

संयोगादेर्धुटो लोपो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। व्यञ्जनाच्च सिलोपश्चवर्गदृगादीनां च गकारककारौ। साधुमक्, साधुमग्।

धुटां तृतीयः ॥२७५॥

धुटां तृतीयो भवति घोषवति सामान्ये। इति सस्य तृतीयत्वे प्राप्ते लृवर्णतवर्गलसा दन्त्या इति न्यायात् सकारस्य दकारः। तवर्गश्चटवर्गयोगे चटवर्गौ इति दकारस्य जकारः। साधुमज्जौ इत्यादि। देवेज्शब्दस्य तु भेदः। सौ—हशषछान्ते इत्यादिना डत्वं। देवेट्, देवेड्। देवेजौ। देवेजः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। देवेजम्। देवेजौ। देवेजः। देवेजा। देवेड्भ्यां। देवेड्भिः।

अश्वयुक् अश्वयुग्	अश्वयुजौ	अश्वयुजः
हे अश्वयुक्, अश्वयुग् !	हे अश्वयुजौ !	हे अश्वयुजः !
अश्वयुजम्	अश्वयुजौ	अश्वयुजः
अश्वयुजा	अश्वयुग्भ्याम्	अश्वयुग्भिः
अश्वयुजे	अश्वयुग्भ्याम्	अश्वयुग्भ्यः
अश्वयुजः	अश्वयुग्भ्याम्	अश्वयुग्भ्यः
अश्वयुजः	अश्वयुजोः	अश्वयुजाम्
अश्वयुजि	अश्वयुजोः	अश्वयुक्षु

इसी प्रकार से ऋत्विज् और गुणभाज् शब्द भी चलते हैं।

साधुमस्ज् शब्द में कुछ भेद है।

साधुमस्ज् + सि 'व्यंजनाच्च' सूत्र से सि का लोप हुआ।

विराम और व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर संयोग की आदि के धुट् का लोप हो जाता है ॥२७४॥

इससे स् का लोप हुआ। अतः साधुमज् रहा 'चवर्गदृगादीनां च' इस सूत्र से ज् को ग् होकर पुनः 'वा विरामे' से क् होकर साधुमक्, साधुमग् बना।

साधुमस्ज् + औ

सामान्य घोषवान् के आने पर धुट् को तृतीय अक्षर हो जाता है ॥२७५॥

इस सूत्र से स् को तृतीय अक्षर प्राप्त होने पर "लृवर्ण, तवर्ग, ल और स ये दंतस्थानीय हैं" इस न्याय से सकार को दकार हुआ पुनः "तवर्ग को चवर्ग और टवर्ग के योग में चवर्ग, टवर्ग हो जाता है इस नियम से तवर्ग के दकार को चवर्ग का जकार हो गया तो 'साधुमज्जौ' बना।

साधुमक्, साधुमग्	साधुमज्जौ	साधुमज्जः	साधुमज्जे	साधुमग्भ्याम्	साधुमग्भ्यः
हे साधुमक्, साधुमग् !	हे साधुमज्जौ !	हे साधुमज्जः !	साधुमज्जः	साधुमग्भ्याम्	साधुमग्भ्यः
साधुमज्जम्	साधुमज्जौ	साधुमज्जः	साधुमज्जः	साधुमज्जोः	साधुमज्जाम्
साधुमज्जा	साधुमग्भ्याम्	साधुमग्भिः	साधुमज्जि	साधुमज्जोः	साधुमक्षु

देवेज् शब्द में भेद है।

देवेज् + सि 'व्यंजनाच्च' से सि का लोप एवं "हशषछान्तेजादीनां डः" इस सूत्र से ज् को ड् होकर देवेड् प्रथम अक्षर होकर देवेट् बना।

देवेट् + सु

टात् सुप्तादिर्वा ॥२७६ ॥

टकारात्परः सुप् तादिर्वा भवति। तेन देवेट्त्सु, देवेट्सु। एवं सम्राड्प्रभृतयः। झञटवर्गान्ता अप्रसिद्धाः। तकारान्तः पुल्लिङ्गो मरुत्शब्दः। मरुत्, मरुद्। मरुतौ। मरुतः। संबोधनेऽपि तद्वत्। मरुतं। मरुतौ। मरुतः। मरुता। धुटां तृतीय इत्यनेन दत्वे मरुद्भ्याम् इत्यादि। उदनुबन्धस्य भवन्त्शब्दस्य तु भेदः। दीर्घमामि सनौ इति वर्तते।

अन्त्वसन्तस्य चाधातोस्सौ ॥२७७ ॥

अन्तु अस् इत्येवमन्तस्याधातोरस्य दीर्घो सौ असम्बुद्धौ। लिङ्गान्तनकारस्य इति नकारस्य लोपे प्राप्ते।

नसंयोगान्तावलुप्तवच्च पूर्वविधौ ॥२७८ ॥

टकार से परे सु की आदि में त् का आगम विकल्प से होता है ॥२७६ ॥

अतः देवेट्त्सु, देवेट्सु बना। इसी प्रकार सम्राज् शब्द के रूप भी चलेंगे।

देवेड्, देवेट्	देवेजौ	देवेजः	देवेजः	देवेड्भ्याम्	देवेड्भ्यः
देवेजम्	देवेजौ	देवेजः	देवेजः	देवेजोः	देवेजाम्
देवेजा	देवेड्भ्याम्	देवेड्भिः	देवेजि	देवेजोः	देवेट्त्सु, देवेट्सु
देवेजे	देवेड्भ्याम्	देवेड्भ्यः			

सम्राट्, सम्राड्	सम्राजौ	सम्राजः	सम्राजे	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
हे सम्राट्, सम्राड्!	हे सम्राजौ !	हे सम्राजः !	सम्राजः	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भ्यः
सम्राजम्	सम्राजौ	सम्राजः	सम्राजः	सम्राजोः	सम्राजाम्
सम्राजा	सम्राड्भ्याम्	सम्राड्भिः	सम्राजि	सम्राजोः	सम्राट्त्सु, सम्राट्सु

झकारांत ञकारांत और टवर्गांत शब्द अप्रसिद्ध हैं अब तकारांत पुल्लिग मरुत् शब्द हैं।

मरुत + सि 'व्यंजनाच्च' इस सूत्र से सि का लोप एवं विकल्प से तृतीय होकर मरुत्, मरुद् शब्द है।

मरुत् + भ्याम् 'धुटां तृतीयः' से तृतीय अक्षर होकर मरुद्भ्याम् बना।

मरुत्, मरुद् !	मरुतौ	मरुतः	मरुते	मरुद्भ्याम्	मरुद्भ्यः
हे मरुत्, हे मरुद् !	हे मरुतौ !	हे मरुतः !	मरुतः	मरुद्भ्याम्	मरुद्भ्यः
मरुतम्	मरुतौ	मरुतः	मरुतः	मरुतोः	मरुताम्
मरुता	मरुद्भ्याम्	मरुद्भिः	मरुति	मरुतोः	मरुत्सु

उकार अनुबंध वाले भवन्त् शब्द में कुछ भेद है।

भवन्त् + सि 'दीर्घमामिसनौ' सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

अन्तु और अस् है अंत में जिसके ऐसे धातु के अकार को दीर्घ हो जाता है असंबुद्ध सि के आने पर ॥२७७ ॥

सि का लोप होकर भवान्त् बना। 'संयोगांतस्यलोपः' से त् का लोप होकर 'लिंगांत नकारस्य' इस सूत्र से नकार का लोप प्राप्त था किन्तु आगे सूत्र लगा—

लुप्त हुए नकार और संयोगांत अलुप्तवत् होते हैं पूर्वविधि में दीर्घ आदि के करने पर ॥२७८ ॥

नकारसंयोगान्तौ लुप्तावप्यलुप्तवद्भवतः पूर्वविधौ दीर्घादिके कर्त्तव्ये । नकारग्रहणं राजन्शब्दार्थम् । भवान् । भवन्तौ । भवन्तः ।

भवतो वादेरुत्वं सम्बुद्धौ[1] ॥२७९ ॥

उदनुबन्धस्य भवन्तशब्दस्य वादेरुत्वं भवति वा सम्बुद्धौ । हे भोः । सन्निपातलक्षणविधिरनिमित्तं तद्विघातस्य । यो यमाश्रित्य समुत्पन्नः स तं प्रति सन्निपातः । हे भवन् । हे भवन्तौ । हे भवन्तः । भवन्तं । भवन्तौ । भवतः । भवता । भवद्भ्यां । भवद्भिः । इत्यादि । एवं भगवन्त् अघवन्त् शब्दौ । सम्बुद्धिं विना गोमन्त् धनवन्त् यावन्त् तावन्त् एतावन्त् इयन्त् कियन्त् प्रभृतयः । एते शब्दाः केन प्रकारेण सिद्धाः । भगं ज्ञानं । भगमस्यास्तीति भगवान् । अघं पापमस्यास्तीति अघवान् । गावोऽस्य सन्तीति गोमान् । धनमस्यास्तीति धनवान् । तदस्यास्तीति मंत्वंत्विन् इति वन्तुप्रत्ययः ।

यहाँ लुप्त हुए नकार का ग्रहण राजन् शब्द के लिये किया गया है अर्थात् राजन् शब्द में नकार का लोप हो जाता है । अतः यहाँ नकार का लोप न होकर भवान् बना ।

भवन्त् + औ = भवन्तौ, भवन्तः । संबोधन में—भवन्त् + सि

उकार अनुबंध सहित भवन्त् शब्द के 'व' को संबोधन में विकल्प से 'उ' हो जाता है ॥२७९ ॥

इसमें 'संयोगांतस्य लोपः' से त् का लोप 'लिंगांतनकारस्य' से न का लोप होकर संधि और सि का विसर्ग होकर हे भोः बना, विकल्प से हे भवन् बना ।

सन्निपात लक्षण विधि बिना निमित्त के ही उसके विघात के लिये हो जाती है । जो जिसका आश्रय लेकर उत्पन्न हुआ है वह उसके प्रति सन्निपात कहलाता है । मतलब यहाँ हे भोः में नकार तकार का लोप बिना निमित्त के ही हुआ अतः वह सन्निपात विधि है ।

भवन्त् + शस्, भवन्त् + भ्याम् 'व्यंजने चैषां निः' सूत्र से नकार का लोप हुआ । भवतः, भवद्भ्याम् बना ।

भवान्	भवन्तौ	भवन्तः	भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
हे भोः, हे भवन् !	हे भवन्तौ !	हे भवन्तः !	भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः
भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः	भवतः	भवतोः	भवताम्
भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः	भवति	भवतोः	भवत्सु

इसी प्रकार से भगवन्त् और अघवन्त् शब्द चलते हैं ।

भगवान्	भगवन्तौ	भगवन्तः	भगवते	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
हे भगोः ! हे भगवान् !	हे भगवन्तौ !	हे भगवन्तः !	भगवतः	भगवद्भ्याम्	भगवद्भ्यः
भगवन्तम्	भगवन्तौ	भगवतः	भगवतः	भगवतोः	भगवताम्
भगवता	भगवद्भ्याम्	भगवद्भिः	भगवति	भगवतोः	भगवत्सु

सम्बोधन के बिना गोमन्त्, धनवन्त्, यावन्त्, तावन्त्, एतावन्त्, इयन्त् और कियन्त् आदि शब्द चलते हैं ।

प्रश्न—ये शब्द किस प्रकार से सिद्ध हुए हैं ?

उत्तर—भग-ज्ञान, ऐसा भग जिसमें है वह भगवान् कहलाता है । अघ-पाप, अघ जिसमें है वह अघवान् है । गायें जिसके हैं वह गोमान् है । धन इसमें है वह धनवान् है ।

एतद्—यह इसके है वह एतावान् आदि । इन शब्दों में 'मंत्वंत्विन्' से वन्तु प्रत्यय हुआ है ।

---

१. यः संबुद्धेः सकारमाश्रित्योत्पन्नः स उकारस्तं संबुद्धेः सकारं प्रति सन्निपातः अयं सन्निपातलक्षणविधिः । तद्विघातस्य संबुद्धिसिलोपस्य अनिमित्तं हेतुर्न भवतीत्यर्थः । वाम्शसोरिति सूत्राद्वा इति वर्तते ॥

यत्तदेतेभ्यो डावन्तुः ॥२८० ॥

यद् तद् एतद् इत्येतेभ्यः परतो डावन्तुः प्रत्ययो भवति परिमाणेऽर्थे । डकार अनुबन्धः ।

डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः ॥२८१ ॥

डकार इति अन्त्यस्वरादेर्लोपार्थः । उकार उच्चारणार्थः । यत्परिमाणमस्य यावान् । तत्परिमाणमस्य तावान् । एतत्परिमाणमस्य एतावान् ।

इदमो डियन्तुः ॥२८२ ॥

इदमः परो डियन्तु प्रत्ययो भवति परिमाणेऽर्थे । डकारउकारौ पूर्ववत् । इदं परिमाणमस्य इयान् ।

परिमाण अर्थ में यत् तद् और एतद् शब्दों से परे डावन्तु प्रत्यय होता है ॥२८० ॥

इस प्रत्यय में ड् का अनुबंध एवं उकार का अनुबंध लोप हो जाता है ।

'ड्' का अनुबंध अन्तिम स्वर को आदि में लेकर व्यंजन के लोप करने के लिये है ॥२८१ ॥

डकार का अनुबंध उच्चारण के लिये है । अतः यत् से डावन्तु प्रत्यय होकर य् + आवन्त् = यावन्त् बना । ये तद्धित के प्रत्यय हैं अतः "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से लिंग संज्ञा होकर सि आदि विभक्तियाँ आकर रूप चलेंगे । इसका अर्थ है कि 'जो परिमाण है इसका' अर्थात् 'जितना' यह अर्थ होता है । ऐसे 'वह परिमाण है इसका' ।

तत् + डावन्तु त् + आवन्त् बना । अर्थात् 'उतना' 'यह परिमाण है जिसका' एतत् + डावन्तु— एत् + आवन्त् = एतावन्त् बना । अर्थात् 'इतना' यावन्त्, तावन्त्, एतावन्त् ।

यावन्त्—जितना

यावान्	यावन्तौ	यावन्तः	यावते	यावद्भ्याम्	यावद्भ्यः
हे यावन् !	हे यावन्तौ !	हे यावन्तः !	यावतः	यावद्भ्याम्	यावद्भ्यः
यावन्तम्	यावन्तौ	यावतः	यावतः	यावतोः	यावताम्
यावता	यावद्भ्याम्	यावद्भिः	यावति	यावतोः	यावत्सु

तावन्त्—उतना

तावान्	तावन्तौ	तावन्तः	तावते	तावद्भ्याम्	तावद्भ्यः
हे तावन् !	हे तावन्तौ !	हे तावन्तः !	तावतः	तावद्भ्याम्	तावद्भ्यः
तावन्तम्	तावन्तौ	तावतः	तावतः	तावतोः	तावताम्
तावता	तावद्भ्याम्	तावद्भिः	तावति	तावतोः	तावत्सु

एतावन्त्—इतना

एतावान्	एतावन्तौ	एतावन्तः	एतावते	एतावद्भ्याम्	एतावद्भ्यः
हे एतावन् !	हे एतावन्तौ !	हे एतावन्तः !	एतावतः	एतावद्भ्याम्	एतावद्भ्यः
एतावन्तम्	एतावन्तौ	एतावतः	एतावतः	एतावतोः	एतावताम्
एतावता	एतावद्भ्याम्	एतावद्भिः	एतावति	एतावतोः	एतावत्सु

'यह परिमाण है इसका' इस अर्थ में इदं शब्द से डियन्तु प्रत्यय होता है ॥२८२ ॥

परिमाण अर्थ में—अतः डियन्तु में डकार का अनुबंध । "त्रेदमिः" सूत्र से इदं को इ आदेश एवं 'इवर्णावर्णयोर्लोपः" इस सूत्र से इ का लोप होकर प्रत्यय मात्र से रूप बन गया । 'इयन्त्' लिंग संज्ञा होकर विभक्तियाँ आकर इयान् बना ।

किमो डियन्तुः ॥२८३॥

किमः शब्दात्परो डियन्तुः प्रत्ययो भवति परिमाणेऽर्थे। डकारउकारौ पूर्ववत्। किम्परिमाणमस्य कियान्। पूर्वमन्त्यस्वरादेर्लोपं कृत्वा पश्चादेकदेशविकृतमनन्यवदिति न्यायात्। तत्रेदमिरिति इ आदेशः। इवर्णावर्णयोर्लोप इत्यादिना इकारलोपः। अनेन प्रकारेण सिद्धा भवन्ति। नीतकम्। भगवान्। भगवन्तौ। भगवन्तः। भगवन्तं। भगवन्तौ। भगवतः। भगवता। भगवद्भ्यां। भगवद्भिः। सुपि-भगवत्सु। एवं सर्वत्र। सम्बोधने—

भगवदघवतोश्च ॥२८४॥

भगवदघवतोश्च वादेरवयवस्य उत्वं वा भवति सम्बुद्धौ सौ परे। एवं संबुद्धिं विना गोमन्त् धनवन्त् यावन्त् तावन्त् एतावन्त् इयन्त् प्रभृतयः। यत्प्रमाणमस्य यावन्त्। हे भगो, हे भगवन्। हे अघो, हे अघवन्। अन्यत्र हे गोमन्। हे धनवन्। हे यावन्। हे तावन्। हे एतावन्। हे इयन्। हे कियन्। शन्तृङन्तक्विबन्ता धातुत्वं न त्यजन्ति। शन्तृङन्तस्य क्विबन्तानां च। भवन्तशब्दस्य धातुत्वात् सौ दीर्घो न भवति। भवन्। भवन्तौ। भवन्तः। इत्यादि। एवं पचन् पठन् प्रभृतयः। ददन्तशब्दस्य तु भेदः। युजेरसमासे नुर्घुटि इत्यनुवर्तते।

किम् शब्द से परे डियन्तु प्रत्यय होता है ॥२८३॥

परिमाण अर्थ में—'क्या परिमाण है इसका' किम् + डियन्तु। इस डियन्तु प्रत्यय से अनुबंध से इम् का लोप होकर कियन्त् बना।

इयन्त्—इतना

इस प्रकार से ये रूप सिद्ध हुए हैं।

इयान्	इयन्तौ	इयन्तः	इयते	इयद्भ्याम्	इयद्भ्यः
हे इयन् !	हे इयन्तौ !	हे इयन्तः !	इयतः	इयद्भ्याम्	इयद्भ्यः
इयन्तम्	इयन्तौ	इयतः	इयतः	इयतोः	इयताम्
इयता	इयद्भ्याम्	इयद्भिः	इयति	इयतोः	इयत्सु
कियान्	कियन्तौ	कियन्तः	कियते	कियद्भ्याम्	कियद्भ्यः
हे कियन् !	हे कियन्तौ !	हे कियन्तः !	कियतः	कियद्भ्याम्	कियद्भ्यः
कियन्तम्	कियन्तौ	कियतः	कियतः	कियतोः	कियताम्
कियता	कियद्भ्याम्	कियद्भिः	कियति	कियतोः	कियत्सु

संबोधन में—भगवन्त + सि अघवन्त + सि

भगवत् और अघवत् के 'व' के आदि के अवयव को विकल्प से उकार हो जाता है संबोधन की सि के आने पर ॥२८४॥

अतः हे भगो ! हे अघो ! बन गया।

भवन्त् शब्द है इसमें शतृङ् प्रत्यय हुआ है इसका अर्थ है होते हुए। शन्तृङ् है अंत में जिसके एवं क्विप् हुआ है अंत में जिसके ऐसे शब्द धातुपने को नहीं छोड़ते हैं अतः यहाँ शन्तृङंत भवन्त् शब्द है धातु रूप होने से विभक्ति के आने पर दीर्घ नहीं हुआ।

भवन्त् + सि, सि का लोप होकर भवन् बन गया। बाकी रूप पूर्ववत् चलेंगे। यथा—

भवन्	भवन्तौ	भवन्तः	भवन्तम्	भवन्तौ	भवतः
हे भवन् !	हे भवन्तौ !	हे भवन्तः !	भवता	भवद्भ्याम्	भवद्भिः

अभ्यस्तादन्तिरनकारः ॥२८५ ॥

अभ्यस्तात्परोऽन्तिरनकारो भवति घुटि परे। ददत्, ददद्। ददतौ। ददतः। इत्यादि। एवं दधन्त् जक्षन्त् जाग्रन्त् प्रभृतयः। महन्त्शब्दस्य तु भेदः। दीर्घमामि सनौ, घुटि चासम्बुद्धौ इति वर्तते।

सान्तमहतोर्नोपधायाः ॥२८६ ॥

सान्त् महन्त् इत्येतयोर्नकारस्योपधाया दीर्घो भवति असम्बुद्धौ घुटि परे। महान्। महान्तौ। महान्तः। हे महन्। हे महान्तौ। हे महान्तः। महान्तं। महान्तौ। महतः। महता। महद्भ्यां। महद्भिः। इत्यादि ॥ इति तकारान्ताः। थकारान्तोऽग्निमथ् शब्दः। अग्निमत्, अग्निमद्[१]। अग्निमथौ। अग्निमथः।

भवते	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः	भवतः	भवतोः	भवताम्
भवतः	भवद्भ्याम्	भवद्भ्यः	भवति	भवतोः	भवत्सु

इसी प्रकार से पठन्त् पचन्त् गच्छन्त् आदि के रूप चलेंगे।

ददन्त् शब्द में कुछ भेद हैं।

ददन्त् + सि

अभ्यस्त संज्ञक से परे घुट् विभक्ति के आने पर अन्त के नकार का लोप हो जाता है ॥२८५ ॥

पुनः 'वा विरामे' से विकल्प से प्रथम अक्षर होकर ददत्, ददद् ऐसे दो रूप बने।

ददन्त्—देते हुए

ददत्, ददद्	ददतौ	ददतः !	ददते	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
हे ददत् !	हे ददतौ !	हे ददतः !	ददतः	ददद्भ्याम्	ददद्भ्यः
ददतम्	ददतौ	ददतः	ददतः	ददतोः	ददताम्
ददता	ददद्भ्याम्	ददद्भिः	ददति	ददतोः	ददत्सु

इसी प्रकार से दधन्त्, जक्षन्त्, जाग्रन्त् आदि के रूप चलते हैं।

महन्त् शब्द में कुछ भेद है।

'दीर्घमामिसनौ' 'घुटि चा सम्बुद्धौ' सूत्र अनुवृत्ति में चले आ रहे हैं। महन्त् + सि

असंबुद्ध और घुट् विभक्ति के आने पर सकारांत और महन्त् शब्द के नकार की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥२८६ ॥

महान्त् + सि सि और संयुक्त त् का लोप होकर महान् बना।

महन्त्—बड़ा-श्रेष्ठ

महान्	महान्तौ	महान्तः	महते	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
हे महन् !	हे महान्तौ !	हे महान्तः !	महतः	महद्भ्याम्	महद्भ्यः
महान्तम्	महान्तौ	महतः	महतः	महतोः	महताम्
महता	महद्भ्याम्	महद्भिः	महति	महतोः	महत्सु

इस प्रकार से तकारांत शब्द पूर्ण हुए अब थकारांत अग्निमथ् शब्द है।

अग्निपथ् + सि 'धुटां तृतीयः' से तृतीय अक्षर एवं 'वा विरामे' प्रथम अक्षर होकर अग्निमत्, अग्निमद् शब्द बना।

---

१. वा विरामे धुटां तृतीय इति थकारस्य दकारः।

संबोधनेऽपि तद्वत् । अग्निमथं । अग्निमथौ । अग्निमथः । अग्निमथा । अग्निमद्भ्यां । अग्निमद्भिः । इत्यादि । इति थकारान्ताः । दकारान्तः पुल्लिङ्गस्तत्त्वविद्शब्दः । तत्त्ववित, तत्त्वविद् । तत्त्वविदौ । तत्त्वविदः इत्यादि । द्विपाद्शब्दस्य तु भेदः । द्विपाद्, द्विपादौ । द्विपादः । सम्बोधनेऽपि तद्वत् । द्विपादं । द्विपादौ । शसादौ—

पात्पदं समासान्तः ॥२८७ ॥

समासान्तः पाच्छब्दः पदमापद्यते अघुटि स्वरे परे । द्विपदः द्विपदा । द्विपाद्भ्यामित्यादि । एवं चतुष्पाद् व्याघ्रपाद् प्रभृतयः । त्यद्शब्दस्य तु भेदः । सौ—

अग्निमत्, अग्निमद्	अग्निमथौ	अग्निमथः
हे अग्निमत्, अग्निमद् !	हे अग्निमथौ !	हे अग्निमथः !
अग्निमथम्	अग्निमथौ	अग्निमथः
अग्निमथा	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भिः
अग्निमथे	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः
अग्निमथः	अग्निमद्भ्याम्	अग्निमद्भ्यः
अग्निमथः	अग्निमथोः	अग्निमथाम्
अग्निमथि	अग्निमथोः	अग्निमत्सु

थकारांत शब्द हुए। अब दकारांत तत्त्वविद् शब्द है।

तत्त्वविद् + सि, सि का लोप एवं विकल्प से प्रथम अक्षर करके रूप चलेगा।

तत्त्वविद्—तत्त्वों का जानने वाला

तत्त्ववित्, तत्त्वविद्	तत्त्वविदौ	तत्त्वविदः
हे तत्त्ववित्, तत्त्वविद् !	हे तत्त्वविदौ !	हे तत्त्वविदः !
तत्त्वविदम्	तत्त्वविदौ	तत्त्वविदः
तत्त्वविदा	तत्त्वविद्भ्याम्	तत्त्वविद्भिः
तत्त्वविदे	तत्त्वविद्भ्याम्	तत्त्वविद्भ्यः
तत्त्वविदः	तत्त्वविद्भ्याम्	तत्त्वविद्भ्यः
तत्त्वविदः	तत्त्वविदोः	तत्त्वविदाम्
तत्त्वविदि	तत्त्वविदोः	तत्त्ववित्सु

द्विपाद् शब्द में कुछ भेद है—

घुट् विभक्तियों तक कुछ भेद नहीं है। द्विपाद् + शस्

समासांत पाद् शब्द अघुट् स्वर और व्यंजन के आने पर पद् हो जाता है ॥२८७ ॥

द्विपाद् + शस् = द्विपद् + शस् = द्विपदः बना।

द्विपाद्	द्विपादौ	द्विपादः	द्विपदे	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भ्यः
हे द्विपाद् !	हे द्विपादौ !	हे द्विपादः !	द्विपदः	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भ्यः
द्विपादम्	द्विपादौ	द्विपदः	द्विपदः	द्विपदोः	द्विपदाम्
द्विपदा	द्विपाद्भ्याम्	द्विपाद्भिः	द्विपदि	द्विपदोः	द्विपात्सु

इसी प्रकार से चतुष्पाद् व्याघ्रपाद् आदि शब्द चलते हैं।

त्यद् शब्द में कुछ भेद हैं।

त्यद + सि

"त्यदादीनाम् विभक्तौ" से अकारांत 'त्य' रहा पुनः

तस्य च ॥२८८॥

त्यदादीनां तकारस्य सकारो भवति सौ परे। स्यः। त्यौ। त्ये। अन्यत्र सर्वशब्दवत्। एवं एतत् तद् शब्दौ। एषः। एतौ। एते। इत्यादि। सः। तौ। ते। इत्यादि।

एतस्य चान्वादेशे द्वितीयायां चैनः ॥२८९॥

एतस्य इदमश्च टौसोर्द्वितीयायां च एनादेशो भवति कथितस्यानुकथनविषये। एनं। एनौ। एनान्। एनेन। एनयोः। इति दकारान्ताः। धकारान्तः पुल्लिङ्गस्तत्त्वबुध्शब्दः। विरामव्यञ्जनादिष्विति वर्त्तते।

त्यदादि के तकार को सकार हो जाता है ॥२८८॥

सि विभक्ति के आने पर स् का विसर्ग होकर स्यः बना।

त्यद् + औ अकारांत होकर त्यौ बना। त्यद् = जस् सर्वनामवत् त्ये बना।

यद् एतद् शब्द है 'त्यदादीनाम् विभक्तौ' इस सूत्र से अकारान्त। तद् के त् को सकार एतद् के त् को भी सकार होकर यद् का यः तद्—सः, एतद्—एषः बना।

यद्—जो

यः	यौ	ये	यस्मात्	याभ्याम्	येभ्यः
यम्	यौ	यान्	यस्य	ययोः	येषाम्
येन	याभ्याम्	यैः	यस्मिन्	ययोः	येषु
यस्मै	याभ्याम्	येभ्यः			

तद्—वह

सः	तौ	ते	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
तम्	तौ	तान्	तस्य	तयोः	तेषाम्
तेन	ताभ्याम्	तैः	तस्मिन्	तयोः	तेषु
तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः			

एतद् और इदम् शब्द से परे टा, ओस् और द्वितीया विभक्ति के आने पर 'एन' आदेश हो जाता है अन्वादेश के अर्थ में ॥२८९॥

कहे गये शब्द को पुनः कहने को अन्वादेश कहते हैं।

अतः एन् + अम् = एनम्, एन् + औ = एनौ, एन + शस् = एनान् एन + टा = एनेन, एन + ओस = एनयोः

एतद्—यह

एषः	एतौ	एते	एतस्मात्	एताभ्याम्	एतेभ्यः
एतम्, एनम्	एतौ, एनौ	एतान्, एनान्	एतस्य	एतयोः, एनयोः	एतेषाम्
एतेन, एनेन	एताभ्याम्	एतैः	एतस्मिन्	एतयोः, एनयोः	एतेषु
एतस्मै	एताभ्याम्	एतेभ्यः			

दकारांत शब्द हुए। अब धकारांत पुल्लिंग 'तत्त्वबुध्' शब्द है।

तत्त्वबुध + सि

'विरामव्यंजनादिषु' अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

हचतुर्थान्तस्य धातोस्तृतीयादेरादि चतुर्थत्वमकृतवत् ॥२९० ॥

हचतुर्थान्तस्य तृतीयादेर्धातोरादि चतुर्थत्वं भवति विरामे व्यञ्जनादौ च । स चाकृतवत् । तत्त्वभुत्, तत्त्वभुद् । तत्त्वबुधौ । तत्त्वबुधः । संबोधनेऽपि तद्वत् । तत्त्वबुधा । तत्त्वभुद्भ्यां । तत्त्वभुद्भिः । इत्यादि । इति धकारान्ताः । नकाराऽन्तः पुल्लिङ्गः राजन् शब्दः । घुटि चासम्बुद्धाविति दीर्घः । लिङ्गान्तनकारस्येति नकारलोपः । राजा । राजानौ । राजानः ।

न सम्बुद्धौ ॥२९१ ॥

लिङ्गान्तनकारस्य लोपो न भवति सम्बुद्धौ । हे राजन् । राजानं । राजानौ (अघुट्स्वरे अवमसंयोगादनो इत्यादिना लोपः)

तवर्गश्चटवर्गयोगे चटवर्गौ ॥२९२ ॥

अनन्त्यस्तवर्गश्चटवर्गयोगे चटवर्गौ प्राप्नोति आन्तरतम्यात् । राज्ञः । राज्ञा । व्यञ्जनादौ नलोपः । अकारो दीर्घं घोषवतीति दीर्घे प्राप्ते नसंयोगान्तावलुप्तवच्च पूर्वविधौ इति नकारोऽलुप्तवद्भवति ।

हकारांत और चतुर्थांत धातु के शब्द के ह अथवा चतुर्थ अक्षर को तृतीय अक्षर एवं चतुर्थ की आदि में तृतीय को अपने वर्ग का चतुर्थ अक्षर हो जाता है ॥२९० ॥

विराम और व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर पुनः 'वा विरामे' से प्रथम अक्षर होकर तत्त्वबुध को तत्त्वभुत्, तत्त्वभुद् बना ।

तत्त्वबुध्—तत्त्वों को जानने वाला

तत्त्वभुत्, तत्त्वभुद्	तत्त्वबुधौ	तत्त्वबुधः
हे तत्त्वभुत्, तत्त्वभुद् !	हे तत्त्वबुधौ !	हे तत्त्वबुधः !
तत्त्वबुधम्	तत्त्वबुधौ	तत्त्वबुधः
तत्त्वबुधा	तत्त्वभुद्भ्याम्	तत्त्वभुद्भिः
तत्त्वबुधे	तत्त्वभुद्भ्याम्	तत्त्वभुद्भ्यः
तत्त्वबुधः	तत्त्वभुद्भ्याम्	तत्त्वभुद्भ्यः
तत्त्वबुधः	तत्त्वबुधोः	तत्त्वबुधाम्
तत्त्वबुधि	तत्त्वबुधोः	तत्त्वभुत्सु

धकारान्त शब्द हुए अब नकारांत पुल्लिग राजन् शब्द है । राजन् + सि "घुटि चासंबुद्धौ" से दीर्घ "व्यंजनाच्च" से सि का लोप "लिंगांतनकारस्य" से न का लोप राजा बना । राजन् + औ राजानौ । संबोधन में—राजन् + सि

संबोधन में लिंगांत नकार का लोप नहीं होता है ॥२९१ ॥

अतः सि का लोप होकर हे राजन् ! बना ।

राजन् + शस्

'अघुट् स्वरे अवमसंयोगादनो' इस सूत्र से अन् के 'अ' का लोप तब राजन् + अस् रहा ।

तवर्ग को चवर्ग और टवर्ग के योग में चवर्ग और टवर्ग हो जाता है ॥२९२ ॥

अर्थात् तवर्ग के अंत में नहीं हो तब चवर्ग और टवर्ग के आने पर उसी क्रम से चवर्ग और टवर्ग हो जाता है । यहाँ नकार तवर्ग का अंतिम अक्षर है उसे ज् के निमित्त से चवर्ग का अंतिम अक्षर ञकार हुआ । 'जञोर्ज्ञः' इस नियम से ज और ञ के मिलने पर ज्ञ होकर 'राज्ञः' बन गया ।

राजभ्यां। राजभिः। राज्ञे। राजभ्यां। राजभ्यः। ङौ। ईङ्योर्वेति अलोपो वा भवति। राज्ञि, राजनि। राज्ञोः। राजसु। एवं तक्षन् मूर्धन् प्रभृतयः। आत्मन्शब्दस्य तु भेदः। आत्मा। आत्मानौ। आत्मानः। हे आत्मन्। इत्यादि। आत्मानं। आत्मानौ। अघुट्स्वरेअवमसंयोगादिति प्रतिषेधादनोऽलोपो नास्ति। आत्मनः। आत्मना। इत्यादि। एवं सुवर्वन् सुशर्मन ब्रह्मन् कृतवर्मन् प्रभृतयः। करिन् शब्दस्य तु भेदः। सौ—इन्हन् इत्यादिना दीर्घः। करी। करिणौ। करिणः। हे करिन् ! इत्यादि। एवं दण्डिन् हस्तिन् गोमिन्

राजन् + भ्याम् व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर न् का लोप हो जाता है पुनः "अकारो दीर्घं घोषवति' सूत्र से अ को दीर्घ प्राप्त था किन्तु पहले सूत्र आया है कि नकार और संयुक्त अक्षर का लोप करने पर अन्य विधि नहीं होने से दीर्घ नहीं हुआ अतः राजभ्याम् बना।

राजन् + ङि

'ईङ्योर्वा' इस सूत्र से ङि के आने पर अन् के अकार का लोप विकल्प से होता है अतः राज्ञि, राजनि बना। संबोधन में नकार का लोप नहीं हुआ है।

राजन्—राजा

राजा	राजानौ	राजानः	राज्ञे	राजभ्याम्	राजभ्यः
हे राजन् !	हे राजानौ !	हे राजानः !	राज्ञः	राजभ्याम्	राजभ्यः
राजानम्	राजानौ	राज्ञः	राज्ञः	राज्ञोः	राज्ञाम्
राज्ञा	राजभ्याम्	राजभिः	राज्ञि, राजनि	राज्ञोः	राजसु

इसी प्रकार से तक्षन् और मूर्धन् शब्द भी चलते हैं। यथा—

मूर्धा	मूर्धानौ	मूर्धानः	मूर्ध्ने	मूर्धभ्याम्	मूर्धभ्यः
हे मूर्धन् !	हे मूर्धानौ !	हे मूर्धानः !	मूर्ध्नः	मूर्धभ्याम्	मूर्धभ्यः
मूर्धानम्	मूर्धानौ	मूर्ध्नः	मूर्ध्नः	मूर्ध्नोः	मूर्ध्नाम्
मूर्ध्ना	मूर्धभ्याम्	मूर्धभिः	मूर्ध्नि, मूर्धनि	मूर्ध्नोः	मूर्धसु

आत्मन् शब्द में कुछ भेद है। शस् आदि विभक्तियों के आने पर अन् के अकार का लोप नहीं होता क्योंकि 'अवमसंयोगः' सूत्र में वम का संयोग न हो जभी अकार का लोप माना है और इस आत्मन् शब्द में 'म' का संयोग है अतः—

आत्मन्—जीव

आत्मा	आत्मानौ	आत्मानः	आत्मने	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
हे आत्मन् !	हे आत्मानौ !	हे आत्मानः !	आत्मनः	आत्मभ्याम्	आत्मभ्यः
आत्मानम्	आत्मानौ	आत्मनः	आत्मनः	आत्मनोः	आत्मनाम्
आत्मना	आत्मभ्याम्	आत्मभिः	आत्मनि	आत्मनोः	आत्मसु

इसी प्रकार से सुपर्वन्, सुशर्मन्, ब्रह्मन्, कृतवर्मन् शब्दों के रूप चलेंगे।

ब्रह्मन्—ब्रह्मा

ब्रह्मा	ब्रह्माणौ	ब्रह्माणः	ब्रह्मणे	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभ्यः
हे ब्रह्मन् !	हे ब्रह्माणौ !	हे ब्रह्माणः !	ब्रह्मणः	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभ्यः
ब्रह्माणम्	ब्रह्माणौ	ब्रह्मणः	ब्रह्मणः	ब्रह्मणोः	ब्रह्मणाम्
ब्रह्मणा	ब्रह्मभ्याम्	ब्रह्मभिः	ब्रह्मणि	ब्रह्मणोः	ब्रह्मसु

करिन् शब्द में भेद है। करिन् + सि "व्यंजनाच्च" इस सूत्र से सि का लोप "इन् हन् पूषन् इत्यादि" सूत्र से न् की उपधा को दीर्घ होकर 'लिंगांतनकारस्य' इस सूत्र से न् का लोप होकर 'करी' बना।

तपस्विन् प्रभृतयः । वृत्रहन् शब्दस्य तु भेदः । वृत्रहा । वृत्रहणौ । वृत्रहणः । हे वृत्रहन् । वृत्रहणं । वृत्रहणौ । अघुट्स्वरे लोपे कृते । इन्हन् इत्यादिना दीर्घः । अस्मादेव हन उपधायाः सावेव दीर्घः क्विपि न दीर्घः ।

हनेर्हेर्घिरुपधालोपे ॥२९३ ॥

हनेरुपधाया लोपे कृते हेः स्थाने घिर्भवति । घत्वे नस्य णत्वाभावः । वृत्रघ्नः । वृत्रघ्ना । वृत्रहभ्यां । वृत्रहभिः । इत्यादि । एवं ब्रह्महन् भ्रूणहन् ऋणहन् एते शब्दाः । पूषन् शब्दस्य तु भेदः । सौ दीर्घः । पूषा । पूषणौ । पूषणः । हे पूषन् । पूषणं । पूषणौ ।

हन्मासदोषपूषां शसादौ स्वरे वा ॥२९४ ॥

हन् मास दोष पूषन् इत्येतेषां उपधाया उत्तरस्य लोपो वा भवति शसादौ स्वरे परे । पूषः, पूष्णः । पूषा, पूष्णा । पूषभ्यां । पूषभिः । इत्यादि । एवं अर्यमन् शब्दः । अर्वन्शब्दस्य तु भेदः । सौ—अर्वा ।

करिन्—हाथी

करी	करिणौ	करिणः	करिणे	करिभ्याम्	करिभ्यः
हे करिन् !	हे करिणौ !	हे करिणः !	करिणः	करिभ्याम्	करिभ्यः
करिणम्	करिणौ	करिणः	करिणः	करिणोः	करिणाम्
करिणा	करिभ्याम्	करिभिः	करिणि	करिणोः	करिषु

इसी प्रकार से दण्डिन्, हस्तिन्, गोमिन् और तपस्विन् के रूप चलते हैं।

वृत्रहन् शब्द में कुछ भेद हैं।

वृत्रहन् + शस्

'अघुट् स्वरे लोपम्' से स्वर का लोप प्राप्त था और 'इन् हन् पूषन्' इत्यादि सूत्र से दीर्घ प्राप्त था। इसी सूत्र से ही हन् की उपधा को सि के आने पर ही दीर्घ होगा क्विप् प्रत्यय के आने पर दीर्घ नहीं होगा।

हन् की उपधा का लोप करने पर ह् के स्थान में घ् का आदेश हो जाता है ॥२९३ ॥

ह् को घ् होने पर न् को ण् नहीं होता है।

वृत्रहन् + अस्

वृत्रहा	वृत्रहणौ	वृत्रहणः	वृत्रघ्ने	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
हे वृत्रहन् !	हे वृत्रहणौ !	हे वृत्रहणः !	वृत्रघ्नः	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभ्यः
वृत्रहणम्	वृत्रहणौ	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नः	वृत्रघ्नोः	वृत्रघ्नाम्
वृत्रघ्ना	वृत्रहभ्याम्	वृत्रहभः	वृत्रघ्नि, वृत्रहणि	वृत्रघ्नोः	वृत्रहसु

इसी प्रकार से ब्रह्महन्, भ्रूणहन्, ऋणहन् आदि शब्दों के रूप चलते हैं पूषन् शब्द में कुछ भेद है।

पूषन् + सि इत्यादि घुट् विभक्ति में पूर्ववत् पूषा आदि रूप ही बनेंगे। पूषन् + शस्।

शसादि स्वर वाली विभक्ति के आने पर हन् मास् दोष और पूषन् इनकी उपधा के उत्तर अक्षर का लोप विकल्प से हो जाता है ॥२९४ ॥

जब उपधा के उत्तर नकार का लोप हुआ और 'अवमसंयोगा' इत्यादि सूत्र से अन् के अकार का लोप होकर पूषः बना। और नकार का लोप नहीं होने पर पूष्णः बना।

अर्वन्नर्वन्तिरसावनञ् ॥२९५॥

अर्वन्शब्दोऽर्वन्तिर्भवति असावनञ्परश्चेति। अर्वन्तौ। अर्वन्तः। हे अर्वन्। हे अर्वन्तौ। हे अर्वन्तः। अर्वन्तम्। अर्वन्तौ। अर्वतः। अर्वता। अर्वद्भ्याम्। अर्वद्भिः। इत्यादि। नञ्परश्चेत् आत्मनशब्दवत्। अनर्वा। अनर्वाणौ अनर्वाणः। इत्यादि। श्वन् शब्दस्य तु भेदः। सौ—श्वा। श्वानौ। श्वानः। हे श्वन्। श्वानं। श्वानौ। अघुट्स्वरादौ सेट्कस्याप्यनुवर्त्तते।

पूषन्—सूर्य

पूषा	पूषणौ	पूषणः	पूषे, पूष्णे	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
हे पूषन्!	हे पूषणौ!	हे पूषणः!	पूषः, पूष्णः	पूषभ्याम्	पूषभ्यः
पूषणम्	पूषणौ	पूषः, पूष्णः	पूषः, पूष्णः	पूषोः, पूष्णोः	पूषाम्, पूष्णाम्
पूषा, पूष्णा	पूषभ्याम्	पूषभिः	पूषि, पूष्णि	पूषोः, पूष्णोः	पूषसु

अर्यमन्—सूर्य

अर्यमा	अर्यमणौ	अर्यमणः	अर्यम्णे	अर्यमभ्याम्	अर्यमभ्यः
हे अर्यमन्!	हे अर्यमणौ!	हे अर्यमणः!	अर्यम्णः	अर्यमभ्याम्	अर्यमभ्यः
अर्यमणम्	अर्यमणौ	अर्यमणः	अर्यम्णः	अर्यम्णोः	अर्यम्णाम्
अर्यम्णा	अर्यमभ्याम्	अर्यमभिः	अर्यमणि	अर्यम्णि, अर्यम्णोः	अर्यमसु

अर्वन् शब्द में कुछ भेद है।

सि विभक्ति और नञ् समास के बिना अर्वन् शब्द को अर्वन्त आदेश हो जाता है ॥२९५॥

अर्वन् + सि पूर्ववत् अर्वा बना।

अर्वन् + औ—अर्वन्त + औ = अर्वन्तौ।

अर्वन्त् + शस्, अर्वन्त् + भ्याम्

"व्यंजने चैषां निः" सूत्र से शस् आदि स्वर और व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर नकार का लोप हो जाता है अतः अर्वतः, अर्वद्भ्याम् बना।

अर्वन्—घोड़ा

अर्वा	अर्वन्तौ	अर्वन्तः	अर्वते	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
हे अर्वन्!	हे अर्वन्तौ!	हे अर्वन्तः!	अर्वतः	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भ्यः
अर्वन्तम्	अर्वन्तौ	अर्वतः	अर्वतः	अर्वतोः	अर्वताम्
अर्वता	अर्वद्भ्याम्	अर्वद्भिः	अर्वति	अर्वतोः	अर्वत्सु

जब नञ् समास हो गया तब अनर्वन् शब्द के रूप आत्मन् शब्द के समान चलेंगे। क्योंकि इसमें व का संयोग होने से अन् के अकार का लोप नहीं होगा।

अनर्वा	अनर्वाणौ	अनर्वाणः	अनर्वणः	अनर्वभ्याम्	अनर्वभ्यः
अनर्वाणम्	अनर्वाणौ	अनर्वणः	अनर्वणः	अनर्वणोः	अनर्वणाम्
अनर्वणा	अनर्वभ्याम्	अनर्वभिः	अनर्वणि	अनर्वणोः	अनर्वषु
अनर्वणे	अनर्वभ्याम्	अनर्वभ्यः			

श्वन् शब्द में कुछ भेद है।

श्वन् + सि = श्वा आदि पाँच घुट् संज्ञक विभक्ति के रूप पूर्ववत्।

श्वन् + शस्

श्वयुवमघोनां च ॥२९६ ॥

श्वन् युवन् मघवन् एषां वशब्दस्योत्वं भवति अघुट्स्वरे परे । शुनः । शुना । श्वभ्यां । श्वभिः इत्यादि । एवं युवन्शब्दः । युवा । युवानौ । युवानः । हे युवन् । युवानं । युवानौ । यूनः । यूना । युवभ्यां । युवभिः । इत्यादि । मघवन्शब्दस्य तु भेदः । सौ अर्वन्नर्वन्तिरित्यनुवर्तते ।

सौ च मघवान्मघवा वा ॥२९७ ॥

विभक्तौ सौ च परे मघवन् शब्दो मघवन्त् भवति वा । अन्त्वसन्तस्येति दीर्घे प्राप्ति निपातनाद्दीर्घः । मघवान् । मघवन्तौ । मघवन्तः । संबोधनेऽपि तद्वत् । मघवन्तं । मघवन्तौ । मघवतः । मघवता । मघवद्भ्यां । मघवद्भिः । इत्यादि । पक्षे । मघवा । मघवानौ । मघवानः । मघवानं । मघवानौ । मघोनः । मघोना । मघवभ्यां । मघवभिः । इत्यादि । श्वानमाचष्टे । तत्करोति तदाचष्टे इन् । इनि लिङ्गस्यानेकाक्षरस्येत्यादिना अन्त्यस्वरादेर्लोपे प्राप्ते ।

'अघुट् स्वरादौ सेट्कस्यापि' सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है। श्वन्, युवन् और मघवन् इनके व् को अघुट् स्वर के आने पर उकार हो जाता है ॥२९६ ॥

श्वन् + शस् श् उ न् + अस् = शुन् + अस् = शुनः । इसी प्रकार से युवन् + अस् = यु उ न् + अस् = यूनः बना।

श्वन्—कुत्ता

श्वा	श्वानौ	श्वानः	शुने	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
हे श्वन् !	हे श्वानौ !	हे श्वानः !	शुनः	श्वभ्याम्	श्वभ्यः
श्वानम्	श्वानौ	शुनः	शुनः	शुनोः	शुनाम्
शुना	श्वभ्याम्	श्वभिः	शुनि	शुनोः	श्वसु

युवन्—जवानी

युवा	युवानौ	युवानः	यूने	युवभ्याम्	युवभ्यः
हे युवन् !	हे युवानौ !	हे युवानः !	यूनः	युवभ्याम्	युवभ्यः
युवानम्	युवानौ	यूनः	यूनः	यूनोः	यूनाम्
यूना	युवभ्याम्	युवभिः	यूनि	यूनोः	युवसु

मघवन् शब्द में कुछ भेद है।

मघवन् + सि

'अर्वन्नर्वन्तिरसावनञ्' सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

सि विभक्ति और विभक्तियों के आने पर मघवन् शब्द को विकल्प से मघवन्त् आदेश हो जाता है ॥२९७ ॥

सि औ जस् अम् औ पाँच जगह आदेश है। 'अन्त्वसन्तस्य' इत्यादि सूत्र से न् की उपधा को दीर्घ प्राप्त था, किन्तु यहाँ निपात से दीर्घ हुआ तो मघवान् त् + सि । सि और त् का लोप होकर मघवान् बना। इसके रूप भगवान् के समान चलेंगे। द्वितीय पक्ष में—मघवा, मघवानौ, आत्मन् के समान बन गये।

मघवन् + शस् २९६वें सूत्र से व को उ होकर संधि होकर मघोनः बना।

श्वान जैसी चेष्टा करता है या कहता है। इस अर्थ में "तत्करोति तदाचष्टे इन्" इस सूत्र से इन् प्रत्यय होकर "इनि लिंगस्यानेकाक्षरस्य" इत्यादि सूत्र से अंत स्वर की आदि का लोप प्राप्त था तब सूत्र लगा—

न शुनः ॥२९८ ॥

श्वन् इत्येतस्य अन्त्यस्वरादेर्लोपो न भवति इनि परे। श्वानयति। मघवानमाचष्टे मघवयति।

स्थूलदूरयुवक्षिप्रक्षुद्राणामन्तस्थादेर्लोपो गुणश्च नामिनाम् ॥२९९ ॥

स्थूलदूरयुवक्षिप्रक्षुद्र इत्येतेषामन्तस्थादेर्लोपो भवति नामिनां गुणश्च इनि परे। स्थूलमाचष्टे स्थवयति। दूरमाचष्टे दवयति। युवानमाचष्टे यवयति। क्षिप्रमाचष्टे क्षेपयति। क्षुद्रमाचष्टे क्षोदयति। इनि लिङ्गस्यानेकाक्षरस्येत्यादिना अन्त्यस्वरादेर्लोपः। अनि च विकरणे गुणः सर्वत्र। पञ्चन् शब्दस्य तु भेदः। तस्य बहुवचनमेव। कतेश्च जश्शसोर्लुक्। पञ्च। पञ्च। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। पञ्चभ्यः। आमि च नुरित्यनुवर्त्तते।

संख्यायाः ष्णान्तायाः ॥३०० ॥

श्वन् इसके अन्त्य के आदि स्वर का लोप नहीं होता इन् के आने पर ॥२९८ ॥

पुनः इस सूत्र से इन् का लोप न होने से 'श्वानयति' बन गया। ऐसे ही मघवानमाचष्टे 'मघवयति' बना है।

स्थूल, दूर, युव, क्षिप्र और क्षुद्र इनके अंतस्थ की आदि का लोप और नामि को गुण हो जाता है इन् के आने पर ॥२९९ ॥

स्थूलं आचष्टे—स्थवयति। दूरमाचष्टे दवयति। युवानमाचष्टे यवयति। क्षिप्रमाचष्टे क्षेपयति। क्षुद्रमाचष्टे क्षोदयति। "इनि लिंगस्यानेकाक्षरस्य" इस सूत्र से यहाँ अन्त्य स्वर का लोप होकर "अनि च विकरणे" से गुण हो गया है।

मघवन्—इन्द्र

मघवान्	मघवन्तौ	मघवन्तः	मघवते	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
हे मघवन्!	हे मघवन्तौ!	हे मघवन्तः!	मघवतः	मघवद्भ्याम्	मघवद्भ्यः
मघवन्तम्	मघवन्तौ	मघवतः	मघवतः	मघवतोः	मघवताम्
मघवता	मघवद्भ्याम्	मघवद्भिः	मघवति	मघवतोः	मघवत्सु

द्वितीय पक्ष में—

मघवा	मघवानौ	मघवानः	मघोने	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
हे मघवन्!	हे मघवानौ!	हे मघवानः!	मघोनः	मघवभ्याम्	मघवभ्यः
मघवानम्	मघवानौ	मघोनः	मघोनः	मघोनोः	मघोनाम्
मघोना	मघवभ्याम्	मघवभिः	मघोनि	मघोनोः	मघवन्सु

पञ्चन् शब्द में कुछ भेद है।

पंचन् आदि शब्द बहुवचन में ही चलते हैं।

पञ्चन् + जस्, पञ्चन् + शस्

'कतेश्च जश्शसोर्लुक्' से जस् शस् का लोप होकर लिंगांत नकार का लोप होने पर पञ्च, पञ्च बना।

पञ्चन् + भिस् 'लिगांतनकारस्य' न् का लोप होकर पंचभिः बना।

पञ्चन् + आम्

षकारांत और नकारांत संख्यावाची शब्द से परे आम के आने पर नु का आगम हो जाता है ॥३०० ॥

'दीर्घमामिसनौ' अनुवृत्ति में आ रहा है।

षकारनकारान्तायाः संख्याया नुरागमो भवति आमि परे। दीर्घमामि सनौ इति अनुवर्तते।

नान्तस्य चोपधायाः ॥३०१॥

नान्तस्य चोपधाया दीर्घो भवति सनावामि परे। पञ्चानाम्। पञ्चसु। एवं सप्तन् नवम् दशन् प्रभृतयः। अष्टन्शब्दस्य तु भेदः। तस्यापि बहुवचनमेव।

अष्टनः सर्वासु ॥३०२॥

अष्टन्शब्दान्तस्य आ भवति सर्वासु विभक्तिषु। येन विधिस्तदन्तस्य इति नकारस्य आकारः। सवर्णे दीर्घः।

औ तस्माज्जस्शसोः ॥३०३॥

तस्मादष्टनः कृताकारात्परयोर्जश्शसोः स्थाने और्भवति। अष्टौ। अष्टौ। तस्मादग्रहणं किमर्थम्। आत्वस्यानित्यार्थं। तेन औत्वाभावे जश्शसोर्लुक् इत्यनेन जश्शसोर्लोपः। अष्ट। अष्ट। अष्टाभिः, अष्टभिः। अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः। अष्टाभ्यः, अष्टभ्यः। आमि आत्वं संख्यायाः ष्णान्ताया इति, अत्र अन्तग्रहणाधिक्यात् भूतपूर्वनान्ताया अपि आमि नुरागमः। अष्टानाम्। अष्टसु, अष्टासु। इति नकारान्ताः। पफबभान्ता अप्रसिद्धाः। मकारान्तः पुल्लिङ्गः किम् शब्दः।

सुनु और आम् के आने पर नांत की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥३०१॥

और न का लोप हो जाता है। पञ्चानाम् बना।

पञ्च। पञ्च। पञ्चभिः। पञ्चभ्यः। पञ्चभ्यः। पञ्चानाम्। पञ्चसु।

इसी प्रकार से सप्तन्, नवन् और दशन् के रूप चलते हैं।

यथा—

सप्त	सप्तभ्यः	नव	नवभ्यः	दश	दशभ्यः
सप्त	सप्तानाम्	नव	नवानाम्	दश	दशानाम्
सप्तभिः	सप्तसु	नवभिः	नवसु	दशभिः	दशसु
सप्तभ्यः		नवभ्यः		दशभ्यः	

अष्टन् शब्द में कुछ भेद है।

यह भी बहुवचन में ही चलता है।

सभी विभक्तियों के आने पर अष्टन् के अन्त को 'आ' हो जाता है ॥३०२॥

जिससे विधि हुई है वह अंत को हुई है अतः नकार को आकार हुआ।

अष्टा + जस् अष्टा + शस्

अष्टन् शब्द को आकारांत करने के बाद जस् शस् के स्थान में औ आदेश हो जाता है ॥३०३॥

अष्टा + औ = अष्टौ बना।

सूत्र में तस्माद् शब्द का ग्रहण क्यों किया है ? नकार को आकार किया गया है वह अनित्य है इस बात को सूचित करने के लिये ही तस्माद् पद का ग्रहण किया गया है। इसलिये जब जस् शस् को औ नहीं होगा तब 'जश्शसोर्लुक' से जस् शस् का लोप एवं "लिंगांत नकारस्य" से नकार का लोप होकर अष्ट, अष्ट बना। न को 'आ' होने से अष्टाभिः अष्टाभ्यः। अष्टा + आम् "संख्यायाष्णान्तायाः" सूत्र से नु का आगम होकर अष्टानाम् बना। क्योंकि इस सूत्र में भी नकारांत पद से नु का आगम करने का विधान है अतः भूतपूर्व नकारांत होने से नु का आगम हुआ है। पुनः अष्टन् + आम् नु का आगम होकर अष्टानाम् बना।

किं कः ॥३०४ ॥

किंशब्दः को भवति विभक्तौ परतः । कः । कौ । के । कं । कौ । कान् । केन । काभ्यां । कैः । इत्यादि । इदम् शब्दस्य तु भेदः ।

इदमियमयं पुंसि ॥३०५ ॥

इदम् शब्दस्य इयं भवति स्त्रियामयं पुंसि इदं च नपुंसके सौ परे । अयम् । अन्यत्र त्यदाद्यत्वम् ।

दोऽद्वेर्मः ॥३०६ ॥

त्यदादीनां दकारस्य मो भवति अद्वेर्विभक्तौ । इमौ । इमे । इमं । इमौ । इमान् ।

टौसोरनः ॥३०७ ॥

अग्वर्जितस्य इदंशब्दस्य अनादेशो भवति टौसोः परतः । अनेन ।

अष्टौ	अष्टाभ्यः	अष्ट	अष्टभ्यः
अष्टौ	अष्टानाम्	अष्ट	अष्टानाम्
अष्टाभिः	अष्टासु	अष्टभिः	अष्टसु
अष्टाभ्यः		अष्टभ्यः	

इस प्रकार से नकारांत शब्द हुए । प फ ब और भकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं ।

अब मकारांत पुल्लिग किम् शब्द है ।

किम् + सि

पुल्लिग में विभक्तियों के आने पर किम् को 'क' आदेश होता है ॥३०४ ॥

अब 'क' शब्द से सारी विभक्तियाँ आने पर सर्वनाम के समान रूप चलेंगे । यथा—

कः	कौ	के	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
कम्	कौ	कान्	कस्य	कयोः	केषाम्
केन	काभ्याम्	कैः	कस्मिन्	कयोः	केषु
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः			

इदम् शब्द में कुछ भेद है ।

इदम् शब्द को पुल्लिग में 'अयं' स्त्रीलिंग में 'इयम्' और नपुंसक लिंग में 'इदम्' आदेश होता है ॥३०५ ॥

अतः इदम् + सि, सि का लोप होकर इदम् को 'अयम्' आदेश हुआ । 'अयम्' बना ।

इदम् + औ "त्यदादीनाम् विभक्तौ" से अकारांत होकर 'इद' बना । इद + औ ।

द्वि शब्द को छोड़कर विभक्तियों के आने पर त्यदादि गण के दकार को मकार होता है ॥३०६ ॥

इम + औ = इमौ, इम + जस् "जः सर्व इः" से इ होकर इम + इ = इमे इत्यादि ।

इदम् + टा ।

टा और ओस् के आने पर अग् वर्जित इदम् शब्द को अन आदेश हो जाता है ॥३०७ ॥

पुनः 'इन टा' इस १३८वें सूत्र से टा को 'इन' आदेश होकर अन + इन = अनेन ।

इदम् + भ्याम् ।

अद् व्यञ्जनेऽनक् ॥३०८ ॥

अग्वर्जितस्य इदं शब्दस्य अद्भवति व्यञ्जनादौ विभक्तौ परतः। आभ्याम्।

तस्माद्भिस् भिर् ॥३०९ ॥[1]

तस्मात्कृताकारादिदमः परो भिस् भिर् भवति। एभिः। अस्मै। आभ्याम्। एभ्यः। अस्मात्। आभ्याम्। एभ्यः। अस्य। अनयोः। एषाम्। अस्मिन्। अनयोः। एषु। अन्वादेशे पूर्ववत्। इति मकारान्ताः। यकारान्तोऽप्रसिद्धः। रेफान्तः पुल्लिङ्गश्चत्वारशब्दः। तस्य बहुवचनमेव। चत्वारः।

चतुरो वाशब्दस्योत्वम् ॥३१० ॥

चत्वार् इत्येतस्य वाशब्दस्य उत्वं भवति अघुट्स्वरे व्यञ्जने च परे। चतुरः।

न रेफस्य घोषवति ॥३११ ॥

रेफस्य घोषवति परे विसर्जनीयो न भवति। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः।

आमि चतुरः ॥३१२ ॥

चत्वार् शब्दस्य नुरागमो भवति आमि परे। चतुर्णां। विसर्जनीये प्राप्ते।

अग्वर्जित इदम् शब्द को व्यंजन आदि विभक्ति के आने पर 'अ' हो जाता है ॥३०८ ॥

'अकारो दीर्घं घोषवति' आभ्याम् बना।

इदम् + भिस् 'अद् व्यंजनेऽनक्' सूत्र से इदम् को 'अ' होकर 'धुटि बहुत्वे त्वे' १४३वें सूत्र से बहुवचन में 'ए' होकर—

इदम् शब्द को अकार करने पर भिस् को भिर् हो जाता है ॥३०९ ॥

ए + भिर् = एभिः।

इदम् + ङे 'स्मै सर्वनाम्नः' १५३वें सूत्र से ङे को स्मै होकर ३०८वें सूत्र से 'अ' होकर अस्मै बना।

इदम्—यह

अयम्	इमौ	इमे	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
इमम्, एनम्	इमौ, एनौ	इमान्, एनान्	अस्य	अनयोः, एनयोः	एषाम्
अनेन, एनेन	आभ्याम्	एभिः	अस्मिन्	अनयो, एनयोः	एषु
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः			

मकारांत शब्द हुए। यकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब रकारांत चत्वार् शब्द है। वह बहुवचन में ही चलता है।

चत्वार् + जस् = चत्वारः

चत्वार् इस शब्द के वा को उकार हो जाता है ॥३१० ॥

अघुट् स्वर और व्यंजन के आने पर। चत्वार् + शस् = चतुरः। चत्वार् + भिस्।

घोषवान् के आने पर रेफ को विसर्ग नहीं होता है ॥३११ ॥

अतः चतुर्भिः। चत्वार् + आम्

आम् के आने पर चत्वार् से नु का आगम होता है ॥३१२ ॥

चतुर्णाम् बना। चतुर् + सु

---

१. इदं सूत्रमैस्बाधनार्थं।

रः सुपि ॥३१३ ॥

रो रकारस्य विसर्जनीयः सुपि परे न भवति। इति निषेधः। चतुर्षु। इति रेफान्ताः। लकारान्तोऽप्रसिद्धः। वकारान्तः पुल्लिङ्गः सुदिव्शब्दः। सौ—

औ सौ ॥३१४ ॥

दिवो वकारस्य औ भवति सौ परे। सुद्यौः। सुदिवौ। सुदिवः।

वाम्याः ॥३१५ ॥

दिवो वकारस्य वा आकारो भवति अमि परे। सुद्यां, सुदिवं। सुदिवौ। सुदिवः। सुदिवा।

दिव उद्व्यञ्जने ॥३१६ ॥

दिवो वकारस्य उत् भवति व्यञ्जने परे। सुद्युभ्यां। सुद्युभिः। इत्यादि। इति वकारान्ताः। शकारान्तः

सुप् के आने पर रकार का विसर्ग नहीं होता है ॥३१३ ॥

अतः चतुर्षु बना।

रकारांत शब्द हुए, लकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब वकारांत सुदिव् शब्द है।

सुदिव् + सि

सि के आने पर दिव् के वकार को औ हो जाता है ॥३१४ ॥

'इवर्णो यमसवर्णे' इत्यादि सूत्र से संधि होकर 'सुद्यौः' बना।

सुदिव् + अम्

अम् विभक्ति के आने पर दिव् के वकार को विकल्प से आकार हो जाता है। ।३१५ ॥

सुदि आ + अम् संधि होकर = सुद्याम्।

सुदिव् + भ्याम्

व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर दिव् के वकार को उकार हो जाता है ॥३१६ ॥

अतः सुद्युभ्याम् बना।

सुदिव्—अच्छा आकाश

सुद्यौः	सुदिवौ	सुदिवः	सुदिवे	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
हे सुद्यौः !	हे सुदिवौ !	हे सुदिवः !	सुदिवः	सुद्युभ्याम्	सुद्युभ्यः
सुद्याम्, सुदिवं	सुदिवौ	सुदिवः	सुदिवः	सुदिवोः	सुदिवाम्
सुदिवा	सुद्युभ्याम्	सुद्युभिः	सुदिवि	सुदिवोः	सुद्युषु

इस प्रकार से वकारांत शब्द हुए। अब शकारांत पुल्लिंग विश् शब्द है।

विश् + सि

'हशसछान्तेजादीनां डः' २७१वें सूत्र से स् को ड् होकर सि का लोप और प्रथम अक्षर होकर विट् विड् बना।

विश्—वैश्य

विट्, विड्	विशौ	विशः	विशे	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
हे विट्, विड् !	हे विशौ !	हे विशः !	विशः	विड्भ्याम्	विड्भ्यः
विशम्	विशौ	विशः	विशः	विशोः	विशाम्
विशा	विड्भ्याम्	विड्भिः	विशि	विशोः	विट्सु

पुल्लिङ्गो विश् शब्दः । हशषछान्त इत्यादिना डत्वम् । विट्, विड् । विशौ । विशः । संबोधनेऽपि तद्वत् । इत्यादि । तादृश्[१] शब्दस्य तु भेदः । चवर्गदृगादीनां चेति गत्वम् । तादृक्, तादृग् । तादृशौ । तादृशः । एवं सदृश् यादृश् एतादृश् कीदृश् ईदृश् अमूदृश् प्रभृतयः । इति शकारान्ताः । षकारान्तः पुल्लिङ्गो रत्नमुष् शब्दः । रत्नमुट्, रत्नमुड् । रत्नमुषौ । रत्नमुषः । रत्नमुषं । रत्नमुषौ । रत्नमुषः । रत्नमुषा । रत्नमुड्भ्यां । रत्नमुड्भिः । इत्यादि । साधुतक्ष् शब्दस्य तु भेदः ।

संयोगादेर्धुटः ॥२७४ ॥*

संयोगादेर्धुटो लोपो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च । व्यञ्जनाच्च सेर्लोपः ।

हशषछान्तेजादीनां डः ॥२७१ ॥*

तादृश् शब्द में कुछ भेद है ।

तादृश् + सि

'चवर्गदृगादीनां च' इस २५४वें सूत्र से च् को ग् एवं क् होकर तादृग्, तादृक् बना ।

तादृश्—वैसा

तादृक्, तादृग्	तादृशौ	तादृशः	तादृशः	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः
तादृशम्	तादृशौ	तादृशः	तादृशः	तादृशोः	तादृशाम्
तादृशा	तादृग्भ्याम्	तादृग्भिः	तादृशि	तादृशोः	तादृक्षु
तादृशे	तादृग्भ्याम्	तादृग्भ्यः			

इसी प्रकार से सदृश्, यादृश्, एतादृश्, कीदृश्, ईदृश्, अमूदृश् आदि शब्द चलते हैं । शकारांत शब्द हुए । अब षकारांत रत्नमुष् शब्द है ।

रत्नमुष् + सि

'ह श ष छान्तेजादीनां डः' सूत्र से ष् को ड् होकर प्रथम अक्षर होकर रत्नमुट्, रत्नमुड् बना ।

रत्नमुष्—रत्नों का चोर

रत्नमुट्, रत्नमुड्	रत्नमुषौ	रत्नमुषः
हे रत्नमुट्, हे रत्नमुड् !	हे रत्नमुषौ !	हे रत्नमुषः !
रत्नमुषम्	रत्नमुषौ	रत्नमुषः
रत्नमुषा	रत्नमुड्भ्याम्	रत्नमुड्भिः
रत्नमुषे	रत्नमुड्भ्याम्	रत्नमुड्भ्यः
रत्नमुषः	रत्नमुड्भ्याम्	रत्नमुड्भ्यः
रत्नमुषः	रत्नमुषोः	रत्नमुषाम्
रत्नमुषि	रत्नमुषोः	रत्नमुट्सु, रत्नमुट्त्सु

साधुतक्ष् + सि

*संयोग की आदि में यदि धुट् अक्षर है एवं विराम और व्यंजन वाली विभक्तियाँ आयी हैं तो धुट् का लोप हो जाता है ॥२७४ ॥

'व्यंजनाच्च' सूत्र से सि का लोप हो जाता है । अतः साधु—त क् ष् + सि क् का लोप हुआ ।

*ह श ष और छकारांत शब्द एवं यजादि को विराम और व्यंजन के आने पर 'ड्' हो जाता है ॥२७१ ॥

अतः ष् को ड् होकर साधु तड् बना । एक बार प्रथम अक्षर होकर साधुतट् बना ।

---

१. सेव दृश्यत इति तादृक् ॥ *ये दो सूत्र पहले आ चुके हैं ।

हशषछान्तानां यजादीनां[१] च डो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। इति डत्वं। साधुतट्, साधुतड्। साधुतक्षौ। साधुतक्षः। संबोधनेऽपि तद्वत्। साधुतक्षं। साधुतक्षौ। साधुतक्षः। साधुतक्षा। साधुतड्भ्यां। साधुतड्भिः इत्यादि। षष्शब्दस्य तु भेदः। तस्य बहुवचनमेव। जश्शलोर्लुक्। षट्, षड्। षड्भिः। षड्भ्यः। आमि नुरागमो डत्वं च।

षडो णो ने ॥३१७॥

संख्यायाः ष्णान्तायाः षडा णो भवति विभक्तौ ने परे। षण्णां। षट्त्सु, षट्सु इत्यादि। सकारान्तः पुल्लिङ्गः सुवचस् शब्दः। सौ अन्त्वसन्तस्येत्यादिना दीर्घः। सुवचाः। सुवचसौ। सुवचसः हे सुवचः। हे सुवचसौ। हे सुवचसः। सुवचसं। सुवचसौ। सुवचसः। सुवचसा। सुवचोभ्यां। सुवचोभिः। इत्यादि। एवं चन्द्रमस् पीतवासस् स्थूलशिरस् हिरण्यरेतस् सुश्रोतस् प्रभृतयः। उशनस् शब्दस्य तु भेदः।

साधुतक्ष्—

साधुतड्, साधुतट्	साधुतक्षौ	साधुतक्षः
हे साधुतड्, हे साधुतट् !	हे साधुतक्षौ !	हे साधुतक्षः !
साधुतक्षम्	साधुतक्षौ	साधुतक्षः
साधुतक्षा	साधुतड्भ्याम्	साधुतड्भिः
साधुतक्षे	साधुतड्भ्याम्	साधुतड्भ्यः
साधुतक्षः	साधुतड्भ्याम्	साधुतड्भ्यः
साधुतक्षः	साधुतक्षोः	साधुतक्षाम्
साधुतक्षि	साधुतक्षोः	साधुतट्सु, साधुतट्त्सु

षष् + जस्, षष् + शस्

'जश्शसोर्लुक' सूत्र से जस्, शस् का लुक् शब्द से लोप करके "हशषछान्तेजादीनां डः" सूत्र से ष् को ड् होकर पुनश्च विकल्प से प्रथम अक्षर होकर षट्, षड् बना।

षष् आम् नु का न् होकर न् को ण् हो गया पुनः

आगे नकार विभक्ति के आने पर संख्यावाची षट् शब्द के ट् को ण् हो जाता है ॥३१७॥

अतः षण्णाम् बना।

षष् + सु २७१वें सूत्र से ष् को ट् होकर षट्सु एवं "टात् सुप्तादिर्वा" इस २७६वें सूत्र से 'त्' का आगम होकर षट्त्सु बना।

षट्, षड्। षट्, षड्। षड्भिः। षड्भ्यः षड्भ्यः षण्णाम् षट्सु, षट्त्सु

अब सकारांत पुल्लिग सुवचस् शब्द है।

सुवचस् + सि, सि विभक्ति का लोप होकर "अन्त्वसन्तस्य चाधातोस्सौ" २७७वें सूत्र से असंबुद्धि सि के आने पर अस् के 'अ' को दीर्घ होकर स् को विसर्ग होकर सुवचाः बना।

सुवचस्—अच्छे वचन बोलने वाला।

सुवचाः	सुवचसौ	सुवचसः	सुवचसे	सुवचोभ्याम्	सुवचोभ्यः
हे सुवचः !	हे सुवचसौ !	हे सुवचसः !	सुवचसः	सुवचोभ्याम्	सुवचोभ्यः
सुवचसम्	सुवचसौ	सुवचसः	सुवचसः	सुवचसोः	सुवचसाम्
सुवचसा	सुवचोभ्याम्	सुवचोभिः	सुवचसि	सुवचसोः	सुवचःसु

इसी प्रकार से चन्द्रमस्, पीतवासस्, स्थूलशिरस्, हिरण्यरेतस्, सुश्रोतस् आदि के रूप चलते हैं।

उशनस् शब्द में कुछ भेद है। उशनस् + सि

---

१. ते-के यजादयः यज्-स्रज् मृज्-भ्राज्-राज् परिव्राज् इति यजादयः॥

उशनस्पुरुदंसोऽनेहसां सावनन्तः ॥३१८ ॥[1]

उशनस् पुरुदंशस् अनेहस् इत्येतेषामन्तोऽन् भवति सौ परे असम्बुद्धौ। उशना। उशनसौ। उशनसः। नञा निर्दिष्टमनित्यम्।

सम्बोधने तूशनसस्त्रिरूपं सान्तं तथा नान्तमथाप्यदन्तम्।
श्रीव्याघ्रभूतिप्रतितन्नमेपन्नञाधि निर्दिष्टमनित्यमेव ॥१ ॥

हे उशनः, हे उशनन्, हे उशन। हे उशनसौ। हे उशनसः। उशनसं। उशनसौ। उशनसः। उशनसा। उशनोभ्यां। उशनोभिः। इत्यादि। एवं पुरुदंशस् अनेहस् शब्दौ सम्बुद्धिं विना। विद्वन्स् शब्दस्य तु भेदः। सौ—सान्तमहतोर्नोपधाया इति दीर्घः। विद्वान्। विद्वांसौ। विद्वांसः। हे विद्वन्। हे विद्वांसौ। हे विद्वांसः। विद्वांसं। विद्वांसौ।

असंबुद्ध 'सि' विभक्ति के आने पर उशनस्, पुरुदंशस् और अनेहस् शब्दों के अंत को 'अन्' हो जाता है ॥३१८ ॥

अतः उशनन् + सि हुआ। पुनः 'घुटि चासंबुद्धौ' इस १७७वें सूत्र से न् की उपधा को दीर्घ होकर "लिंगान्त नकारस्य" सूत्र से 'न्' का लोप होकर 'उशना' बना। उशनस् + औ = उशनसौ, उशनसः।

नञ् समास से निर्दिष्ट होने से यह वैकल्पिक है और—

श्लोकार्थ—संबोधन में उशनस् शब्द के तीन रूप बनते हैं, सकारांत, नकारान्त एवं अकारांत। ऐसा श्री व्याघ्रभूति महोदय ने स्वीकार किया है क्योंकि यह नञ् समास के द्वारा कहा गया होने से अनित्य ही है ॥

अतः उशनस् + सि, सि का लोप एवं स् का विसर्ग होकर हे उशनः ! अन् आदेश होकर हे उशनन् ! एवं अकारांत होकर हे उशन ! ऐसे तीन रूप बन गये।

तथाहि—उशनस्

उशना	उशनसौ	उशनसः
हे उशनः ! हे उशनन् !	हे उशन् ! हे उशनसौ !	हे उशनसः !
उशनसम्	उशनसौ	उशनसः
उशनसा	उशनोभ्याम्	उशनोभिः
उशनसे	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
उशनसः	उशनोभ्याम्	उशनोभ्यः
उशनसः	उशनसोः	उशनसाम्
उशनसि	उशनसोः	उशनःसु [2] उशनस्सु।

संबोधन के सिवाय पुरुदंशस् और अनेहस् के रूप इसी प्रकार से चलते हैं।

विद्वन्स् शब्द में कुछ भेद है। विद्वन्स् + सि "सान्तमहतोर्नोपधायाः" इस २८६वें सूत्र से 'न' की उपधा को दीर्घ होकर "संयोगान्तस्य लोपः" सूत्र २६०वें से स् का लोप होकर एवं व्यञ्जनाच्च सूत्र से सि का लोप होकर 'विद्वान्' बना। तत्रैव घुट् विभक्ति तक न् की उपधा को दीर्घ एवं "मनोरनुस्वारो घुटि" इस २५८वें सूत्र से नकार को अनुस्वार होकर विद्वन्स् + औ = विद्वान्सौ बना।

---

१. अकारः किमर्थः ? सख्युरंतः अन्भवतीत्यत्र अन्नयोजनम् ॥

२. 'शेषे से वा वापररूपम्' से विकल्प से स् हो गया है।

अघुट्स्वरादौ[1] सेट्कस्यापि[2] वन्सेर्वशब्दस्योत्वम् ॥३१९ ॥

सेट्कस्यापि [3]वन्सेर्वशब्दस्योत्वं भवति अघुट्स्वरादौ। विदुषः। विदुषा।

विरामव्यञ्जनादिष्वनडुन्नहिवन्सीनां च ॥३२० ॥

विरामे व्यञ्जनादौ च अनड्वन्नहिवन्सीनामन्तस्य दो भवति। विद्वद्भ्यां। विद्वद्भिः। इत्यादि। पेचिवान्। पेचिवांसौ। पेचिवांसः। पेचिवांसं। पेचिवांसौ। निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः। इतीडभावः। अघुट्स्वरादौ सेट्कस्येति उत्वम्। पेचुषः। पेचुषा। पेचिवद्भ्यां। पेचिवद्भिः। पेचुषे। पेचिवद्भ्यां। पेचिवद्भ्यः। एवं तेनिवन्स् प्रभृतयः। इत्यादि। उखाश्रस् शब्दस्य तु भेदः। सौ—

श्रसिध्वसोश्च ॥३२१ ॥

विद्वन्स् + शस्, अब अघुट् विभक्ति के आने पर—

अघुट् स्वर वाली विभक्ति के आने पर इट् सहित एवं इट् रहित दोनों प्रकार के शब्दों में भी 'वन्स्' के 'व' को 'उ' हो जाता है ॥३१९ ॥

विदुन्स् + अस् "व्यञ्जने चैषा निः" इस १८८वें सूत्र से नकार का लोप होकर एवं 'नामि' से परे स् को ष् होकर 'विदुषः' बना। अब व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर—विद्वन्स् + भ्याम्।

विराम एवं व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर अनड्वाह् और वन्स् शब्द के अन्त को 'दकार' हो जाता है ॥३२० ॥

अतः 'व्यंजने चेषां निः' से नकार का लोप होकर 'विद्वद्भ्याम्' बना।

विद्वान्	विद्वांसौ	विद्वांसः	विदुषे	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
हे विद्वन् !	हे विद्वांसौ !	हे विद्वांसः !	विदुषः	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भ्यः
विद्वांसम्	विद्वांसौ	विदुषः	विदुषः	विदुषोः	विदुषाम्
विदुषा	विद्वद्भ्याम्	विद्वद्भिः	विदुषि	विदुषोः	विद्वत्सु

पेचिवन्स् + सि = पेचिवान्, बना घुट् विभक्ति तक विद्वान् के समान रूप बनेंगे। आगे अघुट् स्वर वाली विभक्ति के आने पर कुछ अंतर है। यथा—पेचिवन्स् + शस्

"निमित्त के अभाव में नैमित्तिक का भी अभाव हो जाता है" इस नीति के अनुसार पेचिवन्स् शब्द के इट् का अभाव होकर एवं उपर्युक्त ३१९वें सूत्र से 'व' को 'उ' होकर 'पेचुषः' बना।

पेचिवान्	पेचिवांसौ	पेचिवांसः	पेचुषे	पेचिवद्भ्याम्	पेचिवद्भ्यः
हे पेचिवन् !	हे पेचिवांसौ !	हे पेचिवांसः !	पेचुषः	पेचिवद्भ्याम्	पेचिवद्भ्यः
पेचिवांसं	पेचिवांसौ	पेचुषः	पेचुषः	पेचुषोः	पेचुषाम्
पेचुषा	पेचिवद्भ्याम्	पेचिवद्भिः	पेचुषि	पेचुषोः	पेचिवत्सु

तेनिवन्स् शब्द के रूप भी इसी प्रकार से चलते हैं।

उखाश्रस् शब्द में कुछ भेद है। उखाश्रस् + सि

विराम और व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर श्रस्, ध्वस् शब्द के अंत के सकार को दकार हो जाता है ॥३२१ ॥

---

१. सेट्कस्य इडागमेन सहितस्य॥ २. वन्सीति विद्वन्नित्यादिस्थले रूपम्॥ ३. आगम उदनुबन्धः स्वरादन्त्यात्परः॥

श्रसिध्वसोर्लिङ्गयोरन्तस्य दो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च। उखाश्रत्, उखाश्रद्।

घुट्स्वरे नुः ॥३२२॥

श्रसिध्वसोर्लिङ्गयोर्नुरागमो भवति घुट्स्वरे परे। उखाश्रंसौ। उखाश्रंसः। संबोधनेऽपि तद्वत्। उखाश्रंसं। उखाश्रंसौ। उखाश्रसः। उखाश्रसा। उखाश्रद्भ्याम्। उखाश्रद्भिः। उखाश्रत्सु। एवं पर्णध्वस् शब्दः। अदस् शब्दस्य तु भेदः। तदाद्यत्वम्।

सौ सः ॥३२३॥

त्यदादीनां दकारस्य सकारो भवति सौ परे।

सावौ सिलोपश्च ॥३२४॥

अदसोऽन्तस्य और्भवति स्वरे परे सिलोपश्च। असौ। द्वित्वे—

अदसः पदे मः ॥३२५॥

एवं 'सि' का लोप होकर उखाश्रत्, उखाश्रद् बन गया।

उखाश्रस् + औ

घुट् स्वर वाली विभक्ति के आने पर श्रस्, ध्वस् शब्द को 'नु' का आगम हो जाता है ॥३२२॥

पुनः नकार का अनुस्वार होकर 'उखाश्रंसौ' बना। संबोधन में भी वैसे ही रूप रहेंगे। उखाश्रस् + भ्याम् उपर्युक्त ३२१वें सूत्र से 'स्' को 'द्' होकर 'उखाश्रद्भ्याम्' बना।

उखाश्रत्, उखाश्रद्	उखाश्रंसौ	उखाश्रंसः
हे उखाश्रत्, उखाश्रद्	हे उखाश्रंसौ	हे उखाश्रंसः
उखाश्रंसम्	उखाश्रंसौ	उखाश्रसः
उखाश्रसा	उखाश्रद्भ्याम्	उखाश्रद्भिः
उखाश्रसे	उखाश्रद्भ्याम्	उखाश्रद्भ्यः
उखाश्रसः	उखाश्रद्भ्याम्	उखाश्रद्भ्यः
उखाश्रसः	उखाश्रसोः	उखाश्रसाम्
उखाश्रसि	उखाश्रसोः	उखाश्रत्सु

इसी प्रकार से पर्णध्वस् शब्द के रूप चलते हैं।

अदस् शब्द में कुछ भेद हैं। अदस् + सि

"त्यदादीनाम् विभक्तौ" इस १७२वें सूत्र से अदस् को अकारांत 'अद' हुआ।

सि विभक्ति के आने पर त्यदादि के दकार को सकार हो जाता है ॥३२३॥

अतः अस + सि रहा।

अदस् के अंत को 'औ' हो जाता है। एवं 'सि' विभक्ति का लोप हो जाता है ॥३२४॥

अतः अस + औ = असौ बना। अब सुप् विभक्ति तक अदस् को 'अद' आदेश कर लेना चाहिये।

अद + औ

अदस् को पद करने पर 'द' को 'म' हो जाता है ॥३२५॥

अदसः पदे सति दस्य मो भवति।

उत्वं मात्॥३२६॥

अदसो मात्परो वर्णमात्रस्योत्वं भवति आन्तरतम्यात्। अमू। जसि—

एद्बहुत्वे त्वी॥३२७॥

अदसो मात्परो बहुत्वे निष्पन्ने एदीर्भवति। अमी। अमुं। अमू। [1]अमून्।

अदो मुश्च॥३२८॥

अदसो मुरादेशो भवति टावचनस्य च नादेशोऽस्त्रियाम्। अमुना। अमूभ्याम्।

अदसश्च॥३२९॥

अदसोऽग्वर्जितात्परो भिस् भिर् भवति। धुट्येत्वम्। अमीभिः। अमुष्मै। अमूभ्याम्। अमीभ्यः। अमुष्मात्। अमूभ्यां। अमीभ्यः। अमुष्य। अमुयोः। अमीषाम्। अमुष्मिन्। अमुयोः। अमीषु॥ श्रेयन्स् शब्दस्य तु भेदः॥ श्रेयान्। श्रेयांसौ। श्रेयांसः। हे श्रेयन्। हे श्रेयांसौ। हे श्रेयांसः। श्रेयांसं। श्रेयांसौ। श्रेयसः। श्रेयसा। श्रेयोभ्यां। श्रेयोभिः। पुमन्स्शब्दस्य तु भेदः। पुमान्। पुमांसौ। पुमांसः। हे पुमन्। पुमांसं। पुमांसौ।

अदस् के 'म' से परे 'वर्णमात्र द' के 'अ' सहित विभक्ति मात्र को उकार हो जाता है॥३२६॥

और वह उकार आदेश क्रम से होता है; यथा—ह्रस्व स्वर को ह्रस्व 'उ' एवं दीर्घ स्वर को दीर्घ 'ऊ' होता है। यहाँ दीर्घ औ है। अतः दीर्घ ऊ होकर—अम् + ऊ = अमू बना। अद + जस् है पूर्वोक्त "अदसः पदे मः" सूत्र से 'द' को 'म' करके "जः सर्व इः" इस १५२वें सूत्र से जस् को 'इ' और संधि होकर 'अमे' बना। पुनः—

बहुवचन के 'ए' को 'ई' हो जाता है॥३२७॥

अदस् के 'म्' से परे बहुवचन में बने हुए 'ए' को 'ई' होकर 'अमी' बना। अद + अम् है। 'द' को 'म' एवं द के 'अ' सहित अम् के अ को 'उ' होकर 'अमुम्' बना। अद + शस् है। पहले अदान् बना करके 'द' को 'म' और दीर्घ 'आ' को 'ऊ' करके 'अमून्' बना।

अद + टा है।

स्त्रीलिंग को छोड़कर अदस् को 'अमु' एवं 'टा' को 'ना' आदेश हो जाता है॥३२८॥

अतः 'अमुना' बना। अद + भ्याम् 'अकारो दीर्घं घोषवति' सूत्र से 'अदाभ्याम् करके द् को म् एवं 'आ' को ऊ करने से 'अमूभ्याम्' बना।

अद + भिस् है पूर्ववत् 'द्' को 'म्' करके आगे सूत्र लगा।

अक् वर्जित अदस् से परे 'भिस्' को 'भिर्' आदेश हो जाता है और धुट् के आने पर 'एकार' भी हो जाता है॥३२९॥

अतः 'अमेभिः' बन गया। पुनः—'एद्बहुत्वे त्वी' सूत्र से बहुवचन के 'ए' को 'ई' करके 'अमीभिः' बना। अद + ङे है पूर्ववत् द् को 'म' और 'अ' को 'उ' करके "स्मै सर्वनाम्नः" इस १५३वें सूत्र से 'ङे' को 'स्मै' करके 'नामि' से परे स् को ष् करने से 'अमुष्मै' बना। अद + ङसि पूर्ववत् द् को म्, अ को 'उ' करके "ङसि स्मात्" इस १५४वें सूत्र से स्मात् करके स् को ष् हुआ और 'अमुष्मात्' बना। अद + ओस् है द को 'म' करके 'ओसि च्' १४६वें सूत्र से अ को 'ए' एवं संधि करके 'अमयोः' बना एवं 'उत्वं मात्' से म के 'अ' को 'उ' करके 'अमुयोः' बन गया।

---

१. शसि सस्य च नः॥

पुंसोऽन्शब्दलोपः ॥३३० ॥

पुमान्स् इत्येतस्य अन्शब्दस्य लोपो भवति, अघुट्स्वरे व्यञ्जने च परे। पुंसः। पुंसा।

स्यादिधुटि पदान्तवत्॥३३१ ॥

स्यादिधुटि परे पदान्तवत्कार्यं[१] भवति। इति न्यायात्। मोऽनुस्वारव्यञ्जने। पुंभ्यां। पुंभिः। इत्यादि। इति सकारान्ताः॥ हकारान्तः पुल्लिङ्गो मधुलिह् शब्दः। मधुलिट्, मधुलिड्। मधुलिहौ। मधुलिहः। संबोधनेऽपि तद्वत्। मधुलिट्सु। एवं पुष्पलिह् इत्यादि। गोदुह् शब्दस्य तु भेदः। हचतुर्थान्तस्य धातोरित्यादिना चतुर्थत्वम्।

अद + ङि है पूर्ववत् सारी प्रक्रिया करके 'ङि' को 'स्मिन्' करके 'अमुष्मिन्' बना।

असौ	अमू	अमी	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
अमुम्	अमू	अमून्	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु
अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः			

श्रेयन्स् शब्द में कुछ भेद है—श्रेयन्स् + सि है "सान्तमहतोर्नोपधायाः" इस २८६वें सूत्र से स् की उपधा को दीर्घ होकर संयोगांत स् का लोप एवं 'सि' का लोप होकर 'श्रेयान्' बना। तथैव घुट विभक्ति में दीर्घ होकर श्रेयांसौ आदि बनता है। श्रेयन्स् + शस् है 'व्यंजने चैषां निः' सूत्र १८८वें से अघुट् विभक्ति में न् का लोप होकर 'श्रेयसः' बना।

श्रेयान्	श्रेयांसौ	श्रेयांसः	श्रेयसे	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
हे श्रेयन् !	हे श्रेयांसौ !	हे श्रेयांसः !	श्रेयसः	श्रयोभ्याम्	श्रेयोभ्यः
श्रेयांसम्	श्रेयांसौ	श्रेयसः	श्रेयसः	श्रेयसोः	श्रेयसाम्
श्रेयसा	श्रेयोभ्याम्	श्रेयोभिः	श्रेयसि	श्रेयसोः	श्रेयःसु, श्रेयस्सु

पुमन्स् शब्द में कुछ भेद है। पुमन्स् + सि

पूर्ववत् धुट् विभक्ति में 'न' की उपधा को दीर्घ करके 'पुमान्' आदि बना।

पुमन्स् + शस् है।

पुमन्स् इस शब्द के 'अन्' शब्द का लोप हो जाता है ॥३३० ॥

यह नियम अघुट् विभक्ति के आने पर होता है। अतः पुम्स् + शस् रहा पुनः 'म्' का अनुस्वार होकर 'पुंसः' बन गया। पुम्स् + भ्याम् है।

सि आदि धुट् विभक्ति के आने पर पदांतवत् कार्य हो जाता है ॥३३१ ॥

इस न्याय से 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र से स् का लोप होकर 'मोऽनुस्वारो व्यंजने' से म् का अनुस्वार होकर 'पुंभ्याम्' बन गया।

पुमान्	पुमांसौ	पुमांसः	पुंसे	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
हे पुमन्	हे पुमांसौ	हे पुमांसः	पुंसः	पुंभ्याम्	पुंभ्यः
पुमांसम्	पुमांसौ	पुंसः	पुंसः	पुंसोः	पुंसाम्
पुंसा	पुंभ्याम्	पुंभिः	पुंसि	पुंसोः	पुंसु

---

१. पदान्तवत्कार्यं किं ? वर्ग्ये तद्वर्गपञ्चममिति विकल्पः॥

दादेर्हस्य गः ॥३३२॥

दादेर्हकारस्य गकारो भवति, विरामे व्यञ्जनादौ च। गोधुक्, गोधुग्। गोदुहौ। गोदुहः। संबोधनेऽपि तद्वत्। गोदुहं। गोदुहौ। गोदुहः। गोदुहा। गोधुग्भ्यां। गोधुग्भिः। इत्यादि। मुह्-शब्दस्य तु भेदः।

मुहादीनां वा ॥३३३॥

मुहादीनां हकारस्य गकारो भवति, वा विरामे व्यञ्जनादौ च। मुक्, मुग्, मुड्। मुहौ। मुहः। मुहं। मुहौ। मुहः। मुहा। मुग्भ्यां, मुड्भ्यां। मुग्भिः, मुड्भिः। इत्यादि। एवं द्रुह् स्नुह् स्निह् प्रभृतयः। प्रष्ठवाह्शब्दस्य तु भेदः। प्रष्ठवाट्, प्रष्ठवाड्। प्रष्ठवाहौ। प्रष्ठवाहः। प्रष्ठवाहं। प्रष्ठवाहौ।

इस प्रकार से सकारांत शब्द हुए।

अब हकारांत पुल्लिंग मधु लिह् शब्द है।

मधुलिह् + सि 'हशषछान्तेजादीनां डः' इस २७१वें सूत्र से 'ह्' को 'ड्' पुनः विकल्प से 'ट्' होकर 'मधुलिट्, मधुलिड्' बन गया।

मधुलिह्—मधु को चाटने वाला

मधुलिट्, मधुलिड्	मधुलिहौ	मधुलिहः	मधुलिहे	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
हे मधुलिट्	हे मधुलिहौ	हे मधुलिहः	मधुलिहः	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भ्यः
मधुलिहम्	मधुलिहौ	मधुलिहः	मधुलिहः	मधुलिहोः	मधुलिहाम्
मधुलिहा	मधुलिड्भ्याम्	मधुलिड्भिः	मधुलिहि	मधुलिहोः	मधुलिट्सु, मधुलिट्त्सु

पुष्पलिह् आदि के रूप भी इसी प्रकार से चलेंगे।

गोदुह शब्द में कुछ भेद है। गोदुह् + सि है 'व्यञ्जनाच्च' सूत्र से 'सि' का लोप होकर 'हचतुर्थान्तस्य धातोस्तृतीयादेरादि चतुर्थत्वमकृतवत्' इस २९०वें सूत्र से धातु के तृतीय अक्षर को चतुर्थ अक्षर हो गया तब 'गोधुह्' रहा। पुनः—

'द' है आदि में जिसके ऐसे हकार को 'ग्' हो जाता है ॥३३२॥

जबकि विराम और व्यञ्जनादि विभक्तियाँ आती हैं। एवं "पदांते धुटां प्रथमः" तृतीय को विकल्प से प्रथम अक्षर होकर 'गोधुक्, गोधुग्' बना।

गोदुह्—गाय को दुहने वाला ग्वाला

गोधुक्, गोधुग्	गोदुहौ	गोदुहः	गोदुहे	गोधुग्भ्याम्	गोधुग्भ्यः
हे गोधुक्, हे गोधुग्	हे गोदुहौ	हे गोदुहः	गोदुहः	गोधुग्भ्याम्	गोधुग्भ्यः
गोदुहम्	गोदुहौ	गोदुहः	गोदुहः	गोदुहोः	गोदुहाम्
गोदुहा	गोधुग्भ्याम्	गोधुग्भिः	गोदुहि	गोदुहोः	गोधुक्षु

मुह् शब्द में कुछ भेद है। मुह् + सि

विराम और व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर मुह् आदि शब्दों के हकार को 'ग्' विकल्प से होता है ॥३३३॥

विकल्प से मतलब "हशषछान्तेजादीनां डः" सूत्र से 'ड्' भी हो जाता है। तथा विकल्प से प्रथम अक्षर होकर चार रूप "मुक् मुग् मुट् मुड्" बन गये।

मुक् मुग् मुट् मुड्	मुहौ	मुहः
हे मुक् मुग् मुट् मुड्	हे मुहौ	हे मुहः
मुहम्	मुहौ	मुहः

वाहेर्वाशब्दस्यौत्वं ॥३३४॥

वाहेर्वाशब्दस्यौत्वं भवति, अघुट्स्वरे परे। प्रष्ठौहः। प्रष्ठौहा। प्रष्ठवाड्भ्यां। प्रष्ठवाड्भिः। प्रष्ठवाट्सु। इत्यादि। अनड्वाह् शब्दस्य तु भेदः। सौ—

सौ नुः ॥३३५॥

अनड्वाह् इत्येतस्य नुरागमो भवति सौ परे। अनड्वान्। अनड्वाहौ। अनड्वाहः।

सम्बुद्धावुभयोर्ह्रस्वः ॥३३६॥

चतुरनडुहोरुभयोः सम्बुद्धौ ह्रस्वो भवति। हे अनड्वन् ३। हे अनड्वाहं। अनड्वाहौ।

मुहा	मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्	मुग्भिः, मुड्भिः
मुहे	मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्	मुग्भिः, मुड्भिः
मुहः	मुग्भ्याम्, मुड्भ्याम्	मुग्भिः, मुड्भिः
मुहः	मुहोः	मुहाम्
मुहि	मुहोः	मुक्षु, मुट्सु, मुट्त्सु

स्नुह् और स्निह् शब्द के रूप भी इसी प्रकार से चलते हैं।

प्रष्ठवाह् शब्द में कुछ भेद है। प्रष्ठवाद् + सि "हशषछान्ते" इत्यादि सूत्र से 'ह्' को 'ड्' होकर एवं प्रथम अक्षर भी होकर 'प्रष्ठवाट्, प्रष्ठवाड्' बना।

अधुट् स्वर वाली विभक्ति में भेद है। प्रष्ठवाह् + शस्

अघुट् स्वर वाली विभक्ति के आने पर वाह् के 'वा' शब्द को 'औ' हो जाता है ॥३३४॥

अतः प्रष्ठ औह् + अस् = संधि होकर "प्रष्ठौहः" बना।

प्रष्ठवाट्, प्रष्ठवाड्	प्रष्ठवाहौ	प्रष्ठवाहः
हे प्रष्ठवाट्, प्रष्ठवाड् !	हे प्रष्ठवाहौ	हे प्रष्ठवाहः
प्रष्ठवाहम्	प्रष्ठवाहौ	प्रष्ठौहः
प्रष्ठौहा	प्रष्ठवाड्भ्याम्	प्रष्ठवाड्भिः
प्रष्ठौहे	प्रष्ठवाड्भ्याम्	प्रष्ठवाड्भ्यः
प्रष्ठौहः	प्रष्ठवाड्भ्याम्	प्रष्ठवाड्भ्यः
प्रष्ठौहः	प्रष्ठौहोः	प्रष्ठौहाम्
प्रष्ठौहि	प्रष्ठौहोः	प्रष्ठवाट्सु, प्रष्ठवाट्त्सु

अनड्वाह् शब्द में कुछ भेद है। अनड्वाह् + सि

सि विभक्ति के आने पर अनड्वाह् को 'नु' का आगम हो जाता है ॥३३५॥

अतः 'अनड्वान्ह्' रहा। संयोग के अन्त का लोप होकर 'अनड्वान्' बना। संबोधन में अनड्वाह् + सि

चत्वार् और अनड्वाह् शब्द के 'वा' को संबुद्धि सि के आने पर ह्रस्व हो जाता है ॥३३६॥

अतः हे 'अनड्वन्' बना। अनड्वाह् + शस्

अनडुहश्च ॥३३७ ॥

अनड्वाह् इत्येतस्य वाशब्दस्योत्वं भवति अघुट्स्वरे परे व्यञ्जने च परे । अनडुहः । अनडुहा । विरामव्यञ्जनेत्यादिना दत्वं । अनडुद्भ्यां । अनडुद्भिः । अनडुत्सु । इत्यादि । इति हकारान्ताः । प्रियाश्चत्वारो यस्यासौ प्रियचत्वाः । प्रियचत्वारौ । प्रियचत्वारः । हे प्रियचत्वः ३ । प्रियचत्वारं । प्रियचत्वारौ । प्रियचतुरः प्रियचतुरा । प्रियचतुर्भ्यां । प्रियचतुर्भिः । इत्यादि ।

इति व्यञ्जनान्ताः पुल्लिङ्गाः ❑

अथ व्यञ्जनान्ताः स्त्रीलिङ्गा उच्यन्ते

कवर्गान्ताः स्त्रीलिङ्गा अप्रसिद्धाः । चकारान्तः स्त्रीलिङ्गस्त्वच् शब्दः । त्वक्, त्वग् । त्वचौ । त्वचः । त्वक्षु । इत्यादि । एवं वाच् शब्दप्रभृतयः । छकारान्तोऽप्रसिद्धः । जकारान्तः स्त्रीलिङ्गः स्रज् शब्दः । स्रक्,

---

अघुट् स्वर एवं व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर अनड्वाद् के "वा" शब्द को 'ड' हो जाता है ॥३३७ ॥

अतः 'अनडुहः' बना । अनड्वाह + भ्याम् "विरामव्यञ्जनादिषु" इत्यादि ३२०वें सूत्र से 'ह्' को 'द्' होकर 'अनडुद्भ्याम्' बना ।

अनड्वाह्—बैल्

अनड्वान्	अनड्वाहौ	अनड्वाहः	अनडुहे	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
हे अनड्वन् !	हे अनड्वाहौ	हे अनड्वाहः	अनडुहः	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भ्यः
अनड्वाहम्	अनड्वाहौ	अनडुहः	अनडुहः	अनडुहोः	अनडुहाम्
अनडुहा	अनडुद्भ्याम्	अनडुद्भिः	अनडुहि	अनडुहोः	अनडुत्सु

इस प्रकार से हकारांत शब्द हुए । अब रकारांत प्रियचत्वार् शब्द है ।

प्रिया हैं चार जिसके ऐसे पुरुष को 'प्रियचत्वाः" कहते हैं । ऐसे यहाँ बहुव्रीहि समास में शब्द बना है ।

प्रियचत्वार् + सि । सि का लोप एवं रकार का विसर्ग होकर 'प्रियचत्वाः' बना ।

संबोधन में ३३६वें सूत्र से 'वा' को ह्रस्व होकर हे प्रियचत्वः बना । प्रियचत्वार् + शस् है ३३७वें सूत्र से "वा" को 'उ' होकर 'प्रियचतुरः' बना ।

प्रियचत्वार—चार स्त्री सहित पुरुष ।

प्रियचत्वाः	प्रियचत्वारौ	प्रियचत्वारः	प्रियचतुरे	प्रियचतुर्भ्याम्	प्रियचतुर्भ्यः
हे प्रियचत्वः !	हे प्रियचत्वारौ	हे प्रियचत्वारः	प्रियचतुरः	प्रियचतुर्भ्याम्	प्रियचतुर्भ्यः
प्रियचत्वारम्	प्रियचत्वारौ	प्रियचतुरः	प्रियचतुरः	प्रियचतुरोः	प्रियचतुराम्
प्रियचतुरा	प्रियचतुर्भ्याम्	प्रियचतुर्भिः	प्रियचतुरि	प्रियचतुरोः	प्रियचतुर्षु

इस प्रकार से व्यञ्जनान्त पुल्लिग प्रकरण समाप्त हुआ । ❑

व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग प्रकरण

अब व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग कहा जाता है ।

इसमें कवर्गान्त स्त्रीलिंग अप्रसिद्ध है, चकारांत स्त्रीलिंग 'त्वच्' शब्द से प्रकरण शुरू हो रहा है ।

स्रग् । स्रजौ । स्रजः । स्रक्षु । इत्यादि । झञटवर्गान्ता अप्रसिद्धाः । तकारान्तः स्त्रीलिङ्गो विद्युच्छब्दः । विद्युत्, विद्युद् । विद्युतौ । विद्युतः । इत्यादि । थकारान्तोऽप्रसिद्धः । दकारान्तः स्त्रीलिङ्गः शरद् शब्दः । शरत्, शरद् । शरदौ । शरदः । एवं संविद् विपद् परिषद् प्रभृतयः । त्यद्शब्दस्य तु भेदः । त्यदाद्यत्वं । स्त्रियामादेत्यादिना

त्वच् + सि है

"चवर्गदृगादीनां च" इस २५४वें सूत्र से विराम और व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर 'च्' को 'ग्' हो गया एवं "पदांते धुटां प्रथमः" सूत्र से विकल्प से प्रथम अक्षर होकर त्वक् त्वग् बना।

त्वच्—छाल

त्वक्, त्वग्	त्वचौ	त्वचः	त्वचे	त्वग्भ्याम्	त्वग्भ्यः
हे त्वक्, त्वग्	हे त्वचौ	हे त्वचः	त्वचः	त्वग्भ्याम्	त्वग्भ्यः
त्वचम्	त्वचौ	त्वचः	त्वचः	त्वचोः	त्वचाम्
त्वचा	त्वग्भ्याम्	त्वग्भिः	त्वचि	त्वचोः	त्वक्षु

'वाच्' शब्द के रूप भी इसी प्रकार से चलेंगे।

छकारान्त शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब जकारान्त स्रज् शब्द है।

स्रज् + सि = स्रक् स्रग्। पूर्वोक्त २५४वें सूत्र से ग् होकर रूप बन गया।

स्रज्—माला

स्रक्, स्रग्	स्रजौ	स्रजः	स्रजे	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
हे स्रक्, स्रग्	हे स्रजौ	हे स्रजः	स्रजः	स्रग्भ्याम्	स्रग्भ्यः
स्रजम्	स्रजौ	स्रजः	स्रजः	स्रजोः	स्रजाम्
स्रजा	स्रग्भ्याम्	स्रग्भिः	स्रजि	स्रजोः	स्रक्षु

झ, ञ और टवर्गान्त शब्द स्त्रीलिंग में अप्रसिद्ध हैं। अब तकारान्त स्त्रीलिंग विद्युत् शब्द है।

विद्युत् + सि = विद्युत्, विद्युद् बना। 'सि' का लोप होकर "वा विरामे" सूत्र से प्रथम अक्षर भी हो गया।

विद्युत्—बिजली

विद्युत्, विद्युद्	विद्युतौ	विद्युतः	विद्युते	विद्युद्भ्याम्	विद्युद्भ्यः
हे विद्युत् विद्युद्	हे विद्युतौ	हे विद्युतः	विद्युतः	विद्युद्भ्याम्	विद्युद्भ्यः
विद्युतम्	विद्युतौ	विद्युतः	विद्युतः	विद्युतोः	विद्युताम्
विद्युता	विद्युद्भ्याम्	विद्युद्भिः	विद्युति	विद्युतोः	विद्युत्सु

थकारान्त स्त्रीलिंग अप्रसिद्ध है। दकारान्त शरद् शब्द के रूप भी इसी प्रकार से चलेंगे।

शरद्

शरत् शरद्	शरदौ	शरदः	शरदे	शरद्भ्याम्	शरद्भ्यः
हे शरत् शरद्	हे शरदौ	हे शरदः	शरदः	शरद्भ्याम्	शरद्भ्यः
शरदम्	शरदौ	शरदः	शरदः	शरदोः	शरदाम्
शरदा	शरद्भ्याम्	शरद्भिः	शरदि	शरदोः	शरत्सु

संविद्, विपद् और परिषद् आदि के रूप भी इसी प्रकार से चलेंगे।

त्यद् शब्द में कुछ भेद है। त्यद् + सि है।

आप्रत्ययः । सौ—तस्य चेति सकारः । स्या । त्ये । त्याः । त्यां । त्ये । त्याः । त्यया । त्याभ्यां । त्याभिः । त्यस्यै । त्याभ्यां । त्याभ्यः । त्यस्याः । त्याभ्यां । त्याभ्यः । त्यस्याः । त्ययोः । त्यासां । त्यस्यां । त्ययोः ।

"त्यदादीनाम् विभक्तौ" सूत्र से अकारान्त 'त्य' बना। पुनः "स्त्रियामादा" इस २१५वें सूत्र से स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय होकर 'त्या' बना। पुनः 'तस्य च' इस २८८वें सूत्र से 'त्' को 'स्' होकर 'स्या' एवं सि विभक्ति का लोप हो गया। अब सभी विभक्तियों में त्या बनाकर स्त्रीलिंग की सर्वनाम विभक्ति लगाना चाहिये। यथा—त्या + औ "औरिम्" सूत्र २११वें से 'इ' होकर संधि होकर 'त्ये' बना।

त्यद्—वह

स्या	त्ये	त्याः	त्यस्याः	त्याभ्यां	त्याभ्यः
त्याम्	त्ये	त्याः	त्यस्याः	त्ययोः	त्यासाम्
त्यया	त्याभ्यां	त्याभिः	त्यस्याम्	त्ययोः	त्यासु
त्यस्यै	त्याभ्यां	त्याभ्यः			

इसी प्रकार से तद्, यद् और एतद् के रूप चलते हैं। यथा—

सा	ते	ताः	तस्याः	ताभ्याम्	ताभ्यः
ताम्	ते	ताः	तस्याः	तयोः	तासाम्
तया	ताभ्याम्	ताभिः	तस्याम्	तयोः	तासु
तस्यै	ताभ्याम्	ताभ्यः			

यद्—जो

या	ये	याः	यस्याः	याभ्याम्	याभ्यः
याम्	ये	याः	यस्याः	ययोः	यासाम्
यया	याभ्याम्	याभिः	यस्याम्	ययोः	यासु
यस्यै	याभ्याम्	याभ्यः			

एतद्—वह

एषा	एते	एताः	एतस्याः	एताभ्याम्	एताभ्यः
एताम्, एनाम्	एते, एने	एताः, एनाः	एतस्याः	एतयोः, एनयोः	एतासाम्
एतया, एनया	एताभ्याम्	एताभिः	एतस्याम्	एतयोः, एनयोः	एतासु
एतस्यै	एताभ्याम्	एताभ्यः			

धकारांत स्त्रीलिंग वीरुध् शब्द है। वीरुध् + सि "पदांते धुटां प्रथमः" ७६वें सूत्र से प्रथम अक्षर होकर 'वा विरामे' से विकल्प से तृतीया होकर 'वीरुत्, वीरुद्' बना।

वीरुध्—लता।

वीरुत्, वीरुद्	वीरुधौ	वीरुधः	वीरुधे	वीरुद्भ्याम्	वीरुद्भ्यः
हे वीरुत्, वीरुद्	हे वीरुधौ	हे वीरुधः	वीरुधः	वीरुद्भ्याम्	वीरुद्भ्यः
वीरुधम्	वीरुधौ	वीरुधः	वीरुधः	वीरुधोः	वीरुधाम्
वीरुधा	वीरुद्भ्याम्	वीरुद्भिः	वीरुधि	वीरुधोः	वीरुत्सु

इसी प्रकार से 'समिध्' शब्द के रूप भी चलते हैं।

इस प्रकार से धकारांत शब्द हुए, अब नकारान्त स्त्रीलिंग सीमन् शब्द है। सीमन् + सि

त्यासु। एवं तद्शब्दः। सा। ते। ताः। इत्यादि त्यद्शब्दवद्रूपं। एवं यद् एतद् शब्दौ। धकारान्तः स्त्रीलिङ्गो वीरुध्शब्दः। वीरुत्, वीरुद्। वीरुधौ। वीरुधः। इत्यादि। एवं समिध् प्रभृतयः। इति धकारान्ताः। नकारान्तः स्त्रीलिङ्गः सीमन्शब्दः। सीमा। सीमानौ। सीमानः। अघुटि। अवमसंयोगेत्यादिना अलोपः। सीम्नः। इत्यादि। एवं पंचन्शब्दादीनां पूर्ववत्। इति नकारान्ताः। पकारान्तः स्त्रीलिङ्गोऽप्शब्दः। तस्य बहुवचनमेव।

अपश्च ॥३३८॥

अप् इत्येतस्य उपधाया दीर्घो भवति असम्बुद्धौ घुटि परे। आपः। अपः।

अपां भे दः ॥३३९॥

अपां दो भवति विभक्तौ भे परे। अद्भिः। अद्भ्यः। अद्भ्यः। अपां। अप्सु। इति पकारान्तः। फकारबकारान्तावप्रसिद्धौ। भकारान्तः स्त्रीलिङ्गः ककुभ्शब्दः। ककुप्, ककुब्। ककुभौ। ककुभः। इत्यादि।

'घुटि चासंबुद्धौ' सूत्र १७७वें से 'न्' की उपधा दीर्घ होकर एवं नकार का विभक्ति का लोप होकर 'सीमा' बना।

अघुट् स्वर वाली विभक्ति में कुछ अन्तर है।

सीमन् + शस्

"अवमसंयोगादनोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ" इस २५०वें सूत्र से व, म, संयुक्त न होने से 'अन्' के अकार का लोप होकर 'सीम्नः' बना।

सीमन्—हद, मर्यादा

सीमा	सीमानौ	सीमानः	सीम्ने	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
हे सीमन्	हे सीमानौ	हे सीमानः	सीम्नः	सीमभ्याम्	सीमभ्यः
सीमानम्	सीमानौ	सीम्नः	सीम्नः	सीम्नोः	सीम्नाम्
सीम्ना	सीमभ्याम्	सीमभिः	सीम्नि, सीमनि	सीम्नोः	सीमसु

पञ्चन् आदि शब्दों के रूप स्त्रीलिंग में पूर्ववत् पुल्लिङ्ग के समान ही चलेंगे।

पञ्च। पञ्चभ्यः। पञ्च। पञ्चभ्यः। पञ्चभिः। पञ्चानाम्। पञ्चसु।

इस प्रकार नकारान्त शब्द हुए, अब पकारान्त स्त्रीलिंग अप् शब्द है। यह अप् शब्द बहुवचन में ही चलता है।

अप् + जस्

असंबुद्ध घुट् के आने पर 'अप्' की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥३३८॥

अतः आप् + अस् = आपः बना।

अप् + शस् = अपः। अप् + भिस् है।

'भ' विभक्ति के आने पर अप् के 'प्' को 'द्' हो जाता है ॥३३९॥

अतः 'अद्भिः' बना।

आपः	अद्भिः	अपाम्
अपः	अद्भ्यः	अप्सु
	अद्भ्यः	

फकारांत, बकारान्त शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब भकारान्त स्त्रीलिंग 'ककुभ्' शब्द है। ककुभ् + सि सि का लोप होकर 'पदांते धुटां प्रथमः' सूत्र से प्रथम अक्षर

इति भकारान्तः । मकारान्तः स्त्रीलिङ्गः किम्शब्दः । तस्य कादेशः । आप्रत्ययः । का । के । काः । कां । के । काः । कया । काभ्यां । काभिः । कस्यै । काभ्यां । काभ्यः । कस्याः । काभ्यां । काभ्यः । कस्याः । कयोः । कासाम् । कस्यां । कयोः । कासु । इत्यादि । इदंशब्दस्य तु भेदः । सौ—इयं । अन्यत्र त्यदाद्यत्वं । दादेर्म इति दस्य मत्वं । स्त्रियामादेत्याप्रत्ययः । इमे । इमाः । इमां । इमे । इमाः । टौसोरन इति अनादेशः । अनया । अद्व्यञ्जनेऽनक् इत्यत्वे । आभ्यां । आभिः । भाविनि भूतवदुपचारः । अस्यै । आभ्यां । आभ्यः । अस्याः । आभ्यां । आभ्यः । अस्याः । अनयोः । आसाम् । अस्यां । अनयोः । आसु । अन्वादेशे पूर्ववत् । एनां । एने । एनाः । एनया । एनयोः । यकारान्तोऽप्रसिद्धः । इत्यादि । रकारान्तः स्त्रीलिङ्गश्चत्वार्शब्दः । तस्य

'वा विरामे' सूत्र से तृतीय होकर 'ककुप्, ककुब्' बना ।

ककुप्, ककुब्	ककुभौ	ककुभः	ककुभे	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
हे ककुप्, ककुब्	हे ककुभौ	हे ककुभः	ककुभः	ककुब्भ्याम्	ककुब्भ्यः
ककुभम्	ककुभौ	ककुभः	ककुभः	ककुभोः	ककुभाम्
ककुभा	ककुब्भ्याम्	ककुब्भिः	ककुभि	ककुभोः	ककुप्सु

भकारांत शब्द हुए । अब मकारांत स्त्रीलिंग 'किम्' शब्द है । किम् + सि । "किं कः" ३०४वें सूत्र से विभक्ति के आने पर 'किम्' को 'क' आदेश होता है एवं "स्त्रियामादा" २१५वें सूत्र से 'आ' प्रत्यय होकर 'का' बन गया । ऐसे ही 'का' शब्द बनाकर प्रत्येक विभक्ति में 'सर्वा' के समान रूप चला लेना चाहिये ।

का	के	काः	कस्याः	काभ्याम्	काभ्यः
काम्	के	काः	कस्याः	कयोः	कासाम्
कया	काभ्याम्	काभिः	कस्याम्	कयोः	कासु
कस्यै	काभ्याम्	काभ्यः			

इदं शब्द में कुछ भेद है । इदं + सि ।

"इदमियमयं पुंसि" इस ३०५वें सूत्र से स्त्रीलिंग में इदं को 'इयं' आदेश हो जाता है । अतः 'इयं' बना ।

इदं + औ 'त्यदादीनाम् विभक्तौ' सूत्र से सर्वत्र 'इद' बनेगा एवं "दोऽद्रेर्मः" इस ३०६वें सूत्र से दकार को मकार हुआ एवं 'स्त्रियामादा' सूत्र से आकारांत होकर रूप चलेंगे । अतः द्विवचन में 'इमे' बना ।

इदं इमा + टा 'टौसोरनः ।' ३०७वें सूत्र से 'अन' आदेश 'आ' प्रत्यय हो 'टौसोरे' २१३वें सूत्र से 'ए' होकर 'अनया' बना । इदम् + भ्याम् है 'अद्व्यञ्जनेऽनक्' ३०८वें सूत्र से 'अ' होकर 'आ' होकर 'आभ्याम्' बना ।

द्वितीय में टा और ओस् में 'एन' आदेश होकर अन्वादेश अर्थ में 'एनाम्' आदि बना ।

इदं—यह

इयम्	इमे	इमाः	अस्याः	आभ्याम्	आभ्यः
इमां, एनाम्	इमे, एने	इमाः, एनाः	अस्याः	अनयोः, एनयोः	आसाम्
अनया, एनया	आभ्याम्	आभिः	अस्याम्	अनयोः, एनयोः	आसु
अस्यै	आभ्याम्	आभ्यः			

यकारांत स्त्रीलिंग अप्रसिद्ध है । अब रकारांत स्त्रीलिंग चत्वार् शब्द है । यह बहुवचन में ही चलता है ।

चत्वार् + जस्

बहुवचनमेव। त्रिचतुरोरित्यादिना चतस्रादेशः। तौ रं स्वरे इति रत्वं। चतस्रः। चतस्रः। चतसृभिः। चतसृभ्यः। चतसृभ्यः न नामि दीर्घमिति दीर्घो न भवति। चतसृणां। चतसृषु। इत्यादि। गिर्शब्दस्य तु भेदः। सौ—

इरुरोरीरूरौ[1] ॥११२॥

धातोरिरुरोरीरूरौ भवतो विरामे व्यञ्जनादौ च। गीः। गिरौ। गिरः। सम्बोधनेऽपि तद्वत्। गिरं। गिरौ। गिरः। गिरा। गीर्भ्यां। गीर्भिः। गिरे। गीर्भ्यां। गीर्भ्यः। गिरः। गीर्भ्यां। गीर्भ्यः। गिरः। गिरोः।

"त्रिचतुरोः स्त्रियां तिसृचतसृ विभक्तौ" २२३वें सूत्र से चत्वार् को 'चतसृ' आदेश 'तौ रं स्वरे' २२४वें सूत्र से ऋ को र् होकर 'चतस्रः' बना। चतसृ + आम् 'न नामि दीर्घं' से दीर्घ नहीं हुआ तब 'नु' होकर चतसृणाम् बना।

चतस्रः। चतस्रः। चतसृभिः। चतसृभ्यः, चतसृभ्यः। चतसृणाम्। चतसृषु।

गिर् शब्द में कुछ भेद है। गिर् + सि

"इरुरोरीरूरौ" ११२वें सूत्र से 'ईर्' होकर 'सि' का लोप एवं 'र्' को विसर्ग हो गया। तब 'गीः' बना।

गिर् + भ्याम् = गीर्भ्याम्, संपूर्ण व्यंजनादि विभक्ति में दीर्घ होगा। वा का अधिकार होने से व्यंजन विभक्ति में रेफ हो विसर्ग नहीं होगा।

गिर्—वाणी

गीः	गिरौ	गिरः	गिरे	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
हे गीः	हे गिरौ	हे गिरः	गिरः	गीर्भ्याम्	गीर्भ्यः
गिरम्	गिरौ	गिरः	गिरः	गिरोः	गिराम्
गिरा	गीर्भ्याम्	गीर्भिः	गिरि	गिरोः	गीर्षु

इसी प्रकार से पुर् धुर् आदि के रूप चलते हैं।

रकारान्त शब्द हुए। लकारान्त शब्द अप्रसिद्ध है। वकारांत स्त्रीलिंग 'दिव्' शब्द है।

दिव् + सि

'औ सौ' सूत्र ३१४वें से सि के आने पर वकार का 'औ' एवं सि का विसर्ग होकर 'द्यौः' बना। दिव् + भ्याम् है।

"दिव् उद्व्यञ्जने" ३१६वें सूत्र से 'व्' को उकार होकर 'भ्याम्' बना।

दिव्—स्वर्ग

द्यौः	दिवौ	दिवः	दिवे	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
हे द्यौः	हे दिवौ	हे दिवः	दिवः	द्युभ्याम्	द्युभ्यः
दिवम्	दिवौ	दिवः	दिवः	दिवोः	दिवाम्
दिवा	द्युभ्याम्	द्युभिः	दिवि	दिवोः	द्युषु

वकारांत शब्द हुए। शकारान्त स्त्रीलिंग दृश् शब्द है। दृश् + सि "चवर्गदृगादीनां च" सूत्र से 'ग्' पदांते धुटां प्रथमः से क् होकर 'दृक्, दृग्' बना।

---

१. यह सूत्र पहले आ चुका है।

गिरां। गिरि। गिरोः। वाधिकाराद्विभक्तिव्यञ्जने रेफस्य विसर्गो न स्यात्। गीर्षु। एवं पुर् धुर् प्रभृतयः। इति रकारान्ताः। लकारान्तोऽप्रसिद्धः। वकारान्तः स्त्रीलिङ्गो दिव्शब्दः। स च सुदिव्शब्दवत्। द्यौः। दिवौ। दिवः। दिवं। दिवौ। दिवः। दिवा। दिव उद्व्यञ्जने। द्युभ्यां। द्युभिः। इत्यादि। इति वकारान्तः। शकारान्तः स्त्रीलिङ्गो दृश् शब्दः। दृक्, दृग्। दृशौ। दृशः। इत्यादि। इति शकारान्तः। षकारान्तः स्त्रीलिङ्गो विप्रुष्शब्दः। विप्रुट्, विप्रुड्। विप्रुषौ। विप्रुषः। इत्यादि। षकारान्ते दधृष्शब्दस्य तु भेदः। चवर्गदृगादीनां च गत्वं। दधृक्, दधृग्। दधृक्षु। इत्यादि। सकारान्तः स्त्रीलिङ्गः सुवचस् शब्दः। स च पूर्ववत्। सुवचाः।

दृश्—नेत्र

दृक्, दृग्	दृशौ	दृशः	दृशे	दृग्भ्याम्	दृग्भ्यः
हे दृक्, दृग्	हे दृशौ	हे दृशः	दृशः	दृग्भ्याम्	दृग्भ्यः
दृशम्	दृशौ	दृशः	दृशः	दृशोः	दृशाम्
दृशा	दृग्भ्याम्	दृग्भिः	दृशि	दृशोः	दृक्षु

शकारान्त शब्द हुए। अब षकारान्त विप्रुष् शब्द है।

विप्रुष् + सि "हशषछान्ते" इत्यादि सूत्र से 'ड्' होकर 'विप्रुट्, विप्रुड्' बना।

विप्रुष्

विप्रुट, विप्रुड्	विप्रुषौ	विप्रुषः	विप्रुषे	विप्रुड्भ्याम्	विप्रुड्भ्यः
हे विप्रुट, हे विप्रुड्	हे विप्रुषौ	हे विप्रुषः	विप्रुषः	विप्रुड्भ्याम्	विप्रुड्भ्यः
विप्रुषम्	विप्रुषौ	विप्रुषः	विप्रुषः	विप्रुषोः	विप्रुषाम्
विप्रुषा	विप्रुड्भ्याम्	विप्रुड्भिः	विप्रुषि	विप्रुषोः	विप्रुट्सु

षकारांत् दधृष् शब्द में कुछ भेद है। दधृष् + सि "चवर्गदृगादीनां च" सूत्र से 'ग्' होकर 'दधृग् दधृक्' बना।

दधृक्, दधृग्	दधृषौ	दधृषः	दधृषः	दधृग्भ्याम्	दधृग्भ्यः
दधृषम्	दधृषौ	दधृषः	दधृषः	दधृषोः	दधृषाम्
दधृषा	दधृग्भ्याम्	दधृग्भिः	दधृषि	दधृषोः	दधृक्षु
दधृषे	दधृग्भ्याम्	दधृग्भ्यः			

सकारांत स्त्रीलिंग सुवचस् शब्द है। सुवचस् + सि यह पूर्ववत् चलेगा अर्थात् "अन्त्वसन्तस्य चाधातोस्सौ" सूत्र २७७वें से स् की उपधा को दीर्घ होकर 'सुवचाः' बना।

सुवचाः	सुवचसौ	सुवचसः	सुवचसे	सुवचोभ्याम्	सुवचोभ्यः
हे सुवचाः	हे सुवचसौ	हे सुवचसः	सुवचसः	सुवचोभ्याम्	सुवचोभ्यः
सुवचसम्	सुवचसौ	सुवचसः	सुवचसः	सुवचसोः	सुवचसाम्
सुवचसा	सुवचोभ्याम्	सुवचोभिः	सुवचसि	सुवचसोः	सुवचःसु

अदस् शब्द में कुछ भेद है। अदस् + सि 'सौ सः' ३२३वें सूत्र से दकार का सकार "सावौ सिलोपश्च" सूत्र ३२४वें से अंत को औ होकर 'असौ' बना। अन्यत्र विभक्ति में "त्यदादीनाम्" 'अ' पुनः स्त्रीलिंग में 'आ' प्रत्यय करके "अदसः पदे मः" सूत्र से 'द' को 'म' करके एवं वर्णमात्र को उकार करके पूर्ववत् रूप चलेंगे।

सुवचसौ । सुवचसः । इत्यादि । अदस् शब्दस्य तु भेदः । त्यदाद्यत्वं । असौ । अन्यत्र आप्रत्ययः । अदसः पदे म इति मत्वं । उत्वमादीति पूर्ववत् । अमू । अमूः । अमूं । अमूं । अमूः । अमुया । अमूभ्यां । अमूभिः । अमुष्यै । अमूभ्यां । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमूभ्यां । अमूभ्यः । अमुष्याः । अमुयोः । अमूषां । अमुष्यां । अमुयोः । अमूषु । इत्यादि । हकारान्तः स्त्रीलिङ्ग उपानह् शब्दः । विरामव्यञ्जनादिषु हस्य दः । उपानत्, उपानद् । उपानहौ । उपानहः । इत्यादि । अनड्वाह शब्दस्य तु भेदः ।

वा स्त्रीकारे ॥३४० ॥

अनड्वाह इत्येतस्य वाशब्दस्य उत्वं वा भवति स्त्रीकारे परे । नदाद्यंच इति ईप्रत्ययः । अनडुही, अनड्वाही । इत्यादि ।

इति व्यञ्जनान्ताः स्त्रीलिङ्गाः ❑

असौ	अमू	अमूः	अमुष्याः	अमूभ्याम्	अमूभ्यः
अमूम्	अमू	अमूः	अमूष्याः	अमुयोः	अमूषाम्
अमुया	अमूभ्याम्	अमूभिः	अमुष्याम्	अमुयोः	अमूषु
अमुष्यै	अमूभ्याम्	अमूभ्यः			

सकारान्त शब्द हुए । अब हकारान्त स्त्रीलिंग उपानह् शब्द है । उपानह् + सि

"विरामव्यञ्जनादिषु" इत्यादि ३२०वें सूत्र से 'ह्' को 'द्' होकर 'उपानत्' बना । वा विरामे, सूत्र से विकल्प से द् हुआ है ।

उपानह्—जूते

उपानत्, उपानद्	उपानहौ	उपानहः	उपानहे	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
हे उपानत्, उपानद्	हे उपानहौ	हे उपानहः	उपानहः	उपानद्भ्याम्	उपानद्भ्यः
उपानहम्	उपानहौ	उपानहः	उपानहः	उपानहोः	उपानहाम्
उपानहा	उपानद्भ्याम्	उपानद्भिः	उपानहि	उपानहोः	उपानत्सु

अनड्वाह् शब्द में कुछ भेद है । अनड्वाह् + सि

अनड्वाह् शब्द को स्त्रीलिंग में विकल्प से 'वा' शब्द को उकार होता है ॥३४० ॥

पुनः "नदाद्यञ्च वाह्" इत्यादि ३७२वें सूत्र से 'ई' प्रत्यय होकर अनडुही अनड्वाही बन गया । अब इसके रूप स्त्रीलिंग में नदी के समान चलेंगे ।

अनडुही	अनडुह्यौ	अनडुह्यः	अनडुह्यै	अनडुहीभ्याम्	अनडुहीभ्यः
हे अनडुहि	हे अनडुह्यौ	हे अनडुह्यः	अनडुह्याः	अनडुहीभ्याम्	अनडुहीभ्यः
अनडुहीम्	अनडुह्यौ	अनडुहीः	अनडुह्याः	अनडुह्योः	अनडुहीनाम्
अनडुह्या	अनडुहीभ्याम्	अनडुहीभिः	अनडुह्याम्	अनडुह्योः	अनडुहीषु

इसी प्रकार से अनड्वाही के रूप चलेंगे ।

इस प्रकार से व्यञ्जनान्त स्त्रीलिंग प्रकरण पूर्ण हुआ । ❑

अथ व्यञ्जनान्ता नपुंसकलिङ्गा उच्यन्ते

कवर्गान्ता अप्रसिद्धाः। चकारान्तो नपुंसकलिङ्गः प्राञ्चशब्दः।

विरामे व्यञ्जनादावुक्तं नपुंसकात्स्यमोर्लोपेऽपि ॥३४१॥

विरामे व्यञ्जनादौ च यदुक्तं नपुंसकलिङ्गात्परयोः स्यमोर्लोपेपि तद्भवति। इति मत्वं अनुषङ्गश्चाक्रुञ्चेत्सर्वत्र। प्राक्, प्राग्। प्राची। प्राची। पुनरप्येवं। प्राचा। प्राग्भ्यां। प्राग्भिः। प्राक्षु। अन्यत्र पुल्लिङ्गवत्। एवं प्रत्यञ्च् सम्यञ्च् उदञ्च् तिर्यञ्च् प्रभृतयः। छजझञटवर्गान्ता अप्रसिद्धाः। तकारान्तो नपुंसकलिङ्गः सकृत् शब्दः। सकृत्, सकृद्। सकृती। सकृन्ति। पुनरपि। इत्यादि। ददन्त् शब्दस्य तु भेदः। ददत्, ददद्। ददती।

व्यञ्जनान्त नपुंसकलिंग प्रकरण

अब व्यञ्जनान्त नपुंसकलिंग प्रकरण कहा जाता है। यहाँ नपुंसकलिंग में कवर्गान्त अप्रसिद्ध है चकारांत नपुंसक लिंग प्राञ्च् शब्द है।

प्राञ्च् + सि

विराम और व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर जो कार्य कहा गया है वह कार्य नपुंसकलिंग से परे 'सि अम्' के लोप होने पर भी हो जाता है ॥३४१॥

इस नियम से 'सि अम्' का लोप होकर "अनुषंगश्चाक्रुञ्चेत्" २६२वें सूत्र से अनुषंग संज्ञक ञकार का लोप होकर 'चवर्गदृगादीनां च' सूत्र से 'च्' को 'ग्' होकर विकल्प से प्रथम अक्षर होकर 'प्राक्, प्राग्' बना। ऐसे सर्वत्र अनुषंग का लोप करके व्यंजनादि में च् को ग् करके रूप बनेंगे। एवं नपुंसकलिंग के सारे नियम लगेंगे। यथा—प्राञ्च्+औ 'ञ्' का लोप, 'औरीम्' से 'औ' का 'ई' होकर 'प्राची' बना। ऐसे ही प्राच्+जस् है। "जश्शसोः शिः" २३९वें सूत्र से 'जस् शस्' को शि आदेश होकर "धुट्स्वराद्घुटि नुः" २४०वें सूत्र से 'नु' का आगम "घुटि चासंबुद्धौ" सूत्र से दीर्घ होकर 'प्राञ्चि' बना। आगे रूप सरल हैं।

प्राक्, प्राग्	प्राची	प्राञ्चि	प्राचे	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
हे प्राक्, प्राग्	हे प्राची	हे प्राञ्चि	प्राचः	प्राग्भ्याम्	प्राग्भ्यः
प्राक्, प्राग्	प्राची	प्राञ्चि	प्राचः	प्राचोः	प्राचाम्
प्राचा	प्राग्भ्याम्	प्राग्भिः	प्राचि	प्राचोः	प्राक्षु

इसी प्रकार से प्रत्यञ्च्, सम्यञ्च्, उदञ्च्, तिर्यञ्च् आदि के रूप चलेंगे।

सम्यक्, सम्यग्	समीची	सम्यञ्चि	समीचे	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
हे सम्यक्, सम्यग्	हे समीची	हे सम्यञ्चि	समीचः	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भ्यः
सम्यक्, सम्यग्	समीची	सम्यञ्चि	समीचः	समीचोः	समीचाम्
समीचा	सम्यग्भ्याम्	सम्यग्भिः	समीचि	समीचोः	सम्यक्षु

छ, ज, झ, ञ और टवर्ग नपुंसकलिंग में अप्रसिद्ध हैं। अब तकारांत नपुंसकलिंग 'सकृत्' शब्द है। सकृत् + सि 'वा विरामे' सूत्र से 'सकृद्' बनकर रूप चलेगा।

सकृत्, सकृद्	सकृती	सकृन्ति	सकृते	सकृद्भ्याम्	सकृद्भ्यः
हे सकृत्, सकृद्	हे सकृती	हे सकृन्ति	सकृतः	सकृद्भ्याम्	सकृद्भ्यः
सकृत्, सकृद्	सकृती	सकृन्ति	सकृतः	सकृतोः	सकृताम्
सकृता	सकृद्भ्याम्	सकृद्भिः	सकृति	सकृतोः	सकृत्सु

वा नपुंसके ॥३४२ ॥

अभ्यस्तात्परोऽन्तिरनकारको वा भवति नपुंसकलिङ्गे घुटि परे। ददति, ददन्ति। पुनरपि। ददत्, ददद्। ददती। ददति, ददन्ति। ददता। दददभ्यां। दददिः। इत्यादि। थकारान्तोऽप्रसिद्धः। दकारान्तो नपुंसकलिङ्गस्तद् शब्दः। नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तमिति वचनात् त्यदाद्यत्वं न भवति। तत्, तद्। ते। तानि। पुनरप्येवं। अन्यत्र पुल्लिङ्गवत्। एवं यद् शब्दः। धकारान्तोऽप्रसिद्धः। नकारान्तो नपुंसकलिङ्गः सामन् शब्दः। साम। साम्नी, सामनी। सामानि। पृथक्करणान्नपुंसकस्य वा। हे साम, हे सामन्। हे साम्नी, हे सामनी। हे सामानि। पुनरप्येवं। इत्यादि। एवं मर्मन् लोमन् भूमन् प्रभृतयः। चर्मन् शब्दस्य तु भेदः। चर्म। चर्मणी। चर्माणि। अन्यत्र पुल्लिङ्गवत्। एवं वर्मन् कर्मन् शर्मन् प्रभृतयः। इत्यादि। अहन् शब्दस्य तु भेदः। सौ—

ददन्त् + सि

'अभ्यस्तादन्तिरनकारः' २८५वें सूत्र से नकार का लोप होकर 'ददत्' बना।

ददन्त् + जस्

अभ्यस्त से परे घुट् विभक्ति के आने पर नकार का लोप विकल्प से होता है ॥३४२ ॥

ददत्, ददद्	ददती	ददन्ति, ददति	ददते	दददभ्याम्	दददभ्यः
हे ददत्, ददद्	हे ददती	हे ददन्ति, ददति	ददतः	दददभ्याम्	दददभ्यः
ददत्, ददद्	ददती	ददन्ति, ददति	ददतः	ददतोः	ददताम्
ददता	दददभ्याम्	दददिः	ददति	ददतोः	ददत्सु

अब थकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं, दकारांत 'तद्' शब्द हैं।

तद् + सि "नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तं" इस सूत्र से 'सि अम्' का लोप होकर 'त्यदाद्यत्वं' सूत्र से अकारांत नहीं हुआ। अतः 'तद् तत्' बना।

तद् + औ 'औरीम्' से ई होकर 'त्यदादीनाम् विभक्तौ' से 'अ' होकर 'ते' बना।

तद् + जस्। जस् को 'शि' होकर 'नु' एवं दीर्घ होकर 'तानि' बना आगे पुल्लिगवत् चलेंगे।

तत्, तद्	ते	तानि	तस्मै	ताभ्याम्	तेभ्यः
हे तत्, तद्	हे ते	हे तानि	तस्मात्	ताभ्याम्	तेभ्यः
तत्, तद्	ते	तानि	तस्य	तयोः	तेषाम्
तेन	ताभ्याम्	तैः	तस्मिन्	तयोः	तेषु

यद् और एतद् के रूप भी इसी प्रकार चलेंगे। धकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब नकारांत 'सामन्' शब्द है।

सामन् + सि 'लिंगान्तनकारस्य' सूत्र से 'न' का लोप होकर 'साम' बना। सामन् + औ 'ईङ्योर्वा' सूत्र से औकार को 'ई' आदेश होने से विकल्प से 'अन्' के 'अ' का लोप होकर साम्नी बना और "सामनी" भी बना।

साम	साम्नी, सामनी	सामानि	साम्ने	सामभ्याम्	सामभ्यः
हे साम	हे साम्नी, सामनी	हे सामानि	साम्नः	सामभ्याम्	सामभ्यः
साम	साम्नी, सामनी	सामानि	साम्नः	साम्नोः	साम्नाम्
साम्ना	सामभ्याम्	सामभिः	साम्नि, सामनि	साम्नोः	सामसु

इसी प्रकार से मर्मन्, लोमन्, व्योमन्, भूमन् आदि के रूप चलेंगे।

अह्नः सः ॥३४३ ॥

अहन्नित्येतस्य नकारस्य सो भवति विरामे व्यञ्जनादौ च । अहः । ईङ्योर्वा । अह्नी, अहनी अहानि । हे अहः ३ । पुनरपि । अह्ना । अहोभ्यां । अहोभिः । अहःसु । इत्यादि । पफबभान्ता अप्रसिद्धाः । मकारान्तो नपुंसकलिङ्गः किम्शब्दः । किं । के । कानि । अन्यत्र पुल्लिङ्गवत् । इदं शब्दस्य तु भेदः । इदमियमयं पुंसि ।

इदं नपुंसकेऽपि च ॥३४४ ॥

चर्मन् शब्द के रूप में कुछ अंतर है।

चर्मन् + सि नकार का लोप होकर 'चर्म' बना। चर्मन् + औ 'औ' को ई होकर न् को ण् होकर 'चर्मणी' बना। चर्मण् 'धुटि चासंबुद्धौ' से दीर्घ होकर एवं जस् को शि होकर 'चर्माणि' बना।

चर्म	चर्मणी	चर्माणि	चर्मणे	चर्मभ्याम्	चर्मभ्यः
हे चर्म	हे चर्मणी	हे चर्माणि	चर्मणः	चर्मभ्याम्	चर्मभ्यः
चर्म	चर्मणी	चर्माणि	चर्मणः	चर्मणोः	चर्मणाम्
चर्मणा	चर्मभ्याम्	चर्मभिः	चर्मणि	चर्मणोः	चर्मसु

इसी प्रकार वर्मन्, कर्मन् और शर्मन् के रूप चलेंगे।

अहन् शब्द में कुछ भेद हैं।

अहन् + सि

अहन् शब्द के नकार को विराम और व्यंजनादि विभक्ति के आने पर सकार हो जाता है ॥३४३ ॥

एवं सि विभक्ति का लोप होकर 'अहः' बना।

अहन् + औ 'ईङ्योर्वा' सूत्र से 'अह्नी अहनी' बना। अहन् + भ्याम् नकार को सकार होकर 'अहः + भ्याम्' पुनः संधि होकर 'अहोभ्याम्' बना।

अहन्—दिन

अहः	अह्नी, अहनी	अहानि	अह्ने	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
हे अहः	हे अह्नी, अहनी	हे अहानि	अह्नः	अहोभ्याम्	अहोभ्यः
अहः	अह्नी, अहनी	अहानि	अह्नः	अह्नोः	अह्नाम्
अह्ना	अहोभ्याम्	अहोभिः	अह्नि, अहनि	अह्नोः	अहःसु, अहस्सु

प, फ, ब और भांत शब्द अप्रसिद्ध हैं। अब 'मकारांत' किम् शब्द है। किम् + सि

'नपुंसकात्स्यमोर्लोपो न च तदुक्तं' सूत्र से 'किम्' बना। किम् + औ 'किं कः' सूत्र से 'क' आदेश होकर औ 'को' 'ई' होकर 'के' हुआ। पुनः किम् + जस् है। किम् को 'क' जस् को 'शि' 'नु' का आगम और दीर्घ होकर 'कानि' हुआ।

किम्	के	कानि	कस्मात्	काभ्याम्	केभ्यः
किम्	के	कानि	कस्य	कयोः	केषाम्
केन	काभ्याम्	कैः	कस्मिन्	कयोः	केषु
कस्मै	काभ्याम्	केभ्यः			

इदं शब्द में कुछ भेद है। इदं + सि

नपुंसकलिंग में 'सि अम्' विभक्ति के आने पर इदं शब्द को इदं आदेश ही होता है ॥३४४ ॥

नपुंसकलिङ्गे स्यमि च परे इदम् शब्दस्य इदमादेशो भवति। इदं। इमे। इमानि। इदं। इमे। इमानि। पुनरप्येवं। इत्यादि। यकारान्तोऽप्रसिद्धः। रकारान्तो नपुंसकलिङ्गो वार् शब्दः। वाः। वारी। वारि। पुनरप्येवं। इत्यादि। चत्वार् शब्दस्य तु भेदः। जश्शसोः शिः। चत्वारि। इत्यादि। लवशकारान्ता अप्रसिद्धाः। षकारान्तस्य षषशब्दस्य पूर्ववत्। सकारान्तो नपुंसकलिङ्गो यशस् शब्दः। यशः। यशसी। सान्तमहतोरित्यादिना दीर्घः। यशांसि। पुनरपि। यशसा। यशोभ्यां। यशोभिः। एवं वचस् ओजस् पयस् तपस् वयस् प्रभृतयः। इत्यादि। सर्पिस् शब्दस्य तु भेदः। सर्पिः। सर्पिषी। सर्पींषि। पुनरप्येवं। सर्पिषा।

इदं + औ, इदं को 'त्यदादीनाम् विभक्तौ' सूत्र से 'इद' होकर 'द' को 'म' होकर औरीम् से औ को 'ई' होकर 'इमे' बना। इदं + जस् है। जस्, शस् को शि इदं को इम 'धुट्स्वराद्धुटि नुः' सूत्र से 'नु' का आगम 'घुटि चासंबुद्धौ' से दीर्घ होकर 'इमानि' बना।

इदं	इमे	इमानि	अस्मात्	आभ्याम्	एभ्यः
इदं	इमे	इमानि	अस्य	अनयोः	एषाम्
अनेन	आभ्याम्	एभिः	अस्मिन्	अनयोः	एषु
अस्मै	आभ्याम्	एभ्यः			

इत्यादि। यकारांत शब्द अप्रसिद्ध है। अब रकारांत वार् शब्द है।

वार् + सि, सि का लोप एवं रकार को विसर्ग करके 'वाः' बना। वार् + औ। औ को 'ई' आदेश होकर 'वारी' बना। वार् + जस्, जस् को शि होकर 'वारि' बना। 'रः सुपि' से विसर्ग का निषेध होकर वार्ष बनता है।

वार्—जल

वाः	वारी	वारि	वारे	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
हे वाः	हे वारी	हे वारि	वारः	वार्भ्याम्	वार्भ्यः
वाः	वारी	वारि	वारः	वारोः	वाराम्
वारा	वार्भ्याम्	वार्भिः	वारि	वारोः	वार्षु

चत्वार् शब्द में कुछ भेद है। चत्वार् + जस्। 'जस् शस्' को शि होकर 'चत्वारि' बना। चतुर्णाम् भी बनता है।

चत्वारि। चत्वारि। चतुर्भिः। चतुर्भ्यः। चतुर्भ्यः। चतुर्णाम्, चतुर्ण्णाम्। चतुर्षु।

लकारांत, वकारांत, शकारांत शब्द अप्रसिद्ध हैं। षकारान्त षष् शब्द पूर्ववत् है।

अब सकारांत नपुंसकलिंग 'यशस्' शब्द है। यशस् + सि 'सि' का लोप और 'स्' का विसर्ग होकर 'यशः' बना।

यशस् + औ। औ को 'ई' होकर 'यशसी' बना।

यशस् + जस् है। 'नु' का आगम होकर 'सान्तमहतोर्नोपधायाः' सूत्र से दीर्घ होकर 'यशांसि' बना।

यशः	यशसी	यशांसि	यशसे	यशोभ्याम्	यशोभ्यः
हे यशः	हे यशसी	हे यशांसि	यशसः	यशोभ्याम्	यशोभ्यः
यशः	यशसी	यशांसि	यशसः	यशसोः	यशसाम्
यशसा	यशोभ्याम्	यशोभिः	यशसि	यशसोः	यशःसु, यशस्सु

ऐसे ही वचस्, ओजस्, पयस्, तपस् और वयस् आदि के रूप चलते हैं।

सर्पिस् शब्द है नामि से परे स् को ष् होकर सर्पिष् बना। सर्पिष् + सि = सर्पिः। सर्पिष् + जस् जस् को 'शि' नु का आगम और स्वर को दीर्घ होकर 'सर्पींषि' बना।

सर्पिस् + भ्याम्

इसुस्दोषां घोषवति रः ॥३४५ ॥

इसुस् दोष् इत्येतेषामन्तो रो भवति घोषवति परे। सर्पिर्भ्यां। सर्पिःषु, सर्पिष्षु। एवं धनुस् दोस् प्रभृतयः। इत्यादि। अदस् शब्दस्य तु भेदः। अदः। अमू। अमूनि। पुनरप्येवं अन्यत्र पुल्लिङ्गवत्। हकारान्तोऽप्रसिद्धः। इत्यादि।

इति व्यञ्जनान्ता नपुंसकलिङ्गाः

अथ व्यञ्जनान्तेष्वलिङ्गेषु युष्मदस्मदौ उच्येते

युष्मद् सि अस्मद् सि इति स्थिते।

घोषवान् विभक्ति के आने पर इस्, उस् और दोष् शब्द के अन्त में 'र्' हो जाता है ॥३४५ ॥

इस सूत्र से स् को र् होकर 'सर्पिर्भ्याम्' बना।

सर्पिः	सर्पिषी	सर्पींषि	सर्पिषे	सर्पिर्भ्याम्	सर्पिर्भ्यः
हे सर्पिः	हे सर्पिषी	हे सर्पींषि	सर्पिषः	सर्पिर्भ्याम्	सर्पिर्भ्यः
सर्पिः	सर्पिषी	सर्पींषि	सर्पिषः	सर्पिषोः	सर्पिषाम्
सर्पिषा	सर्पिर्भ्याम्	सर्पिर्भिः	सर्पिषि	सर्पिषोः	सर्पिःषु, सर्पिष्षु

धनुष्

धनुः	धनुषी	धनूंषि	धनुषे	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
हे धनुः	हे धनुषी	हे धनूंषि	धनुषः	धनुर्भ्याम्	धनुर्भ्यः
धनु	धनुषी	धनूंषि	धनुषः	धनुषोः	धनुषाम्
धनुषा	धनुर्भ्याम्	धनुर्भिः	धनुषि	धनुषोः	धनुर्षु, धनुर्षु

दोष्—भुजा

दोः	दोषी	दोंषि	दोषे	दोर्भ्याम्	दोर्भ्यः
हे दोः	हे दोषी	हे दोंषि	दोषः	दोर्भ्याम्	दोर्भ्यः
दोः	दोषी	दोंषि	दोषः	दोषोः	दोषाम्
दोषा	दोर्भ्याम्	दोर्भिः	दोषि	दोषोः	दोःषु

अदस् शब्द में कुछ भेद है। अदस्+सि

सि का लोप और स् का विसर्ग होकर 'अदः' बना।

अदस्+औ है 'त्यदादीनाम् विभक्तौ' सूत्र से अदस् को 'अद' होकर 'द' को 'म' हुआ 'औ' को 'उत्वं मात्' से ऊ होकर 'अमू' बना।

अदस्+जस्, 'अद' होकर जस् को 'शि' हुआ, पुनः 'द' को 'म' होकर 'अमानि' बनकर दीर्घ 'आ' को दीर्घ ऊ होकर 'अमूनि' बना।

अदः	अमू	अमूनि	अमुष्मात्	अमूभ्याम्	अमीभ्यः
अदः	अमू	अमूनि	अमुष्य	अमुयोः	अमीषाम्
अमुना	अमूभ्याम्	अमीभिः	अमुष्मिन्	अमुयोः	अमीषु
अमुष्मै	अमूभ्याम्	अमीभ्यः			

त्वन्मदोरेकत्वे ॥३४६ ॥

एकत्वे वर्तमानयोर्युष्मदस्मदोः स्थाने त्वन्मदौ भवतः ।

त्वमहं सौ सविभक्त्योः ॥३४७ ॥

युष्मदस्मदोः सविभक्त्योस्त्वमहमित्येतौ भवतः सौ परे । त्वं । अहं ।

युवावौ द्विवाचिषु ॥३४८ ॥

युष्मदस्मदोः युवावौ द्विवाचिषु भवतः । अन्तलोपे सति—

अमौ चाम् ॥३४९ ॥

युष्मदादिभ्यः परः अम् औ च आम् भवति । सवर्णदीर्घः । युवां । आवां ।

यूयं वयं जसि ॥३५० ॥

युष्मदस्मदोः सविभक्त्योर्यूयं वयमित्येतौ भवतो जसि परे । यूयं । वयं । त्वन्मदोरेकत्वे इति त्वत् अम् । मत् अम् इति स्थिते—

एषां विभक्तावन्तलोपः ॥३५१ ॥

एषां युष्मदादीनां अन्तस्य लोपो भवति विभक्तौ परतः । सवर्णे दीर्घः । त्वां । मां । युवां । आवां ।

हकारांत शब्द अप्रसिद्ध है ।

इस प्रकार से व्यञ्जनांत नपुंसकलिंग समाप्त हुआ । ❑

अब व्यञ्जनान्त अलिंग युष्मद्, अस्मद् शब्द कहे जाते हैं ।

युष्मद् + सि, अस्मद् + सि हैं ।

एकवचन में वर्तमान युष्मद् अस्मद्, शब्द को 'त्वद्, मद्' आदेश हो जाता है ॥३४६ ॥

सि विभक्ति सहित युष्मद्, अस्मद् शब्द में 'त्वम् अहं' आदेश हो जाता है ॥३४७ ॥

अतः त्वम्, अहं शब्द बन गये ।

युष्मद् + औ, अस्मद् + औ

युष्मद् अस्मद् को द्विवचन में 'युव, आव' आदेश हो जाता है ॥३४८ ॥

युष्मद् अस्मद् से परे 'अम्' और 'औ' विभक्ति को 'आम्' आदेश हो जाता है ॥३४९ ॥

युव + आम्, आव + आम् सवर्ण को दीर्घ होकर युवाम्, आवाम् बना ।

युष्मद् + जस्, अस्मद् + जस्

जस् विभक्ति के आने पर विभक्ति सहित युष्मद्, अस्मद् शब्द को यूयम्, वयम् आदेश हो जाता है ॥३५० ॥

अतः "यूयं, वयं," बना ।

युष्मद् + अम्, अस्मद् + अम् है । "त्वन्मदोरेकत्वे" सूत्र से त्वत्, मत् आदेश होकर "अमौ चाम्" सूत्र से अम् को 'आम्' आदेश हुआ ।

विभक्ति के आने पर युष्मद्, अस्मद् के अन्त का लोप होता है ॥३५१ ॥

इस सूत्र से त्वत् मत् के, तकार का लोप होकर संधि होकर त्वाम्, माम् बना ।

युष्मद् + शस्, अस्मद् + शस् है ।

आन् शसः ॥३५२ ॥

युष्मदादिभ्यः परस्य शस् आन् भवति। युष्मान्। अस्मान्।

एत्वमस्थानिनि ॥३५३ ॥

युष्मदादीनामन्तस्य एत्वं भवत्यस्थानिनि अनादेशिनि प्रत्यये परे। त्वया। मया।

आत्वं व्यञ्जनादौ ॥३५४ ॥

युष्मदादीनामन्तस्य आत्वं भवति व्यञ्जनादौ विभक्तौ आदेशवर्जिते प्रत्यये परे। युवाभ्यां। आवाभ्यां। युष्माभिः। अस्माभिः।

तुभ्यं मह्यं ङयि ॥३५५ ॥

युष्मदस्मदोः सविभक्त्योः तुभ्यं मह्यमित्येतौ भवतो ङयि परे। तुभ्यं मह्यं। युवाभ्यां। आवाभ्यां।

भ्यसभ्यम् ॥३५६ ॥

एभ्यो युष्मदादिभ्यः परो भ्यस् अभ्यं भवति। युष्मभ्यं। अस्मभ्यं।

युष्मद् आदि से परे शस् को 'आन्' हो जाता है ॥३५२ ॥

पुनः ३५१वें सूत्र से अंत दकार का लोप होकर 'युष्मान्, अस्मान्' बना।

युष्मद् + टा अस्मद् + टा, ३४६वें सूत्र से त्वत्, मत् हो गया।

जिसके स्थान पर कोई आदेश न हो वह अनादेश प्रत्यय कहलाता है। टा-ओस् अनादेश वाले प्रत्यय के आने पर युष्मद्, अस्मद् के अन्त को 'ए' हो जाता है ॥३५३ ॥

मतलब 'टा' को 'अन' आदेश होता है। एवं सूत्र १३६ से त्व के अ का लोप होकर त्वे 'मे' आदेश होकर त्वे + आ, मे + आ संधि होकर 'त्वया, मया' बन गया।

युष्मद् + भ्याम्, अस्मद् + भ्याम् हैं। 'युवावौ द्विवाचिषु' सूत्र से युव, आव करके—

आदेश वर्जित व्यञ्जनादि विभक्ति के आने पर युष्मदादि को 'आ' हो जाता है ॥३५४ ॥

अतः 'युवाभ्याम्, आवाभ्याम्' बना।

युष्मद् + भिस्, अस्मद् + भिस् है। ३५१वें सूत्र से अंत के द् का लोप एवं ३५४वें सूत्र से 'आकार' होकर 'युष्माभिः, अस्माभिः' बना।

युष्मद् + ङे, अस्मद् + ङे है।

ङे विभक्ति के आने पर विभक्ति सहित युष्मद्, अस्मद् को तुभ्यं, मह्यं आदेश हो जाता है ॥३५५ ॥

अतः तुभ्यं, मह्यं बना।

युष्मद् + भ्यस्, अस्मद् + भ्यस्

युष्मदादि से परे 'भ्यस्' को 'अभ्यं' हो जाता है ॥३५६ ॥

पुनः ३५१वें सूत्र से युष्मद्, अस्मद् के अंत के द् का लोप होकर एवं १३६वें सूत्र से अ का लोप होकर 'युष्मभ्यं, अस्मभ्यं' बना।

युष्मद् + ङसि, अस्मद् + ङसि है।

'त्वन्मदोरेकत्वे' सूत्र से त्वत्, मत् आदेश करके—

आदिलोपोऽन्त्यलोपश्च मध्यलोपस्तथैव च।
विभक्तिपदवर्णानां दृश्यते शार्ववर्मिके ॥१॥

अत् पञ्चम्यद्वित्वे ॥३५७॥

एभ्यो युष्मदादिभ्यः परा अद्वित्वे वर्तमाना पञ्चम्यद् भवति। त्वत्। मत्। युवाभ्यां। आवाभ्यां। युष्मत्। अस्मत्।

तव मम ङसि ॥३५८॥

युष्मदस्मदोः सविभक्त्योस्तव मम इत्येतौ भवतो ङसि परे। तव। मम। युवयोः। आवयोः।

सामाकम् ॥३५९॥

युष्मदादिभ्यः परः सागमयुक्त आम् आकम् भवति। युष्माकं। अस्माकं। त्वयि। मयि। युवयोः। आवयोः। युष्मासु। अस्मासु। एवं नीतक। त्वं युवां यूयं। त्वां युवां युष्मान्। त्वया युवाभ्यां युष्माभिः।

श्लोकार्थ—शार्ववर्म आचार्य के व्याकरण में विभक्ति पद के वर्णों में आदि का लोप, अंत का लोप और कभी मध्य का लोप देखा जाता है ॥१॥

युष्मद् आदि से परे द्विवचन रहित पंचमी विभक्ति को 'अद्' आदेश हो जाता है ॥३५७॥

अतः त्वत् + अत्, मत् + अत्, रहा। उपर्युक्त श्लोक के आधार से त्वत्, मत् के त् का लोप होकर १३६वें सूत्र से 'त्व म' के अकार का लोप होकर 'त्वत् मत्' बना। ऐसे ही—

युष्मद् + भ्यस्, अस्मद् + भ्यस् है।

भ्यस् को ३५७वें सूत्र से 'अत्' होकर ३५१वें सूत्र से युष्मद् के द् का लोप एवं १३६वें सूत्र से 'अ' का लोप होकर 'युष्मत्, अस्मत्' बना।

युष्मद् + ङस्, अस्मद् + ङस् है।

ङस् विभक्ति के आने पर विभक्ति सहित युष्मद्, अस्मद् को तव, मम आदेश हो जाता है ॥३५८॥

अतः 'तव, मम' बना।

युष्मद् + ओस्, अस्मद् + ओस है 'युवावौ द्विवाचिषु' सूत्र से 'युव, आव' आदेश होकर "ओसि च" सूत्र से एकार होकर एवं संधि होकर 'युवयोः, आवयोः' बना।

युष्मद् + आम्, अस्मद् + आम्

युष्मद् आदि से परे आम् को सकार सहित 'आकम्' आदेश हो जाता है ॥३५९॥

पुनः ३५१वें सूत्र से दकार का लोप होकर 'युष्माकम्, अस्माकम्' बन गया।

युष्मद् + ङि, अस्मद् + ङि है।

'त्वन्मदोरेकत्वे' सूत्र से 'त्वत्, मत्' होकर ३५१वें सूत्र से त्वत्, मत् के अंत का लोप होकर ३५३वें सूत्र से अंत को एकार होकर संधि होकर त्वे + इ, मे + इ = त्वयि, मयि बना।

युष्मद् + सु, अस्मद् + सु

३५१वें सूत्र से दकार का लोप होकर ३५४वें सूत्र से आकार होकर 'युष्मासु, अस्मासु' बना।

तुभ्यं युवाभ्यां युष्मभ्यं । त्वत् युवाभ्यां युष्मत् । तव युवयोः युष्माकं । त्वयि युवयोः युष्मासु ॥ अहं आवां वयं । मां आवां अस्मान् । मया आवाभ्यां अस्माभिः । मह्यं आवाभ्यां अस्मभ्यं । मत् आवाभ्यां अस्मत् । मम आवयोः अस्माकं । मयि आवयोः अस्मासु । ग्रामो युष्माकं । ग्रामोऽस्माकं । स ग्रामो युष्मभ्यं दीयते । ग्रामोऽस्मभ्यं दीयते । ग्रामो युष्मान् रक्षति । ग्रामोऽस्मान् रक्षति । इति स्थिते—

युष्मदस्मदोः पदं पदात्षष्ठीचतुर्थीद्वितीयासु वस्नसौ ॥३६० ॥

पदात्परं युष्मदस्मदोः पदं षष्ठीचतुर्थीद्वितीयासु बहुत्वे निष्पन्नं वस्नसावापद्यते यथासंख्यं । ग्रामो वः स्वं । ग्रामो नः स्वं । ग्रामो वो रक्षति । ग्रामो नो रक्षति । इति सिद्धं । ग्रामो युवयोः स्वं । ग्राम आवयोः स्वं । ग्रामो युवाभ्यां दीयते । ग्राम आवाभ्यां दीयते । ग्रामो युवां रक्षति । ग्राम आवां रक्षति । इति स्थिते—

युष्मद्—तुम

त्वम्	युवाम्	यूयम्	त्वत्	युवाभ्याम्	युष्मत्
त्वाम्	युवाम्	युष्मान्	तव	युवयोः	युष्माकम्
त्वया	युवाभ्याम्	युष्माभिः	त्वयि	युवयोः	युष्मासु
तुभ्यम्	युवाभ्याम्	युष्मभ्यम्			

अस्मद्—मैं

अहं	आवाम्	वयम्	मत्	आवाभ्याम्	अस्मत्
माम्	आवाम्	अस्मान्	मम	आवयोः	अस्माकम्
मया	आवाभ्याम्	अस्माभिः	मयि	आवयोः	अस्मासु
मह्यं	आवाभ्याम्	अस्मभ्यम्			

इन युष्मद्, अस्मद् शब्दों की षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के बहुवचन में वाक्य बनाते समय लघु आदेश भी हो जाते हैं। उन्हें यहाँ बताते हैं।

ग्रामो युष्माकं—तुम्हारा गाँव। ग्रामोऽस्माकम्—हमारा गाँव। स ग्रामो युष्मभ्यम् दीयते—वह गाँव तुम लोगों के लिये दिया जाता है। ग्रामोऽस्मभ्यं दीयते—ग्राम हम लोगों को दिया जाता है। ग्रामो युष्मान् रक्षति—गाँव तुम सबकी रक्षा करता है। ग्रामोऽस्मान् रक्षति—ग्राम हम लोगों की रक्षा करता है। उदाहरण के लिये ये वाक्य दिये गये हैं—

षष्ठी—युष्माकम् चतुर्थी—युष्मभ्यं द्वितीया—युष्मान्

षष्ठी—अस्माकम् चतुर्थी—अस्मभ्यं द्वितीया—अस्मान्

पद से परे षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के बहुवचन में बने हुए युष्मद् अस्मद् पद को क्रम से 'वस्, नस्' आदेश हो जाता है ॥३६० ॥

अर्थात् युष्मद् को वस् और अस्मद् को नस् आदेश हो जाता है। अतः वस्, नस् के स् को विसर्ग होकर 'वः, नः' बना। उपर्युक्त वाक्यों में युष्माकम्, अस्माकम् आदि के स्थान में इन 'वः नः' का प्रयोग कीजिये।

यथा—ग्रामो वः स्वं—गाँव तुम लोगों का धन है।

ग्रामो नः स्वं—गाँव हम लोगों का धन है। ग्रामो वो दीयते—गाँव तुम सबको दिया जाता है। ग्रामो नो दीयते—गाँव हम लोगों को दिया जाता है। ग्रामो वो रक्षति—गाँव तुम लोगों की रक्षा करता है। ग्रामो नो रक्षति—गाँव हम लोगों की रक्षा करता है।

वाम्नौ द्वित्वे ॥३६१ ॥

पदात्परं युष्मदस्मदोः पदं षष्ठीचतुर्थीद्वितीयासु द्वित्वे निष्पन्नं वाम्नौ आपद्यते यथासंख्यं । ग्रामो वां स्वं । ग्रामो नौ स्वं । ग्रामो वां दीयते । ग्रामो नौ दीयते । ग्रामो वां रक्षति । ग्रामो नौ रक्षति । ग्रामस्तव स्वं । ग्रामो मम स्वं । ग्रामस्तुभ्यं दीयते । ग्रामो मह्यं दीयते । ग्रामस्त्वां रक्षति । ग्रामो मां रक्षति । इति स्थिते—

त्वन्मदोरेकत्वे ते मे त्वा मा तु द्वितीयायां ॥३६२ ॥

युष्मदस्मदोरेकत्वे त्वन्मदीभूतयोः पदं पदात्परं षष्ठीचतुर्थीद्वितीयासु एकत्वे निष्पन्नं ते मे आपद्यते त्वा मा तु द्वितीयायां । ग्रामस्ते स्वं । ग्रामो मे स्वं । ग्रामस्ते दीयते । ग्रामो मे दीयते । ग्रामस्त्वा रक्षति । ग्रामो मा रक्षति । इति सिद्धं ।

न पादादौ ॥३६३ ॥

पादस्यादौ वर्तमानानां युष्मदादीनां पदमेतानादेशान्न प्राप्नोति ।

अब इन्हीं षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के द्विवचन के आदेश को दिखायेंगे । यथा—ग्रामः युवयोः स्वं—गाँव तुम दोनों का धन है। ग्राम आवयोः स्वं—गाँव हम लोगों का धन है। ग्रामो युवाभ्यां दीयते—गाँव तुम दोनों को दिया जाता है । ग्राम आवाभ्यां दीयते—गाँव हम दोनों को दिया जाता है । ग्रामो युवां रक्षति—गाँव तुम दोनों की रक्षा करता है । ग्राम आवां रक्षति—गाँव हम दो की रक्षा करता है ।

द्विवचन में 'वाम् नौ' आदेश हो जाता है ॥३६१ ॥

पद से परे षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के द्विवचन में निष्पन्न युष्मद् पद को 'वाम्' और अस्मद् को 'नौ' आदेश हो जाता है । अब आदेश हुए पदों का उदाहरण देखिये । ग्रामो वां स्वं—गाँव तुम दोनों का धन है । ग्रामो नौ स्वं—गाँव हम दोनों का धन है । ग्रामो वां दीयते—गाँव तुम दोनों को दिया जाता है । ग्रामो नौ दीयते—गाँव हम दोनों को दिया जाता है । ग्रामो वां रक्षति—गाँव तुम दो की रक्षा करता है । ग्रामो नौ रक्षति—गाँव हम दोनों की रक्षा करता है । अब षष्ठी, चतुर्थी और द्वितीया के एकवचन के आदेश को देखिये ।

पद से परे षष्ठी, चतुर्थी के एकवचन में युष्मद् को 'ते' और अस्मद् को 'मे' तथा द्वितीया के एकवचन में 'त्वा', 'मा' आदेश होता है ॥३६२ ॥

यथा—ग्रामस्तव स्वं—ग्रामस्ते स्वं, ग्रामो मम स्वं—ग्रामो मे स्वं । ग्रामस्तुभ्यं दीयते—ग्रामो ते दीयते । ग्रामो मह्यं दीयते—ग्रामो मे दीयते । ग्रामस्त्वां रक्षति—ग्रामस्त्वा रक्षति । ग्रामो मां रक्षति—ग्रामो मा रक्षति ।

इस प्रकार से ये उपर्युक्त आदेश सिद्ध हो गये ।

पाद की आदि में ये आदेश नहीं होते हैं ॥३६३ ॥

श्लोकों के पाद की आदि में वर्तमान युष्मद्, अस्मद् को ये उपर्युक्त आदेश प्राप्त नहीं होते हैं । यथा—

वीरो विश्वेश्वरो देवो, युष्माकं कुलदेवता । यहाँ 'युष्माकं' पद द्वितीय पाद की आदि में है । अतः इसे वः आदेश नहीं हुआ । उसी प्रकार से स एव नाथो भगवान् । अस्माकं पापनाशनः ॥ यहाँ 'अस्माकं' पद चतुर्थ पाद की आदि में है । अतः उसे 'नः' आदेश नहीं होगा । उसी प्रकार से आगे के श्लोक में द्वितीय चरण की आदि में युष्माकं को 'वः' एवं चतुर्थ चरण की आदि में अस्माकं को 'नः' नहीं हुआ ।

वीरो विश्वेश्वरो देवो युष्माकं कुलदेवता।
स एव नाथो भगवानस्माकं पापनाशनः ॥१॥
भगवानीश्वरो भूयाद्युष्माकं वरदः प्रभुः।
सद्यो निराकृता दूरमस्माकं येन विद्विषः ॥२॥

पादादाविति किं ? पान्तु वः पार्वतीनाथमौलिचन्द्रमरीचयः।

आमन्त्रणात् ॥३६४॥

आमन्त्रणात्परं युष्मदादीनां पदमेतानादेशान्न प्राप्नोति। हे पुत्र तव स्वमिदं। हे पुत्र मम स्वमिदं। हे पुत्र त्वां रक्षति।

चादियोगे च ॥३६५॥

चादीनां योगे युष्मदादीनां पदमेतानादेशान्न प्राप्नोति। पुत्रो युष्माकं च। पुत्रोऽस्माकं च। पुत्रो युष्मभ्यं च दीयते। पुत्रोऽस्मभ्यं च दीयते। पुत्रो युष्मांश्च रक्षति। पुत्रोऽस्मांश्च रक्षति। चादयः कति ? पञ्च। ते के ? च वा ह अह एव इति चादयः।

दृश्यार्थैश्चानालोचने ॥३६६॥

अचक्षुरालोचने वर्तमानैर्दृश्यार्थैर्धातुभिर्योगे युष्मदस्मत्त्वन्मदादीनां वस्नसादयो न भवन्ति। अनालोचनमिति किम् ? आलोचनं चक्षुर्ज्ञानमनालोचनं मनसा ज्ञानं। ग्रामस्त्वां समीक्षते। ग्रामो मां

श्लोकार्थ—विश्व के ईश्वर वीर भगवान् तुम लोगों के कुल देवता हैं। वे ही भगवान् नाथ हैं; हम लोगों के पाप का नाश करने वाले हैं ॥१॥ भगवान् ईश्वर तुम लोगों के लिये वर देने में समर्थ होवें, जिन्होंने तत्काल ही हम लोगों के लिये शत्रुओं को दूर कर दिया है ॥२॥

प्रश्न—पाद की आदि में ये आदेश नहीं होंगे; ऐसा क्यों कहा ?

उत्तर—पांतु वः पार्वतीनाथ, मौलिचन्द्र मरीचयः।

इस श्लोक में 'वः' आदेश प्रथम पाद की आदि में न होकर आदि में पांतु पद है; अतः यहाँ आदेश हो गया।

आमंत्रण से परे भी युष्मद्, अस्मद् के पद को उपर्युक्त आदेश नहीं होते हैं ॥३६४॥

यथा—हे पुत्र ! तव स्वं इदं—हे पुत्र ! तुम्हारा यह धन है। इसमें संबोधन से परे 'तव' को 'ते' नहीं हुआ ऐसे ही आगे सभी के उदाहरण समझ लेना चाहिये।

'च' आदि के योग में भी आदेश नहीं होता है ॥३६५॥

'च' आदि के योग में युष्मद् अस्मद् के पद को उपर्युक्त आदेश नहीं होता है। जैसे—पुत्रो युष्माकं च—और तुम लोगों का पुत्र है। आगे सभी के उदाहरण समझ लीजिये।

चादि शब्द में आदि से कितने लेना ? पाँच लेना। वे कौन हैं ? च, वा, ह, अह और एव पाँच शब्द 'चादि' से लिये गये हैं। इनके योग में स् वः नः आदि आदेश नहीं होते हैं।

अचक्षु से देखने अर्थ में दृश्य अर्थ वाले धातु के योग में उपर्युक्त आदेश नहीं होते हैं ॥३६६॥

यदि देखने अर्थ वाली धातुओं का अर्थ चक्षु से नहीं देखने अर्थ में विद्यमान हो तो देखने अर्थ वाली धातुओं के योग में युष्मद् अस्मद् को वस् नस् आदि आदेश नहीं होते हैं।

प्रश्न—सूत्र में अनालोचन पद क्यों है ? चक्षु के ज्ञान को यहाँ 'आलोचन' शब्द से कहा है और मन से होने वाले ज्ञान को 'अनालोचन' शब्द से कहा है। जैसे ग्रामस्त्वां समीक्षते—गाँव तुमको देख रहा है।

समीक्षते। ग्रामो युष्मभ्यं दीयमानः समीक्षते। ग्रामोऽस्मभ्यं दीयमानः समीक्षते। ग्रामस्त्वां मनसा विलोकयति। वाञ्छतीत्यर्थः। मनसेति किं ? ग्रामो वः पश्यति। ग्रामो नः पश्यति। चक्षुषेत्यर्थः।

इत्यलिंगाः

अथाव्ययान्युच्यन्ते

अव्ययमसंख्यं। तानि कानि ? स्वर् प्रातर् पुनर् अन्तर् बहिर् च, वा, ह, अह, एव, प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, दुर, वि, आङ्, नि, अति, अपि, अधि, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप, इत्यादि प्रादयो विंशतिः। विना, नाना, अन्तर्, नो, अथ, अथो, अहो, पृथक्, यावत्, तावत्, मनाक्, वषट्, ईषत्, हि, यदि, खलु, ननु, तिर्यक्, मिथ्या, किल, हन्त, वै, तु।

अव्ययाच्च ॥३६७॥

अव्ययाच्च परासां विभक्तीनां लुग्भवति।

सदृशं त्रिषु लिङ्गेषु सर्वासु च विभक्तिषु।
वचनेषु च सर्वेषु यन्न व्येति तदव्ययम् ॥१॥

इत्यव्ययानि।

यहाँ गाँव चक्षु से नहीं देख रहा है अतः 'त्वा' आदेश नहीं हुआ। ऐसे ही सभी पदों के उदाहरण समझ लेना। यहाँ 'ग्रामस्त्वां समीक्षते' और 'ग्रामो युष्मभ्यं दीयमानः समीक्षते' वाक्यों का यह अर्थ है कि "यह गाँव तुमको मन से देख रहा है। और यह गाँव तुम्हारे लिये वांच्छा कर रहा है।" प्रश्न—मन से देखता है ऐसा क्यों कहा ? उत्तर—'ग्रामो वः पश्यति' यहाँ वः आदेश हुआ है अतः ग्राम तुमको चक्षु से देखता है। ऐसा अर्थ लेना चाहिये। अर्थात् गाँव के निवासी तुम्हें चक्षु से देख रहे हैं ऐसा अभिप्राय है।

यहाँ ये युष्मद् अस्मद् शब्द तीनों लिंगों में समान रूप से चलते हैं इनमें लिंग भेद नहीं है अतएव इन्हें 'अलिंग' कहा है।

इस प्रकार से अलिंग प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ अव्यय प्रकरण कहा जाता है।

अव्यय किसे कहते हैं ? जिनके रूप न चले अर्थात् जिनका किसी भी विभक्ति के आने पर व्यय— परिवर्तन—विनाश न होवे उसे अव्यय कहते हैं। वे अव्यय कितने हैं ? ये अव्यय असंख्य हैं। वे कौन-कौन हैं ? सो बताते हैं। स्वर्, प्रातर्, पुनर्, अंतर्, बहिर्, च, वा, ह, अह, एव इत्यादि। इसी प्रकार से 'प्र' आदि बीस उपसर्ग माने गये हैं वे भी अव्यय है जैसे—प्र, परा, अप, सम्, अनु, अव, निर्, दुर्, वि, आङ्, नि, अति, अपि, अधि, सु, उत्, अभि, प्रति, परि, उप ये बीस उपसर्ग हैं। आगे और भी अव्यय हैं—विना, नाना, अन्तर, नो, अथ, अथो, अहो, पृथक्, यावत्, तावत्, मनाक्, वषट्, ईषत्, हि, यदि, खलु, ननु, तिर्यक्, मिथ्या, किल, हंत, वै, तु।

अब—स्वर् + सि है

अव्यय से परे विभक्तियों का लुक् हो जाता है ॥३६७॥

इस सूत्र से सि विभक्ति का लोप हुआ पुनः र् का विसर्ग होकर 'स्वः' बना। स्वर् + औ। उपर्युक्त सूत्र से विभक्ति का लोप होकर स्वः बना। इत्यादि।

श्लोकार्थ—जो शब्द तीनों लिंगों में, सातों विभक्तियों में एवं एक, द्वि, बहुवचनों में समान ही रहे जिसमें कोई परिवर्तन न हो वह अव्यय कहलाता है। व्यय की प्राप्त न होवें वह अव्यय कहलाता है ॥१॥

इस प्रकार से अव्यय प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ प्रत्यया उच्यन्ते

अव्ययसर्वनाम्नः स्वरादन्त्यात्पूर्वोऽक्कः ॥३६८ ॥

अव्ययानां सर्वनाम्नां चान्त्यात्स्वरात्पूर्वोऽक्प्रत्ययो वा भवति कप्रत्ययश्च बहुलं । बहुलमिति किं ?

क्वचित्प्रवृत्तिः क्वचिदप्रवृत्तिः, क्वचिद्विभाषा क्वचिदन्यदेव।
विधेर्विधानं बहुधा समीक्ष्य, चतुर्विधं बाहुलकं वदन्ति ॥१ ॥

उच्चकैः । उच्चैः । नीचकैः । नीचैः । सर्वः । सर्वकः । विश्वः । विश्वकः । युष्मकाभिः । अस्मकाभिः । एभिः । इमकैः । अमीभिः । अमुकैः । भवन्तः । भवन्तकः ।

विभक्तेश्च पूर्व इष्यते ॥३६९ ॥

विभक्तेश्च पूर्वोऽक्प्रत्ययो वा इष्यते । त्वया त्वयका । मया मयका ।

आख्यातस्य चान्त्यस्वरात् ॥३७० ॥

आख्यातस्य चान्त्यस्वरात्पूर्वोऽक्प्रत्ययो वा भवति । पचति, पचतकि । भवन्ति भवन्तकि । इत्यादि । कप्रत्ययश्च । यावकः । यामकः । मणिकः । वत्सकः । पुत्रकः । अश्वकः । वृक्षकः । देवदत्तकः । इत्यादि ।

के प्रत्यये स्त्रीकृताकारपरे पूर्वोऽकार इकारम् ॥३७१ ॥

के प्रत्यये स्त्रीकृताकारे परे पूर्वोऽकार इकारमापद्यते । सर्विका । विश्विका । उष्ट्रिका । पाचिका । मूषिका । कारिका । पाठिका । इत्यादि ।

अब प्रत्यय कहे जाते हैं।

अव्यय और सर्वनाम के अन्त्य स्वर से पूर्व 'अक्' प्रत्यय हो जाता है अथवा बहुलता से 'क' प्रत्यय भी हो जाता है ॥३६८ ॥

बहुलं किसे कहते हैं ?

श्लोकार्थ—कहीं पर प्रवृत्ति होवे, कहीं पर प्रवृत्ति न होवे, कहीं पर विकल्प होवे और कहीं पर अन्य रूप ही हो जावे, इस प्रकार विधि—नियम के विधान को बहुत प्रकार से देखकर 'बहुलता' को चार प्रकार कहते हैं ॥१ ॥

जैसे—उच्चैस् अव्यय है अक् प्रत्यय अन्त्य स्वर के पूर्व में होने से उच्चकैस् बना विसर्ग होकर उच्चकैः, ऐसे ही नीचैः—नीचकैः, सर्वः सर्वकः । युष्माभिः है अक् प्रत्यय, विभक्ति और अन्त्य स्वर के पूर्व में होने से युष्मकाभिः बना। एभिः को अक् प्रत्यय होकर 'इद' को इम हुआ पुनः अक् प्रत्यय मिलकर भिस् को ऐस् होकर इमकैः बना। 'अमीभिः' में भी अद् को अम् होकर अक् प्रत्यय होकर अमुकैः बना।

विभक्ति से पूर्व अक् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥३६९ ॥

अतः त्वया, त्वयका दो रूप बनेंगे।

आख्यात से अन्त्य स्वर से पूर्व अक् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥३७० ॥

अतः पचति और पचतकि दोनों बन गये।

'क' प्रत्यय भी होता है। जैसे—यामः यामकः, पुत्रः, पुत्रकः इत्यादि।

'क' प्रत्यय के आने पर स्त्रीलिंग में आकार प्रत्यय करने पर पूर्व के अकार को इकार हो जाता है ॥३७१ ॥

नदाद्यञ्चु वाह् व्यंसन्तृसखिनान्तेभ्य ई ॥३७२ ॥

स्त्रियां वर्तमानेभ्यो नदादि अञ्चु वाह् उ इ, अंस् अन्त् ऋ सखि नान्तेभ्य ई प्रत्ययो भवति।

ईकारे स्त्रीकृतेऽलोप्यः ॥३७३ ॥

स्त्रियां वर्तमाने ईप्रत्यये परे पूर्वोऽकारो लोप्यो भवति। नदी मही भषी प्लवी कुमारी किन्नरी किशोरी प्रभृतयः। अञ्चु। प्राची प्रतीची समीची उदीची तिरश्चीत्यादि। वाह्। अनडुही (वा स्त्रीकारे) अनड्वाही प्रष्ठौही इत्यादि। उ। तन्वी। उर्वी पृथ्वी। पट्वी। इ—दाक्षी। दैवदत्ती। धूली। अंस्। श्रेयन्स्—श्रेयसी विदुषी प्रेयसी। अन्त्—

तुदभादिभ्य ईकारे ॥३७४ ॥

तुदादिभ्यो भादिभ्यश्च परो अन्तिरनकारको वा भवति ईप्रत्यये परे। तुदती तुदन्ती स्त्री। भाती भान्ती स्त्री।

स्यात् ॥३७५ ॥

स्यात्परोऽन्तिरनकारको वा भवति ईप्रत्यये परे। भविष्यती। भविष्यन्ती।

न यनन्भ्यां ॥३७६ ॥

यथा—'सर्वा' शब्द है स्त्रीलिंग का आकार प्रत्यय है अतः क प्रत्यय करने पर सर्वका पुनः इस सूत्र से पूर्व के 'अ' को इकार होकर 'सर्विका' बना। वैसे ही मूषिका, कारिका आदि सभी बन जायेंगे।

स्त्रीलिंग में वर्तमान नदादि अञ्चु वाह्, उ, इ, अंस्, अंत, ऋ, सखि और नकारांत शब्दों से परे 'ई' प्रत्यय हो जाता है ॥३७२ ॥

अतः 'नद' शब्द है स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय हुआ पुनः—

स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय के होने पर पूर्व के अकार का लोप हो जाता है ॥३७३ ॥

नद के अकार का लोप होकर 'नदी' बना, ऐसे ही कुमार के 'अ' का लोप होकर 'कुमारी' बना।

अञ्चु धातु से बने हुए शब्दों के रूप—प्राञ्च में 'ई' प्रत्यय होकर अनुषंग का लोप होकर अञ्चेरलोपः पूर्वपदस्य दीर्घः इस सूत्र से दीर्घ होकर प्राची बना। ऐसे ही प्रतीची, उदीची, तिश्ची बना।

वाह्—अन्डुही—अनड्वाही ३४०वें सूत्र से विकल्प से वा को उ हुआ है। अतः बना। प्रष्ठौही।

उकारांत शब्दों में—तनु उरु से तन्वी, उर्वी बना।

पृथु से पृथ्वी, पटु से पट्वी आदि।

इकारान्त शब्दों में—दाक्षि से दाक्षी दैवदत्ति से दैवदत्ती बना। अन्स्—श्रेयसी, विदुषी, प्रेयसी बना।

अन्त् से—

ईकारांत स्त्री प्रत्यय के आने पर तुदादि और भादि से परे अंत के नकार का लोप विकल्प से होता है ॥३७४ ॥

तुदती, तुदन्ती, भाती, भान्ती बना।

'स्य' से परे अंत में नकार का लोप विकल्प से होता है। ई प्रत्यय के आने पर ॥३७५ ॥

भविष्यती, भविष्यन्ती बना।

यन् अन् विकरण से परे स्त्रीलिंग ईकार के आने पर अन्त में नकार का लोप नहीं होता है ॥३७६ ॥

यन् अन् विकरणाभ्यां परोऽन्तिरनकारको न भवति ईकारे परे। दीव्यन्ती सीव्यन्ती पचन्ती गच्छन्ती स्त्री इत्यादि। न यनन्भ्यामिति किं ? सुन्वती तन्वती क्रीणती सती आयुष्मती धनवती इत्यादि। ऋ। कर्त्री हर्त्री भर्त्री क्रोष्ट्री इत्यादि। सखि। सखी। इवर्णावर्णयोर्लोपः।

नान्तात् स्त्रीकारे नित्यमवमसंयोगादनोऽलोपोऽलुप्तवच्च पूर्वविधौ ॥३७७।[1]

अवमसंयोगादनोऽलोपो नित्यं भवति स्त्रीकारे परे। राज्ञी दण्डिनी गोमिनी तपस्विनी यशस्विनी।

वरुणेन्द्रमृडभवशर्वरुद्रादान् ॥३७८॥

एभ्यः परो आन् प्रत्ययो भवति। तेभ्यश्च ई प्रत्ययः। वरुणानी शर्वाणी मृडानी इन्द्राणी भवानी रुद्राणी।

नान्तसंख्यास्वस्रादिभ्यो न ॥३७९॥

नान्तेभ्यः संख्यादिभ्यः स्वस्रादिभ्यश्च ईप्रत्ययो न भवति। पञ्चदश। तिस्रः। चतस्रः। आदि शब्दात् सीमा दामा। बहवो राजानो यस्यां पुर्यां सा बहुराजा। स्वसा माता दुहितेत्यादि।

इति प्रत्ययान्ताः ❑

अतः दीव्यन्त का दीव्यन्ती, पचन्त् का पचन्ती बना।

प्रश्न—यन्, अन् विकरण के आने पर 'न' का लोप नहीं होता ऐसा क्यों कहा ? तो सुन्वती, क्रीणन्ती सन्त्-सती आदि।

धनवन्त्—धनवती बनता है। इसकी सिद्धि के लिये ऋकारान्त—कर्तृ-कर्त्री, हर्त्री, भर्त्री बना।

सखि—सखी बना। नकारांत में—दण्डिन् तपस्विन्—दण्डिनी, तपस्विनी बना।

राजन् + ई, स्त्रीलिंग में—

नकारांत से स्त्रीलिंग में प्रत्यय करने पर 'व् म', का संयोग न होने से अन् के 'अ' का लोप हो जाता है ॥३७७॥

अतः राजन् + ई = राज्ञी बना।

वरुण, इन्द्र, मृड भव, शर्व, रुद्र शब्दों से ई प्रत्यय के आने पर आन् का आगम हो जाता है ॥३७८॥

अतः वरुणानी, इन्द्राणी, शर्वाणी आदि बना।

नकारांत संख्यावाची शब्द और स्वसृ आदि से स्त्रीलिंग में 'ई' प्रत्यय नहीं होता है ॥३७९॥

पंच, दश, तिस्रः, चतस्रः आदि बने।

आदि शब्द से सीमन् दामन् है तो सीमा, दामा बना।

बहुत राजा हैं जिस पुरी में उसे कहते हैं बहुराजा नगरी। ऐसे ही स्वसा, माता दुहिता आदि शब्दों में स्त्रीलिंग प्रत्यय नहीं होते हैं।

इस प्रकार से स्त्रीलिंग प्रत्यय प्रकरण समाप्त हुआ। ❑

---

१. स्त्रीकारे नित्यं ॥३८३॥ अवमसंयोगादनोऽलोपो नित्यं भवति स्त्रीकारे परे स चालुप्तवद्भवति पूर्वस्थवर्णस्य विधौ कर्तव्ये। राज्ञी। इति समीचीनं दृश्यते।

अथ कारकं किञ्चिदुच्यते

किं कारकं ? करोति क्रियां निर्वर्तयतीति कारकं। कस्मिन्नर्थे प्रथमा विभक्तिः ? कर्तरि प्रथमा। कः कर्ता ?

यः करोति स कर्ता ॥३८०॥

यः क्रियां करोति स कर्तृसंज्ञो भवति। देवदत्तः करोति। मुनिरधीते। यज्ञदत्तौ लुनीतः। यती पठतः। विष्णुमित्रा गच्छन्ति। साधवोऽनुतिष्ठन्ति। इत्यादि। कस्मिन्नर्थे द्वितीया ? कर्मणि द्वितीया। किं कर्म ?

यत्क्रियते तत्कर्म ॥३८१॥

कर्त्रा यत्क्रियते तत्कारकं कर्मसंज्ञं भवति। कुम्भं करोति। काष्ठं छिनत्ति। मार्गं रुणद्धि। स्तनौ पिबति। गुरून् वन्दते। इत्यादि।

द्वितीयैनेन ॥३८२॥

एनप्रत्ययान्तेन योगे लिङ्गाद् द्वितीया भवति।

अदूरे एनोऽपञ्चम्या दिग्वाचिनः ॥३८३॥

अदूरार्थे दिग्वाचिनः पर एनप्रत्ययो भवति अपञ्चम्याः। अपञ्चम्या इति कोऽर्थः ? द्वितीयायाः। गणनया पञ्चमी विभक्तिः षष्ठी। तेन षष्ठ्यर्थे द्वितीया भवति। अदूरवर्तीन्यां पूर्वस्यां द्विशीत्यर्थः॥ पूर्वेण ग्रामं। उत्तरेण गिरिं। दक्षिणेन नदीं। पश्चिमेन केदारमित्यादि। चकारान्निकषासमयाहाधिगन्तरान्तरेण संयुक्ताद् लिङ्गाद् द्वितीया भवति। निकषा ग्रामं। समया वनम्। हा देवदत्तम्। धिग् यज्ञदत्तं। अन्तरा गार्हपत्यमाहवनीयं च वेदिः। अन्तरेण पुरुषाकारं न किञ्चिल्लभते।

अथ किंचित् कारक प्रकरण कहा जाता है।

कारक किसे कहते हैं ? जो क्रिया को करता है, बनाता है वह कारक है। किस अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है ? कर्ता अर्थ में प्रथमा विभक्ति होती है। कर्ता किसे कहते हैं ?

जो क्रिया को करता है वह कर्ता कहलाता है ॥३८०॥

जो क्रिया को करता है उस की कर्तृ संज्ञा होती है। जैसे 'देवदत्त करता है', मुनि पढ़ते हैं, दो यज्ञदत्त काटते हैं। दो मुनि पढ़ते हैं। विष्णुमित्र जाते हैं। बहुत से साधु पीछे बैठते हैं। इत्यादि।

किस अर्थ में द्वितीया विभक्ति होती है ? कर्म अर्थ में द्वितीया होती है। कर्म किसे कहते हैं ?

जो किया जाता है वह कर्म है ॥३८१॥

कर्ता के द्वारा जो किया जाता है वह कारक कर्म संज्ञक है। जैसे कुम्भं करोति—घड़े को बनाता है। काष्ठं छिनत्ति—लकड़ी को काटता है। मार्गं रुणद्धि—मार्ग को रोकता है। स्तनौ पिबति—बालक माता के स्तन पीता है। गुरून् वंदते—शिष्य गुरुओं की वंदना करता है। इत्यादि।

एन प्रत्यय के योग में द्वितीया होती है ॥३८२॥

एन प्रत्यय जिसके अन्त में है ऐसे शब्दों के योग में लिंग से द्वितीया विभक्ति हो जाती है।

अदूर अर्थ में दिग्वाची से परे अपञ्चमी से एन प्रत्यय होता है ॥३८३॥

निकटवर्ती अर्थ में दिग्वाची शब्दों से परे पंचमी अर्थ के बिना 'एन' प्रत्यय होता है। 'अपञ्चम्याः' इस शब्द से क्या अर्थ लेना ? षष्ठी विभक्ति के अर्थ में द्वितीया विभक्ति होती है यह अर्थ लेना। अर्थात् द्वितीया विभक्ति होने पर भी अर्थ षष्ठी का निकलता है। जैसे 'पूर्वेण ग्रामं' यहाँ पूर्वेण में एन प्रत्यय है और दिशावाची शब्द है अतएव ग्राम में षष्ठी न होकर द्वितीया हुई है इसका अर्थ है कि 'ग्राम के निकटवर्ती पूर्व दिशा में' ऐसे ही 'उत्तरेण गिरिं' पर्वत के निकटवर्ती उत्तर दिशा में।

सर्वोभयाभिपरिभिस्तसन्तैः ॥३८४॥

तसन्तैः सर्वादिभिर्योगे लिङ्गाद् द्वितीया भवति। सर्वतो ग्रामं वनानि। उभयतो ग्रामं क्रमुकवनानि। अभितो ग्रामं पत्रवनानि। परितो ग्रामं रंभावनानि।

कर्मप्रवचनीयैश्च[1] ॥३८५॥

कर्मप्रवचनीयैर्योगे लिङ्गाद् द्वितीया भवति। के कर्मप्रवचनीयाः ?

लक्षणवीत्सेप्थंभूतेऽभिर्भागे च परिप्रती।
अनुरेषु सहार्थे च हीने चोपश्च कथ्यते ॥१॥

दक्षिणेन नदीं—नदी के निकटवर्ती दक्षिण दिशा में।

पश्चिमेन केदारम्—खेत के निकटवर्ती पश्चिम दिशा में। इत्यादि।

चकार से ऐसा समझना कि निकषा, समया, हा, धिक् अंतरा, अंतरेण इनसे संयुक्त लिंग से भी द्वितीया विभक्ति होती है। यथा—

निकषा ग्रामं—ग्राम के निकट।

समया वनं—वन के पास।

हा देवदत्तं—हाय ! देवदत्त को।

धिक् यज्ञदत्तं—यज्ञदत्त को धिक्कार हो।

अंतरा गार्हपत्यमाहवनीयं च वेदिः—गार्हपत्य अग्नि और आहवनीय अग्नि के बीच में वेदी है।

अंतरेण पुरुषाकारं न किञ्चिद् लभते—पुरुषार्थ के बिना कुछ भी नहीं मिलता है।

तस् प्रत्यय जिसके अन्त में है ऐसे सर्व, उभय, अभि और परि के योग में लिंग से द्वितीया होती है ॥३८४॥

जैसे—सर्वतो ग्रामं वनानि—गाँव के चारों तरफ वन है।

उभयतो ग्रामं क्रमुकवनानि—गाँव के दोनों तरफ सुपारी के वन हैं।

अभितो ग्रामं पत्रवनानि—गाँव के चारों तरफ पत्ते के वन हैं।

परितो ग्रामं रंभावनानि—गाँव के सब तरफ केले के वन हैं।

कर्मप्रवचनीय अर्थ के योग में द्वितीया होती है ॥३८५॥

कर्म प्रवचनीय कौन-कौन हैं ?

श्लोकार्थ—लक्षण, वीप्सा और इत्थंभूत अर्थ में 'अभि' शब्द कर्मप्रवचनीय है। भाग अर्थ में परि और प्रति शब्द कर्म-प्रवचनीय हैं। एवं पूर्वोक्त अर्थ में भी परि प्रति शब्द कर्मप्रवचनीय हैं। उपर्युक्त अर्थ में और सह अर्थ में अनुशब्द कर्मप्रवचनीय है। हीन अर्थ में उप शब्द और अनु शब्द कर्म प्रवचनीय होता है ॥१॥

लक्षण अर्थ में, वीप्सा अर्थ में, इत्थंभूत अर्थ में 'अभि' शब्द कर्मप्रवचनीय है। भाग अर्थ में परि और प्रति शब्द कर्मप्रवचनीय है। च शब्द से ऐसा समझना कि लक्षण वीप्सा और इत्थंभूत अर्थ में भी 'परि प्रति' शब्द कर्मप्रवचनीय होते हैं। अनु शब्द इन पूर्वोक्त अर्थों में कर्मप्रवचनीय होता है। और सह अर्थ में भी 'अनु' शब्द कर्मप्रवचनीय होता है। यहाँ च शब्द समुच्चय के लिये है। हीन अर्थ में 'उप' शब्द कर्म प्रवचनीय होता है। और चकार से हीन अर्थ में 'अनु' शब्द भी कर्म प्रवचनीय होता है।

---

१. कर्मक्रियां प्रोक्तवन्तः कर्मकारकमभिधीयमाना इत्यर्थः।

लक्षणार्थे वीप्सार्थे इत्थंभूतार्थे अभिशब्दः कर्मप्रवचनीयो भवति। भागे च परिप्रती कर्मप्रवचनीयौ भवतः। चशब्दात् लक्षणार्थे वीप्सार्थे इत्थंभूतार्थे परिप्रती कर्मप्रवचनीयौ भवतः। अनुशब्द एषु पूर्वोक्तेषु अर्थेषु कर्मप्रवचनीयो भवति। सहार्थे च। चशब्दः समुच्चयार्थः। हीनार्थे उपशब्दः कर्मप्रवचनीयो भवति॥ चशब्दाद् हीनार्थे अनुशब्दः कर्मप्रवचनीयो भवति। लक्षणार्थे वृक्षमभि विद्योतते विद्युत्। वीप्सार्थे वृक्षं वृक्षमभि तिष्ठति विद्युत्। इत्थंभूतार्थे साधुर्देवदत्तो मातरमभि। वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्। वृक्षं प्रति तिष्ठति। वृक्षं वृक्षं प्रति तिष्ठति। साधु देवदत्तो मातरं परि। साधु देवदत्तो मातरं प्रति। यदत्र मां परि स्यात्। तदत्र मां प्रति स्यात्। वृक्षमनु विद्योतते विद्युत्। वृक्षं वृक्षमनुतिष्ठति। साधु देवदत्तो मातरमनु। यदत्र मामनु स्यात्। पर्वतमनु वसते सेना। अन्वर्जुनं योद्धारः। उपार्जुनादन्ये योद्धारो निकृष्टा इत्यर्थः।

गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि ॥३८६॥

चेष्टाक्रियाणां गत्यर्थानां धातूनां प्रयोगेऽध्वनि वर्जिते कर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ भवतः। ग्रामं गच्छति। ग्रामाय गच्छति। नगरं व्रजति। नगराय व्रजति। इत्यादि। चेष्टायामिति किं ? मनसा मेरुं गच्छति। मनसा स्वर्गं गच्छति। अनध्वनीति किं ? अध्वानं गच्छति। गत्यर्थानामिति किं ? पन्थानं पृच्छति।

लक्षण अर्थ में—वृक्षमभि विद्योतते विद्युत—वृक्ष के चारों तरफ बिजली चमकती है।
वीप्सा अर्थ में—वृक्षं वृक्षमभि तिष्ठति विद्यत्—वृक्षवृक्ष पर बिजली ठहरती है।
इत्थंभूत अर्थ में—साधुर्देवदत्तो मातरभि—माता के विषय में देवदत्त साधु है।
वृक्षं परि विद्योतते विद्युत्—वृक्ष के चारों तरफ बिजली चमकती है।
वृक्षं प्रति विद्युत् तिष्ठति—वृक्ष के प्रति बिजली ठहरती है।
वृक्षं वृक्षं प्रति तिष्ठति—वृक्ष वृक्ष पर ठहरती है।
साधुर्देवदत्तो मातरं परि—माता के प्रति देवदत्त साधु है।
साधु देवदत्तो मातरं प्रति—माता के प्रति देवदत्त साधु है।
यदत्र मां परिस्यात्—जो यहाँ मेरे हिस्से में होगा।
तदत्र मां प्रति स्यात्—वो ही वहाँ मेरे हिस्से में होगा।
देवदत्तो मातरमनु—देवदत्त माता के पीछे हैं।
यदत्र मामनु स्यात्—जो वहाँ मेरे हिस्से में होगा।
पर्वतमनु वसते सेना—पर्वत के पीछे सेना रहती है।
अन्वर्जुनं योद्धारः—सभी योद्धा अर्जुन से हीन हैं।
उपार्जुनं योद्धारः—सभी योद्धा अर्जुन से हीन हैं।
सभी योद्धा अर्जुन से निकृष्ट हैं यहाँ यह अर्थ है।

चेष्टा क्रिया में गत्यर्थ धातु के प्रयोग में 'अध्व' छोड़कर कर्म में द्वितीया और चतुर्थी हो जाती है ॥३८६॥

जैसे—ग्रामं गच्छति, ग्रामाय गच्छति—गाँव को जाता है।

चेष्टा क्रिया में हो ऐसा क्यों कहा ? मनसा मेरुं गच्छति—मन से मेरु पर जाता है। तो यहाँ चलने की क्रिया न होने से चतुर्थी नहीं हुई।

कर्म में अध्व न हो ऐसा क्यों कहा ? तो अध्वानं गच्छति—मार्ग में जाता है। यहाँ अध्व शब्द का योग होने से चतुर्थी नहीं हुई। गत्यर्थ धातु हों ऐसा क्यों कहा ? पंथानं पृच्छति-मार्ग को पूछता है। यहाँ चतुर्थी नहीं हुई क्योंकि यहाँ गत्यर्थ धातु न होकर प्रश्नार्थ धातु है।

मन्यकर्मणि चानादरेऽप्राणिनि ॥३८७॥

प्राणिगणवर्जिते मन्यतेः कर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ भवतः अनादरे गम्यमाने । न त्वां तृणं मन्ये, न त्वां तृणाय मन्ये । न त्वां बुषं मन्ये, न त्वां बुषाय मन्ये । इत्यादि । अनादरे इति किं ? अश्मानं दृषदं मन्ये । पाषाणं रत्नं मन्ये । अप्राणिनीति किं ? न त्वां नावं मन्ये । न त्वामन्नं मन्ये । न त्वां काकं मन्ये । न त्वां शुकं मन्ये । न त्वां शृगालं मन्ये । नौ अन्न काक शुक शृगाला एते प्राणिनो वैयाकरणजनानां । इह स्यादेव—न त्वां श्वानं मन्ये, न त्वां शुने मन्ये ।

कस्मिन्नर्थे तृतीया ? करणे तृतीया । किं करणं ?

येन क्रियते तत्करणम् ॥३८८॥

येन क्रियते तत्कारकं करणसंज्ञं भवति । दात्रेण लुनाति । कराभ्यां हन्ति । वाणैर्विध्यति ।

दिवः कर्म च ॥३८९॥

दिवधातोः प्रयोगे करणे द्वितीया भवति । अक्षान् दीव्यति । अक्षैर्दीव्यतीत्यर्थः ।

तृतीया सहयोगे ॥३९०॥

सहार्थेन योगे लिङ्गात्तृतीया भवति । पुत्रेण सह आगतः । त्यागसत्ताभ्यां सार्धं विराजते । सौर्यगुणैः साकमेधते यशः । इत्यादि ।

प्राणीगण से वर्जित अनादर अर्थ में मन्य धातु के योग से कर्म अर्थ में द्वितीया और चतुर्थी दोनों हो जाते हैं ॥३८७॥

जैसे—न त्वां तृणं मन्ये, न त्वां तृणाय मन्ये—मैं तुमको तृण भी नहीं समझता हूँ। इत्यादि। अनादर अर्थ क्यों कहा ? जैसे 'अश्मानं दृषदं मन्ये'—पाषाणं रत्नं मन्ये—मैं पत्थर को रत्न समझता हूँ। यहाँ अनादर अर्थ न होने से चतुर्थी नहीं हुई। 'प्राणीगण को छोड़कर' ऐसा क्यों कहा ? न त्वां नावं मन्ये—मैं तुमको नाव नहीं मानता हूँ। प्राणीगण में कितने शब्द आते हैं ? नौ अन्न, काक, शुक और शृगाल वैयाकरणों के यहाँ इन पाँच को प्राणीगण से लिया है। मतलब इनके योग में मन्य धातु के प्रयोग में चतुर्थी न होकर द्वितीया ही रहती है।

किस अर्थ में तृतीया होती है ? करण अर्थ में तृतीया होती है। करण किसे कहते हैं ?

जिसके द्वारा क्रिया की जाय वह करण है ॥३८८॥

जिसके द्वारा क्रिया की जाती है वह कारक करण संज्ञक कहलाता है। यथा—दात्रेण लुनाति—दांतिया से काटता है।

कराभ्याम् हंति—दोनों हाथों से मारता है। वाणैर्विध्यति—वाणों से वेधन करता है।

दिवधातु के योग में करण अर्थ में द्वितीया हो जाती है ॥३८९॥

इस सूत्र में च शब्द है अतः सूत्र का अर्थ दिवधातु के योग में द्वितीया और तृतीया दोनों होती है ऐसा अर्थ होना चाहिए।

यथा—अक्षान् दीव्यति—पाशों से खेलता है। इसमें द्वितीया विभक्ति होकर भी अर्थ तृतीया का ही निकलता है।

सह अर्थ के योग में तृतीया होती है ॥३९०॥

सह के पर्यायवाचक जो शब्द उनके योग में तृतीया होती है ऐसा अर्थ है अतः समम् सार्धम् के योग में भी तृतीया होती है बन्धुना सार्धम् गच्छति। यथा—पुत्रेण सह आगतः—पुत्र के साथ आया।

त्याग सत्ताभ्याम् सार्धं विराजते—वह त्याग और सत्ता से शोभित होता है।

हेत्वर्थे ॥३९१ ॥

हेत्वर्थे वर्तमानाल्लिङ्गात्तृतीया भवति। अन्नेन सेवते। धनेन कुलं। विद्यया यशः।

कुत्सितेऽङ्गे ॥३९२ ॥

कुत्सितेऽङ्गे वर्तमानाल्लिङ्गात्तृतीया भवति। अक्ष्णा काणः। पादेन खञ्जः। अक्षि काणमस्येति प्रधानत्वात्प्रथमैव।

विशेषणे ॥३९३ ॥

विशेषणे वर्तमानाल्लिङ्गात्तृतीया भवति।

शिखया बटुमद्राक्षीत् श्वेतच्छत्रेण भूपतिम्।
केशवं शंखचक्राभ्यां त्रिभिर्नेत्रैः पिनाकिनम् ॥

कर्तरि च ॥३९४ ॥

कर्तरि च कारके वर्तमानाल्लिङ्गात्तृतीया भवति। देवदत्तेन कृतं। यज्ञदत्तेन भुक्तं। छात्रेण हन्यते। सुराभ्यां युध्यते। सुजनैः क्रियते।

तुल्यार्थे षष्ठी च ॥३९५ ॥

हेतु अर्थ में तृतीया होती है ॥३९१ ॥

यथा—अन्नेन सेवते—अन्न के हेतु सेवा करता है।

धनेन कुलं—धन के निमित्त से कुल है।

विद्यया यशः—विद्या से यश होता है।

कुत्सित अंग में वर्तमान लिंग से तृतीया हो जाती है ॥३९२ ॥

यथा—अक्ष्णा काणः—आँख से काना।

पादेन खञ्जः—पैर से लंगड़ा। यहाँ आँख कानी है जिसकी ऐसा बहुव्रीहि समास होने से काना व्यक्ति प्रधान होने से 'काणः' इसमें प्रथमा ही हुई है।

विशेषण[१] अर्थ में भी तृतीया होती है ॥३९३ ॥

श्लोकार्थ—शिखा से वटु-ब्राह्मण को पहचाना, श्वेतच्छत्र से राजा को, शंख और चक्र से केशव को एवं तीन नेत्रों से महादेव को पहचाना। अतः क्रम से शिखया, श्वेतच्छत्रेण, त्रिनेत्रेण में तृतीया आई।

कर्ताकारक में वर्तमान लिंग से तृतीया होती है ॥३९४ ॥

यथा—देवदत्तेन कृतं—देवदत्त ने किया।

यज्ञदत्तेन भुक्तं—यज्ञदत्त ने खाया। छात्रेण हन्यते—छात्र के द्वारा मारा जाता है। सुराभ्याम् युध्यते-दो देवों द्वारा युद्ध किया जाता है।

सुजनैः क्रियते—सज्जनों के द्वारा किया जाता है।

तुल्य अर्थ के योग में लिंग से तृतीया और षष्ठी दोनों हो जाती हैं ॥३९५ ॥

---

१. यहाँ विशेषण का अर्थ है दूसरे से भेद करने वाला।

तुल्यार्थे योगे लिङ्गात् षष्ठी तृतीया च भवति। देवदत्तस्य तुल्यः, देवदत्तेन तुल्यः। देवदत्तस्य समानः देवदत्तेन समानः। इत्यादि।

किं सम्प्रदानं ? कस्मिन्नर्थे चतुर्थी ? सम्प्रदानकारके चतुर्थी।

यस्मै दित्सा रोचते धारयते वा तत्सम्प्रदानम् ॥३९६॥

यस्मै दातुमिच्छा यस्मै रोचते यस्मै धारयते वा तत्कारकं सम्प्रदानसंज्ञं भवति। ब्राह्मणाय गां ददाति। देवदत्ताय रोचते मोदकः। यज्ञदत्ताय धारयते शतं। विष्णुमित्रो यतिभ्यो दानं ददाति। देवाय रोचते हविः। मोक्षाय ज्ञानं धारयते। पुण्यार्थे चतुर्थी भवति नान्यत्र। राज्ञो दण्डं ददाति। न तत्र पुण्यं। पुनरागमने षष्ठी रजकस्य वस्त्रं ददाति।

नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगे चतुर्थी ॥३९७॥

नम आदिभिर्योगे लिङ्गाच्चतुर्थी भवति। नमो देवाय। स्वस्ति जगते। स्वाहा हुताशनाय। स्वधा पितृभ्यः। अलं मल्लाय प्रतिमल्लः। शक्तो मल्लाय प्रतिमल्लः। वषडिन्द्राय। स्वाहा स्वधा वषट् दाने।

तादर्थ्ये ॥३९८॥

तदर्थभावे द्योत्ये लिङ्गाच्चतुर्थी भवति। मोक्षाय तत्त्वज्ञानं। भुक्तिप्रदानाभ्यां धनं। गुणेभ्यः सत्सङ्गतिः।

यथा—देवदत्तस्य तुल्यः, देवदत्तेन तुल्यः—देवदत्त के समान। अर्थ दोनों का एक ही है। इत्यादि।

किस अर्थ में चतुर्थी होती है ? सम्प्रदान कारक में चतुर्थी होती है। सम्प्रदान क्या है ?

जिसके लिये देने की इच्छा है जिसे रुचता है अथवा जो धारण करता है वह संप्रदान कारक होता है ॥३९६॥

जैसे—ब्राह्मणाय गां ददाति—ब्राह्मण को गाय देता है। देवदत्ताय रोचते मोदकः—देवदत्त को लड्डू रुचता है।

यज्ञदत्ताय धारयते शतं—यज्ञदत्त के लिये सौ रुपये धारण करता है। इत्यादि। यहाँ पुण्य अर्थ में चतुर्थी होती है अन्यत्र नहीं होती। जैसे—राज्ञो दण्डं ददाति—राजा को दण्ड देता है। यहाँ दण्ड देना 'दानरूप' पुण्य कार्य न होने से उसमें षष्ठी हो गई। पुनरागमन में भी षष्ठी हो जाती है। जैसे—रजकस्य वस्त्रं ददाति—धोबी को कपड़े देता है। यहाँ देकर पुनः वापस लेना है अतः षष्ठी हो गई चतुर्थी नहीं हुई।

नमः, स्वस्ति, स्वाहा, स्वधा, अलं और वषट् के योग में चतुर्थी होती है ॥३९७॥

यथा—नमो देवाय—देव को नमस्कार हो।

स्वस्ति जगते—जगत् का कल्याण हो। स्वाहा हुताशनाय—अग्नि को स्वाहा स्वधापितृभ्यः—पितरों के लिये स्वधा।

अलं मल्लाय प्रतिमल्लः—मल्ल के लिये प्रतिमल्ल समर्थ है। वषड् इंद्राय—इन्द्र के लिये। ये स्वाहा, स्वधा और वषट् देने के अर्थ में हैं अर्थात् आहुति, अर्घ्य आदि के समर्पण में ये बोले जाते हैं।

तदर्थ भाव को प्रकट करने में चतुर्थी होती है ॥३९८॥

जैसे—मोक्षाय ज्ञानं—ज्ञान मोक्ष के लिये है।

भुक्ति प्रदानाभ्यां धनं—भोग और दान के लिए धन है।

गुणेभ्यः सत्संगतिः—गुणों के लिये सत्संगति होती है।

संयमाय श्रुतं धत्ते नरो धर्माय संयमम्।
धर्मं मोक्षाय मेधावी धनं दानाय भुक्तये ॥१ ॥

तुमर्थाच्च भाववाचिनः ॥३९९ ॥

तुमः समानार्थाद्भाववाचिप्रत्ययान्ताल्लिङ्गाच्चतुर्थी भवति। भाववाचिनश्चेति वक्ष्यति। पाकाय व्रजति। पक्तये व्रजति। पचनाय व्रजति। पक्तुं व्रजति इत्यर्थः।

कस्मिन्नर्थे पञ्चमी ? अपादाने पञ्चमी। किमपादानं ?

यतोऽपैति भयमादत्ते तदपादानम् ॥४०० ॥

यस्मादपैति यस्माद्भयं भवति यस्मादादत्ते वा तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति। वृक्षात्पर्णं पतति। व्याघ्राद्बिभेति। उपाध्यायादादत्ते विद्यां। इत्यादि।

ईप्सितं च रक्षार्थानाम् ॥४०१ ॥

रक्षार्थानां धातूनां प्रयोगे ईप्सितमनीप्सितं च तत्कारकमपादानसंज्ञं भवति। यवेभ्यो गां रक्षति। गौः यवात् रक्षति। गां निवारयतीत्यर्थः। पापात्पातु भगवान्। रोगकोपाभ्यां निवारयति मनः। अहिभ्य आत्मानं रक्षति।

पर्यपाङ्योगे पंचमी ॥४०२ ॥

श्लोकार्थ—बुद्धिमान् मनुष्य संयम के लिये श्रुत को, धर्म के लिये संयम को, मोक्ष के लिये धर्म को एवं धन को दान और भोग के लिये धारण करते हैं ॥१ ॥

'तुम्' अर्थ के समान भाववाची प्रत्यय वाले लिंग से चतुर्थी होती है ॥३९९ ॥

आगे भाववाची को कहेंगे। जैसे—पाकाय व्रजति—पकाने के लिये जाता है, पक्तये व्रजति, पचनाय व्रजति, तुम् प्रत्यय में—पक्तुं व्रजति—पकाने के लिये जाता है। यहाँ पाकाय, पक्तये, पचनाय इन तीनों का अर्थ पक्तु के समान है। यहाँ पाक पक्ति पचन शब्द भाव प्रत्ययांत हैं। अतः चतुर्थी हुई।

किस अर्थ में पंचमी विभक्ति होती है ? अपादान अर्थ में पंचमी होती है। अपादान क्या है ?

जिससे दूर होता है, डरता है और ग्रहण करता है वह कारक अपादान संज्ञक है ॥४०० ॥

यथा—वृक्षात्पर्णं पतति—वृक्ष से पत्ता गिरता है।

व्याघ्राद् विभेति—व्याघ्र से डरता है।

उपाध्यायादादत्ते विद्यां—उपाध्याय से विद्या को ग्रहण करता है।

रक्षा अर्थ वाले धातु के प्रयोग में ईप्सित और अनीप्सित को अपादान संज्ञा हो जाती है ॥४०१ ॥

यथा—यवेभ्यो गां रक्षति—जौ से गाय की रक्षा करता है।

गौः यवात् रक्षति—अर्थात् गाय को जौ खाने से रोकता है।

पापात् पातु भगवान्—भगवान् पाप से रक्षा करें।

रोगकोपाभ्याम् निवारयति मनः—मन को रोग और क्रोध से रोकता है।

अहिभ्यः आत्मानं रक्षति—सर्पों से अपनी रक्षा करता है।

परि, अप और आङ् के योग में पंचमी होती है ॥४०२ ॥

परि अप आङ् योगे लिङ्गात्पञ्चमी भवति। इहापपरी वर्जने। आङ्मर्यादाभिविध्योः। परि पाटलिपुत्राद्वृष्टो देवः। अप त्रिगर्तेभ्यो वृष्टो देवः। आ पाटलिपुत्राद्वृष्टो देवः।

दिगितरर्तेन्यैश्च ॥४०३॥

दिग् इतर ऋते अन्य एभिर्योगे वर्तमानाल्लिङ्गात्पञ्चमी भवति। पूर्वो ग्रामात्। उत्तरो ग्रामात्। इतरो देवदत्तात्। ऋते धर्मात् कुतः सुखं। अन्यो देवदत्तात्।

पृथग्नानाविनाभिस्तृतीया वा ॥४०४॥

पृथक् नाना विना एभिर्योगे लिङ्गात्तृतीयापञ्चम्यौ भवतः। पृथग् देवदत्तेन। पृथग् देवदत्तात्। नाना देवदत्तेन। नाना देवदत्तात्। विना देवदत्तेन। विना देवदत्तात्।

हेतौ च ॥४०५॥

हेतौ च वर्तमानाल्लिङ्गात्पञ्चमी भवति। कस्माद्धेतोः समागतः। अग्निमानयं धूमवत्त्वात्। अनित्योऽयं कृतकत्वात्॥ कस्मिन्नर्थे षष्ठी ? स्वाम्यादौ षष्ठी। के स्वाम्यादयः ? स्वामी सम्बन्धः

यहाँ अप और परि उपसर्ग वर्जन अर्थ में हैं और आङ् मर्यादा एवं अभिविधि अर्थ में है।

परि पाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः—पटना को छोड़कर मेघ वर्षा हुई।

अप त्रिग्रर्तेभ्यो वृष्टो देवः—तीन गड्ढों को छोड़कर वर्षा हुई।

आपाटलिपुत्राद् वृष्टो देवः—पटना तक मेघ वर्षा हुई। अथवा अभिविधि अर्थ में पटनापर्यंत मेघ वर्षा हुई।

दिग् इतर ऋते और अन्य के योग में लिंग से पंचमी होती है ॥४०३॥

पूर्वो ग्रामात्—गाँव से पूर्व। उत्तरो ग्रामात्—गांव से उत्तर।

इतरो देवदत्तात्—देवदत्त से भिन्न।

ऋते धर्मात् कुतः सुखं—धर्म के बिना सुख कहाँ है ? अन्यो देवदत्तात्—देवदत्त से भिन्न।

पृथक्, नाना, बिना के योग में तृतीया और पंचमी दोनों होती हैं ॥४०४॥

पृथक् देवदत्तेन, पृथक् देवदत्तात्—देवदत्त से भिन्न।

नाना देवदत्तेन, विना देवदत्तात्—देवदत्त के बिना।

हेतु अर्थ में पंचमी होती है ॥४०५॥

कस्माद् हेतोः समागतः—किस हेतु से आप आये।

अग्निमानयं धूमवत्त्वात्—धूमवाला होने से यह पर्वत अग्निवाला है।

अनित्योऽयं कृतकत्वात्—यह अनित्य है क्योंकि कृतक है।

किस अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है ? स्वामी आदि के अर्थ में षष्ठी विभक्ति होती है। स्वामी आदि से क्या-क्या लेना ? स्वामी, सम्बंध, समीप, समूह, विकार, अवयव और स्व ये स्वामी आदि कहलाते हैं। यथा—देवदत्तस्य स्वामी—देवदत्त का मालिक।

संबंध अर्थ में—देवदत्तस्य वासः—देवदत्त का कपड़ा।

समीप अर्थ में—पर्वतस्य समीपं—पर्वत के पास।

समूह—हंसानां समूहः—हंसों का समुदाय।

विकार—क्षीरस्य विकारः—दूध का विकार।

समीप: समूह: विकार: अवयव: स्व इति स्वाम्यादय: । देवदत्तस्य स्वामी । देवदत्तस्य वस्त्रं । पर्वतस्य समीपं । हंसानां समूह: । क्षीरस्य विकार: । देवदत्तस्य बाहू । यज्ञदत्तस्य शिर: । चैत्रस्य स्वं ।

स्वामीश्वराधिपतिदायादसाक्षिप्रतिभूप्रसूतै: षष्ठी च ॥४०६ ॥

स्वाम्यादिभिर्योगे लिङ्गात्षष्ठी सप्तमी च भवति । गवां स्वामी । गोषु स्वामी । गवामीश्वर: । गोष्वीश्वर: । गवामधिपति: । गोष्वधिपति: । गवां दायाद: । गोषु दायाद: । गवां साक्षी । गोषु साक्षी । गवां प्रतिभू: । गोषु प्रतिभू: । गवां प्रसूत: । गोषु प्रसूत: ।

निर्धारणे च ॥४०७ ॥

निर्धारणे चार्थे लिङ्गात्षष्ठी सप्तमी च भवति । जातिगुणक्रियाभि: समुदायस्य एकदेशपृथक्करणं निर्धारणं । पुरुषाणां क्षत्रिय: शूरतम: । पुरुषेषु क्षत्रिय: शूरतम: । गवां कृष्णा गौ: सम्पन्नक्षीरा । गोषु कृष्णा गौ: सम्पन्नक्षीरा । गच्छतां धावन्त: शीघ्रा: । गच्छत्सु धावन्त: शीघ्रा: । इत्यादि ।

षष्ठी हेतुप्रयोगे ॥४०८ ॥

हेतो: प्रयोगे लिङ्गात्षष्ठी भवति । अध्ययनस्य हेतोर्वसति । अन्नस्य हेतोर्वसति ।

अवयव अर्थ में—देवदत्तस्य बाहु—देवदत्त की दोनों भुजाएँ ।

अवयव अर्थ में—यज्ञदत्तस्य शिर:—यज्ञदत्त का मस्तक ।

स्व अर्थ में—विष्णुमित्रस्य स्वं—विष्णुमित्र का धन ।

स्वामी, ईश्वर, अधिपति, दायाद, साक्षी, प्रतिभू और प्रसूत अर्थ के योग में षष्ठी और सप्तमी दोनों होती हैं ॥४०६ ॥

गवां स्वामी, गोषु स्वामी—गायों का स्वामी ।

गवामीश्वर:, गोष्वीश्वर:—गायों का ईश्वर ।

गवां अधिपति, गोष्वधिपति:—गायों का अधिपति ।

गवां दायाद:, गोषु दायाद:—गायों का भागीदार ।

गवां साक्षी, गोषु साक्षी—गायों का साक्षीदार ।

गवां प्रतिभू:, गोषु प्रतिभू:—गायों की जमानत वाला ।

गवां प्रसूत:, गोषु प्रसूत:—गायों का जन्मा बछड़ा ।

निर्धारण अर्थ में षष्ठी और सप्तमी होती है ॥४०७ ॥

निर्धारण किसे कहते हैं ? जाति, गुण, क्रियाओं से समुदाय का एक देश पृथक् करना निर्धारण कहलाता है । जैसे—

पुरुषाणां क्षत्रिय: शूरतम:—पुरुषों में क्षत्रिय शूरवीर होता है । वैसे ही पुरुषेषु क्षत्रिय: शूरतम: ।

गवां कृष्णा गौ: संपन्नक्षीरा—गायों में काली गाय अधिक दूध वाली होती है ।

गोषु कृष्णा गौ: संपन्नक्षीरा—गायों में काली गाय अधिक दूध वाली होती है ।

गच्छतां धावन्त: शीघ्रा:, गच्छत्सु धावन्त: शीघ्रा:—चलने वालों में दौड़ने वाले शीघ्रगामी हैं । इत्यादि ।

हेतु के प्रयोग में षष्ठी होती है ॥४०८ ॥

अध्ययनस्य हेतोर्वसति—अध्ययन के हेतु रहता है ।

अन्नस्य हेतोर्वसति—अन्न के हेतु रहता है ।

स्मृत्यर्थकर्मणि ॥४०९ ॥

स्मरणार्थानां धातूनां प्रयोगे वर्तमानाल्लिङ्गात् कर्मणि षष्ठी भवति । उत्तरत्र नित्यग्रहणादिह विकल्पो लभ्यते । मातुः स्मरति । मातरं स्मरति । पितुरध्येति । पितरमध्येति । इत्यादि ।

करोतेः प्रतियत्ने ॥४१० ॥

करोतेः प्रतियत्ने गम्यमाने लिङ्गात्कर्मणि षष्ठी भवति । सतो विशेषाधानं प्रतियत्नः । एधोदकस्योपस्कुरुते । एधोदकमुपस्कुरुते । इत्यादि ।

हिंसार्थानामज्वरि ॥४११ ॥

हिंसार्थानां ज्वरवर्जितानां धातूनां प्रयोगे कर्मणि षष्ठी भवति । चौरस्य प्रहन्ति । चौरं प्रहन्ति । चौरस्योत्क्राथयति । चौरमुत्क्राथयति । चौरस्य पिनष्टि । रुजो भङ्गे । चौरस्य रुजति । इत्यादि । अज्वरीति किं ? चौरं ज्वरयति कर्कटी । चौरस्य सन्तापयतीत्यर्थः ।

कर्तृकर्मणोः कृति नित्यम् ॥४१२ ॥

कर्तृकर्मणोरर्थयोर्नित्यं षष्ठी भवति कृत्प्रत्यययोगे । भवतः आसिका । भवतः शायिका । भुवनस्य स्रष्टा । पर्वतानां भेत्ता । तत्त्वानां ज्ञाता । इत्यादि ।

स्मृति अर्थ वाले धातु के प्रयोग में षष्ठी होती है ॥४०९ ॥

स्मरण अर्थ वाले धातु के प्रयोग में लिंग से कर्म में षष्ठी होती है । आगे सूत्र में नित्य का ग्रहण होने से यहाँ विकल्प का कथन ग्रहण करना चाहिये । अतः द्वितीया भी हो जाती है ।

यथा—मातुः स्मरति, मातरं स्मरति—माता का स्मरण करता है ।

पितुरध्येति, पितरमध्येति—पिता को स्मरण करता है ।

करोति से प्रतियत्न अर्थ गम्यमान होने में कर्म में षष्ठी होती है ॥४१० ॥

प्रतियत्न किसे कहते हैं ? विद्यमान को विशेष करना—संस्कारित करना 'प्रतियत्न' कहलाता है ।

एधोदकस्य उपस्कुरुते, एधोदकं उपस्कुरुते—लकड़ी जल के गुण को ग्रहण करती है ।

हिंसा अर्थ वाले ज्वर वर्जित धातु के प्रयोग में कर्म में षष्ठी होती है ॥४११ ॥

चौरस्य हंति, चौरं हंति—चोर को मारता है ।

चौरस्य उत्क्राथयति, चौरं उत्क्राथयति—चोर को मारता है ।

चौरस्य पिनष्टि, चौरं पिनष्टि—चोर को दुःख देता है ।

रुज, धातु भंग अर्थ में है । चौरस्य रुजति, चौरं रुजति—चोर को कष्ट देता है । इत्यादि । सूत्र में ज्वर वर्जित ऐसा क्यों कहा ? चौरं ज्वरयति कर्कटी—ककड़ी चोर को ज्वर लाती है चोर को संतापित करती है यह अर्थ हुआ । यहाँ ज्वर् धातु के योग में द्वितीया हुई, षष्ठी नहीं हुई है ।

कर्ता और कर्म के अर्थ में कृत् प्रत्यय के योग में नित्य ही षष्ठी होती है ॥४१२ ॥

कर्ता अर्थ में—भवतः आसिका—आपके बैठने का स्थान ।

भवतः शायिका—आपके सोने का स्थान ।

कर्म अर्थ में—भुवनस्य स्रष्टा—भुवन के स्रष्टा ।

पर्वतानां भेत्ता—पर्वतों के भेदन करने वाले ।

तत्त्वानां ज्ञाता—तत्त्वों के जानने वाले । इत्यादि ।

न निष्ठादिषु ॥४१३ ॥

कर्तृकर्मणोरर्थयो: षष्ठी न भवति निष्ठादिषु परत: । के निष्ठादय: ? क्त । क्तवत् । शन्तृङ् । आनश् । कंस् । कान । किं । उदन्त् । क्त्वा । तुम् । भविष्यदर्थे वुण् । आवश्यकाधमर्ण्ययोर्ण्यन् । अव्यय तृन् इत्येवमादय: । देवदत्तेन भुक्तमोदनं । त्वया कृत: कट: । देवदत्त ओदनं भुक्तवान् । देवदत्त: कृतवान् कटं । इत्यादि । कस्मिन्नर्थे सप्तमी ? अधिकरणे । किमधिकरणं ?

य आधारस्तदधिकरणम्[१] ॥४१४ ॥

य आधारस्तत्कारकमधिकरणसंज्ञं भवति । स आधारस्त्रिविध: । औपश्लेषिको वैषयिकोऽभिव्यापकश्चेति । कटे आस्ते काक: । औपश्लेषिकोऽयं । करयो: कङ्कणं । दिवि देवा: । वैषयिकोऽयम् । तिलेषु तैलं । अभिव्यापकोऽयं ।

कालभावयो: सप्तमी ॥४१५ ॥

कालभावयोर्वर्तमानाल्लिङ्गात्सप्तमी भवति । काले—शरदि पुष्यन्ति सप्तच्छदा: । भावे गोषु दुह्यमानासु गत: ।

अधिशीङ्स्थासां कर्म ॥४१६ ॥

निष्ठा आदि प्रत्यय के आने पर कर्ता कर्म अर्थ में षष्ठी नहीं होती है ॥४१३ ॥

निष्ठादि से क्या-क्या लेना ? क्त, क्तवत्, शन्तृङ् आनश् क्वंस्, कान् किं, कंस् । उदन्त्, उकङ्, क्त्वा, तुम् । भविष्यत् अर्थ में वुण् । आवश्यक और अधमर्ण में ण्यन् । ये प्रत्यय कृदन्त में पाये जाते हैं और अव्यय तृन् ये इत्यादि निष्ठादि कहलाते हैं । जैसे—देवदत्तेन भुक्तमोदनं—देवदत्त ने भात खाया । त्वया कट: कृत:—तुमने चटाई बनाई ।

देवदत्त: ओदनं भुक्तवान्—देवदत्त ने भात खाया । देवदत्त: कटं कृतवान्—देवदत्त ने चटाई बनाई । इत्यादि ।

किस अर्थ में सप्तमी होती है ? अधिकरण अर्थ में सप्तमी होती है । अधिकरण क्या है ?

जो आधार है उस कारक को अधिकरण कहते हैं ॥४१४ ॥

वह आधार तीन प्रकार का है । औपश्लेषिक, वैषयिक और अभिव्यापक ।

औपश्लेषिक का उदाहरण—कटे आस्ते काक:—चटाई पर कौआ बैठा है ।

वैषयिक में—करयो: कंकणं—दोनों हाथ में कड़े हैं ।

दिवि देवा:—स्वर्ग में देवता हैं ।

अभिव्यापक में—तिलेषु तैलं—तिलों में तेल रहता है ।

काल और भाव में वर्तमान लिंग से सप्तमी होती है ॥४१५ ॥

काल में—शरदि पुष्यंति सप्तच्छदा:—शरद् ऋतु में सप्तच्छद फूलते हैं ।

भाव में—गोषु दुह्यमानासु गत:—गाय के दुहने वाले समय में गया ।

अधि पूर्वक शीङ्, स्था और आस् धातु के प्रयोग में अधिकरण अर्थ में द्वितीया होती है ॥४१६ ॥

ग्रामम् अधिशेते — गाँव में सोता है ।

---

१. आध्रियन्ते क्रिया यस्मिन्नित्याधार: ।

अधिपूर्वाणां शीङ् स्था आसु इत्येतेषां प्रयोगे अधिकरणे द्वितीया भवति। ग्राममधिशेते। ग्राममधितिष्ठति। ग्राममध्यास्ते। ग्रामे आस्त इत्यर्थः।

उपान्वध्याङ्वसः ॥४१७॥

उप अनु अधि आङ्पूर्वस्य वसु इत्येतस्य धातोः प्रयोगे अधिकरणे द्वितीया भवति। ग्राममुपवसति। ग्राममनुवसति। ग्राममधिवसति। ग्राममावसति। ग्रामे वसतीत्यर्थः।

सति च ॥४१८॥

सत्यर्थे वर्तमानाल्लिङ्गात्सप्तमी भवति। दाने सति भोगः। ज्ञाने सति मोक्षः। इत्यादि।

निमित्तात्कर्मणि ॥४१९॥

निमित्तभूताल्लिङ्गात्सप्तमी भवति कर्मणि युक्ते।

चर्मणि द्वीपिनं हन्ति दन्तयोर्हन्ति कुञ्जरम्।
केशेषु चमरीं हन्ति सीम्नि पुष्कलको हतः ॥१॥
मुक्तौ चित्तत्वमभ्येति स्वर्मुक्त्योर्जिनमर्चति।
गुणेषु गुरुमाप्नोति गोपः पयसि दोग्धि गाम् ॥२॥
संप्रदानमपादाने करणाधारकौ तथा।
कर्म कर्ता कारकाणि षट् संबन्धस्तु सप्तमः ॥३॥

इति कारकप्रकरणं समाप्तम्। ❑

ग्राममधितिष्ठति	गाँव में रहता है।
ग्राममध्यास्ते	गाँव में बैठता है।

ग्राम में रहता है ऐसा ही सभी का अर्थ है।

उप, अनु, अधि, आङ् पूर्वक वस् धातु के प्रयोग में अधिकरण में द्वितीया होती है ॥४१७॥

ग्राममुपवसति, अनुवसति, अधिवसति, आवसति—सभी का अर्थ है कि ग्राम में रहता है।

सति अर्थ में सप्तमी होती है ॥४१८॥

दाने सति भोगः—दान के होने पर भोग होता है, ज्ञाने सति मोक्षः—ज्ञान के होने पर मोक्ष होता है। इत्यादि।

निमित्त भूत लिंग से कर्म से सप्तमी होती है ॥४१९॥

श्लोकार्थ—चर्म के लिए द्वीपि—व्याघ्र को मारता है। दो दांत के लिये हाथी को मारता है। केशों के निमित्त चमरी गाय को मारता है और कस्तूरी के लिये पुष्कलक 'गन्धवान् मृग' को मारता है ॥१॥ मुक्ति के लिये चित्त का निरोध रूप ध्यान करता है और स्वर्ग, मोक्ष के लिये जिनेन्द्र भगवान् की अर्चना करता है। गुणों के लिये गुरु को प्राप्त करता है एवं दूध के निमित्त ग्वाला गाया को दुहता है ॥२॥

संप्रदान, अपादान, करण, अधिकरण, कर्म और कर्ता ये छह कारक हैं एवं सातवाँ सम्बन्ध[१] कारक है।

इस प्रकार से कारक प्रकरण समाप्त हुआ। ❑

---

१. यह सातवाँ सम्बन्ध मात्र है अतः कारक नहीं है; क्योंकि इसका क्रिया के साथ साक्षात् योग नहीं है और न यह क्रिया का जनक ही है। अतएव कारक षट् ही माने जाते हैं (साक्षात् क्रियाजनकत्वं कारकत्वम्)।

अथ समास उच्यते।

पान्तु वो नेमिनाथस्य पादपद्मारुणांशवः।
यस्य पादौ समानम्य शीतीभूता जगज्जनाः ॥१॥

समासः कः ?

नाम्नां समासो युक्तार्थः ॥४२०॥

नाम्नां युक्तार्थः समासो भवति।

वस्तुवाचीनि नामानि मिलितं युक्तमुच्यते।
समासाख्यं तदेतत्स्यात्तद्धितोत्पत्तिरेव च ॥१॥
चकारबहुलो द्वन्द्वः स चासौ कर्मधारयः।
यत्र द्वित्वं बहुत्वं च स द्वन्द्व इतरेतरः ॥२॥
पदयोस्तु पदानां वा विभक्तिर्यत्र लुप्यते।
स समासस्तु विज्ञेयः पुराणकविवाक्यतः ॥३॥

अथ समास प्रकरण

श्लोकार्थ—जिनके चरण युगल को नमस्कार करके जगत् के प्राणी शांति को प्राप्त हो चुके हैं ऐसे श्री नेमिनाथ भगवान् के चरण कमल की अरुण किरणें हम लोगों की रक्षा करें ॥१॥

समास किसे कहते हैं ?

नाम के अनेक पदों का मिला हुआ अर्थ समास कहलाता है ॥४२०॥

श्लोकार्थ—वस्तुवाची अनेक नामों का मिलना-युक्त होना 'समास' कहलाता है और यह समास तद्धित की उत्पत्ति ही है[1] ॥१॥

जिसमें चकार बहुल हो उसे 'द्वन्द्व' कहते हैं। जिसमें 'स चासौ' का प्रयोग होता है उसे 'कर्मधारय' कहते हैं। जिसमें दो और बहुत पद होते हैं वह इतरेतर द्वन्द्व है ॥२॥

जिसमें दो पद अथवा बहुत से पदों की विभक्ति का लोप किया जाता है उसे कवियों के द्वारा कथित 'समास' समझना चाहिए ॥३॥

उस समास के चार भेद हैं। तत्पुरुष, बहुव्रीहि, द्वन्द्व और अव्ययीभाव।

तत्पुरुष किसे कहते हैं ? जिसमें उत्तर पद का अर्थ प्रधान हो वह तत्पुरुष कहलाता है।

बहुव्रीहि किसे कहते हैं ? जिसमें अन्य पद का अर्थ प्रधान हो वह बहुव्रीहि समास है।

द्वन्द्व किसे कहते हैं ? जिसमें सभी पदों का अर्थ प्रधान हो वह द्वन्द्व है।

अव्ययीभाव किसे कहते हैं ? जिसमें पूर्व में अव्यय पद का अर्थ प्रधान हो वह अव्ययीभाव समास है। इस प्रकार से तुल्य रूप से समास के चार भेद हैं। उनका यहाँ क्रम से वर्णन किया जाता है। सुखं प्राप्तः, गुणान् आश्रितः ऐसा विग्रह है।

---

१. अर्थात् दोनों पदों में च का प्रयोग है जैसे माता च पिता च।

स चतुर्विधः। तत्पुरुषबहुव्रीहिद्वन्द्वाव्ययीभावभेदात्। पुनरुत्तरपदार्थप्रधानस्तत्पुरुषः। अन्यपदार्थ-प्रधानो बहुव्रीहिः। सर्वपदार्थप्रधानो द्वन्द्वः। पूर्वाव्ययपदार्थप्रधानोऽव्ययीभावः। इति चतुर्विधः। स च यथाक्रमं प्रदर्श्यते। सुखं प्राप्तः। गुणान् आश्रितः। इति स्थिते—

विभक्तयो द्वितीयाद्या नाम्ना परपदेन तु।

समस्यन्ते समासो हि ज्ञेयस्तत्पुरुषः स च॥१॥

द्वितीयादिविभक्त्यन्तं पूर्वपदं नाम्ना परपदेन सह यत्र समस्यते स समासस्तत्पुरुषसंज्ञको भवति।

तत्स्था लोप्या विभक्तयः॥४२१॥

तस्मिन् समासे स्थिता विभक्तयो लोप्या भवन्ति।

प्रकृतिश्च स्वरान्तस्य॥४२२॥

लुप्तासु विभक्तिषु स्वरान्तस्य व्यञ्जनान्तस्य च लिङ्गस्य प्रकृतिर्भवति। चकारात्क्वचित्सन्धिर्भवति।

कृत्तद्धितसमासाश्च॥४२३॥

कृत्तद्धितसमासाश्च शब्दा लिङ्गसंज्ञा भवन्ति। सुखप्राप्तः। गुणाश्रितः। एवं ग्रामं गतः—ग्रामगतः। एवं स्वर्गं गतः—स्वर्गगतः। तृतीया—दध्ना संसृष्टः—दधिसंसृष्टः। धान्येन अर्थः। धान्यार्थः। यत्नेन् कृतं—यत्नकृतं। चतुर्थी—कुबेराय बलिः—कुबेरबलिः। यूपाय दारु—यूपदारु। देवाय सुखं—देवसुखं। पञ्चमी—चौराद्भयं-चौरभयं। ग्रामान्निर्गतः—ग्रामनिर्गतः। षष्ठी—चन्दनस्य गन्धः—चन्दनगन्धः। राज्ञः पुरुषः—राजपुरुषः। फलानां रसः—फलरसः। सप्तमी—व्यवहारे कुशलः—व्यवहारकुशलः। काम्पिल्ये सिद्धः—काम्पिल्यसिद्धः। धर्मे नियतः—धर्मनियतः। एवं मोक्षसुखम्। संसारसुखम्। इत्यादि। प्रादयो गताद्यर्थे प्रथमया॥ प्रादयः शब्दाः गताद्यर्थे प्रथमया सह यत्र समस्यंते स समासस्तुत्पुरुषसंज्ञे भवति प्रगत आचार्यः प्राचार्यः अभिगतो मुखं अभिमुखं, प्रतिगतोऽक्षं प्रत्यक्षमित्यादि। विश्वमतिक्रान्तः। इति विग्रहे—

श्लोकार्थ—लिंग रूप पर पद के साथ द्वितीया आदि विभक्तियों का जो समास किया जाता है, वह समास तत्पुरुष समास कहलाता है।

द्वितीयादि विभक्ति है अंत में जिसके ऐसे पूर्वपद का नामवाची पर पद के साथ जो समास किया जाता है वह समास 'तत्पुरुष' संज्ञक है।

सुख + अम्, प्राप्त + सि

उस समास में स्थित विभक्तियों का लोप हो जाता है॥४२१॥

विभक्तियों के लोप हो जाने पर स्वरांत और व्यञ्जनान्त लिंग प्रकृति रूप रहते हैं॥४२२॥

चकार से कहीं संधि हो जाती है। अतः

सुखप्राप्त, गुणाश्रित, रहा।

कृदन्त, तद्धित और समास शब्द लिंग संज्ञक हो जाते हैं॥४२३॥

इस सूत्र से लिंग संज्ञा होने के बाद पुनः क्रम में 'सि' आदि विभक्तियाँ आयेंगी और पूर्ववत् लिंग प्रकरण के समान इनके रूप चलेंगे। यथा—सुखप्राप्त + सि, गुणाश्रित + सि है "रेफसोर्विसर्जनीयः" सूत्र से स् का विसर्ग होकर 'सुखप्राप्तः गुणाश्रितः' बना। इसी प्रकार से 'ग्रामं गतः ग्रामगतः, स्वर्गं गतः—स्वर्गगतः' बन गया है।

अत्यादयः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया ॥४२४॥

अत्यादयः शब्दाः क्रान्ताद्यर्थे द्वितीयया सह यत्र समस्यन्ते स समासस्तत्पुरुषसंज्ञो भवति। उक्तार्थानामप्रयोगः। अव्ययानां पूर्वनिपातः। अतिविश्वः। कोकिलया अवक्रुष्टं वनमिति विग्रहः।

अवादयः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया ॥४२५॥

अवादयः शब्दाः क्रुष्टाद्यर्थे तृतीयया सह यत्र समस्यन्ते स समासस्तत्पुरुषसंज्ञको भवति। स्वरो ह्रस्वो नपुंसके इत्यत्र योगविभागात्—

तृतीया में—दध्ना संसृष्टः है, दधि टा, संसृष्ट सि, "तत्स्था लोप्या विभक्तयः" सूत्र से विभक्ति का लोप, "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से लिंग संज्ञा होकर पुनः—

दधिसंसृष्ट + सि है विसर्ग होकर 'दधिसंसृष्टः' बना । ऐसे ही धान्येन अर्थः—धान्यार्थः, यत्नेन कृतं-यत्नकृतं ।

चतुर्थी में—कुबेराय बलिः, कुबेर + ङे, बलि + सि, विभक्ति का लोप होकर लिंग संज्ञा होकर कुबेरबलि + सि है। विसर्ग होकर 'कुबेरबलिः' बना। उसी प्रकार से यूपाय दारु-यूपदारु देवाय सुखं—देवसुखं ।

पंचमी में—चौराद् भयं, चौर + ङसि, भय + सि है विभक्ति का लोप लिंग संज्ञा पुनः सि विभक्ति आकर 'चौरभयं' बना। उसी प्रकार से ग्रामान्निर्गतः—ग्रामनिर्गतः बना।

षष्ठी में—चन्दन + ङस् गंध + सि, विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा होकर सिविभक्ति आकर 'चन्दनगंधः' बना। तथैव राज्ञः पुरुषः राजपुरुषः, फलानां रसः-फलरसः।

सप्तमी में—व्यवहार + ङि, कुशल + सि विभक्ति का लोप लिंग संज्ञा होकर सिविभक्ति आकर 'व्यवहारकुशलः' बना। तथैव-कांपिल्ये सिद्धः-कांपिल्यसिद्धः, धर्मे नियतः धर्मनियतः मोक्षे सुखं-मोक्षसुखं, संसारे सुखं-संसारसुखं, आदि प्रगतः आचार्यः अभिगतो मुखं, प्रतिगतो अक्षं है।

प्रादि उपसर्गों का गतादि अर्थ में प्रथमान्त के साथ समास होता है।

प्रादि शब्दों का गतादि अर्थ में प्रथमान्त विभक्ति के साथ जहाँ समास होता है वह समास 'तत्पुरुष संज्ञक' है।

प्रगत + सि आचार्य + सि ४२१वें सूत्र से विभक्ति का लोप होकर 'उक्तार्थानां अप्रयोगः। इस नियम से 'गत' शब्द अप्रयोगी हो गया पुनः लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'प्राचार्यः' बना। वैसे ही अभिगतः मुखं-अभिमुखं। प्रतिगतो अक्षं-प्रत्यक्षं बना है।

विश्वम् अतिक्रान्तः, यह विग्रह है।

अति आदि शब्दों का क्रांत आदि अर्थ में द्वितीयां के साथ समास होता है ॥४२४॥

अति आदि शब्दों का क्रान्त आदि अर्थ में जो समास होता है वह समास तत्पुरुष संज्ञक है।

विश्व + अम् अतिक्रान्त + सि, विभक्तियों का लोप होकर 'उक्तार्थानामप्रयोगः' नियम से क्रांत का अप्रयोग होकर 'अव्ययानां पूर्वनिपातः' नियम से अति अव्यय का पूर्व में निपात होकर अतिविश्व रहा, पुनः लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'अतिविश्वः' बना।

कोकिलया अवक्रुष्टं वनं यह विग्रह है।

अवादि शब्दों का क्रुष्ट आदि अर्थ में तृतीयान्त के साथ समास होता है ॥४२५॥

वह समास तत्पुरुष संज्ञक है।

कोकिला + टा अवक्रुष्ट + सि ४२१वें सूत्र से विभक्ति का लोप, अव्यय का पूर्व में निपात एवं लिंग संज्ञा होकर।

गोरप्रधानस्यान्तस्य स्त्रियामादादीनां च ॥४२६ ॥

अप्रधानस्यान्तरस्य गोशब्दस्य तथाविधस्त्रियामादादीनां ह्रस्वो भवति। इति ह्रस्व:। अवकोकिलं वनं। अवमयूरं। अध्ययनाय परिग्लान इति विग्रह:।

पर्यादयो ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या ॥४२७ ॥

पर्यादय: शब्दा ग्लानाद्यर्थे चतुर्थ्या सह यत्र समस्यन्ते स समासस्तत्पुरुषसंज्ञो भवति। पर्यध्ययन:। कौशाम्ब्या निर्गत:। मथुराया निर्गत इति विग्रहे—

निरादयो निर्गमनाद्यर्थे पञ्चम्या ॥४२८ ॥

निरादय: शब्दा निर्गमनाद्यर्थे पञ्चम्या सह यत्र समस्यन्ते स समासस्तत्पुरुषसंज्ञो भवति। गोरप्रधानस्यान्तस्य इत्यादिना ह्रस्व:। निष्कौशाम्बि:। एवं निर्मयूर: ॥ दीर्घश्चारायण:। व्यास: पाराशर्य:। रामो जामदग्न्य:। क्षेमंकर:। शुभंकर:। प्रियंकर:। श्रियंमन्य:। भुवंमन्य:। अम्भसाकृतं। तमसाकृतं। परस्मैपदं। आत्मनेपदं। स्तोकान्मुक्त:। कृच्छ्रान्मुक्त:। अन्त्यकादागत:। दूरादागत:। वाचोयुक्ति:। दिशोदण्ड:। पश्यतोहर:। शुन:पुच्छ:। शुन:शेफ:। शुनोलाङ्गल:। सरसिजं। पङ्केजं। स्तंबेरम:। कर्णेजप:। कण्ठेकाल:। उरसिलोमा। इत्यत्र समासे कृते विभक्तिलोपे प्राप्ते 'तत्स्था लोप्या विभक्तय:' इत्यत्र स्थग्रहणाधिक्याल्लोपो न भवति।

अवकोकिला रहा। 'स्वरो ह्रस्वो नपुंसके' इस प्रकार से यहाँ योग चला आ रहा है।

अप्रधान है अन्त में गो शब्द जिनके ऐसे और स्त्रीलिंगवाची आकारादि जो शब्द हैं वे ह्रस्व हो जाते हैं ॥४२६ ॥

इस सूत्र से ह्रस्व होकर 'अवकोकिल' रहा पुन: सि विभक्ति आकर नपुंसक लिंग के 'वन' का विशेषण होने से नपुंसक लिंग में 'अवकोकिलं' बना।

अवकोकिलं वनं—कोकिला (कोयलों) से व्याप्त वन। ऐसे ही मयूरेण अवक्रुष्टं वनं—'अवमयूरं' बना।

अध्ययनाय परिग्लान: इस प्रकार से विग्रह है।

परि आदि शब्दों का ग्लान आदि अर्थ में चतुर्थ्यन्त के साथ समास होता है ॥४२७ ॥

वह समास तत्पुरुष संज्ञक है। अध्ययन + ङे परिग्लान + सि, ४२१वें सूत्र से विभक्ति का लोप होकर ग्लान का प्रयोग हटाकर अव्यय का पूर्व में निपात हुआ अत: 'पर्यध्ययन' रहा लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'पर्यध्ययन:' बना।

कौशाम्ब्या: निर्गत:, मथुराया: निर्गत:, इस प्रकार से विग्रह है।

निरादि शब्दों का निर्गमन आदि में पंचम्यन्त के साथ समास होता है ॥४२८ ॥

और वह समास तत्पुरुष संज्ञक है।

कौशाम्बी + ङसि निर्गत् + सि, विभक्ति का लोप, निर् का पूर्व में निपात होकर ४२६वें सूत्र से ह्रस्व होकर लिंग संज्ञा होकर नपुंसक लिंग में 'सि' विभक्ति आई।

इनका समास करने पर विभक्तियों का लोप प्राप्त था, किन्तु "तत्स्था लोप्या विभक्तय:" सूत्र में 'स्थ' ग्रहण की अधिकता होने से कहीं पर लोप नहीं होता है। इस नियम से ऊपर में विभक्तियों का लोप नहीं होने से 'आत्मनेपदं' परस्मैपद आदि रूप जैसे के तैसे रह गये हैं।

सप्तम्यास्तत्पुरुषे कृति बहुलम् ॥४२९ ॥

कृदन्ते परे सप्तम्यास्तत्पुरुषे कृति समासे बहुलमलुग्भवति। गेहेनर्दी। गेहेक्ष्वेडा। प्रवाहेमूत्रितं। भस्मनिहुतं। क्वचिद्विकल्पः। खेचरः, खचरः। वनेचरः, वनचरः। पङ्केरुहं, पङ्करुहं। सरसिजं, सरोजं। इत्यादि॥ विदुषां गमनं। दिवं गतः। इत्यादौ समासे कृते—

व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभोः ॥४३० ॥

लुप्तासु विभक्तिषु व्यञ्जनान्तस्य सुभोर्यदुक्तं तद्भवति। विद्वद्गमनं। द्युगतः। इत्यादि। नीलं च तदुत्पलं च। रक्तं च तदुत्पलं च। च शब्दः समुच्चयद्योतनार्थः। तच्छब्द एकाधिकरणद्योतनार्थः।

निष्कौशाम्बि + सि = निष्कौशाम्बि, निर्मयूरः। दीर्घश्चारायणः, व्यासः पाराशर्यः, रामो जामदग्न्यः, क्षेमंकरः, शुभंकरः एकाधिकरणद्योतनार्थः।

पदे तुल्याधिकरणे विज्ञेयः कर्मधारयः ॥४३१ ॥

यस्मिन् समासे द्वे पदे तुल्याधिकरणे भवतः स कर्मधारयो भवति। भिन्नप्रवृत्तिनिमित्तयोः शब्दयोरेकाधिकरणे समावेशस्तुल्याधिकरणं। उक्तार्थानामप्रयोग इति तत्—च—शब्दनिवृत्तिः।

सप्तमी[1] से तत्पुरुष समास में कृदन्त से समास करने पर बहुधा करके लुक् नहीं होता है ॥४२९ ॥

तब गेहे, नर्दी, गेहेनर्दी प्रवाहे मूत्रितं-भस्मनि हुतं। इत्यादि। कहीं पर विकल्प हो जाता है। खेचरः खचरः, वनेचरः वनचरः, पंकेरुहं पंकरुहं, सरसिजं सरोजं आदि।

विदुषां गमनं, दिवं गतः इत्यादि में समास के करने पर विद्वन्स् + आम्, गमन + सि।

दिव् + अम्, गत + सि है। विभक्ति का लोप होकर सूत्र लगा—

विभक्तियों के लोप हो जाने पर व्यञ्जनान्त सुभ्याम् विभक्तियों में जो कार्य कहा है वही हो जाता है ॥४३० ॥

न् का लोप एवं स् का 'द्' होकर 'विद्वद्गमन' सि विभक्ति आकर 'विद्वद्गमनं' बना। उसी प्रकार "अघुट्स्वरादौ" आदि ३११वें सूत्र से व् को 'उ' होकर द्युगत विभक्ति आकर 'द्युगतः' बना। इत्यादि

अब कर्मधारय समास को कहते हैं।

नीलं च तदुत्पलं च, रक्तं च तदुत्पलं च। यहाँ चकार शब्द समुच्चय को प्रकट करने के लिये दिया जाता है। और 'तद्' शब्द एकाधिकरण को प्रकट करने के लिये है अर्थात् नील शब्द भी नपुंसकलिंग है अतः तद् शब्द भी नपुंसकलिंग का एकवचन है। इसी तरह कर्मधारय समास में स्त्रीलिंग में सा अथवा असौ, पुल्लिंग में असौ शब्द का प्रयोग होता है एवं एकवचन में एकवचन द्विवचन के साथ 'तौ' बहुवचन के साथ 'ते' शब्द का प्रयोग होता है क्योंकि विशेष्य विशेषण का समास है अतः लिंगों में, वचनों में समानता का नियम है। उसी को आगे स्पष्ट करेंगे।

जिस समास में दो पद तुल्य अधिकरण वाले होवें वह समास 'कर्मधारय' संज्ञक है ॥४३१ ॥

तुल्याधिकरण किसे कहते हैं? भिन्न प्रवृत्ति में निमित्तभूत दो शब्दों का एक आधार में समावेश होना तुल्याधिकरण कहलाता है। यहाँ पर भी "उक्तार्थानामप्रयोगः" इस नियम से चकार और तद् शब्दों

---

१. सप्तम्यन्त का कृदन्त के साथ तत्पुरुष समास करने पर सप्तमी विभक्ति का लोप नहीं होता है॥४३५ ॥

विभक्तिलोपः। अत्र नीलं किमित्यपेक्षते ? उत्पलमपेक्षते। उत्पलं किमित्यपेक्षते ? नीलमपेक्षते। नीलोत्पलं। एवं वीरश्चासौ पुरुषश्च वीरपुरुषः। शुक्लश्चासौ पटश्च शुक्लपटः। शोभना चासौ भार्या च शोभनभार्या। दीर्घा चासौ माला च दीर्घमाला।

कर्मधारयसंज्ञे तु पुंवद्भावो विधीयते ॥४३२॥

इति ह्रस्वः। इत्यादि।

संख्यापूर्वो द्विगुरिति श्रेयः ॥४३३॥

स एव कर्मधारयः संख्यापूर्वश्चेत् द्विगुरिति ज्ञेयः। स च त्रिविधः—उत्तरपदतद्धितार्थसमाहारभेदात्। पञ्चसु कपालेषु संस्कृत ओदनः पञ्चकपाल ओदनः। दशसु गृहेषु प्रविष्टः दशगृहप्रविष्टः। अष्टसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः।

अष्टनः कपालेषु हविषि ॥४३४॥

का अभाव हो गया अतः 'नीलं उत्पलं' रहे ४२१वें सूत्र से विभक्तियों का लोप होकर 'नील उत्पल' रहे। यहाँ नील किसकी अपेक्षा करता है ? उत्पल की अपेक्षा करता है। उत्पल किसकी अपेक्षा करता है ? नील की अपेक्षा करता है। अतः नीलोत्पल में लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर नपुंसकलिंग में 'नीलोत्पलं' बना। ऐसे ही 'रक्तोत्पलं' बना। इसी प्रकार से पुल्लिग में—वीरश्चासौ पुरुषश्च विग्रह है। चकार और असौ का अप्रयोग होकर विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा होकर पुनः सि विभक्ति आकर 'वीरपुरुषः' बना।

वैसे ही शुक्लश्चासौ पटश्च—शुक्लपटः।

स्त्रीलिंग में—शोभना चासौ भार्या च विग्रह है।

पूर्वोक्त नियम से 'शोभनाभार्या' बनकर—

कर्मधारय समास में पुंवद्भाव हो जाता है ॥४३२॥

इस सूत्र से ह्रस्व होकर 'शोभनभार्या' बना।

वैसे दीर्घा चासौ माला च—दीर्घमाला बना। इत्यादि।

अब द्विगु समास का वर्णन करते हैं।

संख्यापूर्वक द्विगु समास होता है ॥४३३॥

वही कर्मधारय समास यदि संख्या पूर्व में रखकर होता है तब 'द्विगु' कहलाता है। उस द्विगु समास के तीन भेद हैं। उत्तरपद द्विगु, तद्धितार्थ द्विगु और समाहार द्विगु।

उत्तरपद द्विगु का उदाहरण—दशसु गृहेषु प्रविष्टः ऐसा विग्रह हुआ। दशन् + सु, गृह + सु, प्रविष्ट + सि "तत्स्था लोप्या विभक्तयः" सूत्र से विभक्ति का लोप होकर, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर दशन् के नकार का लोप होकर 'दशगृहप्रविष्टः' बन गया।

पञ्चन् + सुप्, कपाल + सु विभक्तियों का लोप होकर नकार का लोप हुआ पुनः लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर "पञ्चकपालः" ओदनः। यहाँ संस्कृत शब्द अप्रयोगी है। अष्टसु कपालेषु संस्कृतः पुरोडाशः।

अष्टन् + सु, कपाल + सु विभक्तियों का लोप होकर कपाल से परे।

हवन की सामग्री के वाच्य अर्थ में अष्टन् को आकारान्त हो जाता है ॥४३४॥

अष्टन् शब्दस्य आत्वं भवति कपाले परे हविष्यभिधेये। अष्टाकपालः पुरोडाशः। अयमुत्तर-पदद्विगुः। पञ्च च ते गावश्च पञ्चगवाः। समासान्तर्गतानां वा राजादीनामदन्तता इति। चत्वारश्च ते पन्थानश्च चतुष्पथाः। इति तद्धितपदार्थः। पञ्चानां पूलानां समाहारः पञ्चपूली। एवं त्रिलोकी। अकारान्तो द्विगुसमाहारो नदादौ पठ्यते पात्रादिगणं वर्जयित्वा। पात्रादिगण इति किं ? त्रयाणां भुवनानां समाहारस्त्रि-भुवनं। समाहारद्विगुरयं। त्रिभुवनेन त्रिभुवनाय। त्रिभुवनात्। त्रिभुवनस्य। त्रिभुवने। (सर्वत्रैकवचनमेव)

पंचसु कपालेषु संस्कृतः ओदनः

तत्पुरुषावुभौ ॥४३५॥

उभौ द्विगुकर्मधारयौ तत्पुरुषौ भवतः। अब्राह्मणः। अनजः। कदश्व इत्यादि। इति कर्मधारयः। इति तत्पुरुषसमासः।

आरूढो वानरो यं वृक्षं। ऊढो रथो येन। उपहृतः पशुर्यस्मै। पतितं पर्णं यस्मात्। चित्रा गावो यस्य। वीराः पुरुषा यस्मिन्देशे। लम्बौ कर्णौ यस्य। दीर्घौ बाहू यस्य। इति स्थिते—

अतः अष्टाकपालः बना। ये उत्तर द्विगु के उदाहरण हैं। तद्धितार्थ द्विगु—पंच च ते गावश्च ऐसे विग्रह हुआ।

पञ्चन् + जस् गो + जस्, विभक्ति का लोप होकर लिंग संज्ञा हुआ, नकार का लोप एवं जस् विभक्ति आकर "पञ्चगावः।" चत्वारश्च वे पंथानश्च विग्रह हुआ। पुनः चत्वार् + जस् पंथि + जस् विभक्तियों का लोप होकर "वाशब्दस्योत्वं" से उकार होकर "समासांतर्गतानां वा राजादीनामदन्तता" इस सूत्र से पंथि को अकारांत होकर लिंग संज्ञा होकर 'चतुष्पथ' बना। पुनः जस् विभक्ति आकर चतुष्पथाः बना।

इस प्रकार से तद्धितार्थ द्विगु हुआ। समाहार द्विगु—पञ्चानां फलानां समाहारः ऐसा विग्रह हुआ।

पञ्चन् + आम् फल + आम् विभक्ति का लोप होकर नकार का लोप होकर 'पञ्चफल' रहा पुनः पात्रादिगण के अकारांत द्विगुसमाहार नदादिगण में पढ़े जाते हैं अतः 'नदाद्यश्च'।

इत्यादि सूत्र से 'ई' प्रत्यय होकर १३६वें सूत्र से अकार का लोप होकर 'पञ्चफली' बना। अब लिंग संज्ञा करके नदीवत् इसके रूप चला लीजिये। इसी प्रकार से त्रिलोकी शब्द भी बना है। पात्रादिगण को छोड़कर कहा है सो पात्रादिगण में क्या क्या लेना ? त्रयाणां भुवनानां समाहारः 'त्रिभुवनम्' ये पात्रादि गण में हैं अतः ई प्रत्यय नहीं हुआ।

ये भी समाहार द्विगु में ही है इस त्रिभुवन के रूप सर्वत्र एकवचन में चलते हैं यथा—

त्रिभुवनं, त्रिभुवनेन, त्रिभुवनाय, त्रिभुवनात्, त्रिभुवनस्य, त्रिभुवने।

ये द्विगु और कर्मधारय दोनों ही तत्पुरुष समास हैं ॥४३५॥

तत्पुरुष के कर्मधारय भेद में ही नञ् समास अंतर्भूत है। जैसे न ब्राह्मणः—अब्राह्मणः। न अजः—अनजः, कुत्सित् अश्वः-कदश्वः इत्यादि। ये कर्मधारय और द्विगु समास तत्पुरुष समास में ही अंतर्भूत हो जाते हैं।

इस प्रकार से तत्पुरुष समास का प्रकरण पूर्ण हुआ।

अथ बहुव्रीहि समास का वर्णन

आरूढो वानरो यं वृक्षं सः—जिस वृक्ष पर यह बन्दर चढ़ा हुआ है (वह वृक्ष)।

ऊढो रथो येन—जिसने रथ को खींचा (वह व्यक्ति)।

उपहृतः पशुः यस्मै—जिसके लिये पशु दिया (वह)।

पतितं पर्णं यस्मात्—जिससे पत्ता गिरा (वह वृक्ष)।

स्यातां यदि पदे द्वे तु यदि वा स्युर्बहून्यपि तान्यन्यस्य पदस्यार्थे बहुव्रीहिः ॥४३६ ॥

यत्र समासे द्वे पदे यदि वा स्यातां बहूनि वा स्युरन्यपदार्थे समस्यन्ते स समासो बहुव्रीहिर्भवति। आरूढवानरः। ऊढरथः। उपहृतपशुः। पतितपर्णः। चित्रगुः। वीरपुरुषो देशः। लम्बकर्णः। दीर्घबाहुः। बहुपदानामपि। बहवो मत्ता मातङ्गा यस्मिन् वने तत् बहुमत्तमातङ्गं वनं। बहूनि रसवन्ति फलानि यस्मिन् वृक्षे स बहुरसवत्फलो वृक्षः। व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभोरिति न्यायात् अनुषङ्गलोपः। उपगता दश येषां ते उपगतदशाः। एवमासन्ना दश येषां ते आसन्नदशाः। अदूरा दश येषां ते अदूरदशाः। अधिका दश येषां ते अधिकदशाः। पुत्रेण सह आगतः सपुत्रः सहपुत्रः।

सहस्य सो बहुव्रीहौ वा ॥४३७ ॥

चित्रा गावो यस्य—चित्रविचित्र हैं गायें जिसकी (ऐसा वह मनुष्य)।
वीराः पुरुषा यस्मिन्—वीर पुरुष हैं जिसमें (ऐसा वह देश)।
लम्बौ कर्णौ यस्य—लंबे हैं दो कान जिसके (ऐसा वह मनुष्य)।
दीर्घौ बाहू यस्य—दीर्घ हैं दोनों भुजायें जिसकी (ऐसा वह मनुष्य)।
धीराः पुरुषा यस्मिन्—धीर पुरुष हैं जहाँ पर (ऐसा वह देश)।
इस प्रकार से बहुव्रीहि समास का विग्रह हुआ।

जिस समास में दो पद होवें अथवा बहुत पद होवें और पदों का अन्य पद के अर्थ में समास होवे तो वह समास 'बहुव्रीहि' कहलाता है ॥४३६ ॥

आरूढ + सि वानर + सि बाकी यं वृक्षं अप्रयोगी है।

विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा, पुनः विभक्ति आकर 'आरूढवानरः' बना।

ऊढ + सि रथ + सि 'येन' शब्द अप्रयोगी है अन्य पदार्थ हैं उसी अर्थ में समास होता है विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा होकर 'ऊढरथः' बना। ऐसे ही उपर्युक्त पदों से उपहृतपशुः। पतितपर्णः। चित्रगुः। वीरपुरुषः देशः। लम्ब कर्णः। दीर्घबाहुः। धीरपुरुषः देशः बन गये।

यहाँ चित्रगो को 'गोरप्रधानस्य स्त्रियामादादीनां च' ४२६ सूत्र से ह्रस्व करके 'चित्रगुः बनाया है।'

बहुत पदों में भी इस समास के उदाहरण—बहवो मत्ता मातंगाः यस्मिन् वने ऐसा विग्रह होकर बहु + जस् मत्त + जस् मातंग + जस् विभक्तियों का लोप होकर 'बहुमत्तमातंगं' बना। पुनः लिंग संज्ञा होकर नपुंसक लिंग में 'सि' विभक्ति से रूप बनकर 'बहुमत्तमातंगं वनं' बना। बहूनि रसवन्ति फलानि यस्मिन् वृक्षे, बहु + जस् रसवन्त् + जस् फल + जस् विभक्तियों का लोप होकर "व्यंजनान्तस्य यत्सुभोः" इस ४३०वें सूत्र से अनुषंग का लोप होकर 'बहुरसवत्फल' रहा लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर वृक्ष का विशेषण होने से पुल्लिंग में 'बहुरसवत्फलः' बना। ऐसे ही उपगता दश येषां ते।

उपगत + जस् दशन् + जस् विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा, जस् विभक्ति आकर उपगतदशन् बना यहाँ 'समासांतर्गतानां वा राजादीनामदन्तता' सूत्र से दशन् शब्द को अकारांत होकर 'उपगतदशाः' बना है।

ऐसे ही आसन्ना दश येषां ते—आसन्ना दशाः। अदूरा दश येषां ते अदूरदशाः। अधिका दश येषां ते-अधिकदशाः।

पुत्रेण सह आगतः ऐसा विग्रह है।

बहुव्रीहि समास में सह शब्द को विकल्प से सकार हो जाता है ॥४३७ ॥

सहशब्दस्य सो वा भवति बहुव्रीहौ समासे। एवं सधर्मः। जनकेन सह वर्तते इति सजनकः। जनन्या सह वर्तते इति सजननिः। एवं सवधुः। गोरप्रधानस्येत्यादिना ह्रस्वः। अव्ययानां पूर्वनिपातः।

युधि क्रियाव्यतिहारे इच् ॥४३८॥

ग्रहणप्रहरणबाधके युद्धे क्रियाव्यतिहारे बहुव्रीहिसमासात् इच् भवति।

इचि पूर्वपदस्याकारः ॥४३९॥

इचि परे पूर्वपदस्याकारो भवति। दण्डैश्च दण्डैश्च प्रवृत्तं युद्धं दण्डादण्डि। एवं गदागदि। खड्गाखड्गि। केशाकेशि। मुष्टामुष्टि। कचाकचि। दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा विदिक्।

विदिक् तथा ॥४४०॥

तथा विदिगभिधेये बहुव्रीहिर्ज्ञेयः। सर्वनाम्नो वृत्तिमात्रे पूर्वपदस्य पुंवद्भावः। दक्षिणपूर्वा। पश्चिमोत्तरा। दक्षिणपश्चिमा। उत्तरपूर्वा। इत्यादि।

शुकश्च मयूरश्च। धवश्च खदिरश्च पलाशश्च। इति स्थिते—

पुत्र + टा, सह + सि है। विभक्ति का लोप होकर 'अव्ययानां पूर्वनिपातः' से सह का पूर्व में निपात होकर 'सहपुत्रः' बना अथवा सह को 'स' होकर 'सपुत्रः' बना। ऐसे ही जनकेन सह वर्तते—'सजनकः', धर्मेण सह वर्तते—'सधर्मः'। जनन्या सह वर्तते 'सजननी' बना "गोरप्रधानस्य" इत्यादि ४२६वें सूत्र से ह्रस्व होकर 'सजननिः', वध्वा सह वर्तते 'सवधुः' बना।

युद्ध क्रिया के व्यतिहार में इच् प्रत्यय होता है ॥४३८॥

ग्रहण प्रहरण से बाधा युक्त युद्ध क्रिया में क्रिया व्यतिहार में बहुव्रीहि समास से 'इच्' प्रत्यय होता है। क्रिया व्यतिहार किसे कहते हैं ?

परस्पर में प्रहार आदि की क्रिया को क्रिया व्यतिहार कहते हैं। जैसे—

दण्डैश्च दण्डैश्च प्रवृत्तं युद्धं—दण्ड + भिस् दण्ड + भिस् है विभक्तियों का लोप होकर 'दण्ड-दण्ड' रहा। इच् प्रत्यय होकर १३६वें सूत्र से 'इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च' सूत्र से अवर्ण का लोप होकर 'दण्डदण्डि' रहा पुनः—

इच् प्रत्यय के परे पूर्वपद को आकार हो जाता है ॥४३९॥

इस सूत्र से 'दण्डादण्डि' बना, लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर वारिवत् रूप चलने से 'दण्डादण्डि' बन गया। ऐसे ही गदाभिश्च गदाभिश्च प्रवृत्तं युद्धं—गदागदि।

खड्गैश्च खड्गैश्च प्रवृत्तं युद्धं-खड्गाखड्गि। इसी प्रकार से केशाकेशि[1], मुष्टामुष्टि, कचाकचि बन गये।

दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं सा विदिक् ऐसा विग्रह हुआ दक्षिणा + ङस् पूर्वा + ङस् विभक्ति का लोप होकर 'दक्षिणापूर्वा' रहा—

विदिशा के वाच्य में बहुव्रीहि समास होता है ॥४४०॥

सर्वनाम के समास में पूर्वपद को पुंवद्भाव हो जाता है। अतः 'दक्षिणपूर्वा' बना पुनः लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर रमावत् रूप चलेंगे। अतः "दक्षिणपूर्वा" बन गया। पश्चिमस्याश्च उत्तरस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं—सा पश्चिमोत्तरा। दक्षिणस्याश्च पश्चिमस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं—दक्षिणपश्चिमा। उत्तरस्याश्च पूर्वस्याश्च दिशोर्यदन्तरालं—उत्तरपूर्वा। इत्यादि।

---

१. केशेषु केशेषु गृहीत्वा इदं युद्धं प्रवृत्तं ऐसा विग्रह है।

द्वन्द्वः समुच्चयो नाम्नोर्बहूनां वाऽपि यो भवेत् ॥४४१ ॥

द्वयोर्नाम्नोर्बहूनां वापि समुच्चयो द्वन्द्वो भवेत्। स च इतरेतरयोगः समाहारश्चेति द्विप्रकारः।

यत्र द्वित्वं बहुत्वं च स द्वन्द्व इतरेतरः।

समाहारो भवेदन्यो यत्रैकत्वनपुंसके ॥

द्वित्वे द्विवचनं। बहुत्वे बहुवचनं। शुकमयूरौ ॥ धवखदिरपलाशाः।

अल्पस्वरतरं तत्र पूर्वम् ॥४४२ ॥

तत्र द्वन्द्वे समासे अल्पस्वरतरं पदं पूर्वं निपात्यते। प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च प्लक्षन्यग्रोधौ। एवं रथपदाती। तरग्रहणं द्विपदनियमार्थम्। अन्यत्र शंखदुंदुभिवीणाः।

यच्चार्चितं द्वयोः ॥४४३ ॥

तत्र द्वन्द्वे समासे द्वयोर्यदर्चितं तत्पूर्वं निपात्यते। वासुदेवार्जुनौ। शुककाकौ। हंसबलाके। देवदैत्यौ। क्वचिद् व्यभिचरति च। तथा हि—

न नरनारायणादिषु ॥४४४ ॥

अथ द्वन्द्व समास प्रकरण।

शुकश्च मयूरश्च। धवश्च खदिरश्च पलाशश्च। ऐसा विग्रह हुआ।

दो पदों का अथवा बहुत से पदों का समुच्चय होना द्वंद्व समास कहलाता है ॥४४१ ॥

उस द्वंद्व समास के दो भेद हैं। इतरेतर[1] योग द्वंद्व और [2]समाहार द्वन्द्व।

श्लोकार्थ—जहाँ पर दो पदों का और बहुत से पदों का समास होता है वह इतरेतर द्वन्द्व है और दूसरा समाहार द्वन्द्व है। इस समाहार द्वन्द्व में नपुंसक लिंग का एकवचन ही होता है ॥ अर्थात् इतरेतर द्वन्द्व में यदि दो पद हैं तो द्विवचन, यदि बहुत से पद हैं तो बहुवचन होता है, किन्तु समाहार द्वन्द्व में नपुंसक लिंग का एकवचन ही होता है ॥१ ॥

शुक + सि मयूर + सि विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा दो पद में द्विवचन में, "शुकमयूरौ" बना तथैव धवखदिरपलाश को बहुवचन में 'धवखदिरपलाशाः' बना।

इस द्वन्द्व समास में अल्पस्वरतर वाले पद का पूर्व में निपात होता है ॥४४२ ॥

जैसे—प्लक्षश्च न्यग्रोधश्च—प्लक्षन्यग्रोधौ बना। एवं रथश्च पदातिश्च-रथपदाती। सूत्र में तर शब्द क्यों लिया है ? तर शब्द का ग्रहण के लिये किया गया है। जहाँ बहुत से पद हों वहाँ यह नियम नहीं लगेगा। जैसे शंखश्च दुन्दुभिश्च वीणा च यहाँ तीन पदों में शंख और वीणा दो पद अल्पस्वर वाले हैं यहाँ वह नियम नहीं समझना। अतः—'शंखदुन्दुभिवीणाः' बन गया।

दोनों में जो अर्चित है उसे पूर्व में रखना ॥४४३ ॥

इस द्वन्द्व समास में दोनों में जो अर्चित-पूज्य है उसका पूर्व में निपात होता है। जैसे—वासुदेवश्च अर्जुनश्च इसमें अर्जुन में अल्पस्वर है अतः उसका पूर्व में निपात आवश्यक था, किंतु उसे बाधित कर इस सूत्र से अर्चित 'वासुदेव' को पूर्व में लेना है, अतः 'वासुदेवार्जुनौ, शुककाकौ, हंसबकौ, देवदैत्यौ।'

कहीं पर व्यभिचार—नियम का उल्लंघन भी देखा जाता है। जैसे—

नर और नारायण आदिकों में यह नियम नहीं है ॥४४४ ॥

---

१. जहाँ द्विवचनान्त और बहुवचनान्त प्रयोग में पाये जाये उसे इतरेतर योग जानो।

२. जहाँ पर एक वचनान्त होते हुए नपुंसक लिंग हो उसको समाहार द्वंद्व समझो।

नरनारायणादिषु यदर्चितं पदं तत्पूर्वं न निपात्यते। नरश्च नारायणश्च नरनारायणौ। उमामहेश्वरौ। काकमयूरौ। इत्यादि।

मातुः पितर्यरश्च ॥४४५॥

तत्र द्वन्द्वे समासे पितरि उत्तरपदे मातृशब्दस्य ऋत अरादेशो भवति चकारादा च। माता च पिता च मातरपितरौ। मातापितरौ।

पुत्रे ॥४४६॥

पुत्रशब्दे उत्तरपदे द्वन्द्वविषये विद्यायोनिसम्बन्धिन ऋदन्तस्य आत्वं भवति। माता च पुत्रश्च मातापुत्रौ। एवं होतापुत्रौ। इति द्वन्द्वसमासः॥

कुम्भस्य समीपं। अन्तरायस्य अभावः।

पूर्वं वाच्यं भवेद्यस्य सोऽव्ययीभाव इष्यते ॥४४७॥

यस्य समासस्य पूर्वमव्ययं पदं वाच्यं भवेत्सोऽव्ययीभाव इष्यते। अव्ययानां स्वपदविग्रहो नास्तीत्यन्यपदेन विग्रह इति वचनाद् समीपस्य उपादेशः। अभावस्य निरादेशः। समासे कृते अव्ययानां पूर्वनिपातः।

स नपुंसकलिङ्गः स्यात् ॥४४८॥

सोऽव्ययीभावसमासो नपुंसकलिङ्गः स्यात्। अव्ययत्वादलिङ्गे प्राप्ते वचनमिदं।

नर नारायण में जो अर्चित हो उसे पूर्व में रखने का नियम नहीं है। नरश्च नारायणश्च-नरनारायणौ, उमा च महेश्वरश्च-उमामहेश्वरौ, काकश्च मयूरश्च-काकमयूरौ इत्यादि।

द्वंद्व समास में पितृ शब्द के आगे आने पर मातृ शब्द के ऋ को अर् आदेश हो जाता है ॥४४५॥

सूत्र में चकार से 'आ' आदेश भी हो जाता है। अतः माता च पिता च—मातरपितरौ अथवा मातापितरौ बना।

पुत्र शब्द के आने पर भी ऋ को आ हो जाता है ॥४४६॥

पुत्र शब्द के उत्तरपद में रहने पर द्वंद्व समास में विद्या अथवा योनि का संबंध होने से ऋकार को 'आ' हो जाता है। माता च पुत्रश्च—माता पुत्रौ, होता च पुत्रश्च—होतापुत्रौ बन गया।

इस प्रकार से द्वंद्व समास हुआ।

अब अव्ययीभाव समास को कहते हैं।

कुम्भस्य समीपं, अन्तरायस्य अभावः, ऐसा विग्रह है।

जिस समास में पूर्व में अव्ययवाचक पद हो वह अव्ययी भाव समास है ॥४४७॥

अव्ययों का स्वपद से विग्रह नहीं होता इसलिये अन्य पद से विग्रह किया है इस नियम से यहाँ पर 'समीप' को 'उप' अव्यय आदेश होगा और अभाव को 'निर्' अव्यय आदेश होगा।

और समास के करने पर अव्ययों का पूर्व में निपात हो जाता है।

अतः कुम्भ + ङस् उप + सि विभक्ति का लोप होकर 'उपकुम्भ' रहा। लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आने से 'उपकुम्भ + सि' है।

यह अव्ययीभाव समास नपुंसक लिंग ही होगा ॥४४८॥

इस समास में अव्यय की प्रधानता होने से अलिंग में प्राप्त था अतः नपुंसक लिंग ही रहा है।

अव्ययीभावादकारान्ताद्विभक्तीनामपञ्चम्याः ॥४४९ ॥

अकारान्तादव्ययीभावाद्विभक्तीनां स्थाने अपञ्चम्या अम् भवति। उपकुम्भं। निरन्तरायं। एवमुपगृहं। उपगेहं। उपगजं। उपराजं। उपच्छत्रं। उपवनं। उपनगं। उपदेवं। उपभार्यं। उपशालं। वादस्याभावो निर्वादं। मक्षिकाणामभावो निर्मक्षिकं। शीतस्यातिक्रमः अतिशीतं। एवमतिक्रमं। दिनं दिनं प्रति प्रतिदिनं। एवं प्रतिगृहं। प्रतिवृक्षं। प्रतिपुरुषं। प्रतिवनितं। प्रतिमासं। प्रतिवर्षं। प्रतिग्रामं। प्रतितटं। पुरुषस्य अनुगमः अनुपुरुषं। एवमनुतटं। ग्रामस्यान्तः अन्तर्ग्रामं। अन्तर्गृहं। ग्रामस्य मध्ये मध्येग्रामं। एवं मध्येवनं। मध्येदिनं। मध्येकूपं। ग्रामस्य बहिर्बहिग्रामं। उपरिपर्वतं। एवं बहिर्वणं। अन्तर्वणं।

वा तृतीयासप्तम्योः ॥४५० ॥

अकारान्तादव्ययीभावात्परयोस्तृतीयसप्तम्योः स्थाने अन् वा भवति। उपकुम्भं, उपकुम्भेन। उपकुम्भं, उपकुम्भाभ्यामित्यादि। निरन्तरायं, निरन्तरायेण। उपकुम्भं, उपकुम्भे। उपकुम्भयोः। इत्यादि। निरन्तरायं, निरन्तराये। अपञ्चम्या इति किं ? उपकुम्भात्। निरन्तरायात्। इत्यादि। स्त्रीष्वधिकृत्य अधिकृत्यस्याधिरादेशः। शक्तिमनतिक्रम्य अनतिक्रम्यस्य यथादेशः। इत्यादिषु समासे कृते।

अन्यस्माल्लुक् ॥४५१ ॥

अकारान्त अव्ययीभाव से पंचमी को छोड़कर सभी विभक्तियों को 'अम्' हो जाता है ॥४४९ ॥

अतः 'उपकुम्भं' बना। ऐसे ही अन्तरायस्य अभावः—निरन्तरायं, गृहस्य समीपं-उपगृहं, गजस्य समीपं-उपगजं। भार्यायाः समीपं-उपभार्यः 'स्वरो ह्रस्वो नपुंसके' सूत्र से ह्रस्व हो गया। ऐसे ही वादस्य अभावो निर्वादं, मक्षिकाणाम् अभावो निर्मक्षिकं बना।

शीतस्य अतिक्रमः—अतिशीतं, क्रमस्य अतिक्रमः—अतिक्रमं, दिनंदिनं प्रति—प्रतिदिनं, गृहं गृहं प्रति—प्रतिगृहं आदि। ऐसे ही पुरुषस्य अनुगमः—अनुपुरुषं, अनुतटं आदि। ग्रामस्यांतः—अंतर्ग्रामं, ग्रामस्य मध्ये—मध्येग्रामं, ग्रामस्य बहिः बहिर्ग्रामं, पर्वतस्योपरि उपरिपर्वतं, वनस्य बहिः—बहिर्वणं अंतर्वणं आदि।

अकारांत अव्ययीभाव से परे तृतीया और सप्तमी के स्थान में विकल्प से अम् होता है ॥४५० ॥

उपकुंभं, उपकुम्भेन	उपकुंभभ्याम्	उपकुम्भैः
उपकुंभं, उपकुम्भै	उपकुम्भयोः	उपकुम्भेषु।
ऐसे ही, निरन्तरायं निरन्तरायेण	निरन्तरायाभ्यां	निरन्तरायैः

इत्यादि। अपञ्चम्याः ऐसा क्यों कहा ? तो पंचमी में उपकुम्भात्, निरन्तरायात् बनता है। इत्यादि।

स्त्रीषु अधिकृत्य, शक्तिमनतिक्रम्य, ऐसा विग्रह है। यहाँ अधिकृत्य को 'अधि' एवं अनतिक्रम्य को 'यथा' आदेश हुआ है।

स्त्री + सु अधि + सि विभक्ति का लोप होकर अव्यय को पूर्व में करके अधिस्त्री, यथाशक्ति बना। गोरप्रधानस्य सूत्र से अधिस्त्री, को ह्रस्व करके लिंग संज्ञा होकर विभक्तियाँ आईं।

अकारांत से भिन्न अन्य अव्ययीभाव से परे विभक्तियों का लुक् हो जाता है ॥४५१ ॥

अकारान्तादन्यस्माद्व्ययीभावात्परासां विभक्तीना लुग् भवति। अधिस्त्रि। यथाशक्ति। एवमधिगायत्रि। अधिसरस्वति। अधिभारति। अधिनदि। आत्मनः अधि अध्यात्मं। गुरोरनतिक्रमेण यथागुरु। वध्वा अनतिक्रमेण यथावधु। चम्वा अनतिक्रमेण यथाचमु। गिरेरनतिक्रमेण यथागिरि। वध्वा अनुगमः अनुवधु। अनुकण्डु। अनुनदि। अनुस्त्रि। अनुपटु। अनुवायु। अनुगुरु। अनुपितृ अनमातृ अनुकर्तृ। कर्तुः रुमीपमुपकर्तृ। एवमुपगिरि। उपरवि। उपयति। उपगुरु उपतरु। उपवधु। उपचमु उपनदि। उपस्त्रि। उपगु। उपनु। कर्तुरतिक्रमः अतिकर्तृ। एवमतिरि। अतिगु। अतिनु।

समं भूमिपदात्योः ॥४५२॥

भूमिपदात्योः परयोः समत्वं इत्येतस्य सममित्यादेशो भवति। भूमेः समत्वं समंभूमि। पदातीनां समत्वं समंपदाति।

सुविनिर्दुर्भ्यः स्वपिसूतिसमानाम् ॥४५३॥

सुविनिर्दुर्भ्यः परस्य स्वपिसूतिसमानां सकारस्य षकारो भवति। सुषमं। विषमं। निष्षमं। दुष्षमं। अपरसमं इत्यादि।

द्वन्द्वैकत्वम् ॥४५४॥

समाहारद्वन्द्वस्यैकत्वं नपुंसकलिङ्गं च स्यात्। अर्कश्च अश्वमेधश्च अर्काश्वमेधौ। तयोः समाहारः अर्काश्वमेधं। एवं तक्षायस्कारं। हसमयूरं। मथुरापाटलिपुत्रं। पाणिपादं। बदरामलकं। सुखदुःखं। शुकश्च हंसश्च मयूरश्च कोकिलश्च शुकहसमयूरकोकिलं। इत्यादि।

तथा द्विगोः ॥४५५॥

तथा समाहारद्विगोरप्येकत्वं नपुंसकलिङ्गं च स्यात्।

अतः अधिस्त्रि यथाशक्ति अधिगायत्रि, अधिसरस्वति आदि बन गये। ऐसे ही आत्मनः अधि—अध्यात्मं। आत्मन् शब्द को अकारांत होकर नपुंसकलिंग में एकवचन हो गया। गुरोः अनतिक्रमेण—यथा गुरु। वध्वा अनुगमः अनुवधु। कर्तुः समीपं—उपकर्तृ गोः समीपं—उपगु। ह्रस्व हो गया। इसी प्रकार से ऊपर में बहुत से शब्द बने हैं देख लेना चाहिये।

भूमेः समत्वं, पदातीनां समत्वं है।

भूमि पदाति से परे समत्वं को समं आदेश हो जाता है ॥४५२॥

समंभूमि, समं पदाति।

सु, वि, निर्, दुर् से परे स्वपि, सूति और समान के सकार को षकार हो जाता है ॥४५३॥

स्वपि में—सुषुप्तः, विषुप्तः, निष्षुप्तः दुष्षुप्तः। सूति में—सुषूतिः, विषूतिः, निःषूतिः दुःषूतिः।

समान में—सुषमं, विषमं, निष्षमं, दुष्षमं। इन्हीं चारो से परे क्यो कहा ? तो अपरसमं मे सकार को षकार नहीं हुआ है। इत्यादि।

अर्कश्च अश्वमेधश्च—अर्काश्वमेधौ तयोः समाहारः—

समाहार द्वन्द्व में एकत्व एवं नपुंसकलिंग हो जाता है ॥४५४॥

अतः अर्काश्वमेधं बना। ऐसे ही क्षश्च अयस्कारश्च तक्षायस्कारौ तयोः समाहारः 'तक्षायस्कारं' हंसश्च मयूरश्च हंसमयूरौ तयोः समाहारः हसमयूरं, पाणी च पादौ च पाणि पादौ तयो समाहारः पाणिपादं इत्यादि।

उसी प्रकार से समाहार द्विगु में भी नपुंसकलिंग एकवचन हो जाता है ॥४५५॥

यथा— पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगो, चतुर्णां पथां समाहारः चतुष्पथि है।

समासान्तर्गतानां वा राजादीनामदन्तता ॥४५६ ॥

समासान्तर्गतानां राजादीनामदन्तता अत्प्रत्ययो भवति। वा समुच्चये। पञ्चानां गवां समाहारः पञ्चगवं। चतुर्णां पथां समाहारः चतुष्पथं।

न सूत्रे क्वचित् ॥४५७ ॥

क्वचित्सूत्रे द्वन्द्वैकत्वं भवति, नपुंसकलिङ्गत्वं न स्यात्। विरामव्यञ्जनादौ। एवं पचिवचिसिचिरुचिमुचेश्चात्। इत्यादि।

पुंवद्भाषितपुंस्कानूङ्पूरण्यादिषु स्त्रियां तुल्याधिकरणे ॥४५८ ॥

स्त्रियां वर्तमानं भाषितपुंस्कं अनूङन्तं पूर्वपदभूतं पुंवद्भवति स्त्रिया वर्तमाने तुल्याधिकरणे पूरण्यादिगणवर्जिते उत्तरपदे परे। शोभना भार्या यस्यासौ शोभनभार्यः। एवं दीर्घजङ्घभार्यः। इत्यादि। भाषितपुंस्कमिति किं ? द्रोणीभार्यः। अनूङ् इति किम् ? ब्रह्मवधूभार्यः। अपूरण्यादिष्विति किं ? कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमा रात्रयः। के पूरण्यादयः ? पूरणी पञ्चमी कल्याणी मनोज्ञा सुभगा दुर्भगा स्वकान्ता कुब्जा वामना।

संज्ञापूरणीकोपधास्तु न ॥४५९ ॥

स्त्रियां वर्तमाना भाषितपुंस्कानूङन्ताः संज्ञापूरणीप्रत्ययान्ताः कोपधाः पूर्वपदभूताः पुंवद्रूपा न भवन्ति

समास के अन्तर्गत राजादि शब्द अकारांत हो जाते हैं ॥४५६ ॥

यहाँ सूत्र में 'वा' शब्द समुच्चय के लिये है अतः पञ्चगो से 'अ' प्रत्यय होकर अव् होकर लिंग संज्ञा एवं विभक्ति आकर 'पंचगवं' बना। ऐसे ही चतुष्पथि में "इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च" सूत्र से इकार का लोप, लिंग संज्ञा होकर 'चतुष्पथं' बना।

किसी सूत्र में द्वंद्व में एकत्व होता है, किन्तु नपुंसकलिंग नहीं होता है ॥४५७ ॥

विराम और व्यंजन का समास करके ङि विभक्ति एकवचनान्त है। किन्तु नपुंसकलिङ्ग नही है यदि नपुंसकलिङ्ग होता तो वारि शब्दवत् न का आगम होकर आदिनि हो जाता न कि आदौ।

तुल्याधिकरण में पूरणी आदि गण को छोड़कर स्त्रीलिंग में वर्तमान अकारांत रहित भाषितपुंस्क को पुंवद् हो जाता है ॥४५८ ॥

जैसे—शोभना भार्या यस्य सः शोभनभार्या बना। पुनः ४३२वें सूत्र से अन्त को अकारांत होकर शोभनभार्यः बना। ऐसे ही दीर्घजंघभार्यः इत्यादि। भाषितपुंस्क हो ऐसा क्यों कहा ? भाषितपुस्क नहीं हो तो ह्रस्व नहीं होगा जैसे—द्रोणीभार्यः यहाँ द्रोणी शब्द भाषितपुंस्क नही है नित्य ही स्त्रीलिंग है।

अनूङ् ऐसा क्यों कहा ? तो ब्रह्मवधूभार्यः यहाँ वधू शब्द ऊकारांत है उसे ह्रस्व नही हुआ। पूरणी आदि गण को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? पूरणी आदि गण के शब्दो को भी ह्रस्व नही होगा। जैसे—कल्याणी पञ्चमी यासां रात्रीणां ताः कल्याणीपञ्चमाः। रात्रयः। पूरणी आदि गण में कौन-कौन हैं ? पूरणी, पञ्चमी, कल्याणी, मनोज्ञा, सुभगा, दुर्भगा, स्वकान्ता, कुब्जा, वामना। ये शब्द पूरणी आदि गण में माने गये हैं।

संज्ञा पूरणी प्रत्ययात 'क' की उपधा वाले पूर्वपदभूत पुवद् रूप नहीं होते हैं ॥४५९ ॥

स्त्रीलिंग में वर्तमान तुल्याधिकरण पद मे पूरणी आदि गण वर्जित उत्तर पद के होने पर स्त्रीलिंग में वर्तमान भाषित पुंस्क से अकारात रहित, सज्ञा पूरणी प्रत्ययात वाले एवं 'क' की उपधा वाले शब्दों को पूर्वपद में ह्रस्व नहीं होता है। जैसे दत्ता भार्या यस्यासौ दत्ताभार्यः पञ्चमी भार्या यस्यासौ पंचमीभार्यः,

स्त्रियां वर्तमाने तुल्याधिकरणे पदे पूरण्यादिगणवर्जित उत्तरपदे परे। दत्ता भार्या यस्यासौ दत्ताभार्यः। पञ्चमीभार्यः। पाचिकाभार्यः। गोरप्रधानस्येत्यादिना ह्रस्वः। इत्यादि।

कर्मधारयसंज्ञे तु पुंवद्भावो विधीयते ॥४६० ॥

स्त्रियां वर्तमाना भाषितपुंस्का अनूङन्ताः संज्ञापूरणीप्रत्ययान्ताः कोपधा अपि कर्मधारयसमासे तु पुंवद्भवन्ति स्त्रियां वर्तमाने तुल्याधिकरणे पूरण्यादिगणवर्जित उत्तरपदे परे। शोभना चासौ भार्या च शोभनभार्या। एवं दत्तभार्या। पाचकभार्या। पञ्चमभार्या इत्यादि। भाषितपुंस्कमिति किं ? खट्वावृन्दारिका। अनूङिति किं ? ब्रह्मवधूदारिका।

आकारो महतः कार्यस्तुल्याधिकरणे पदे ॥४६१ ॥

महत आकारः कार्यस्तुल्याधिकरणे पदे परे। महांश्चासौ वीरश्च महावीरः। अन्तरङ्गत्वात् व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभोरिति न्यायादनुषङ्गलोपः। प्रथमतोऽनुषङ्गस्य लोपे कृते सति पश्चात् येन विधिस्तदन्तस्येति न्यायात् तकारस्याकारः। सर्वत्र सवर्णे दीर्घः। एवं महापुरुषः। महापर्वतः। महादेशः।

नस्य तत्पुरुषे लोपः ॥४६२ ॥

पाचिकाभार्या यस्यासौ पाचिकाभार्यः। इनमें "गोरप्रधानस्य" इत्यादि सूत्र से अन्त को ह्रस्व हुआ है। इस प्रकार से इनमें बहुव्रीहिसमास में पूर्व को ह्रस्व नहीं हुआ अन्त को ह्रस्व हुआ है। किन्तु आगे कर्मधारय समास में पूर्व को ह्रस्व होगा तथा अन्त को ह्रस्व नहीं होगा। सो ही दिखाते हैं।

कर्मधारय समास में पुंवद् भाव हो जाता है ॥४६० ॥

स्त्रीलिंग में वर्तमान तुल्याधिकरण में पूरणी आदि गण वर्जित उत्तर पद में होने पर स्त्रीलिंग में वर्तमान भाषितपुंस्क, ऊकारांत रहित संज्ञा पूरणी प्रत्ययांत वाले 'क' की उपधा सहित भी कर्मधारय समास में पुंवद् हो जाते हैं। शोभना चासौ भार्या च—शोभन-भार्या। दत्ता चासौ भार्या च—दत्तभार्या, पाचिका चासौ भार्या च—पाचकभार्या, पंचमी चासौ भार्या च—पंचमभार्या। पाचिका और पंचमी में पुंवद् भाव होने से स्त्री प्रत्यय के निमित्त से हुआ इकार और दीर्घ 'ई' प्रत्यय का लोप हो गया है। इत्यादि। भाषित पुंस्क ऐसा क्यों कहा ? जैसे—खट्वा चासौ वृन्दारिका च खट्वा वृन्दारिका, इसमें 'खट्वा' भाषित पुंस्क नहीं है सतत स्त्रीलिंग ही है। ऊकारांत न हो ऐसा क्यों कहा ? ब्रह्म-वधू चासौ दारिका च—ब्रह्मवधू दारिका, इसमें ऊकारांत होने से ह्रस्व नहीं हुआ।

महांश्चासौ देवश्च, ऐसा विग्रह हुआ, महन्त + सि, देव + सि विभक्ति का लोप होकर—

तुल्याधिकरण पद के आने पर महत् के अंत को आकार होता है ॥४६१ ॥

यहाँ अन्तरंग विधि होने से "व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभोः" ४३०वें सूत्र से अनुषंग का लोप हुआ। पहले अनुषंग का लोप करने पर पश्चात् जिससे विधि होती है वह उसके अंत की होती है इस न्याय से तकार को आकार हुआ है। अतः मह आ देव सर्वत्र सवर्ण को दीर्घ हो जाता है। 'महादेव' रहा। लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'महादेवः' बना, इसी प्रकार से महांश्चासौ पुरुषश्च महापुरुषः, महांश्चासौ पर्वतश्च-महापर्वतः, महादेशः इत्यादि।

तत्पुरुष के अंतर्गत नञ् समास का कथन है

न सवर्णः, न ब्राह्मणः है

नञ् संज्ञक तत्पुरुष समास में नकार का लोप हो जाता है ॥४६२ ॥

तत्पुरुषसमासे नस्य नकारमात्रस्य लोपो भवति। न सवर्णः असवर्णः। न ब्राह्मणः अब्राह्मणः। एतल्लक्षणं तत्पुरुस्यैव, अन्येषां समासानां कथमिदं लक्षणं ? न विद्यते घोषो ध्वनिर्येषां ते अघोषाः ? तथा तत्पुरुष इहोपलक्षणं। उपलक्षणं किम् ? स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकमुपलक्षणं। यथा दधि काकेभ्यो रक्षति।

स्वरेऽक्षरविपर्ययः ॥४६३॥

तत्पुरुषे समासे नस्य अक्षरविपर्ययो भवति स्वरे परे। न अजः अनजः। एवमनर्घ्यः। अनर्थः। अनकारः। अनिन्द्रः। अनुदकमित्यादि।

कोः कत् ॥४६४॥

कुशब्दस्य कद्भवति तत्पुरुषे स्वरे परे। स्वपदविग्रहो नास्तीत्यन्यपदविग्रहः। कुत्सितश्चासौ अश्वश्च कदश्वः। कदन्नं। कदुष्ट्रः। तत्पुरुष इति किम् ? कुत्सिता उष्ट्रा यस्मिन्देशे स कूष्ट्रो देशः।

का क्वीषदर्थेऽक्षे ॥४६५॥

ईषदर्थे वर्तमानस्य कुशब्दस्य कादेशो भवति तत्पुरुषे समासे अक्षशब्दे च परे। कु ईषल्लवणं कालवणं। काम्लं। कामधुरं। काज्यं। काक्षीरं। कादधि। कु ईषत् तन्त्रं कातन्त्रम्। काक्षेण वीक्षते।

कवश्चोष्णे ॥४६६॥

अतः 'न्' का लोप होकर अकार शेष रहा और असवर्णः, अब्राह्मणः बन गया।

यह लक्षण तत्पुरुष समास का ही है। अन्य समासों का यह लक्षण कैसे है ? यहाँ इस समास को तत्पुरुष का लक्षण कहना यह उपलक्षण है। उपलक्षण क्यों है ? अपने और अपने सदृश के ग्रहण करने वाले को उपलक्षण कहते हैं। जैसे दही की कौवे से रक्षा करता है यहाँ पर अन्य मार्जार कुत्ता आदि उपलक्षण है उनका भी निषेध हुआ समझना चाहिये।

न विद्यते घोषो ध्वनिर्येषां ते अघोषाः बन गया।

न अजः, न अर्घ्यः है।

स्वर के आने पर नकार का अक्षर विपर्यय हो जाता है ॥४६३॥

तत्पुरुष समास में अगले स्वर में नकार चला जाता है और अकार शेष रह जाता है। जैसे अनजः, अनर्घ्यः अनर्थः, अनकारः न इन्द्रः अनिन्द्रः, न उदकम्—अनुदकम्। इत्यादि।

कुत्सितश्चासौ अश्वश्च ऐसा विग्रह हुआ है।

तत्पुरुष समास में स्वर को आने पर 'कु' को 'कत्' हो जाता है ॥४६४॥

इसमें भी स्वपद से विग्रह नहीं होता है अतः अन्य पद से विग्रह किया है। कत् + अश्वः = संधि होकर कदश्वः बना। ऐसे ही कुत्सितं च तदन्नं—कदन्नं, कुत्सितश्चासौ उष्ट्रश्च—कदुष्ट्रः। तत्पुरुष में ही कु को कत् होता है ऐसा क्यों ? तब तो कुत्सिता उष्ट्राः यस्मिन् देशे स कूष्ट्रो देशः। यहाँ बहुव्रीहि समास होने से 'कु' ही रहा 'कत्' नहीं हुआ।

ईषत् अर्थ में और अक्ष शब्द के आने पर 'कु' को 'का' आदेश हो जाता है ॥४६५॥

तत्पुरुष समास में किंचित् अर्थ में वर्तमान कु शब्द को 'का' आदेश हो जाता है और अक्ष शब्द परे होने पर भी हो जाता है। कु ईषत् लवणं-कालवणं, कु ईषत् आम्लं काम्लं कु मधुरं कामधुरं, काक्षीरं, कादधि, कु ईषत् तंत्रं (सूत्रं) कातन्त्रं, काक्षं।

उष्ण शब्द से परे 'कु' को 'कव' हो जाता है ॥४६६॥

ईषदर्थे वर्तमानस्य कुशब्दस्य कवादेशो भवति तत्पुरुषे चोष्णशब्दे परे। चकारोऽत्र विकल्पार्थः। कु ईषच्च तत् उष्णं च कवोष्णं। पक्षे कोष्णं। कदुष्णं।

पथि च ॥४६७॥

तत्पुरुषसमासे कुशब्दस्य कादेशो भवति पथिन्शब्दे च परे। कुत्सितश्चासौ पन्थाश्च कापथः। समासान्तर्गतेत्यादिना अत्प्रत्ययः। नस्तु क्वचिन्नलोपः। इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च। इति इकारलोपः।

पुरुषे तु विभाषया ॥४६८॥

कुशब्दस्य कादेशो भवति वा तत्पुरुषे पुरुषशब्दे परे। कुत्सितश्चासौ पुरुषश्च कापुरुषः। कुपुरुषः।

याकारौ स्त्रीकृतौ ह्रस्वौ क्वचित् ॥४६९॥

ईकारश्च आकारश्च याकारौ। याकारौ स्त्रीकृतौ ह्रस्वौ भवतः समासे क्वचिल्लक्ष्यानुरोधात्। रेवत्या मित्रं रेवतिमित्रं। एवं रोहिणिमित्रं। इष्टकाना चितं इष्टकचितं। इषीकाणां तूलं इषीकतूलं। इत्यादि।

ह्रस्वस्य दीर्घता ॥४७०॥

ह्रस्वस्य दीर्घता भवति समासे क्वचिल्लक्ष्यानुरोधात्। दात्राकारौ कर्णौ यस्यासौ दात्राकर्णः। द्विगुणाकर्णः।

ईषत् अर्थ में वर्तमान कु शब्द को 'का' आदेश हो जाता है तत्पुरुष समास में उष्ण शब्द के आने पर। यहाँ सूत्र में चकार शब्द विकल्प के लिये हैं। कु ईषच्च तदुष्णं च कव + उष्णं = कवोष्णं। द्वितीय पक्ष में—कु को 'का' होकर 'कोष्णं' बना।

पथि शब्द के आने पर भी 'का' आदेश हो जाता है ॥४६७॥

तत्पुरुष समास मे 'कु' शब्द को 'का' आदेश हो जाता है। कुत्सितश्चासौ पन्थाश्च—कापथः 'समासांतर्गतानां वा' इत्यादि सूत्र से पथिको अप्रत्यय हो गया एवं 'नस्तुक्वचित्' सूत्र से नकार का लोप 'इवर्णावर्णयोर्लोपः' इत्यादि सूत्र से इकार का लोप, लिंगसंज्ञा, सि विभक्ति आकर 'कापथः' बना।

पुरुष शब्द के परे 'का' आदेश विकल्प से होता है ॥४६८॥

कुत्सितश्चासौ पुरुषश्च कापुरुषः, कुपुरुषः बना।

स्त्रीलिंग के ईकार और आकार क्वचित् ह्रस्व हो जाते हैं ॥४६९॥

सूत्र से 'याकारौ' शब्द है वह ईकाराश्च आकारश्च ई को य् होकर याकारौ बना है। समास में कहीं पर लक्ष्य के अनुरोध से ईकार, आकार ह्रस्व हो जाते हैं। जैसे—रेवत्याः मित्रं, रेवती + ङस् मित्र सि विभक्ति का लोप होकर ह्रस्व होकर रेवतिमित्र लिग सज्ञा होकर विभक्ति आकर 'रेवतिमित्र' बना। वैसे ही रोहिण्याः मित्रं—रोहिणिमित्रं। इष्टकानां चितं इष्टकचितं, इषीकाणां तूलं इषीकतूलं। इत्यादि।

दात्राकारौ कर्णौ यस्य असौ—बहुव्रीहि समास में—

विभक्ति का लोप होकर 'दात्रकर्ण' रहा।

समास में कहीं पर ह्रस्व को दीर्घता हो जाती है ॥४७०॥

लक्ष्य के अनुरोध से कहीं पर ह्रस्व को दीर्घ हो जाता है अतः 'दात्राकर्ण' लिंग संज्ञा, विभक्ति आकर 'दात्राकर्णः' बना। ऐसे ही द्विगुणाकारौ कर्णौ यस्यासौ—द्विगुणाकर्णः।

नहिवृतिवृषिरुचिसहितनिरुहिषु क्विबन्तेषु प्रादिकारकाणाम् । ।४७१ ॥

प्रादीनां कारकाणामेषु क्विबन्तेषु दीर्घता भवति नह्यादिषु धातुषु परत: । उपानत् । उपावृत् । प्रावृट् । कर्मावित् । नीरुक् । प्रतीषट् । परीतत् । वीरुत् । इत्यादि ।

अनव्ययविसृष्टस्तु सकारं कपवर्गयोः ।।४७२ ॥

अनव्ययविसृष्टस्तु सकारमापद्यते कपवर्गयो: परत: । अयस्कार: अयस्कल्प: । अयस्पाश: । अयस्काम्यति । अयस्काम इत्यादि । कारकल्पपाशकाम्यकेषु सकारो दृश्यते ।

बहुव्रीह्यव्ययीभावौ द्वन्द्वतत्पुरुषौ द्विगुः ।
कर्मधारय इत्येते समासाः षट् प्रकीर्तिताः ।।१ ।।
वर्धमानकुमारेणार्हता पूज्येन वज्रिणा ।
कौमारे ऋषभेणापि कुमाराणां हितैषिणां ।।१ ।।
मुष्टिव्याकरणं नाम्ना कातन्त्र वा कुमारकं ।
कालापकं प्रकाशात्मब्रह्मणामभिधायकं ।।२ ।।
प्रकाशितं शीघ्रबोधसंपदे श्रेयसां पदं ।
समासानां प्रकरणं भावसेन इहाभ्यधात् ।।३ ।।

इति समासा: ।

अथ तद्धितं किंचिदुच्यते

कपटोरपत्यं । भृगोरपत्यं । विदेहस्यापत्यं । उपगोरपत्यं । इति स्थिते—

नहि वृति आदि क्विबन्त वाले धातुओं के आने पर प्र आदि पूर्वपद के स्वर को दीर्घ होता है ।।४७१ ॥

उप आदि उपसर्ग से परे नहि, वृति, वृषि, व्यधि, रुचि, सहि, तनि, रुहि धातुओं से क्विप् प्रत्यय हुआ है पुन: क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप होकर रूप बन गया है उसमें पूर्व पद को दीर्घ करने के लिये यह सूत्र लगा है । जैसे—

उप नह् दीर्घ होकर 'उपानह्' बना लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'उपानत्' बना । वैसे ही सर्वत्र दीर्घ हुआ है । उपवृत्-उपावृत् प्रवृष-प्रावृट् । कर्माणि विध्यति इति कर्मव्यध् संप्रसारण होकर अर्थात् य् को इ होकर कर्मवित् दीर्घ होकर 'कर्मावित्' बना । निरुच्-नीरुक् प्रति सह्-प्रतीषट्-परीतन्-परीतत् विरुह्-वीरुत् बना ।

कवर्ग पवर्ग के आने पर अव्यय से रहित विसर्ग सकार हो जाता है ।।४७२ ॥

जैसे अय: कार-अयस्कार:, अय: कल्प-अयस्कल्प:, अयस्पाश: अयस्काम्यति अयस्काम: इत्यादि । कार, कल्प, पाश और काम्यक में सकार दिख रहा है ।

श्लोकार्थ—बहुब्रीहि, अव्ययीभाव, द्वंद्व, तत्पुरुष, द्विगु और कर्मधारय इस प्रकार से ये छह समास कहे गये है ।।१ ।।

इस प्रकार से समास का प्रकरण समाप्त हुआ ।

अब किंचित् तद्धित का वर्णन किया जाता है ।

कपटो: अपत्य-कपटु का लड़का, भृगो: अपत्यं विदेहस्य अपत्य उपगो. अपत्यं । ऐसा विग्रह हुआ है ।

वाणपत्ये ॥४७३ ॥

षष्ठ्यन्तान्नाम्नोऽण् प्रत्ययो भवति वा अपत्ये अभिधेये। तत्स्थाइत्यादिना विभक्तिलोपः।

वृद्धिरादौ सणे ॥४७४ ॥

स्वराणामादिस्वरस्य वृद्धिर्भवति सणकारानुबन्धे तद्धिते परे। का वृद्धिः ?

आरुत्तरे च वृद्धिः ॥४७५ ॥

अवर्ण ऋवर्ण इवर्ण उवर्णनामा आर उत्तरे—(ऐ औ) च द्वे सन्ध्यक्षरे वृद्धिसंज्ञा भवन्ति। प्रयोगात्—अवर्णस्य आकारो वृद्धिः। ऋवर्णस्य आर् वृद्धिः। इवर्णस्य एकारस्य च ऐकारो वृद्धिः। उवर्णस्य ओवर्णस्य च औकारो वृद्धिः।

उवर्णस्यौत्वमापाद्यं ॥४७६ ॥

उवर्णस्य ओत्वमापादनीयं तद्धिते स्वरे ये च परे।

कार्यावावावादेशावोकारौकारयोरपि ॥४७७ ॥

ओकारेऔकारयोरवावौ आदेशौ भवतस्तद्धिते स्वरे ये च परे। कापटवः। भार्गवः। वैदेहः। औपगवः। औपगवौ औपगवा इति। पुरुषशब्दवत्। एवं यास्कः यास्कौ। वेदः वेदौ। आङ्गिरसः। कौत्सः। वासिष्ठः। गौतमः। ब्राह्मणः। ऐदम इत्यादि। पञ्चालस्यापत्यं।

रूढादण् ॥४७८ ॥

षष्ठ्यंत नाम से पुत्र के अर्थ में 'अण्' प्रत्यय विकल्प से होता है ॥४७३ ॥

कपटु + ङस् "तत्स्था लोप्या विभक्तयः" ४२१वें सूत्र से विभक्ति का लोप होकर कपटु अण् रहा। 'ण्' का अनुबंध लोप हो गया। यहाँ अपत्य शब्द पुत्र वाचक है और तीनों लिंग में समान चलता है।

सकार णकार अनुबन्ध सहित तद्धित प्रत्यय के आने पर स्वरों में आदि के स्वर को वृद्धि हो जाती है ॥४७४ ॥

वृद्धि किसे कहते हैं ?

अवर्ण, ऋवर्ण, इवर्ण, उवर्ण को क्रम से 'आ' आर ऐ औ वृद्धि होती है ॥४७५ ॥

अर्थात् अवर्ण को आकार वृद्धि होती है, ऋवर्ण को आर इवर्ण और एकार को ऐकार, उवर्ण और ओ को औकार वृद्धि होती है। अतः कापटु अ रहा।

तद्धित के स्वर और य प्रत्यय के आने पर उवर्ण को 'ओ' हो जाता है ॥४७६ ॥

तद्धित के स्वर और यकार प्रत्यय के आने पर ओ को अव्, औ को आव् करना चाहिये ॥४७७ ॥

अतः 'कापटव' लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'कापटवः' बना। वैसे ही भृगोः अपत्यंभार्गवः, विदेहस्यापत्यं-वैदेहः, उपगोरपत्यं-औपगवः।

आगे ये रूप पुरुष शब्दवत् चलेंगे।

एवं यस्कस्य अपत्यं यास्कः, वेदस्य अपत्यं वैदः, अंगिरसः अपत्यं आंगिरसः कुत्सस्यापत्यं कौत्सः, वसिष्ठस्यापत्यं वासिष्ठः, गोतमस्यापत्यं—गौतमः, ब्रह्मणः अपत्यं ब्राह्मणः अस्यापत्यं ऐदमः।

अपत्य अर्थ में रूढ शब्द से परे अण् प्रत्यय होता है ॥४७८ ॥

देशसमाननामानः क्षत्रिया रूढाः । रूढशब्दात्परो अण् प्रत्ययो भवति अपत्येऽभिधेये ।

इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च ॥४७९ ॥

इवर्णावर्णयोर्लोपो भवति तद्धिते स्वरे ये च परे । पाञ्चालः । पञ्चालस्यापत्ये पाञ्चालौ । बहुत्वे—

रूढानां बहुत्वेऽस्त्रियामपत्यप्रत्ययस्य ॥४८० ॥

रूढानां बहुत्वे विहितस्योस्त्र्यभिधेयस्य अपत्यप्रत्ययस्य लुग्भवति । निमित्ताभावे नैमित्तिकाभाव इति वृद्धेरपि लोपो भवति । पाञ्चालाः । एवं विदेहाः । मगधाः । अङ्गाः । अस्त्रियामिति किं ? पाञ्चाल्यः । वैदेह्यः । मागध्यः । इत्यादि । भृगोरपत्यं ।

ऋषिभ्योऽण् ॥४८१ ॥

ऋषिवाचिभ्यः परोऽण् भवति अपत्येऽर्थे । भार्गवः । भार्गवौ । बहुत्वे—

भृग्वत्र्यङ्गि रस्कुत्सवसिष्ठगोतमेभ्यश्च ॥४८२ ॥

पञ्चालस्यापत्यम् । जनपद समान नाम वाले क्षत्रिय रूढ कहलाते हैं । पुत्र के वाच्य अर्थ में रूढ शब्द से अण् प्रत्यय होता है । अतः यहाँ ।

पञ्चाल + ङस् विभक्ति का लोप, पञ्चाल + अ, वृद्धि होकर पाञ्चाल अ,

तद्धित के स्वर और यकार प्रत्यय के आने पर इवर्ण और अवर्ण का लोप हो जाता है ॥४७९ ॥

तब पाञ्चाल् + अ = पाञ्चाल बना पुनः लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'पाञ्चालः' बना । द्विवचन में दो पुत्र के वाचक द्विवचन में—पञ्चालस्यापत्ये—पाञ्चालौ बना बहुवचन में अपत्य प्रत्यय करके पञ्चालस्यापत्यानि 'पाञ्चाल' बना ।

रूढ शब्दों के बहुवचन में किया गया अपत्य प्रत्यय यदि स्त्रीलिंग में नहीं है तो उस प्रत्यय का लुक् हो जाता है ॥४८० ॥

एवं अपत्य प्रत्यय का लोप होने पर उसके निमित्त से जो पूर्व स्वर को वृद्धि हुई थी उसका भी लोप हो गया क्योंकि 'निमित्त के अभाव में नैमित्तिक का भी अभाव हो जाता है' ऐसा नियम है । अतः 'पञ्चाल' रहा । लिंग संज्ञा और जस् विभक्ति आकर 'पञ्चालाः' बना अर्थ वही निकलेगा कि पञ्चाल राजा के बहुत से लड़के । ऐसे बहुवचन में विदेहस्यापत्यानि 'विदेहाः' मगधस्यापत्यानि, मगधाः अंगस्यापत्यानि अंगाः । सूत्र में स्त्रीलिंग को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? तो जैसे पञ्चाल-स्थापत्यं कन्या स्त्रीलिंग (लड़की वाचक) में पाञ्चाली द्विवचन में पाञ्चाल्यौ, बहुवचन में पाञ्चाल्यः बनेगा यहाँ कन्या वाचक प्रत्यय में बहुवचन के प्रत्यय का लोप नहीं होगा । विदेहस्यापत्यानि कन्याः स्त्रीलिंगे 'वैदेह्यः' मगधस्यापत्यानि कन्याः मागध्यः इत्यादि । अर्थात् स्त्रीलिंग वाचक अपत्यप्रत्यय यदि बहुवचन में आता है तो उसका लोप नहीं होता है ।

भृगोरपत्यं, है ।

अपत्य अर्थ में ऋषिवाची शब्द से परे अण् प्रत्यय होता है ॥४८१ ॥

भार्गवः, भार्गवौ, बहुवचन में—

भृगु, अत्रि, अंगिरस्, कुत्स, वसिष्ठ गोतम से बहुवचन में किये गये स्त्रीलिंग रहित अपत्य प्रत्यय को 'लुक्' हो जाता है ॥४८२ ॥

भृग्वादिभ्यो बहुत्वे विहितस्यास्त्र्यभिधेयस्य अपत्यप्रत्ययस्य लुग्भवति। भृगवः। अत्रयः। अङ्गिरसः। गोतमा इत्यादि। अस्त्रियामिति किं ? भार्गव्यः। णटकारानुबन्धादिति नदादित्वादीप्रत्ययः। गर्गस्यापत्यं इति स्थिते—

ण्यो गर्गादेः ॥४८३॥

गर्गादेर्गणाद् ण्यो भवति अपत्येऽभिधेये।

इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च ॥४७९॥

इवर्णावर्णयोर्लोपो भवति तद्धिते स्वरे ये च परे। गार्ग्यः। गार्ग्यौ। वत्सस्यापत्यं वात्स्यः। वात्स्यौ। कौत्स्यः। कौत्स्यौ। बहुत्वे—

गर्गयस्कविदादीनां च ॥४८४॥

गर्गादीनां यस्कादीनां विदादीनां च बहुत्वे विहितस्य अस्त्र्यभिधेयस्य अपत्यप्रत्ययस्य लुग्भवति। गर्गाः। वत्साः। कुत्साः। उभयत्र ण्यो लुक्। ऊर्वाः। यस्काः। विदाः। अणो लुक्। इत्यादि।

कुर्वादेर्यण् ॥४८५॥

अतः भृगोरपत्यानि भृगवः बना अपत्य का लोप होकर उसके निमित्त से होने वाली वृद्धि का भी लोप हो गया।

अत्रेरपत्यानि अत्रयः, अंगिरसस्यापत्यानि अंगिरसः गोतमस्यापत्यानि गोतमाः इत्यादि। सूत्र में 'अस्त्रियां' ऐसा क्यों कहा ? भृगोरपत्यानि स्त्रीलिंगे वाचके भार्गव्यः बन गया। ण् अनुबंध और टकार का अनुबंध होने से नदादि गण में कहे जाने से स्त्रीलिंगवाची 'ई' प्रत्यय हो गया है।

गर्गस्यापत्यं ऐसा विग्रह है।

गर्गादि गण से अपत्य अर्थ में 'ण्य' प्रत्यय होता है ॥४८३॥

गर्ग + ङस् विभक्ति का लोप होकर ण्य प्रत्यय में णकार का अनुबंध होकर णानुबंध से पूर्व स्वर को वृद्धि हुई 'गार्ग य' रहा।

स्वर प्रत्यय और यकार प्रत्यय के आने पर इ वर्ण अ वर्ण का लोप हो जाता है ॥४७९॥[1]

यहाँ पूर्व के अकार का लोप होकर गार्ग्य बना। लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'गार्ग्यः' द्विवचन में 'गार्ग्यौ' बना। वत्सस्यापत्यं वात्स्यः वात्स्यौ, कुत्सस्यापत्यं कौत्स्यः कौत्स्यौ। बहुवचन में—

गर्गादि, यस्कादि और विदादि बहुवचन में किये गये स्त्रीलिंग रहित अपत्य प्रत्यय का 'लुक्' हो जाता है ॥४८४॥

अपत्य प्रत्यय का लोप होकर गर्गाः, वत्साः, कुत्साः बना इन दोनों मे 'ण्य' का लोप हुआ है। उर्वाः, यस्काः विदाः यहाँ अण् प्रत्यय का लोप हुआ है।

कुरु आदि से यण् प्रत्यय हो जाता है ॥४८५॥

कुरु आदि गण से अपत्य अर्थ में यण् प्रत्यय होता है।

कुरोः अपत्यं कौरव्यः। लहस्यापत्यं लाह्यः ॥

---

१. यह सूत्र पहले आ चुका है।

कुर्वादेर्गणाद् यण्प्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थे। कुरोरपत्यं कौरव्यः। लहस्यापत्यं लाह्यः।

कुञ्जादेरायनण् स्मृतः ॥४८६॥

कुञ्जादेर्गणात् आयनण् प्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थे तदन्ते ण्यश्च स्मृतः। अस्त्रीनडादिबहुत्वे। कुत एतत् ? स्मृतग्रहणाधिक्यात्। कुञ्जस्यापत्यं कौञ्जायन्यः कौञ्जायन्यौ। एवं ब्राध्नायन्यः ब्राध्नायन्यौ। स्त्रियां तु। कौञ्जायनी। नडादेस्तु। नाडायनः। चारायणः। मौञ्जायनः। शाकटायनः। बहुत्वे। कौञ्जायनाः कुञ्जस्यापत्यानि। एवं ब्राध्नायनाः।

स्त्र्यत्र्यादेरेयण् ॥४८७॥

स्त्रियामादादिभ्योऽत्र्यादेश्च एयण् भवति अपत्येऽभिधेये। विनताया अपत्यं वैनतेयः। एवं सौपर्णेयः। यौवतेयः। कौन्तेयः। अत्रेरपत्यं आत्रेयः आत्रेयौ। बहुत्वे। अग्निसंज्ञायामेत्वमयादेशश्च। अत्रयः भृग्वत्र्यङ्गिरेत्यादिना अपत्यप्रत्ययस्य लुक्। सत्यामग्निसंज्ञायां इरेदुरोज्जसि। इत्येत्वं जसि। एवं सौभ्रेयः। गाङ्गेयः। भद्रबाहोरपत्यं।

कुञ्जस्यापत्यं है। कुञ्ज + ङस् विभक्ति का लोप,

अपत्य अर्थ में कुंजादि गण से 'आयनण्' प्रत्यय होता है ॥४८६॥

और उसके अंत में 'ण्य' प्रत्यय भी हो जाता है।

कुञ्ज + आयनण् पूर्व स्वर को वृद्धि होकर 'कौञ्जायन' बना। ण्य प्रत्यय होकर 'इवर्णावर्णयोर्लोपः' सूत्र से न के अ का लोप होकर लिंग संज्ञा, एवं सि विभक्ति आकर कौञ्जायन्यः बना द्विवचन में कौञ्जायन्यौ बना।

इसी प्रकार से ब्रध्नस्यापत्यं ब्राध्नायन्यः बना। स्त्रीलिंग में—ण्य प्रत्यय नहीं हुआ है एवं स्त्री वाचक 'ई' प्रत्यय हुआ है अतः 'कौञ्जायनी' बना। नडादि गण में 'ण्य' प्रत्यय न होकर केवल मात्र आयनण् प्रत्यय होकर नाडायनः बना।

चरस्यापत्यं चारायणः मुञ्जस्यापत्यं मौञ्जायनः शकटस्यापत्यं शाकटायनः। बहुवचन में कुञ्जस्यापत्यानि 'ण्य' प्रत्यय न होकर कौञ्जायनाः ब्राध्नायनाः बना।

विनतायाः अपत्यं है ?

स्त्रीलिंग वाचक अदादि से और अत्रि आदि से अपत्य अर्थ में 'एयण्' प्रत्यय हो जाता है ॥४८७॥

विनता + ङस्। एयण् प्रत्यय होने पर विभक्ति का लोप, णानुबंध, 'इवर्णावर्णयोर्लोपः' सूत्र से आ का लोप होकर पूर्व स्वर को वृद्धि हुई है अतः वैनतेय बना लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आने से 'वैनतेयः' बना। ऐसे ही सुपर्णायाः अपत्यं—सौपर्णेयः कुन्त्याः अपत्यं कौन्तेयः, अत्रेःअपत्यं आत्रेयः आत्रेयौ बना। बहुवचन में ४८२वें सूत्र से अत्रि के अपत्य प्रत्यय का लुक् होकर 'अत्रि' रहा। अग्नि संज्ञा होकर "इरेदुरोज्जसि" १६३वें सूत्र से अत्रे + जस् 'ए अय्' से संधि होकर 'अत्रयः' बना।

सुभ्रायाः अपत्यं सौभ्रेयः, गंगायाः अपत्यं गांगेयः सिंहिकायाः अपत्यं सैंहिकेयः।

भद्रबाहोः अपत्यं है।

एयेऽकद्र्वादिस्तु लुप्यते ॥४८८ ॥

एये प्रत्यये परे उवर्णो लुप्यते नतु कद्रूशब्दस्य। भाद्रबाहेयः। कामण्डलेयः। अकद्र्वा इति किम्। काद्रवेयः।

सर्वनाम्नः संज्ञाविषये स्त्रियां विहितत्वात् ॥४८९ ॥

सर्वनाम्नः परः संज्ञाविषये एयण् भवति अपत्येऽभिधेये। सर्वा काचित् स्त्री। सर्वाया अपत्यं सार्वेयः। इत्यादि।

इणतः ॥४९० ॥

अकारान्तान्नाम्न इण् प्रत्ययो भवति अपत्येऽभिधेये। दक्षस्यापत्यं दाक्षिः। एवं दाशरथिः। आर्जुनिः। दैवदत्तिः। अस्यापत्यं इः इत्यादि।

कद्रू को छोड़कर उकारांत शब्द से एयण् प्रत्यय के आने पर उ वर्ण का लोप हो जाता है ॥४८८ ॥

अतः भाद्रबाह् एय लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर भाद्रबाहेयः बना ऐसे कमंडलोरपत्यं—कामण्डलेयः।

कद्रू को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? कद्रू के ऊको "उवर्णस्त्वोत्वमापाद्यः" सूत्र से ओ होकर एयण् प्रत्यय से काद्रवेयः बना।

सर्वा नाम की कोई स्त्री है अतः सर्वायाः अपत्यं है।

सर्वनाम से परे संज्ञा अर्थ में अपत्य वाचक एयण् प्रत्यय होता है ॥४८९ ॥

सर्वा + ङस् एयण् विभक्ति का लोप होकर 'वृद्धिरादौ सणे' सूत्र से वृद्धि होकर "इवर्णावर्णयोर्लोपः" से 'आ' का लोप होकर सार्वेय बना लिंग संज्ञा होकर विभक्ति के आने से सार्वेयः बना। इत्यादि।

दक्षस्यापत्यं है

अकारांत शब्द से अपत्य अर्थ में इण् प्रत्यय होता है ॥४९० ॥

अतः दक्ष + ङस् विभक्ति का लोप होकर, वृद्धि होकर अवर्ण का लोप होकर लिंग संज्ञा हुई और विभक्ति आकर दाक्षिः बना। इसी प्रकार से दशरथस्यापत्यं—दाशरथिः अर्जुनस्यापत्यं आर्जुनिः देवदत्तस्यापत्यं दैवदत्तिः।

'अ' के एकाक्षरी कोश में अनेक अर्थ होते हैं 'अ' के अरहंत, विष्णु आदि 'अ' का रूप पुरुषवत् चलते हैं।

जैसे—अः	औ	आः	आत्	आभ्याम्	एभ्यः
अम्	औ	आन्	अस्य	अयोः	आनाम्
एन	आभ्याम्	ऐः	ए	अयोः	एषु।
आय	आभ्याम्	एभ्यः			

अतः अस्य अपत्यं है। 'इणतः' ४९० से इण् प्रत्यय हुआ। 'वृद्धिरादौ सणे' से अ को वृद्धि होकर 'आ' हुआ। 'इवर्णावर्णयो' सूत्र से आ का लोप होकर 'इ' रहा लिंगसंज्ञा होकर सि विभक्ति आई 'इ' को अग्निसंज्ञा होकर मुनिवत् रूप चलेंगे। 'इः' बना। इत्यादि।

उपबाहोरपत्यं, भद्रबाहोरपत्यं हैं।

बाह्वादेश्च विधीयते ॥४९१ ॥

बाह्वादेर्गणादिण् प्रत्ययो भवति अपत्येऽभिधेये । उपबाहोरपत्यमौपबाहविः । भाद्रबाहविः ।

नस्तु क्वचित् ॥४९२ ॥

नस्य लोपो भवति क्वचित् लक्ष्यानुरोधात् ॥ उडुलोम्नोऽपत्यं औडुलोमिः । एवमाग्निशर्मिः ।

मनोः षण्ष्यौ ॥४९३ ॥

षष्ठ्यन्तान्मनुशब्दात्परौ षण्ष्यौ प्रत्ययौ भवतः अपत्यार्थे । मनोरपत्यं मानुषः । मनुष्यः । मानवः । वाणपत्ये इति अण् भवति ।

कुर्वादेर्यण् ॥४८५ ॥

कुर्वादिर्गणात् यण् प्रत्ययो भवति अपत्येऽर्थे । पक्षे कुरोरपत्यं कौरव्यः । वाणपत्ये इति अण् भवति । कौरवः । लहस्यापत्यं लाह्यः ।

क्षत्रादियः ॥४९४ ॥

षष्ठ्यन्तात् क्षत्रशब्दात्पर इयः प्रत्ययो भवति अपत्येर्थे । क्षत्रियः ।

बाहु आदि गण से अपत्य अर्थ में इण् प्रत्यय होता है ॥४९१ ॥

पूर्ववत् विभक्ति का लोप, वृद्धि 'उ' को ओ, ओ को अव् होकर औपबाहवि लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'औपबाहविः' बना, वैसे ही भाद्रबाहविः बना ।

उडुलोम्नः अपत्यं, अग्निशर्मणः अपत्यं हैं । 'बाह्वादेश्च विधीयते' सूत्र से इण् प्रत्यय होकर पूर्ववत् सारे कार्य होंगे यथा—उडुलोमन् + ङस् विभक्ति का लोप, वृद्धि हुई ।

कहीं लक्ष्य के अनुरोध से नकार का लोप हो जाता है ॥४९२ ॥

इस सूत्र से नकार का लोप 'इवर्णा' इत्यादि से 'अ' का लोप होकर लिंग संज्ञा एवं विभक्ति आकर 'औडुलोमिः' बना । वैसे ही 'आग्निशर्मिः' बना ।

मनोरपत्यं है

षष्ठ्यंत मनु शब्द से परे अपत्य अर्थ में षण् और ष्य और अण् प्रत्यय होते हैं ॥४९३ ॥

मनु + ङस् षण णानुबंध से पूर्वस्वर को वृद्धि लिंग संज्ञा, विभक्ति आकर 'मानुषः' बना । 'ष्य' प्रत्यय से मनुष्यः । अण् प्रत्यय से मानवः बना ।

कुरु आदि गण से अपत्य अर्थ में यण् प्रत्यय होता है[1] ॥४८५ ॥

कुरोः अपत्यं—कुरु + ङस् यण् "वृद्धिरादौ सणे" ४७४वें सूत्र से वृद्धि होकर एवं उवर्ण को ओ, ओ को अव् होकर लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आने से 'कौरव्यः' बना । 'वाणपत्ये' सूत्र ४७३वें से अणः प्रत्यय होकर पूर्ववत् सारी क्रियायें होकर 'कौरवः' बना ।

लहस्यापत्यं है यण् प्रत्यय से 'लाह्यः' बना ।

क्षत्रस्यापत्यं है ।

षष्ठ्यंत क्षत्र शब्द से परे अपत्य अर्थ में 'इय' प्रत्यय हो जाता है ॥४९४ ॥

"इवर्णावर्ण" इत्यादि से 'अ' का लोप होकर लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आने से 'क्षत्रियः' बना ।

---

१ यह सूत्र पहले आ चुका है ।

कुलादीनः ॥४९५ ॥

कुलशब्दात्परः ईन प्रत्ययो भवति जातार्थे । कुले जातः कुलीनः । इत्यादि ।

रागान्नक्षत्रयोगाच्च समूहात्सास्य देवता ।

तद्वेत्त्यधीते तस्येदमेवमादेरणिष्यते ॥१ ॥

रागात् अण् । कुसुम्भेन रक्तं कौसुम्भं । एवं हारिद्रं वस्त्रं । कौंकुमं । मांझिष्ठं । काषायं । नक्षत्रयोगात् । पुष्येण चन्द्रयुक्तेन युक्तः कालः ।

पुष्यतिष्ययोर्नक्षत्रे ॥४९६ ॥

नक्षत्रार्थे वर्तमानयोः पुष्यतिष्ययोर्यकारस्य लोपो भवति अणि परे । इति यकारलोपः । मत्स्यस्य यस्य स्त्रीकारे ईये चागस्त्यसूर्ययोः ॥ इति सूत्राद्य इति अनुवर्तनं । पौषः कालः । पौषो मासः । पौषी रात्रिः । पौषमहः । एवं तैषी मासः । तैषी रात्रिः । तैषमहः । चित्रया चन्द्रयुक्तया युक्तः कालः चैत्रः । वैशाखः । एवं ज्येष्ठः । आषाढः । श्रावणः । भाद्रपदः । आश्वयुजः । कार्तिकः । मार्गशिरः । माघः । फाल्गुनः । एवं सर्वत्र । समूहात् । युवतीनां समूहो यौवतं । एवं हासं । काकं । क्षात्र । शौद्र । आर्षं । मार्गं । सास्य देवता । जिनो देवता अस्य इति जैनः । एवं शैवः । वैष्णवः । ब्राह्मणः । बौद्धः । कापिलः । सौरः । ऐन्द्रः । तद्वेत्ति । जिनं वेत्तीति जैन इत्यादि । छन्दो वेत्त्यधीते वा छान्दसः । व्याकरणं वेत्त्यधीते वा वैयाकरणः । भारतः । तस्येदं ।

कुल शब्द से जात (जन्म) अर्थ में 'ईन' प्रत्यय होता है ॥४९५ ॥

अतः कुले जातः कुल में उत्पन्न हुआ 'कुलीनः' । यहाँ अकार का लोप हुआ है । इत्यादि ।

आगे अनेक अर्थों में अण् प्रत्यय होता है उसे श्लोक द्वारा प्रकट करते हैं ।

श्लोकार्थ—राग से, नक्षत्र के योग से, समूह अर्थ से, वह इसका देवता है इस अर्थ से, वह इसको जानता है पढ़ता है इस अर्थ से, यह उसका है इस अर्थ से, इस प्रकार आदि शब्द से और भी अर्थों से 'अण्' प्रत्यय माना गया है ॥१ ॥

राग—रंग अर्थ में अण् के उदाहरण—

कुसुंभेन रक्तं वस्त्रं, कुसुभ + टा अण् विभक्ति का लोप होकर पूर्व स्वर को वृद्धि होकर कौसुंभ 'अ' का लोप होकर लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आने से 'कौसुंभं' बना, इसी प्रकार हरिद्रया रक्तं हारिद्रं, कुंकुमेन रक्तं—कौंकुमं, मंजिष्ठेन रक्तं मांजिष्ठं, कषायेन रक्तं काषायं बना ।

नक्षत्र के योग में अण् प्रत्यय होने से—

पुष्येण चन्द्रयुक्तेन युक्तः कालः ऐसा विग्रह हुआ है ।

पुष्य + टा अण् विभक्ति का लोप होकर वृद्धि होकर पौष्य अ है ।

अण् प्रत्यय के आने पर नक्षत्र अर्थ में वर्तमान पुष्य तिष्य के यकार का लोप हो जाता है ॥४९६ ॥

"मत्स्यस्य यस्य स्त्रीकारे ईये चागस्त्यसूर्ययोः"

यह सूत्र अनुवृत्ति मे चला आ रहा है ।

पौष्य के यकार का लोप होकर अण् का अकार मिल गया और लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'पौषः' बना । स्त्रीलिंग में पौषी और नपुंसकलिंग में पौषं बनेगा । जैसे—

पौषः कालः, पौषी रात्रिः पौषम् अहः । इसी प्रकार से तिष्य को तैषः बन गया । तीनों लिंगों में ये रूप चलते हैं ।

मृगस्य इदं मांसं मार्गं । सौकरं । कौमारं । पुत्रस्येदं पौत्रं । दैवं । पौरुषं । यून इदं यौवनं । **एवमादिर्यस्येति गणो गृह्यते ।** चक्षुषा गृह्यते चाक्षुषं रूपं । एवं श्रावणः शब्दः । रासनो रसः । स्पार्शनः स्पर्शः । दृषदि पिष्टा दार्षदाः सक्तवः । उलूखलेन क्षुण्णा औलूखलास्तण्डुलाः । अश्वैरुह्यते रथः आश्वो रथः । चतुर्भिरुह्यते चातुरं शकटं । चतुर्दश्यां दृष्टश्चातुर्दशो राक्षसः । त्रिविद्य एव त्रैविद्यः । पटोर्भावः पाटवं । लाघवं । कौशलमित्यादि ।

तेन दीव्यति संसृष्टं तरतीकण् चरत्यपि ।
पण्याच्छिल्पान्नियोगाच्च क्रीतादेरायुधादपि ॥२॥

तेन दीव्यति तेन संसृष्टं तेन तरति तेन चरतीत्यर्थे पण्यात् शिल्पात् नियोगाच्च क्रीतादेरायुधाद्अपीतीकण् प्रत्ययो भवति । तेन दीव्यतीत्यत्र इकण् । अक्षैर्दीव्यति आक्षिकः । एवं गिरिणा दीव्यति गैरिकः । दाण्डिकः । तेन संसृष्टमित्यादि । दध्ना संसृष्टं दाधिकमौदनं । एवं क्षैरिकः । ताक्रिकः । घार्तिकः । शाङ्र्गवैरिकः । सार्पिषिकः । लावणिकः । मारिचिकः । तेन तरतीत्यत्रापि । उडुपेन तरतीति औडुपिकः । एवं वाहित्रिकः । द्रोण्या तरतीति द्रौणिकः । गौपुच्छिकः । नावा तरतीति नाविकः ।

'चित्रयाचन्द्रयुक्तया युक्तः कालः' ऐसा विग्रह है ।

चित्रा + टा 'नक्षत्रयोगा' अण् पूर्व को वृद्धि आकार का लोप होकर लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'चैत्रः' बना । ऐसे ही विशाखया चन्द्रयुक्तया युक्तः कालः वैसाखः । ज्येष्ठया चन्द्रयुक्तया युक्तः कालः ज्येष्ठः । आषाढया चन्द्रयुक्तया युक्तः कालः आषाढः । श्रवणेन चन्द्रयुक्तेन युक्तः कालः, 'श्रावणः' । भाद्रपदया चन्द्रयुक्तया युक्तः कालः भाद्रपदः । अश्वयुजा चन्द्रयुक्तेन युक्तः काल, आश्वयुजः । कार्तिकः, मार्गशिरः, माघः फाल्गुनः इत्यादि इसी प्रकार से सर्वत्र समझ लेना ।

समूह अर्थ मे अण्—युवतीनां समूहो अण् प्रत्यय होकर युवति + आम् विभक्ति का लोप, पूर्व स्वर को वृद्धि, इकार का लोप, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर नपुंसक लिंग में 'यौवतं' बना । एवं हंसानां समूहः, हांसं, ऋषीणां समूहः आर्षं, मृगानां समूह मार्गं । इत्यादि ।

वह इसके देवता हैं इस अर्थ में अण् ।

जिनो देवता अस्य इति, जिन + सि विभक्ति का लोप होकर पूर्व स्वर को वृद्धि एवं अकार का लोप होकर लिंग विभक्ति आने से 'जैनः' बना । ऐसे ही शिवो देवता अस्य इति. शैवः आदि बन गये ।

तद् वेत्ति उसको जानता है इस अर्थ मे अण्—

जिनं वेत्ति इति जिन + अम् विभक्ति का लोप, पूर्व स्वर को दीर्घ अकार का लोप, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'जैनः' बना । छन्दो वेत्ति अधीते वा—छन्द को जानता है या पढ़ता है इस अर्थ में 'छांदसः' बना, व्याकरणं वेत्ति अधीते वा वैयाकरणः । यहाँ ५६४वें सूत्र से ऐ का आगम हुआ है ।

तस्येदं—उसका यह है इस अर्थ में अण् प्रत्यय होता है । मृगस्य इदं मार्गं, सूकरस्य इदं मांसं सौकरं । पुत्रस्य इदं पौत्रं, देवस्य इदं दैवं, पुरुषस्येदं पौरुषं । यूनः इदं यौवनं । आदि शब्द से अन्य और भी अर्थों में अण् प्रत्यय हाता है जैसे चक्षुषा गृह्यते चक्षुष् + टा विभक्ति का लोप होकर वृद्धि होकर 'चाक्षुषं' बना । ऐसे ही श्रवणाभ्या श्रूयते श्रावणः शब्दः रसनया गृह्यते रासनः स्पर्शेन गृह्यते स्पार्शः । दृषदि पिष्टा दार्षदाः । पत्थर पर पीसा गया सत्तू, मसाला आदि । उलूखलेन क्षुण्णाः—उलूखल से कूटा गया, 'औलूखलाः' तण्डुलाः । अश्वैः ऊह्यते रथः आश्वः ।

चरतीत्यत्रापि। शिबिकया चरतीति शैबिकिकः, एवं आक्षिकः। औष्ट्रिकः। शृङ्गवेरेण चरतीति शार्ङ्गवैरिकः। पण्यात्। ताम्बूलं पण्यमस्य ताम्बूलिकः। एवमपिशब्दग्रहणात् यथाशिष्टप्रयोगं भवति। गन्धः पण्योऽस्येति गान्धिकः। एवं सार्पिषिकः। वास्त्रिकः। राजतिकः। लौहितिकः। शिल्पात्। मृदङ्गं शिल्पमस्येति मार्दङ्गिकः। एवं पाणविकः। शाङ्खिकः। काहलिकः। वैणिकः। त्रैवलिकः। वांशिकः। तालिकः। नियोगात्। शुल्कं नियोगो यस्येति शौल्किकः। एवं भाण्डागारिकः। माहानसिकः। प्रातीहारिकः। क्रीतादेः। सहस्रेण क्रीतं साहस्रिकं। एवं शातिकं। लाक्षिकं। सुवर्णेन क्रीतं सौवर्णिकं। आदिशब्दात्। लक्षेण युक्तो लाक्षिकः। देवेन प्रवृत्तो दैविकः। कार्षापणेन अर्हतीति कार्षापणिकः। आयुधादपि। चक्रमायुधमस्येति चाक्रिकः एवं कौन्तिकः। तौमरिकः। खाड्गिकः। क्रीतादेरित्यत्रादि

चतुर्दश्यां दृष्टः चातुर्दशः राक्षस आदि। त्रिविद्य एव तीन विद्याओं के पारंगत 'त्रैविद्यः' पटोर्भावः पाटवं, लघोर्भावः लाघवं कुशलस्य भावः कौशलं। इत्यादि।

आगे कुछ अर्थों में इकण् प्रत्यय होता है। उसे श्लोक के अर्थ से प्रकट करते हैं।

श्लोकार्थ—उससे खेलता है, उससे मिश्रित है, उससे तैरता है, उससे आचरण करता है, इन प्रकरणों से इकण् प्रत्यय होता है। आगे पण्य से, शिल्प अर्थ से, नियोग से, क्रीतादि से और आयुधादि से भी इकण् प्रत्यय होता है॥१॥ 'तेन दीव्यति' अर्थ में इकण् प्रत्यय होता है उसके उदाहरण—अक्षैर्दीव्यति—पाशों से खेलता है। अक्ष + भिस् इकण्।

विभक्ति का लोप होकर पूर्वस्वर को दीर्घ हुआ और अकार का लोप होकर 'आक्षिकः' बना। एवं गिरणा दीव्यति 'गैरिकः' दण्डेन दीव्यति दाण्डिकः बना।

तेन संसृष्टं-उससे मिश्रित अर्थ में इकण्—

दध्ना संसृष्टं। दधि + टा इकण् विभक्ति का लोप, स्वर को दीर्घ, इकार का लोप होकर दाधिकं बना। एवं क्षीरेण संसृष्टं क्षैरिकं तक्रेण संसृष्टं-ताक्रिकं, घृतेन संसृष्टं-घार्तिकं। इत्यादि।

'तेन तरति' उससे पार होता है इस अर्थ में इकण्—

उडुपेन तरति—उडुप + टा इकण् पूर्ववत् सारे कार्य होकर औडुपिकः छोटी नौका से पार होता है। वैसे ही द्रोण्या तरतीति द्रौणिकः।

तेन चरति—उससे आचरण करता है या चलता है इस अर्थ में इकण्। शिबिकया चरतीति शैबिकिकः। उष्ट्रेण चरतीति औष्ट्रिकः। पण्य अर्थ में इकण्—

तांबूलं पण्यं अस्य—तांबूल है व्यापार जिसका—तांबूलिकः। श्लोक में 'अपि' शब्द के ग्रहण से यथाशिष्ट प्रयोग करना चाहिये। वस्त्रं पण्यं अस्य इति वास्त्रिकः। रजतं पण्यं अस्य इति राजतिकः। इत्यादि।

शिल्प अर्थ में इकण्—

मृदंगं शिल्पं अस्य इति मार्दंगिकः बना मृदंगवादनं शिल्पं अस्य ऐसा विग्रह करना। नियोग (अधिकार) अर्थ में इकण्—

शुल्कं नियोगो अस्येति शौल्किकः। इत्यादि।

क्रीतादि अर्थ में इकण्—सहस्रेण क्रीतं, साहस्रिकं।

आदि शब्द से इकण्—लक्षेण युक्तो लाक्षिकः। दैवेन प्रवृत्तो दैविकः। इत्यादि।

ग्रहणात्तस्येति षष्ठ्यन्तान्नाम्नः परो वाप एतस्मिन्नर्थे इकण् प्रत्ययो भवति। प्रष्टस्य वापः प्राष्टिकं क्षेत्रं। वाप इति कोऽर्थः ? क्षेत्रं। कुम्भस्य वापः कौम्भिकमित्यादि।

नावस्तार्ये विषाद्वध्ये तुलया सम्मितेऽपि च तत्र साधौ यः ॥४९७॥

नावस्तृतीयान्तात्तार्येऽर्थे विषात्तृतीयान्ताद्वध्येऽर्थे तुलया तृतीयान्तात्सम्मितेऽर्थेऽपि च तत्रेति सप्तम्यन्तात्साधावर्थे यः प्रत्ययो भवति। नावा तार्यमिदं नाव्यं। विषेण वध्यो विष्यः। तुलया सम्मितं तुल्यं। कर्मणि साधुः कर्मण्यः। अपि चेति वचनाद् गिरिणा तुल्यो हस्ती गिरितुल्यः। तुल्यः सदृशः कुशलो योग्यो हितश्चेति साधुरुच्यते।

ईयस्तु हिते ॥४९८॥

हितार्थे ईयः प्रत्ययो भवति। वत्सेभ्यो हितो वत्सीयो गोधुक्। एवमश्वीयः। जनकेभ्यो हितो जनकीयः। जननीयः। त्वदीयः। मदीयः। युष्मदीयः। इदमीयः।

आयुध अर्थ में इकण्—

चक्र आयुधं अस्य इति चाक्रिकः। इत्यादि।

क्रीतादेः इस प्रकार से ग्रहण करने से षष्ठ्यंत नाम से परे वापः—बोना इस अर्थ में इकण् प्रत्यय हो जाता है। प्रष्टस्य वापः प्राष्टिकं क्षेत्रं। वापः शब्द का क्या अर्थ है ? 'खेत' जिसमें अनाज बोया जाता है। कुंभस्य वापः कौंभिकं इत्यादि—अर्थात् एक घड़े भर बीज बोया।

उपर्युक्त प्रकरण में सभी उदाहरण के शब्दों में हिन्दी में कुछ-कुछ ही उदाहरण दिये गये हैं सारे के सारे रूप मूल संस्कृत में देख लेना चाहिये।

नाव शब्द से तिरने अर्थ में, विष से वध्य अर्थ में, तुला से संमित अर्थ में, तत्र से साधु अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है ॥४९७॥

तृतीयान्त नाव शब्द से तैरने अर्थ में, तृतीयान्त विष शब्द से वध्य अर्थ में, तृतीयान्त तुला शब्द से मापने अर्थ में, 'तत्र' इस सप्तम्यंत शब्द से साधु अर्थ में 'य' प्रत्यय होता है। नावा तार्यमिदं नौ + टा "तत्स्था लोप्या विभक्तयः" सूत्र से विभक्ति का लोप होकर 'औ' को आव् होकर 'नाव्य' बना "कृत्तद्धितसमासाश्च" सूत्र से लिंग होकर 'सि' विभक्ति में 'नाव्यं' बना। ऐसे ही विषेणवध्यः विष + टा विभक्ति का लोप, "इवर्णावर्णयोर्लोपः स्वरे प्रत्यये ये च" सूत्र से अकार का लोप, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में 'विष्यः' बना, तुलयाः सम्मितः, तुला + टा विभक्ति का लोप, आकार का लोप, लिंग संज्ञा होकर 'तुल्यं' बना, कर्मणि साधु कर्मन् + ङि विभक्ति का लोप, नकार को णकार, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति से 'कर्मण्यः' बना। सूत्र में 'अपि च' वचन है उससे और भी रूप बन जाते हैं। जैसे—गिरिणा तुल्या हस्ती 'गिरि + टा' तुल्य + सि विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'गिरितुल्यः' बना। यहाँ साधु शब्द से तुल्य, सदृश, कुशल, योग्य और हित शब्द लिये जाते हैं।

हित अर्थ में 'ईय' प्रत्यय होता है ॥४९८॥

वत्सेभ्यो हितः, वत्स + भ्यस्, विभक्ति का लोप होकर "इवर्णावर्णयोर्लोपः" इत्यादि सूत्र से अकार का लोप होकर लिंग संज्ञा हुई, पुनः सि विभक्ति में 'वत्सीयः' बना। वत्सीयः—गोधुक् = ग्वाला। ऐसे ही अश्वेभ्यो हितः = अश्वीयः, जनकेभ्यो हितः = जनकीयः, जननीभ्यो हितः = जननीयः, तुभ्यं हितः, मह्यं हितः, युष्मद् + भ्यस् अस्मद् + भ्यस्, विभक्तियों का लोप होकर "त्वमदोरेकत्वे" —सूत्र से एकवचन में 'त्वत् मत्' आदेश होकर तीसरा अक्षर होकर त्वदीयः, मदीयः बना। बहुवचन में अस्मभ्यं हितः 'अस्मदीयः' युष्मभ्यं हितः 'युष्मदीयः' बना।

तत्र जातस्तत आगतो वा ॥४९९ ॥

इत्यादिषु च ईयः प्रत्ययो भवति। शालायां जातः शालीयः। शालाया आगतः शालीयः।

यदुगवादिभ्यः ॥५०० ॥

उवर्णान्ताद्गवादिभ्यश्च हितार्थे यद्भवति। कृकवाकुभ्यो हितः कृकवाकव्यः। वधूभ्यो हितो वधव्यः। गोभ्यो हितो गव्यः। पटुभ्यो हितः पटव्यः। हविर्भ्यो हिता हविष्यास्तण्डुलाः। गवादय इति के। गो हविस् इष्टका बर्हिस् मेधा स्रज् स्रुच् इति। गवादिगणः।

उपमाने वतिः ॥५०१ ॥

उपमानेऽर्थे वतिः प्रत्ययो भवति। राजेव वर्त्तते राजवत्। ब्राह्मणस्येव वृत्तमस्येति ब्राह्मणवत्। मथुरायामिव पाटलिपुत्रे प्रासादा मथुरावत्। देवमिव त्वां पश्यामि देववत्। इत्यादि। सर्वत्र द्रव्यगुणक्रियाभिः साम्यमुपमानमस्तीति वत्प्रत्ययेन भवितव्यं। द्रव्ये। देवदत्त इव धनवान् देवदत्तवत्। एवं कुबेरवत्। बलिवत्। गुणे। यतिरिव गुणवान् यतिवत्। जलमिव शैत्यं जलवत्। अग्निरिव औष्ण्यमग्निवत्। श्रीखण्ड इव सुरभिः श्रीखण्डवत्। क्रियायां। ब्राह्मण इव वर्त्तते ब्राह्मणवत्। एवं पिशाचवत्।

तत्वौ भावे ॥५०२ ॥

वहाँ पैदा हुआ अथवा वहाँ से आया इत्यादि अर्थ में 'ईय' प्रत्यय होता है ॥४९९ ॥

शालायां जातः शाला + ङि, विभक्ति का लोप, अवर्ण का लोप, लिंग संज्ञा, पुनः विभक्ति आने से 'शालीयः' बना। शालाया आगतः, शाला + ङस्, विभक्ति का लोप होकर, अवर्ण का लोप हुआ और लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर 'शालीयः' बना।

उवर्णान्त और गवादि से हित अर्थ में 'यत्' प्रत्यय होता है ॥५०० ॥

कृकवाकुभ्यो हितः, कृकवाकु + भ्यस्, विभक्ति का लोप हुआ 'उवर्णस्त्वोत्वम्' इत्यादि से उकार को 'ओ' होकर अव् होकर, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में 'कृकवाकव्यः' बना। वधूभ्यो हितः = वधव्यः, गोभ्यो हितः = गव्यः, पटुभ्यो हितः = पटव्यः। हविर्भ्यो हितः, हविस् + भ्यस् विभक्ति का लोप स् को ष् होकर बहुवचन में 'हविष्याः' बना इसका अर्थ है हवन करने योग्य तंदुल। गवादि से क्या-क्या लेना ? गो, हविस्, अष्टका, बर्हिस् मेधा, स्रज् और स्रुच् शब्द गवादि गण में लिये जाते हैं।

उपमान अर्थ में 'वति' प्रत्यय होता है ॥५०१ ॥

राजा इव वर्तते, राजन् + सि विभक्ति का लोप होकर 'लिंगांतनकारस्य' से नकार का लोप हो गया पुनः 'राजवत्' बना। ब्राह्मणस्येव वृत्तमस्य—ब्राह्मण के समान है चारित्र इसका = 'ब्राह्मणवत्' बना। मथुरा में पाटलिपुत्र के समान भवन हैं अतः 'मथुरावत्' बना। देवमिव त्वां पश्यामि 'देववत्' इत्यादि। सभी जगह द्रव्य, गुण और क्रियाओं से समान उपमा रहती है जिसकी, उसमें 'वत्' प्रत्यय होना चाहिये। द्रव्य में—देवदत्त इव धनवान् = देवदत्तवत्। ऐसे ही कुबेरवत्, बलिवत् बना। गुण अर्थ में—यतिरिव गुणवान् = यतिवत्, जलमिव शैत्यं = जलवत्, अग्निवत् श्री खण्ड इव सुरभिः = श्रीखण्डवत्। क्रिया अर्थ में—ब्राह्मण इव वर्तते = ब्राह्मणवत्। पिशाच इव वर्तते = पिशाचवत्।

भाव अर्थ में 'त' और 'त्व' प्रत्यय होते हैं ॥५०२ ॥

भावेऽभिधेये तत्वौ भवतः। शब्दस्य प्रवृत्तिनिमित्तं भावो[1] भवति। तप्रत्ययस्य स्त्रियां वृत्तिः। त्वप्रत्ययस्य नपुंसके वृत्तिः। पटस्य भावः पटता पटत्वं। एवं अश्वता अश्वत्वं। गोता गोत्वं। इति द्रव्यभावः। शुक्लता शुक्लत्वं। रूपता रूपत्वं। रसता रसत्वं। ज्ञानता ज्ञानत्वं। सुखता सुखत्वं इति गुणभावः। उत्क्षेपणता उत्क्षेपणत्वं। गमनता गमनत्वं। इति क्रियाभावः।

यण् च प्रकीर्तितः ॥५०३॥

भावेऽभिधेये यण् प्रकीर्तिततस्तत्वौ च। जडस्य भावो जाड्यं जडता जडत्वं। एवं ब्राह्मण्यं ब्राह्मणता ब्राह्मणत्वं।

अघुट्स्वरवत्तद्धिते ये ॥५०४॥

तद्धिते ये परे अघुट्स्वरवत्कार्यं भवति। अघुट्स्वरादौ सेट्कस्यापि वन्सेर्वशब्दस्योत्वमित्युक्तं। विदुषां भावो वैदुष्यं। प्रकीर्तितग्रहणाधिक्यादन्यस्मिन्नर्थेऽपि यण् प्रकीर्तितस्तत्वौ च भवतः। ब्राह्मणस्य कर्म ब्राह्मण्यं ब्राह्मणता ब्राह्मणत्वं। पुनःपुनर्भावः पौनःपुन्यं। क्वचिदुभयपदवृद्धिः। पौनः पौन्यं। सौभाग्यं। अणि च पदद्वये वृद्धौ आग्निमारुतं। कर्म। सौहार्दं।

शब्द की प्रवृत्ति के निमित्त भाव होता है। 'त' प्रत्यय स्त्रीलिंग में होता है एवं 'त्व' प्रत्यय नपुंसकलिंग में होता है। पटस्य भावः, पट + ङस्, विभक्ति का लोप होकर 'त' प्रत्यय हुआ। पुनः "स्त्रियामादा" ..... सूत्र से 'आ' प्रत्यय होकर लिंग संज्ञा हुई सि विभक्ति में 'पटता' बना। वैसे ही नपुंसक लिंग में 'पटत्वं' बना। ऐसे ही अश्वस्य भावः = अश्वता, अश्वत्वं। गोः भावः = गोता, गोत्वं। इन शब्दों में द्रव्य से भाव प्रत्यय हुआ है।

गुण से भाव प्रत्यय—शुक्लस्य भावः = शुक्लता, शुक्लत्वं।

रूपस्य भावः = रूपता, रूपत्वं। रसस्य भावः = रसता, रसत्वं।

ज्ञानस्य भावः = ज्ञानता, ज्ञानत्वं। सुखता सुखत्वं।

क्रिया से भाव प्रत्यय—उत्क्षेपणस्य भावः = उत्क्षेपणता, उत्क्षेपणत्वं।

गमनस्य भावः = गमनता, गमनत्वं। इत्यादि।

भाव अर्थ में 'यण्' प्रत्यय होता है ॥५०३॥

त और त्व भी होते हैं। जडस्य भावः, विभक्ति का लोप होकर ण् अनुबन्ध होने से वृद्धि हो गई एवं "इवर्णावर्ण" इत्यादि सूत्र से अवर्ण का लोप होकर, लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आने से 'जाड्यं' बना, त, त्व, प्रत्यय से 'जडता, जडत्वं' बना। ऐसे ही ब्राह्मणस्य भावः = 'ब्राह्मण्यं, ब्राह्मणता, ब्राह्मणत्वं' बना। सुजनस्य भावः = सुजनता, सुजनत्वं, सौजन्यं। दक्षिणस्य भावः = दाक्षिण्यं, स्थिरस्य भावः = स्थैर्यं। गम्भीरस्य भावः = गांभीर्यं।

तद्धित का यण् प्रत्यय आने पर अघुट्स्वरवत् कार्य होता है ॥५०४॥

विदुषां भावः, विद्वन्स् + आम् विभक्ति का लोप होकर अघुट् स्वर आदि विभक्ति के आने पर वन्स् के 'व' शब्द को उकार हो गया, नकार का लोप हो गया। पूर्वस्वर की वृद्धि होकर लिंग संज्ञा होकर 'वैदुष्यं' बना। ५०३ सूत्र में 'प्रकीर्तित' शब्द अधिक है उससे अन्य अर्थ में भी यण् प्रत्यय होता है और 'त, त्व' प्रत्यय होता है। जैसे ब्राह्मणस्य कर्म = ब्राह्मण्यं, ब्राह्मणता, ब्राह्मणत्वं। पुनः पुनर्भावः = पौनः पुन्यं,

---

१. भवतः अस्मात् अभिधानप्रत्ययाविति भावः।

तदस्यास्तीति मन्त्वन्त्वीन् ॥५०५ ॥

तदिति प्रथमान्तादस्यास्तीत्येतस्मिन्नर्थे मन्तु वन्तु विन् इन् इत्येते प्रत्यया भवन्ति। गावोऽस्य सन्तीति गोमान्। आयुरस्यास्तीति आयुष्मान्। इतिशब्दस्य विवक्षार्थत्वात् अवर्णान्तात् अवर्णोपधात् मकारान्तात् मकारोपधात् धुडन्तात् अशिडन्तात् परो वन्त् प्रत्ययो भवति। अशिडन्तादित्युक्ते सति तद्वचनं सामान्यमेव। तत्र हकारो वर्जनीयः। अवर्णान्तात्—वृक्षाऽस्यास्तीति वृक्षवान्। शालास्यास्तीति शालावान्। इत्यादि। अवर्णोपधात्—तक्षास्यास्तीति तक्षवान्। कर्मास्यास्तीति कर्मवान्। क्वचिन्नकारलोपः। मकारान्तात्—इदमस्यास्तीति इदंवान्। किमस्यास्तीति किंवान्। इत्यादि। मकारोपधात्—लक्ष्मीरस्यास्तीति लक्ष्मीवान्। एवं धर्मवान्। इत्यादि। धुडन्तात्। विद्युदस्यास्तीति विद्युत्वान्। वर्गप्रथमा इत्यादिना तृतीये प्राप्ते सति। तसोर्न तृतीयो मत्वर्थे इत्यनेन सूत्रेण तृतीयत्वं न भवति। अशिडन्तादिति किं ? आयुरस्यास्तीति आयुष्मान्।

असन्तमायामेधास्रग्भ्यो वा विन् ॥५०६ ॥

एभ्यः परो विन् प्रत्ययो वा भवति। यशोऽस्यास्तीति यशस्वी। पक्षे वन्त् यशस्वान्। अत्र सकारस्य दकारो विसर्गश्च न भवति। तपोऽस्यास्तीति तपस्वी। तपस्वान्। एवं तेजस्वी तेजस्वान्। धुटां तृतीयः। धुटां तृतीयो भवति घोषवति सामान्ये। लृवर्णतवर्गलसा दन्त्या इति न्यायात् सकारस्य दकारे प्राप्ते सति—

'वह इसके है' इस अर्थ में मन्तु, वन्तु, विन्, इन् ये चार प्रत्यय होते हैं ॥५०५ ॥

गावः अस्य सन्ति इति—गायें इसके पास हैं। गो + जस् विभक्ति का लोप होकर 'गोमन्त्' बना लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आई अतः 'गोमान्' बना। ऐसे ही आयुः अस्य अस्तीति = 'आयुष्मान्' बना। यहाँ सूत्र का 'इति' शब्द विवक्षित अर्थ को कहता है मतलब—अवर्णांत से परे, अवर्ण उपधा वालों से परे, मकारांत से परे, मकार उपधावाले से परे, धुट् अन्तवाले शब्दों से परे, अशिट् अन्त वाले से परे, 'वन्त्' प्रत्यय होता है। शिट् अन्त में न होवे ऐसा कहने से यहाँ सामान्य कथन समझना अतः हकार को छोड़ देना चाहिये।

अवर्णान्त—वृक्षो अस्यास्ति इति, वृक्ष + सि, वन्तु विभक्ति का लोप होकर 'उ' अनुबन्ध होकर वृक्षवन्त् बना, लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आने से 'वृक्षवान्' शब्द बना। ऐसे ही शाला अस्य अस्तीति = शालावान् इत्यादि।

अवर्ण उपधा से—तक्षा अस्यास्ति इति, तक्षन् + सि, वन्तु विभक्ति का लोप, नकार का लोप होकर पूर्ववत् 'तक्षवान्' बना। कर्म अस्यास्ति इति कर्मन् + सि वन्तु = कर्मवान्।

मकारान्त—इदं अस्यास्तीति = इदंवान्, किमस्यास्तीति = किंवान्। मकारोपधा से—लक्ष्मी + सि, वन्तु = लक्ष्मीवान्, धर्मोस्यास्तीति धर्मवान् इत्यादि।

धुट् अन्त वाले शब्दों से—विद्युत् अस्यास्तीति = विद्युत्वान् यहाँ "वर्ग प्रथमाः पदान्ताः स्वर घोषवत्सु तृतीयात्" इस ६८वें सूत्र से तकार को तृतीय अक्षर दकार प्राप्त था किन्तु "तसो र्न तृतीयो मत्वर्थे" इस ५०७वें सूत्र से तृतीय अक्षर नहीं हुआ। वृत्ति में 'शिट् अन्त में न हो' ऐसा क्यों कहा ? तो जैसे आयुरस्यास्ति इति आयुष्मान् आयुष शब्द षकारान्त होने से वन्तु प्रत्यय न होकर मन्तु प्रत्यय हुआ है।

असन्त् माया, मेधा और स्रज् शब्दों से 'विन्' प्रत्यय विकल्प से होता है ॥५०६ ॥

अस् है अन्त में जिसके ऐसे शब्दों से और उपर्युक्त शब्दों से विन् एवं वन्तु प्रत्यय होते हैं। यशो अस्यास्तीति, यशस् + सि विन्, विभक्ति का लोप होकर यशस्विन् बना। लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में 'यशस्वी' बना। पक्ष में वन्तु प्रत्यय से यशस्वान् बना॥ यहाँ सकार को दकार एवं विसर्ग नहीं होता है। ऐसे ही 'तेजो अस्य अस्तीति' तेजस्वान्, तेजस्वी, "धुटां तृतीयः" इस २७५वें सूत्र से धुट् सकार को घोषवान् सामान्य के आने पर तृतीय अक्षर होता है, पुनः "लृवर्णतवर्गलसा दन्त्याः" इस न्याय से सकार को दकार प्राप्त होने पर—

तसोर्न तृतीयो मत्वर्थे ॥५०७॥

तकारसकारयोस्तृतीयो मत्वर्थे न भवति। मत्वर्थे इति कोऽर्थः ? अस्त्यर्थे। पश्चात् रेफसोर्विसर्जनीये प्राप्ते सकृद् बाधितो विधिर्बाधित एव सत्पुरुषवत्। मायास्यास्तीति मायावी मायावान्। मेधास्यास्तीति मेधावी मेधावान्। स्रगस्वास्तीति स्रग्वी स्रग्वान्। व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभारिति न्यायात् चवर्गदृगादीनां चेति गत्वमनेन न्यायेन अघोषे प्रथमः। वर्गप्रथमास्तृतीयान्। बहुलमिन् भवति। ज्ञानमस्यास्तीति ज्ञानी। दण्डोऽस्यास्तीति दण्डी। शिखास्यास्तीति शिखी। देवोऽस्यास्तीति देवी। इत्यादि।

तदस्य संजातं तारकादेरितच् ॥५०८॥

तदिति प्रथमान्तादस्य संजातमित्यस्मिन्नर्थे तारकादेराकृतिगणात् पर इतच् प्रत्ययो भवति। तारका संजाता अस्येति तारकितं नभः। एवं कण्टकितः करः। पल्लवितो वृक्षः।

संख्यायाः पूरणे डमौ ॥५०९॥

संख्यायाः पूरणेऽर्थे डमौ भवतः। एकादशपर्यन्तं संख्या। ततः परमसंख्या॥ संख्यादेर्नान्ताया मो भवति। शेषायाश्च डो भवति। तत्कथं ? वाशब्दात्। वाशब्दः क्वास्ते ? वाणपत्ये इत्यत्र।

मत्वर्थ में तकार और सकार को तृतीयाक्षर नहीं होता है ॥५०७॥

इस सूत्र से सकार को तृतीय अक्षर नहीं हुआ पुनः "रेफसोर्विसर्जनीयः" इस १३०वें सूत्र से सकार को विसर्ग प्राप्त था किन्तु "सकृद् बाधितो विधिर्बाधित एव" जिसकी विधि एक बार बाधित कर दी जाती है वह बाधित ही रहता है पुनः उसमें दूसरी विधि भी बाधित ही रहती है जैसे सत्पुरुष का वचन एक होता है। अतः तेजस्वान् रहा है।

मत्वर्थ शब्द से क्या अर्थ लेना ? अस्ति का अर्थ लेना अर्थात् मत्वर्थ से कहे गये प्रत्यय अस्ति अर्थ के वाचक होते हैं।

माया अस्यास्तीति = मायावी, मायावान्। मेधावी, मेधावान्। स्रक् अस्यास्ति इति = स्रग्वी। स्रग्वान्।

"व्यंजनांतस्य यत्सुभोः" इस ४३०वें सूत्र के न्याय से और "चवर्ग दृगादीनां च" २५४वें सूत्र से स्रज् के ज् को गकार हो गया है।

'बहुलमिन् भवति' इस नियम के अनुसार ज्ञानम् अस्य अस्तीति ज्ञानिन्, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति के आने से 'ज्ञानी' बना।

दण्डो अस्यास्ति इति = दण्डी, शिखा अस्यास्तीति = शिखी।

देवो अस्यास्तीति, देविन् = देवी। इत्यादि।

'वह इसके हुआ' इस अर्थ में तारकादि शब्दों से 'इतच्' प्रत्यय होता है ॥५०८॥

'तत्' इस प्रथमान्त से 'इसके हुआ' इस अर्थ में तारका आदि आकृति गण से परे 'इतच्' प्रत्यय होता है। तारकाः संजाताः अस्य इति, तारका + जस्, विभक्ति का लोप होकर "इवर्णावर्णयोर्लोपः" इत्यादि सूत्र से आकार का लोप होकर लिंग संज्ञा होकर 'तारकितं' बना, इसका अर्थ है आकाश अर्थात् तारा उदित हो रहें जिसके ऐसा तारकित आकाश। ऐसे ही कण्टकाः संजाता अस्येति 'कण्टकितः' करः।

पल्लवाः संजाता अस्येति = पल्लवितः-वृक्षः।

संख्या के पूरण अर्थ में 'ड' और 'म' प्रत्यय होते हैं ॥५०९॥

एकादश पर्यंत संख्या कहलाती है इसके आगे असंख्या हो जाती है। संख्यादि नकारांत से 'म' प्रत्यय होता है और शेष संख्या से 'ड' प्रत्यय होता है। ऐसा क्यों ? 'वा' शब्द से ऐसा नियम है। 'वा' शब्द कहाँ है ? 'वाणपत्ये' ४७३वें सूत्र में 'वा' शब्द है उससे उपर्युक्त नियम समझ लेना चाहिये।

डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः ॥५१० ॥

डानुबन्धे प्रत्यये परे अन्त्यस्वरादेर्लोपो भवति । एकादशानां पूरण एकादश एकादशी एकादशं । द्वादशः एवं । अत्र आत्वं निपातः । त्रयोदशः । अत्र त्रयस्तु निपातः । चतुर्दशः । पञ्चदशः । पञ्चमः । पंचमी । पञ्चमं । एवं सप्तमः । अष्टमः । नवमः । दशमः । इत्यादि ।

द्वेस्तीयः ॥५११ ॥

द्वेस्तीयो भवति पूरणेऽर्थे । द्वयोः पूरणो द्वितीयः । द्वितीया । द्वितीयं ।

त्रेस्तृ च ॥५१२ ॥

त्रेस्तीयो भवति तृआदेशश्च पूरणेऽर्थे । त्रयाणां पूरणस्तृतीयः । तृतीया । तृतीयं ।

अन्तस्थो डे र्षोः ॥५१३ ॥

रेफषकारयोरन्तस्थो भवति डे परे । चतुर्णां पूरणश्चतुर्थः । चतुर्थी । चतुर्थं ।

तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः ॥५१४ ॥

षकारटवर्गान्तात्परस्य तवर्गस्य टवर्गो भवति आन्तरतम्यात् । षण्णां पूरणः षष्ठः षष्ठी षष्ठं ।

कतिपयात्कतेश्च ॥५१५ ॥

एकादशानां पूरणः, एकादशन् + आम् ड् अ । विभक्ति का लोप,

अनुबंध प्रत्यय के आने पर अन्त्यस्वरादि अवयव का लोप हो जाता है ॥५१० ॥

अतः अन् का लोप होकर एकादश् + अ = एकादश बना । लिंग संज्ञा होकर तीनों लिंगों की सि विभक्ति में एकादशः, एकादशी, एकादशं बन गया । ऐसे द्वादश शब्द बना है इसमें द्वि को 'आ' निपात से हुआ है अतः द्वादशः, द्वादशी, द्वादशं बना । त्रयोदशः में भी त्रय शब्द का निपात हुआ है । एवं चतुर्दशः, पंचदशः आदि बने हैं इनका अर्थ है ग्यारहवाँ, बारहवाँ आदि । आगे 'म' प्रत्यय से बने हैं । जैसे पंचानां पूरणः पंचन् + आम् म, विभक्ति और णकार का लोप होकर पञ्चम हुआ लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में 'पञ्चमः' बना, स्त्रीलिंग नपुंसक लिंग में पञ्चमी, पंचमं बना । एवं सप्तमः, अष्टमः, नवमः दशमः । इत्यादि ।

पूरण अर्थ में द्वि से 'तीय' प्रत्यय होता है ॥५११ ॥

द्वयोः पूरण, द्वि + ओस् तीय, विभक्ति का लोप, लिंग संज्ञा होकर, विभक्ति आने से "द्वितीयः द्वितीया, द्वितीयं" बना ।

त्रि को पूरण अर्थ में तृ आदेश होकर 'तीय' प्रत्यय हो जाता है ॥५१२ ॥

त्रयाणां पूरणः, त्रि + आम् विभक्ति का लोप होकर पूर्वोक्त विधि से 'तृतीयः' तृतीया, तृतीयं बना ।

'ड' प्रत्यय के आने पर रकार को षकार के अन्त में 'थ' हो जाता है ॥५१३ ॥

चतुर्णां, पूरणः, चत्वार् + आम् विभक्ति का लोप चत्वार, के वा को उकार होकर चतुर्थ रहा लिंग संज्ञा होकर विभक्तियों के आने से चतुर्थः, चतुर्थी, चतुर्थं बना ।

षकार और टवर्ग से परे तवर्ग को टवर्ग हो जाता है ॥५१४ ॥

और वह तवर्ग को टवर्ग क्रम से होता है जैसे यहाँ थ को ठ होगा । षण्णां पूरणः, षष् + आम् विभक्ति का लोप आदि होकर षष्ठः, षष्ठी, षष्ठं बना ।

कतिपय और कति शब्द से 'ड' प्रत्यय आने पर पूरण अर्थ में 'थ' प्रत्यय होता है ॥५१५ ॥

कतिपयात्कतेश्च पूरणेऽर्थे थो भवति डे परे । कतिपयानां पूरणः कतिपयथः । कतीनां पूरणः कतिथः । कतिपयथी । कतिथी । कतिपयथं । कतिथं ।

विंशत्यादेस्तमट् ॥५१६ ॥

विंशत्यादेस्तमट् प्रत्ययो भवति पूरणेऽर्थे । विंशतितमः । विंशतेः पूरणी विंशतितमी । विंशतितमं । त्रिंशतः पूरणः त्रिंशत्तमः । त्रिंशत्तमी । त्रिंशत्तमं । चत्वारिंशत्तमः । पंचाशत्तमः । उत्तरत्र नित्यग्रहणादिह विकल्पो लभ्यते । उत्तरत्र नित्यग्रहणं क्वास्ते ? नित्यं शतादेरित्यत्र । यत्र संख्या विद्यते तत्र विकल्पेन तमट् भवति ।

तेर्विंशतेरपि ॥५१७ ॥

विंशतेरपि तेर्लोपो भवति डानुबन्धे प्रत्यये परे । अपिशब्दात् अस्य लोपो भवति । विंशः । त्रिंशः । चत्वारिंशः । पञ्चाशः ।

नित्यं शतादेः ॥५१८ ॥

शतादेर्गणात् पूरणेऽर्थे नित्यं तमट् प्रत्ययो भवति । एकशतस्य पूरण एकशततमः । एकशततमी । एकशततमं । एकसहस्रस्य पूरण एकसहस्रतमः । एकसहस्रतमी । एकसहस्रतमं । एककोटितमः ।

षष्ट्याद्यतत्परात् ॥५१९ ॥

षष्ट्यादेरसंख्यायाः परात् पूरणेऽर्थे नित्यं तमट् भवति । षष्टेः पूरणः षष्टितमः । षष्टेः पूरणी षष्टितमी । षष्टितमं । सप्ततितमः । अशीतितमः । नवतितमः । अतत्परादिति किं ? एकषष्टेः पूरण एकषष्टः । एकषष्टितमः । यत्र संख्या विद्यते तत्र विकल्पेन तमट् प्रत्ययो भवति ।

कतिपयानां पूरणः = कतिपयथः, कतीनां पूरणः = कतिथः बना ।

विंशति आदि से पूरण अर्थ में 'तमट्' प्रत्यय होता है ॥५१६ ॥

विंशतेः पूरणः विंशति + ङस् = तम, विभक्ति का लोप होकर पूर्वोक्त सारी विधि से विंशतितमः, विंशतितमी, विंशतितमं । ऐसे ही त्रिंशतः पूरणः त्रिंशत् + ङस् तम, पूर्वोक्त विधि से त्रिंशत्तमः त्रिंशत्तमी, त्रिंशत्तमं बना । आगे चत्वारिंशत्तमः, पञ्चाशत्तमः इत्यादि । आगे नित्य शब्द ग्रहण किया गया है अतः यहाँ विकल्प समझना । आगे 'नित्य' शब्द किस सूत्र में है "नित्यं शतादेः" इस ५१८वें सूत्र में है । जहाँ संख्या है वहाँ विकल्प से तमट् प्रत्यय होता है ।

अनुबंध प्रत्यय के आने पर विंशति के 'ति' का लोप हो जाता है ॥५१७ ॥

अपि शब्द से शकार के अकार का भी लोप हो जाता है । अतः विंश रहा, लिंग संज्ञा के बाद सि विभक्ति में 'विंशः' बना । ऐसे ही त्रिंशः, चत्वारिंशः, पञ्चाशः इत्यादि ।

शतादि गण से पूरण अर्थ में नियम से 'तमट्' प्रत्यय होता है ॥५१८ ॥

एकशतस्य पूरणः = एकशततमः, एकशततमी, एकशततमं, एकसहस्रस्य पूरणः = एकसहस्रतमः, एककोटितमः इत्यादि ।

षष्टि आदि असंख्या से परे पूरण अर्थ में नित्य ही तमट् प्रत्यय होता है ॥५१९ ॥

षष्टेः पूरणः = षष्टितमः, षष्टितमी, षष्टितमं, सप्ततितमः, अशीतितमः, नवतितमः । सूत्र में अतत्पर-संख्या से परे न हो ऐसा क्यों कहा ? एकषष्टेः पूरणः = एकषष्टितमः और 'ड' प्रत्यय से एकषष्टः भी बन गया । मतलब जहाँ संख्या है वहाँ विकल्प से तमट् प्रत्यय होता है ।

विभक्तिसंज्ञा विज्ञेया वक्ष्यन्तेऽतः परन्तु ये।
येऽद्व्यादेः सर्वनाम्नस्ते बहोश्चैव पराः स्मृताः ॥३॥

अतः परं द्व्यादिवर्जितात्सर्वनाम्नः परा ये प्रत्यया वक्ष्यन्ते ते विभक्तिसंज्ञा विज्ञेयाः । तु पुनः । बहोश्चैव इति कोऽर्थः ? बहुशब्दात्पराः प्रत्ययाः कथिताः श्रुतत्वात्सर्वनाम्नः कार्यं प्रति विभक्तिसंज्ञा भवन्ति । तेन तदा कदा इति घोषवति न दीर्घः । तस्मिन् काले तदा "दादानीमौ तदः स्मृतौ" इति दा प्रत्ययः । कस्मिन्काले कदा । काले किं ? सर्वयदेकान्येभ्य एव दा इति दाप्रत्ययः । विभक्तिसंज्ञा इति विभक्तिकार्यं किं ? त्यदादित्वं अकारे लोपं । एकत्र । किं क इति कादेशः ।

पञ्चम्यास्तस् ॥५२०॥

पञ्चम्यन्तात् द्व्यादिवर्जितात्सर्वनाम्नो बहोश्च परस्तस् भवति । सर्वस्मात् सर्वतः । तस्-प्रत्ययान्ता अव्ययानि भाष्यन्ते । अव्ययाद्विभक्तेर्लोपः । तस्मात् ततः । यस्मात् यतः । बहुभ्यो बहुतः । एवं विश्वतः । उभयतः । अन्यतः । पूर्वतः । परतः । इत्यादि । अद्व्यादेरिति किं ? द्वाभ्यां । उगवादित इत्यत्र कथं, प्रयोगतश्चेति ज्ञापयति । तेन असर्वनाम्नोऽप्यवधिमात्रात्तस् वक्तव्यः असर्वनाम्नोऽपि परस्तस् प्रत्ययो भवति

श्लोकार्थ—इसके आगे द्वि आदि से वर्जित सर्वनाम से परे जो प्रत्यय कहे जायेंगे उन्हें विभक्ति-संज्ञक समझना चाहिये ।

पुनः 'बहोश्चैव' शब्द का क्या अर्थ है ? बहु शब्द से परे जो प्रत्यय कहे गये हैं वे सुने गये होने से सर्वनाम के कार्य के प्रति विभक्ति संज्ञक होते हैं । इससे तदा कदा, इनमें 'घोषवति' इत्यादि १४०वें सूत्र से दीर्घ नहीं हुआ है । तस्मिन् काले तदा, 'दादानीमौ तदः स्मृतौ' इस ५३२वें सूत्र से 'दा' प्रत्यय होता है । कस्मिन् काले कदा । काले ऐसा क्यों कहा ? "काले किं सर्वयदेकान्येभ्य एव दा" इस ५२९वें सूत्र से दा प्रत्यय होता है । विभक्ति संज्ञा इससे विभक्ति कार्य क्या हुआ ? 'त्यदाद्यत्वं' इस १७२वें सूत्र से अकार होकर लोप हुआ । एकत्र,'किं कः' से 'क' आदेश होता है ।

द्वि आदि से वर्जित सर्वनाम पञ्चम्यंत और बहु शब्द से परे तस् प्रत्यय होता है ॥५२०॥

'सर्वस्मात्' अर्थ में तस् प्रत्यय होकर सर्व + ङसि, तस् है । विभक्ति का लोप होकर लिंग संज्ञा होकर स् का विसर्ग हुआ पुनः सि विभक्ति आई सर्वतः + सि सूत्र लगा 'अव्ययाच्च' इस ___ सूत्र से विभक्ति का लोप हो गया । तस् प्रत्यय वाले सभी शब्द अव्यय कहे जाते हैं । तस्मात् तद् + ङसि, तस् 'त्यदादीनाम विभक्तौ' सूत्र १७२वें से 'अकारांत होकर 'ततः' बना । ऐसे ही यस्मात् = यतः, बहुभ्यो = बहुतः, विश्वतः, उभयतः अन्यतः पूर्वतः इत्यादि । सूत्र में द्वि आदि को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? द्वाभ्यां में तस् प्रत्यय नहीं होगा । "उगवादितः" इत्यादि सूत्र ___ में गवादि से तस् प्रत्यय कैसे हुआ ? तो आगे उसे बताते हैं ।

अवधि मात्र असर्वनाम से भी तस् प्रत्यय होता है ।[१]

यहाँ अवधि मात्र का क्या अर्थ है ? प्रयोग मात्र से तस् प्रत्यय होता है ऐसा अर्थ है । अतः इस सूत्र से अन्यत्र भी तस् प्रत्यय हो जाता है । ग्रामात्, ग्राम + ङसि, तस् विभक्ति का लोप होकर ग्रामतः, प्रयोगात् = प्रयोगतः, वृक्षात् = वृक्षतः, पटतः, घटतः इत्यादि । अस्मात् से तस् प्रत्यय हुआ है । अतः

---

१. यह वृत्ति में है ।

अवधिमात्रात्। अवधिमात्रादिति कोऽर्थः ? प्रयोगमात्रादित्यर्थः। इत्यनेन सूत्रेण तस्प्रत्ययो भवति। ग्रामात् ग्रामतः। प्रयोगात् प्रयोगतः। एवं वृक्षात् वृक्षतः। पटतः। घटतः।

तत्रेदमिः ॥५२१॥

तेषु विभक्तिसंज्ञकेषु प्रत्ययेषु परत इदम् इकारतां प्राप्नोति। अस्मात् इतः।

तेषु त्वेतदकारताम् ॥५२२॥

तेषु तकारादिषु विभक्तिसंज्ञकेषु परत एतद्शब्द अकारतां प्राप्नोति। एतस्मात् अतः। तकारादिष्विति किं ? एतेन प्रकारेण एतधा।

तहोः कुः ॥५२३॥

तकारहकारयोः परयोः किंशब्दः कुर्भवति। कस्मात् कुतः।

त्रः सप्तम्याः ॥५२४॥

सप्तम्यन्ताद् द्वयादिवर्जितात्सर्वनाम्नो बहोश्च परतः त्रप्रत्ययो भवति। सर्वस्मिन् सर्वत्र। एतस्मिन् अत्र। कस्मिन् कुत्र। अमुष्मिन् अमुत्र। तस्मिन् तत्र। यस्मिन् यत्र। बहुषु बहुत्र। अद्वयादेरिति किं ? द्वयोः। त्वयि। मयि। इत्यादि।

आद्यादिभ्यः सप्तम्यन्तेभ्यश्च ॥५२५॥

सप्तम्यन्तेभ्य आद्यादिभ्यश्च परस्तस् प्रत्ययो भवति। आदौ आदितः। एवं मध्ये मध्यतः। अन्ते अन्ततः। अग्रे अग्रतः। मुखे मुखतः। पृष्ठे पृष्ठतः। पार्श्वे पार्श्वतः। पूर्वे पूर्वतः। परे परत इत्यादि।

विभक्ति का लोप होने से विभक्ति के आश्रित जो इदम् को 'अ' हुआ था वह भी 'निमित्त के अभाव में नैमित्तिक का अभाव हो जाता है' इस नियम से इदम् रह गया है इदम् = तस् है।

इन विभक्ति संज्ञक प्रत्ययों के आने पर इदं को 'इ' हो जाता है ॥५२१॥

तब 'इतः' बना। एतस्मात् से तस् प्रत्यय हुआ है।

उन तकारादि विभक्ति संज्ञकों के आने पर एतद् शब्द को अकार हो जाता है ॥५२२॥

एतस्मात् = अतः बन गया। तकार आदि वाली विभक्तियों के आने पर ऐसा क्यों कहा ? तो एतेन प्रकारेण से प्रकार अर्थ में धा प्रत्यय होने से 'एतधा' बना यहाँ धकार आदि विभक्ति होने से एतद् को 'अ' नहीं हुआ है।

तकार, हकार से परे किं शब्द को 'कु' आदेश हो जाता है ॥५२३॥

कस्मात् = कुतः,

सप्तम्यंत से परे 'त्र' प्रत्यय होता है ॥५२४॥

द्वि आदि वर्जित सप्तम्यंत सर्वनाम और बहु शब्द से परे 'त्र' प्रत्यय होता है। सर्वस्मिन् त्र, सर्व + ङि, त्र विभक्ति का लोप होकर सर्वत्र हुआ। इसमें भी लिंग संज्ञा होकर सि आदि विभक्तियाँ आयेंगी पुनः 'अव्ययाच्च' सूत्र से विभक्ति का लोप हो जावेगा क्योंकि ये सभी प्रत्यय अव्ययसूचक हैं।

एतस्मिन् = अत्र, कस्मिन् = कुत्र, अमुस्मिन् = अमुत्र, तस्मिन् = तत्र, यस्मिन् = यत्र, बहुषु = बहुत्र। द्वि आदि को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? द्वयोः, त्वयि, मयि, इनमें त्र प्रत्यय नहीं होता है।

सप्तम्यंत आदि प्रभृति शब्दों से परे तस् प्रत्यय होता है ॥५२५॥

आदौ = आदितः, मध्ये = मध्यतः, अंते = अंततः, अग्रे = अग्रतः, मुखे = मुखतः, पृष्ठे = पृष्ठतः, पार्श्वे = पार्श्वतः, पूर्वे-पूर्वस्मिन् वा पूर्णतः परे परस्मिन् वा = परतः इत्यादि।

इदमो हः ॥५२६ ॥

इदमः सप्तम्यन्तात् हो भवति। त्रापवादः। अस्मिन् इह।

किमः ॥५२७ ॥

किमः सप्तम्यन्तात् हो भवति। कस्मिन् कुह।

अत् क्व च ॥५२८ ॥

किमः सप्तम्यन्तात् अद् भवति क्वादेशश्च। कस्मिन् क्व।

काले किंसर्वयदेकान्येभ्य एव दा ॥५२९ ॥

काले वर्तमानेभ्यः सप्तम्यन्तेभ्य एभ्यो दा भवति। कस्मिन् काले कदा। एवं सर्वदा। यदा। एकदा। अन्यदा। काल इति किं ? सर्वत्र देशे। सदा इति निपातः। सर्वशब्दात्परो दाप्रत्ययो भवति। सर्वस्य सभावश्च। सर्वस्मिन्काले सदा।

इदमोर्ह्यधुनादानीम् ॥५३० ॥

काले वर्तमानात्सप्तम्यन्तादिदमः परा र्हि अधुना दानीम् एते प्रत्यया भवन्ति।

रथारेतेत् ॥५३१ ॥

रथोः परत इदम् शब्द एत इत् इत्येतौ प्राप्नोति। अस्मिन् काले एतर्हि। इवर्णावर्णयोर्लोपः। अधुना। इदानीम्। इत्थम्।

सप्तम्यंत इदं से 'ह' प्रत्यय होता है ॥५२६ ॥

यहाँ त्र प्रत्यय का अपवाद हो गया है। अस्मिन्=इह

सप्तम्यंत किम् से 'ह' प्रत्यय होता है ॥५२७ ॥

कस्मिन् 'कुह' बन गया।

सप्तम्यंत किं से परे 'अत्' प्रत्यय हो जाता है और किम् को 'क्व' आदेश हो जाता है ॥५२८ ॥

कस्मिन्, क्व+अ है ४७९वें सूत्र से क्व के 'अ' का लोप होकर प्रत्यय मिलकर 'क्व' बन गया।

काल अर्थ में वर्तमान किं आदि सप्तम्यंत शब्दों से 'दा' प्रत्यय होता है ॥ ५२९ ॥

कस्मिन् काले किं को क आदेश होकर 'कदा' सर्वस्मिन् काले सर्वदा, यस्मिन् काले यदा, एकस्मिन् काले एकदा, अन्यस्मिन् काले अन्यदा। काल अर्थ में ऐसा क्यों कहा ? तो सर्वस्मिन् देशे इस अर्थ में दा प्रत्यय नहीं हुआ।

सर्व शब्द से परे दा प्रत्यय होता है और सर्व को 'स' निपात हो जाता है।[1]

सर्वस्मिन् काले 'सदा' बन गया।

सप्तम्यंत इदं शब्द से काल अर्थ में र्हि अधुना और दानीम् प्रत्यय होता है ॥ ५३० ॥

र और थ से परे इदम् को एत, इत् आदेश हो जाता है ॥ ५३१ ॥

अस्मिन् काले एतर्हि, इत्+अधुना "इवर्णावर्णः" ४७९ वें सूत्र से इकार का लोप होकर 'अधुना' बना।

---

१. यह वृत्ति में है।

दादानीमौ तदः स्मृतौ ॥५३२॥

काले वर्त्तमानात्सप्तम्यन्तात्तदः परौ दादानीमौ स्मृतौ। तस्मिन् काले तदा। तदानीं।

सद्यआद्या निपात्यन्ते ॥५३३॥

सद्यआद्याः शब्दाः कालेऽभिधेये निपात्यन्ते। लक्षणसूत्रमन्तरेण लोकप्रसिद्धशब्दरूपोच्चारणं निपातनं। समाने अहनि सद्यः। समानस्य सभावो द्यश्च परविधिः। अस्मिन्नहनि अद्य। इदमो अद्भावोद्य च परविधिः। पूर्वस्मिन् संवत्सरे परुत्। पूर्वतरस्मिन् संवत्सरे परारि।

पूर्वपूर्वतरयोः पर उदारी च संवत्सरे॥ ५३४॥

पूर्वपूर्वतरयोः उत्आरी च भवतः। चशब्दात्पर आदेशश्च संवत्सरेऽर्थे।

इदमः समसण् ॥ ५३५॥

सप्तम्यन्तादिदमः समसण् प्रत्ययो भवति संवत्सरेऽर्थे। अस्मिन्संवत्सरे ऐषमः।

पूर्वादिरेद्युस् ॥ ५३६॥

सप्तम्यन्तात्पूर्वादिर्गणात् पर एद्युस् प्रत्ययो भवति। पूर्वस्मिन्नहनि पूर्वेद्युः। एवं परेद्युः। अन्येद्युः। अन्यतरेद्युः। इतरेद्युः। कतरेद्युः। अपरेद्युः।

उभयाद् द्युश्च ॥ ५३७॥

काल अर्थ में सप्तम्यंत तद् से परे 'दा' दानीम् प्रत्यय होते हैं॥ ५३२॥

तस्मिन् काले तद् को 'त्यदादीनामविभक्तौ' से त होकर 'तदा, तदानीम्' बना।

सद्य, अद्य शब्द निपात से सिद्ध होते हैं॥५३३॥

सद्य अद्य शब्द काल अर्थ में निपात से सिद्ध हो जाते हैं व्याकरण सूत्र के बिना लोक प्रसिद्ध शब्द रूप का उच्चारण निपात कहलाता है। जैसे समाने अहनि सद्यः यहाँ समान को 'स' आदेश एवं आगे द्यः आदेश होकर 'सद्यः' बना है। अस्मिन् अहनि अद्य इदम् को 'अ' आदेश और 'द्य' विधि होकर 'अद्य' बना है।

संवत्सर अर्थ में पूर्व और पूर्वतर को पर आदेश होकर क्रम से आगे उत् और आरि हो जाता है॥ ५३४॥

पर + उत्, पर + आरि "इवर्णावर्णयोर्लोपः' इत्यादि से अकार का लोष होकर परुत् परारि बना।

सप्तम्यंत इदं शब्द से समसण् प्रत्यय होता है॥ ५३५॥

अस्मिन् संवत्सरे अर्थ में इदम् + ङि समसण् के अण् का अनुबंध लोप होकर इदम् को 'इ' आदेश होकर णानुबंध से वृद्धि होकर ऐसमस् बना सकार को षकार एवं स को विसर्ग होकर 'ऐषमः' बना।

सप्तम्यंत पूर्वादि गण से परे 'एद्युस्' प्रत्यय होता है॥ ५३६॥

पूर्वस्मिन् अहनि पूर्व + ङि विभक्ति का लोप एवं अकार का लोप होकर पूर्वेद्युः बना। ऐसे ही परस्मिन् अहनि परेद्युः, अन्यस्मिन् अहनि अन्येद्युः अन्यतरस्मिन् अहनि-अन्यतरेद्युः इतरस्मिन् अहनि, इतरेद्युः, कतरेद्युः, अपरेद्युः बना।

सप्तम्यंत उभय शब्द से परे द्युस् प्रत्यय होता है॥ ५३७॥

सप्तम्यन्तादुभयशब्दात्परो द्युस् भवति। चकारात् एद्युस् भवति। उभयस्मिन्नहनि उभयेद्युः। उभयद्युः।

परादेरेद्यविस् ॥५३८॥

परादेर्गणात्पर एद्यविस् प्रत्ययो भवति। परस्मिन्नहनि परेद्यविः। एवमन्येद्यविः। अन्यतमेद्यविः। इत्यादि।

प्रकारवचने तु था ॥ ५३९॥

अद्व्यादेः सर्वनाम्नः प्रकारवचने तु था भवति। प्रकारशब्दः सदृशार्थो विशेषार्थश्च। सामान्यभेदकः प्रकारः। सर्वेण प्रकारेण सर्वथा। एवमन्यथा। यथा। तथा। उभयथा। पूर्वथा। अपरथा। वाक्यार्थविशेषण सर्वविभक्तिभ्यो ज्ञेयः थाप्रत्ययः। सर्वस्मिन् प्रकाराय यदि वा सर्वस्मिन् प्रकारे सर्वथा इत्यादि।

संख्यायाः प्रकारे धा ॥ ५४०॥

संख्यायाः परः प्रकारवचने धा भवति। चतुर्भिः प्रकारैः चतुर्धा। एवं द्विधा। एकधा। बहुभिः प्रकारैर्बहुधा। पञ्चधा। षोढा। षट्प्रकारा अस्य इति विग्रहः।

षष् उत्वम् ॥५४१॥

षष्शब्दस्यान्त उत्वं भवति। सप्तधा। अष्टधा। नवधा। दशधा। सहस्रधा। लक्षधा। कोटिधा।

द्वित्रिभ्यां धमणेधा च ॥५४२॥

द्वित्रिभ्यां परो धमण् एधा च प्रत्ययौ भवतः प्रकारवचने। द्वैधं। त्रैधं। द्वेधा। त्रेधा।

चकार से एद्युस् प्रत्यय होता है। उभयस्मिन् अहनि उभयेद्युः, उभयद्युः।

परादि गण से परे एद्यविस् प्रत्यय होता है॥ ५३८॥

परस्मिन् अहनि परेद्यविः। ऐसे ही अन्येद्यविः अन्यतमेद्यविः इत्यादि।

द्वि आदि से रहित सर्वनाम से प्रकार अर्थ में 'था' प्रत्यय होता है॥ ५३९॥

प्रकार शब्द सदृश अर्थवाची और विशेष अर्थवाची है। सामान्य में भेद करने वाले को प्रकार कहते हैं। सर्वेण प्रकारेण, सर्व + टा, था विभक्ति का लोप होकर 'सर्वथा' बना। इसी प्रकार से अन्यथा, येन प्रकारेण, यथा, तथा, उभयथा, पूर्वथा, अपरथा आदि बन गये। वाक्य अर्थ की विशेषता से सभी विभक्तियों से 'था' प्रत्यय हो जाता है। जैसे सर्वस्मै प्रकाराय अथवा सर्वस्मिन् प्रकारे सर्वथा बन गया इत्यादि।

संख्या से परे प्रकार अर्थ में 'धा' प्रत्यय होता है॥ ५४०॥

चतुर्भिः प्रकारैः चतुर्धा, द्वाभ्यां प्रकाराभ्यां = द्विधा, एकेन प्रकारेण = एकधा, बहुभिः प्रकारैः बहुधा, पञ्चधा। इत्यादि। षट् प्रकारा ऐसा विग्रह है षष् + जस् विभक्ति का लोप हुआ।

षष् शब्द के अंत को उकार हो जाता है॥ ५४१॥

ष उ धा संधि होकर एवं तवर्ग को ५२२वें सूत्र में ट वर्ग होकर धा को ढा हुआ अतः 'षोढा' बना। ऐसे ही सप्तधा, अष्टधा, नवधा, दशधा, शतधा, सहस्रधा, लक्षधा, कोटिधा।

द्वि, त्रि से परे प्रकार अर्थ में धमण् और एधा प्रत्यय होता है॥ ५४२॥

धमण् के अण् का अनुबंध होकर णानुबंध के निमित्त से वृद्धि होकर द्वैधं, त्रैधं बना। एधा प्रत्यय से 'इवर्णावर्णयोर्लोपः' इत्यादि से इवर्ण का लोप होकर द्वेधा, त्रेधा बना।

इदंकिंभ्यां थमुः कार्यः ॥ ५४३ ॥

इदंकिंभ्यां परः थमुः कार्यः प्रकारवचने। अनेन प्रकारेण इत्थं। केन प्रकारेण कथम्।

आख्याताच्च तमादयः ॥ ५४४ ॥

नाम्न आख्याताच्च परास्तमादयः प्रत्यया भवन्ति।

प्रकृष्टे तमतररूपाः ॥५४५ ॥

प्रकृष्टार्थे एते प्रत्यया भवन्ति। प्रकृष्ट आढ्यः आढ्यतरः आढ्यतमः आढ्यरूपः। एवं वैयाकरणतमः वैयाकरणतरः वैयाकरणरूपः। पचतितमः पचतितरः पचतिरूपः।

ईषदसमाप्तौ कल्पदेश्यदेशीयाः ॥ ५४६ ॥

ईषदपरिसमाप्तौ अर्थे कल्पदेश्यदेशीया एते प्रत्यया भवन्ति। ईषदपरिसमाप्तः पटुः पटुकल्पः। पटुदेश्यः। पटुदेशीयः। पचतिकल्पः। पचतिदेश्यं। पचतिदेशीयं। पचतिकल्पं। [एतौ अव्ययौ पुल्लिंगौ। अयं नपुंसकलिंगः पचतिरूपं]।

कुत्सितवृत्तेर्नाम्नः पाशः ॥५४७ ॥

कुत्सितवृत्तेर्नाम्नः परः पाशः प्रत्ययो भवति। कुत्सितो वैयाकरणो वैयाकरणपाशः।

भूतपूर्ववृत्तेर्नाम्नश्चरट् ॥ ५४८ ॥

भूतपूर्ववृत्तेर्नाम्नः परश्चरट् प्रत्ययो भवति। टकारः षणटकारानुबन्धादिति विशेषणाऽर्थः। भूतपूर्व आढ्यः आढ्यचरः। आढ्यचरी। आढ्यचरं। भूतपूर्वो राजा राजचरः। भूतपूर्वा राज्ञी राजचरी। एवं देवचरः। देवचरी।

इदं किं से प्रकार अर्थ में थमु प्रत्यय होता है ॥ ५४३ ॥

अनेन प्रकारेण इदम् को ५४१ सूत्र से इत् होकर इत्थं बना, किं को 'क' होकर कथं बना।

आख्यात नाम से परे तम आदि प्रत्यय होते हैं ॥ ५४४ ॥

प्रकृष्ट अर्थ में तम, तर और रूप ये प्रत्यय होते हैं ॥ ५४५ ॥

प्रकृष्टः आढ्यः, आढ्यतरः, आढ्यतमः, आढ्यरूपः। ऐसे ही वैयाकरणतमः, वैयाकरणतरः, वैयाकरणरूपः बना। सभी जगह प्रकृष्ट अर्थ में ये प्रत्यय हो जाते हैं। पचतितमः, पचतितरः। पचति के पहले के दो अव्यय पुल्लिग हैं। और पचतिरूपं, यह नपुंसकलिंग है।

पूर्णता में किंचित् कमी न रहने से कल्प, देश्य और देशीय प्रत्यय होते हैं ॥५४६ ॥

ईषत् अपरिसमाप्तः—किंचित् कम पटु है। ईषत् अपरिसमाप्तः पटुः = पटुकल्पः, पटुदेश्यः, पटुदेशीयः। ऐसे ही पचतिकल्पः, पचतिदेश्यः, पचतिदेशीयः बना। (आचार्य से किंचित् कम = आचार्यकल्पः चन्द्रसागरः इत्यादि)।

कुत्सित शब्द से परे पाश प्रत्यय होता है ॥ ५४७ ॥

कुत्सितः वैयाकरणः = वैयाकरणपाशः बना।

भूतपूर्व वृत्ति वाले नाम से परे 'चरट्' प्रत्यय होता है ॥ ५४८ ॥

यहाँ प्रत्यय में टकार शब्द "षणटकारानुबंधात्" इसमें विशेषण के लिये है मतलब टकारानुबंध से जो कार्य होता है। सो यहाँ हो जायेगा। भूतपूर्वः आढ्यः—जो पहले धनी था अब नहीं है इस अर्थ में आढ्यचरः, स्त्रीलिंग में—आढ्यचरी, नपुंसक में आढ्यचरं। ऐसे ही भूतपूर्वो राजा = राजचरः राजचरी, देवचरः देवचरी इत्यादि।

बह्वल्पार्थात्कारकाच्छस्वा मङ्गले गम्यमाने ॥ ५४९ ॥

बह्वर्थात् अल्पार्थाच्च परः शसप्रत्ययो वा भवति मङ्गले गम्यमाने। बहून् देहि। बहुशो देहि। एवं अल्पशो, देहि अल्पं देहि। स्तोकशो देहि, स्तोकं देहि। शतशो देहि, शतं देहि। सहस्रशो देहि, सहस्रं देहि। लक्षशो याचते, लक्षं याचते।

वारस्य संख्यायाः कृत्वसुच् ॥ ५५० ॥

वारस्य संबन्धिन्याः संख्यायाः परः कृत्वसुच् प्रत्ययो भवति। उकार उच्चारणार्थः। कृत्वसुच्प्रत्ययान्ता अव्ययानि स्युः। पञ्च वारान् भुङ्क्ते पञ्चकृत्वः। एवं गणकृत्वः। कतिकृत्वः। बहुकृत्वः। एवं सप्तकृत्वो गच्छति। दशकृत्वो ददाति। शतकृत्वो याचते। सहस्रकृत्वो मन्यते इति।

द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच् ॥ ५५१ ॥

वारस्य संबन्धिभ्यो द्वित्रिचतुर्भ्यः परः सुच् प्रत्ययो भवति। द्वौ वारौ भुङ्क्ते द्विर्भुङ्क्ते। त्रिर्भुङ्क्ते। चतुर्भङ्क्ते।

संख्याया अवयवान्ते तयट् ॥ ५५२ ॥

संख्याया अवयवान्तार्थे तयट् प्रत्ययो भवति। द्वौ अवयवौ यस्य असौ द्वितयः। त्रितयः। चतुष्टयः। पञ्चतयः। सप्ततयः।

परिमाणे तयट् ॥ ५५३ ॥

परिमाणेऽर्थे तयट् प्रत्ययो भवति। चत्वारि परिमाणानि यस्य चतुष्टयं। एवं द्वितयं त्रितयं।

द्वित्रिभ्यामयट् ॥ ५५४ ॥

बहु अर्थ से और अल्प अर्थ से परे मंगल अर्थ गम्यमान होने पर शस् प्रत्यय विकल्प से हो जाता है ॥ ५४९ ॥

बहून् देहि—बहुत देवो, उसमें बहुशः, अल्पशः। स्तोकं देहि, स्तोकशः शतशः, सहस्रशः, लक्षशः इत्यादि।

वार अर्थ में संख्या से परे 'कृत्वसुच्' प्रत्यय होता है ॥ ५५० ॥

यहाँ प्रत्यय में उकार उच्चारण के लिये है। कृत्वसुच् प्रत्यय वाले शब्द अव्यय हो जाते हैं। पञ्चवारान् भुङ्क्ते = पञ्चकृत्वः एवं गणकृत्वः, कतिकृत्वः, बहुकृत्वः, सप्तकृत्वः, दशकृत्वो ददाति दस बार देता है। शतकृत्वो याचते सौ बार माँगता है। सहस्रकृत्वो मन्यते हजार बार मानता है।

वार अर्थ में द्वि, त्रि, चतुर् से परे सुच् प्रत्यय होता है ॥ ५५१ ॥

द्वौ वारौ भुंक्ते = द्विः भुंक्ते, त्रि, चतुः बन गया।

संख्या के अवयव अर्थ के अन्त में 'तयट्' प्रत्यय होता है ॥ ५५२ ॥

द्वौ अवयवौ यस्य असौ द्वि + ओ तय, द्वितयः, त्रितयः, चतुष्टयः, पञ्चतयः, सप्ततयः इत्यादि।

परिमाण अर्थ में तयट् प्रत्यय होता है ॥ ५५३ ॥

चत्वारि परिमाणानि यस्य चतुष्टयं, द्वितयं, त्रितयं।

द्वि त्रि से परे समूह अर्थ में 'अयट्' प्रत्यय होता है ॥ ५५४ ॥

द्वित्रिशब्दाभ्यां परोऽयट् प्रत्ययो भवति समूहेऽर्थे। द्वयोः समूहः द्वयं। त्रयाणां समूहः त्रयं। उत्सेधमानं तिर्यग्मानमिति द्विविधं मानं।

मात्रट्॥ ५५५॥

परिमाणे मात्रट् प्रत्ययो भवति। ऊरुःप्रमाणमस्य ऊरुमात्रमुदकं। ऊरुमात्री परिखा।

यत्तदेतद्भ्यो डावन्तु॥ ५५६॥

यद् तद् एतद् इत्येतेभ्यः परो डावन्तु प्रत्ययोः भवति परिमाणेऽर्थे। उकार उच्चारणार्थः। यत्परिमाणमस्य यावान्। एवं तावान्। एतावान्।

किमो डियन्तुः॥ ५५७॥

किमः शब्दात्परो डियन्तु प्रत्ययो भवति परिमाणेऽर्थे। किं परिमाणमस्य कियान्।

इदमः॥ ५५८॥

इदमः परो डियन्तु प्रत्ययो भवति परिमाणेऽर्थे। इदं परिमाणमस्य इयान्।

अभूततद्भावे कृभ्वस्तिषु विकारात् च्विः॥ ५५९॥

अभूततद्भावे विकारात् च्विप्रत्ययो भवति कृभ्वस्तिषु परतः।

द्वयोः समूहः-द्वि + अयट् 'इवर्णावर्णयोर्लोपः' इत्यादि इवर्ण का लोप करके द्वयं, त्रयाणां समूहः त्रयं बना।

मान के दो भेद हैं। उत्सेधमान और तिर्यग्मान-अर्थात् ऊँचाई का प्रमाण और चौड़ाई का प्रमाण। मान को परिमाण भी कहते हैं।

परिमाण अर्थ में मात्रट् प्रत्यय होता है॥ ५५५॥

उरू प्रमाणं अस्य उरुमात्रं—जलं, उरुमात्री—परिखा।

यत् तत् एतद् शब्द से परिमाण अर्थ में 'डावन्तु' प्रत्यय होता है॥ ५५६॥

यहाँ उकार उच्चारण है। यद् डावन्तु "डानुबंधेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' ५१०वें सूत्र से यद् के अद् का लोप होकर यावन्त बना। ऐसे ही तावन्त् एतावन्त् हैं लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आने से 'यावान् तावान् एतावान्' बन गया।

किम् शब्द से मान अर्थ में 'डियन्तु' प्रत्यय होता है॥ ५५७॥

किं परिमाणं अस्य डानुबंध से इम् का लोप होकर कियान् बना।

इदं शब्द से मान अर्थ में डियन्तु प्रत्यय होता है॥ ५५८॥

इदं परिमाणं अस्य यहाँ इदं को इन् होकर 'इवर्णावर्णः' इत्यादि से इकार का लोप होकर इयन्त् + सि = इयान् बना।

अभूत के तद्भाव अर्थ में कृ, भू, अस् धातु आने पर विकार अर्थ में 'च्वि' प्रत्यय होता है॥ ५५९॥

जो जिस रूप नहीं है पुनः उस रूप होता है उसे अभूत तद्भाव कहते हैं और इसे ही विकार कहते हैं जैसे अशुक्लं शुक्लं करोति—जो श्वेत नहीं है उसे श्वेत करता है। यहाँ शुक्ल + अम् है विभक्ति का लोप होकर

च्वौ चावर्णस्य ईत्वम् ॥ ५६० ॥

अवर्णस्य ईत्वं भवति च्वौ परे। सर्वापहारी प्रत्ययस्य लोपः। च्विप्रत्यये परे पूर्वस्वरस्य दीर्घः शुक्लीकरोति। दीर्घीभवति। पुत्रीस्यात्। पटूस्यात्। कवीकरोति। कवीभवति। कवीस्यात्। मात्रीकरोति। मात्रीभवति। मात्रीस्यात्।

ऊर्ध्वे दघ्नट्द्वयसटौ च ॥ ५६१ ॥

ऊर्ध्ववाचिनि प्रमाणेऽर्थे दघ्नट्द्वयसटौ प्रत्ययौ भवतः। चशब्दान्मात्रट् भवति। ऊरुः प्रमाणमस्य ऊरुदघ्नं। ऊरुद्वयसं। ऊरुमात्रमुदकं।

हस्तिपुरुषादण् च ॥ ५६२ ॥

हस्तिन् पुरुष इत्येताभ्यां मानेऽर्थेऽण् भवति। चशब्दान्मात्रट् दघ्नट् द्वयसट् च भवंति। हस्ती प्रमाणमस्य हास्तिनं। हस्तिमात्रं। हस्तिदघ्नं। हस्तिद्वयसं। पुरुषः प्रमाणमस्य पौरुषं। पुरुषमात्रं। पुरुषदघ्नं। पुरुषद्वयसम्। उदकमित्यर्थः।

प्रस्तुतवृत्तेर्मयट् ॥ ५६३ ॥

प्रस्तुतवृत्तेर्नाम्नः परो मयट् प्रत्ययो भवति। सुवर्णं प्रस्तुतं सुवर्णमयं। एवमन्नं प्रस्तुतमन्नमयं। भस्ममयं। यदि वा अन्नं प्रस्तुतमत्र अन्मयः कायः। अन्नं प्रस्तुतमत्र अन्नमयं जीवनं। भस्म प्रस्तुतमत्र भस्ममयं पाकस्थानं। भस्ममयो मठः। भस्ममयी तपस्विनी। भस्ममयी तनुः।

च्वि प्रत्यय के आने पर अवर्ण को 'ई' हो जाता है ॥ ५६० ॥

एवं 'च्वि' प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो जाता है। च्वि प्रत्यय से परे पूर्व के अवर्ण को तो 'ई' होता है तथा पूर्व के अन्य स्वरों को दीर्घ हो जाता है। अतः शुक्लीभवति अदीर्घोदीर्घो भवति इति दीर्घी भवति, अपुत्रः पुत्रः स्यात् इति पुत्रीस्यात् इनमें अवर्ण को 'ई' हुआ है। अपटुः पटुः स्यात् इति पटूस्यात यहाँ पूर्वस्वर को दीर्घ हुआ है। ऐसे ही अकविः कविः स्यात् = कवीस्यात्, अकविं कविं करोति इति कवीकरोति। मात्रीकरोति, मात्रीभवति, मात्रीस्यात् इत्यादि रूप बन गये।

ऊर्ध्ववाची मान अर्थ में 'दघ्नट्' और 'द्वयसट्' प्रत्यय होते हैं ॥ ५६१ ॥

चकार से मात्रट् प्रत्यय भी होता है। उरु प्रमाणं अस्य उरुदघ्नं, उरुद्वयसं, उरुमात्रं बन गये। नदी, तालाब आदि के जल के मापने अर्थ में ये प्रत्यय होते हैं।

हस्तिन् और पुरुष शब्द से मान अर्थ में 'अण्' होता है ॥ ५६२ ॥

च शब्द से मात्रट्, दघ्नट् द्वयसट् प्रत्यय भी होते हैं। हस्ती प्रमाणं अस्य हस्तिन् + सि विभक्ति का लोप होकर णानुबन्ध से पूर्व स्वर को वृद्धि होकर हास्तिनं, हस्तिदघ्नं, हस्तिद्वयसं, हस्तिमात्रं बन गये। ऐसे ही पुरुषः प्रमाणं अस्य है—पुरुष + सि विभक्ति का लोप होकर णानुबंध से वृद्धि होकर पौरुषं, पुरुषमात्रं, पुरुषदघ्नं, पुरुषद्वयसं बन गये। प्रमाणसूचक शब्द जल आदि के लिये हैं।

प्रस्तुतवृत्ति वाले शब्द से परे 'मयट्' प्रत्यय होता है ॥ ५६३ ॥

सुवर्णं प्रस्तुतं सुवर्ण + सि विभक्ति का लोप होकर सुवर्णमयं बना। ऐसे ही अन्नं प्रस्तुतं = अन्नमयं, भस्ममयं अथवा अन्नं प्रस्तुतं अत्र अन्नमयः कायः, अन्नं प्रस्तुतं अत्र अन्नमयं जीवनं, भस्मप्रस्तुतं अत्र भस्ममयं पाकस्थानं भस्ममयो मठः, भस्ममयी तपस्विनी, भस्ममयी तनुः। तीनों लिंगों में बन जाते हैं।

न य्वोः पदाद्योर्वृद्धिरागमः ॥ ५६४ ॥

इह प्रतिषेधो विधिश्च गम्यते। आदिशब्दः समीपवचनः। इश्च उश्च यू तयोर्य्वोः स्वराणामाद्योः स्वरात्पूर्वयोरिकारोकारयोर्वृद्धिर्न भवति तयोरादौ वृद्धिरागमो भवति णकारानुबन्धे तद्धिते प्रत्यये परे। स्थानेन्तरतंम इति न्यायाद् यकारस्य ऐकारः वकारस्य औकारः। व्याकरणं वेत्ति अधीते वा वैयाकरणः। द्वारे नियोगो यस्येति दौवारिकः। य्वोरिति किं ? महानसे नियोगोऽस्येति माहानसिकः। इत्यादि।

सन्धिर्नाम समासश्च तद्धितश्चेति नामतः।
चतुष्कमिति तत्प्रोक्तमित्येतच्छर्ववर्मणा॥ १॥
भावसेनत्रिविद्येन वादिपर्वतवज्रिणा।
कृतायां रूपमालायां चतुष्कं पर्यपूर्यत॥ २॥

स्वर से पूर्व इकार उकार की वृद्धि नहीं होती है किंतु इन दोनों की आदि में वृद्धि का आगम होता है॥ ५६४॥

यहाँ प्रतिषेध और विधि दोनों जानी जाती हैं। सूत्र में आदि शब्द समीपवाची हैं। 'य्वोः' की व्युत्पत्ति दिखाते हैं।

इश्च उश्च—इ और उ की संधि करने में "इवर्णो यमसवर्णे इत्यादि" सूत्र से इ को य् होकर उ मिलकर 'यु' बना उसका रूप चलाने से भानु शब्दवत् द्विवचन में 'यू' बना है इसी को षष्ठी का द्विवचन 'य्वोः' बन गया है। यदि 'ई' और 'उ' स्वरों की आदि में हैं ऐसे स्वर से पूर्व वाले इकार और उकार को वृद्धि नहीं होती है प्रत्युत णकारानुबंध तद्धित प्रत्यय के आने पर वृद्धि इन दोनों की आदि में वृद्धि का आगम हो जाता है। 'स्थानेऽन्तरतमः' इस न्याय से यकार को 'ऐकार' एवं वकार को 'औकार' हो जाता है। जैसे—व्याकरणं वेत्ति अधीते वा—व्याकरण को जानता है अथवा पढ़ता है। इसमें अण् प्रत्यय होकर व्याकरण के यकार के पूर्व 'ऐकार' का आगम होकर हलंत व् में मिलने से 'वैयाकरणः' बना। द्वारे नियोगो अस्य-द्वार पर रहने का है नियोग जिसका इस अर्थ में इकण् प्रत्यय होकर द्वार में वकार के पूर्व 'औ' का आगम होकर दकार में मिलने से दौवार + इकण् रहा 'इवर्णावर्णयोर्लोपः' इत्यादि से रकार के अकार का लोप लोकर लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति 'दौवारिकः' बन गया।

सूत्र में 'य्वोः' शब्द क्यों दिया ? महान से नियोगो अस्य रसोईघर में नियोग है इसका इस अर्थ में इकण् प्रत्यय से वृद्धि होकर 'माहानसिकः' बना है। किंतु पूर्व में इकार उकार न होने से वृद्धि का आगम नहीं हुआ है। यहाँ यह बात ध्यान में रखना चाहिये कि आगम शत्रु के समान किसी के स्थान में न होकर मित्रवत् पृथक् ही होता है। इत्यादि।

श्लोकार्थ—संधि, नाम, समास और तद्धित इस प्रकार से इन चार नामों को 'चतुष्क' कहते हैं। ऐसे इस चतुष्क को श्री शर्ववर्म आचार्य ने कहा है। अर्थात् इसमें संधि प्रकरण, लिंग प्रकरण, समास प्रकरण और तद्धित प्रकरण है अतः इस पूर्वार्ध को 'चतुष्क' कहते हैं इसमें इन चार प्रकरणों को श्री शर्ववर्म आचार्य ने पूर्ण किया है॥ १॥

वादी रूपी पर्वत को चूर्ण करने में वज्र के सदृश श्री भावसेन त्रिविद्य मुनिराज ने 'रूपमाला' नाम की प्रक्रिया में इस चतुष्क प्रकरण को पूर्ण किया है॥ २॥

चतुःषष्टिः कलाः स्त्रीणां ताश्चतुःसप्ततिर्नृणाम्।
आपकः प्रापकस्तासां श्रीमानृषभतीर्थकृत्॥ ३॥
तेन ब्राह्म्यै कुमार्यै च कथितं पाठहेतवे।
कालापकं तत्कौमारं नाम्ना शब्दानुशासनम्॥ ४॥
यद्वदन्त्यधियः केचित् शिखिनः स्कन्दवाहिनः।
पुच्छान्निर्गतसूत्रं स्यात्कालापकमतः परम्॥ ५॥
तन्न युक्तं यतः केकी वक्ति प्लुतस्वरानुगम्।
त्रिमात्रं च शिखी ब्रूयादिति प्रामाणिकोक्तितः॥ ६॥
न चात्र मातृकाम्नाये स्वरेषु प्लुतसंग्रहः।
तस्मात् श्रीऋषभादिष्टमित्येव प्रतिपद्यताम्॥ ७॥

इति श्रीभावसेनरचितायां कातंत्ररूपमालायां स्यादिनिरूपणं प्रथमः संदर्भः। ❑

स्त्रियों की चौंसठ कलायें होती हैं और पुरुषों की बहत्तर कलायें हैं इन सभी कलाओं को बतलाने वाले प्राप्त कराने वाले श्रीमान् तीर्थंकर ऋषभदेव भगवान् हैं॥ ३॥

उन ऋषभदेव भगवान् ने ही ब्राह्मी और कुमारी को पढ़ाने के लिए इस व्याकरण को कहा है अतएव यह शब्दानुशासन कालापक और कौमार नाम से भी प्रसिद्ध है॥ ४॥

जो कोई अज्ञानी लोग ऐसा कहते हैं कि स्कंदवाही शिखी के पुच्छ से ये सूत्र निकले हुए हैं अतः इसे 'कालापक' कहते हैं॥ ५॥

आचार्य कहते हैं कि यह बात नहीं है क्योंकि केकी—मयूर प्लुत स्वर का अनुसरण करते हुए बोलता है। वह प्लुत त्रिमात्रिक है और वह मयूर त्रिमात्रिक बोलता है यह बात प्रामाणिक है॥ ६॥

किंतु इस व्याकरण में वर्णसमुदाय में स्वरों में प्लुत का संग्रह नहीं किया है इसलिये यह व्याकरण श्रीऋषभदेव से ही उत्पन्न हुआ है यह बात इष्ट है इस प्रकार से ही स्वीकार करना चाहिये॥ ७॥

भावार्थ—तीसरे श्लोक में कहा है कि स्त्रियों की चौंसठ कलायें और पुरुषों की चौहत्तर कलायें हैं इनको आपक-प्राप्त कराने वाले भगवान् ऋषभदेव हैं। उन्हीं भगवान् ने अपनी पुत्री ब्राह्मी और सुंदरी इन दोनों को पढ़ाने के लिये यह 'शब्दानुशासन'—व्याकरण कहा है। इसीलिये इसे कला को प्राप्त कराने वाली होने से 'कालापक' और कुमारी—पुत्रियों को पढ़ाने के लिये होने से 'कौमार' ये दो नाम हैं। यहाँ पर यह कलाप व्याकरण या कालापक व्याकरण के नाम की सार्थकता दिखलाई है।

इस प्रकार श्री भावसेन विरचित कातंत्ररूपमाला में 'स्यादि' को निरूपित करने वाला प्रथम संदर्भ पूर्ण हुआ।

❑

अथ द्वितीयः संदर्भः

तिङन्तप्रकरणम्

सर्वकर्मविनिर्मुक्तं मुक्तिलक्ष्म्याश्च वल्लभम्।
चन्द्रप्रभजिनं नत्वा तिङन्तः कथ्यते मया॥ १॥

अथ त्यादयो विभक्तयः प्रदर्श्यन्ते॥ १॥

ताश्च दशविधा भवन्ति। कास्ताः ? वर्तमाना। सप्तमी। पञ्चमी। ह्यस्तनी। अद्यतनी। परोक्षा। श्वस्तनी। आशीः। भविष्यन्ती। क्रियातिपत्तिरिति।

वर्त्तमाना ॥ २॥

ति तस् अन्ति। सि थस् थ। मि वस् मस्। ते आते अन्ते। से आथे ध्वे। ए वहे महे—इमानि अष्टादश वचनानि वर्तमानसंज्ञानि भवन्ति।

सप्तमी ॥ ३॥

यात् यातां युस्, यास् यातं यात, यां याव याम। ईत ईयातां ईरन्। ईथास् ईयाथां ईध्वं, ईय ईवहि ईमहि—इमानि अष्टादश वचनानि सप्तमीसंज्ञानि भवन्ति॥

पञ्चमी ॥ ४॥

तु तां अन्तु, हि तं त, आनि आव आम, तां आतां अन्तां, स्व आथां ध्वं; ऐ आवहै, आमहै—इमानि वचनानि पञ्चमीसंज्ञानि भवन्ति॥

अथ द्वितीय-सन्दर्भ

तिङन्त प्रकरण

संपूर्ण कर्मों से रहित और मुक्ति लक्ष्मी के वल्लभ श्री चन्द्रप्रभ भगवान् को नमस्कार करके मैं तिङन्त प्रकरण कहता हूँ॥ १॥

अथ ति, तस् आदि विभक्तियाँ दिखलाते हैं॥ १॥

विभक्ति के दस भेद हैं वे कौन कौन हैं ? वर्तमाना, सप्तमी, पञ्चमी, ह्यस्तनी, अद्यतनी, परोक्षा, श्वस्तनी, आशीः, भविष्यंती एवं क्रियातिपत्ति ये दस भेद हैं।

वर्तमान काल में 'वर्तमाना' विभक्ति होती है॥ २॥

वर्तमाना के अठारह भेद हैं ति तस् अन्ति, सि थस् थ, मि, वस् मस्। ये नव विभक्तियाँ परस्मैपद संज्ञक हैं। ते आते अन्ते, से आथे ध्वे। ए वहे महे। ये नव विभक्तियाँ आत्मनेपद संज्ञक हैं। ये अठारह वचन 'वर्तमाना' संज्ञक हैं। इसे अन्य व्याकरणों में 'लट्' संज्ञा है।

सप्तमी विभक्ति होती है॥ ३॥

यात् यातां युस्, यास् यातं यात, यां याव याम। ईत ईयातां ईरन्, ईथस् ईयाथां ईध्वम्, ईय ईवहि ईमहि। ये अठारह वचन 'सप्तमी' संज्ञक हैं। प्रारंभ के नववचन परस्मैपदसंज्ञक एवं अंत में नव वचन आत्मनेपद संज्ञक हैं। (इसको विधिलिङ् कहते हैं।)

पञ्चमी विभक्ति होती है॥ ४॥

तु तां अन्तु, हि तं त, तानि आव आम। तां आतां अन्तां, स्व आथां ध्वं, ऐ आवहै आमहै। ये अठारह वचन पञ्चमी संज्ञक होते हैं॥ (इसे लोट् कहते हैं।)

ह्यस्तनी ॥ ५ ॥

दि तां अन्, सि तं त, अम् व म, त आतां अन्त, थास् आथां ध्वं, इट वहि महि—इमानि वचनानि ह्यस्तनीसंज्ञानि भवन्ति ॥

एवमेवाद्यतनी ॥ ६ ॥

एतान्येवाद्यतनेऽर्थेऽभिधेयेऽद्यतनीसंज्ञानि भवन्ति ॥

परोक्षा ॥ ७ ॥

अट् अतुस् उस्, थल् अथुस् अ अट् व म, ए आते इरे, से आथे ध्वे, ए वहे महे—इमानि वचनानि परोक्षसंज्ञानि भवन्ति ॥

श्वस्तनी ॥ ८ ॥

ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ, तास्मि तास्वस् तास्मस्, ता तारौ तारस्, तासे तासाथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे—इमानि वचनानि श्वस्तनीसंज्ञानि भवन्ति ॥

आशीः ॥ ९ ॥

यात् यास्तां यासुस्, यास् यास्तं यास्त, यासं यास्व यास्म, सीष्ट सीयास्तां सीरन्, सीष्ठास् सीयास्थां सीध्वं, सीय सीवहि सीमहि—इमानि वचनानि आशीःसंज्ञानि भवन्ति ॥

स्यसहितानि त्यादीनि भविष्यन्ती ॥ १० ॥

स्यति स्यतस् स्यन्ति, स्यसि स्यथस् स्यथ, स्यामि स्यावस् स्यामस्, स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे—स्येन सहितानि त्यादीनि वचनानि भविष्यन्तीसंज्ञानि भवन्ति ॥

बीते हुए कल दिन के लिये 'ह्यस्तनी' विभक्ति होती है ॥ ५ ॥

दि तां अन्, सि तं त, अम् व म। त आतां अन्त, थास् आथां ध्वं, इट् वहि महि। ये अठारह वचन ह्यस्तनी संज्ञक हैं। (इसे लङ् भी कहते हैं।)

आज के बीते हुये काल को 'अद्यतनी' कहते हैं ॥ ६ ॥

ये ही उपर्युक्त अठारह विभक्तियाँ अद्यतन के अर्थ में आकर अद्यतनी संज्ञक कहलाती हैं। (इसे 'लुङ्' कहते हैं)

अत्यर्थ[१] भूतकाल में 'परोक्षा' विभक्ति होती है ॥ ७ ॥

अट् अतुस् उस्, थल् अथुस् अ, अट् व म। ए आते इरे, से आथे ध्वे, ए वहे महे। ये अठारह वचन परोक्षा संज्ञक होते हैं। (इसे 'लिट्' कहते हैं।)

आने वाले कल के लिये 'श्वस्तनी' विभक्ति होती है ॥ ८ ॥

ता तारौ तारस्, तासि तास्थस् तास्थ, तास्मि तास्वस् ताम्मस्। ता तारौ तारस्, तासे तासाथे ताध्वे, ताहे तास्वहे तास्महे। ये अठारह वचन श्वस्तनी संज्ञक होते हैं। (यह 'लुट्' है)

आशीर्वचन में 'आशीः' विभक्ति होती है ॥ ९ ॥

यात् यास्तां, यासुस्, यास् यास्तं, यास्त, यासम् यास्व यास्म। सीष्ट सीयास्तां सीरन्, सीष्ठास् सीयास्थां, सीध्वं, सीय सीवहि सीमहि। ये अठारह वचन आशीः संज्ञक हैं। (यह आशीः 'लिङ्' है)

भविष्यत् अर्थ में 'स्य' सहित ति आदि विभक्तियाँ भविष्यन्ती कहलाती हैं ॥ १० ॥

---

१. अत्यर्थभूत काल उसे कहते हैं जो क्रिया अपने जीवन में न बीती हो केवल सुनी जाती हो जैसे भ० शान्तिनाथ हुए थे।

द्यादीनि क्रियातिपत्तिः ॥ ११ ॥

स्यत् स्यतां स्यन्, स्यस् स्यतं स्यत, स्यं स्याव स्याम, स्यत स्येतां स्यन्त, स्यथास् स्येथां स्यध्वं, स्ये स्यावहि स्यामहि-स्येन सहितानि द्यादीनि क्रियातिपत्तिसंज्ञानि भवन्ति ॥

षडाद्याः सार्वधातुकम् ॥ १२ ॥

षण्णां विभक्तीनां आद्याश्चतस्रो विभक्तयः सार्वधातुकसंज्ञा भवन्ति ॥

अथ परस्मैपदानि ॥ १३ ॥

सर्वविभक्तीनां आदौ नववचनानि परस्मैपदसंज्ञानि भवन्ति। उत्तरत्र नवग्रहणात्परग्रहणाच्चेह पूर्वा नवेति अवगन्तव्यं। ति तस् अन्ति। सि थस् थ। मि वस् मस्। एवं सर्वविभक्तिषु।

नव पराण्यात्मने ॥ १४ ॥

सर्वविभक्तीनां पराणि नववचनानि आत्मनेपदसंज्ञानि भवन्ति। ते आते अन्ते। से आथे ध्वे। ए वहे महे। एवं सर्वविभक्तिषु।

त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ॥ १५ ॥

परस्मैपदानामात्मनेपदानां च त्रीणि त्रीणि वचनानि प्रथममध्यमोत्तमपुरुषसंज्ञानि भवन्ति। ति तस्

स्यति स्यतस् स्यन्ति, स्यसि स्यथस् स्यथ, स्यामि स्यावस् स्यामस्। स्यते स्येते स्यन्ते, स्यसे स्येथे स्यध्वे, स्ये स्यावहे स्यामहे।

स्य सहित ति आदि अठारह विभक्तियाँ भविष्यत् संज्ञक होती हैं (यह 'लृट्' है)

'स्य' सहित 'दि' आदि विभक्तियाँ 'क्रियातिपत्ति' होती हैं ॥ ११ ॥

दि आदि विभक्तियाँ ह्यस्तनी में हैं उन्हीं में पूर्व में 'ष्य' जोड़ देने से क्रियातिपत्ति में बन जाती हैं। स्यत् स्यतां स्यन्, स्यस् स्यतं स्यत, स्यं स्याव स्याम। स्यत स्येतां स्यन्त, स्यथास् स्येथां स्यध्वं, स्ये स्यावहि स्यामहि। ये अठारह विभक्तियाँ क्रियातिपत्ति संज्ञक हैं (इसे 'लृङ्' कहते हैं)

पूर्व की चार विभक्तियाँ 'सार्वधातुक' हैं ॥ १२ ॥

छह विभक्तियों के आदि की चार विभक्तियाँ सार्वधातुक संज्ञक हैं। उनके नाम—वर्तमाना, सप्तमी, पञ्चमी ह्यस्तनी ये चार हैं।

आदि के नव नव वचन परस्मैपद संज्ञक होते हैं ॥ १३ ॥

सभी विभक्तियों में आदि के नव-नव वचन परस्मैपद संज्ञक होते हैं।

अगले सूत्र में 'नव' शब्द और 'पर' शब्द का ग्रहण है अतः यहाँ 'पूर्व की नव' ऐसा समझ लेना चाहिये। जैसे—ति तस् अंति, सि, थस् थ, मि वस् मस्। ऐसे ही सभी विभक्तियों में समझ लेना।

आगे की नव 'आत्मनेपद' संज्ञक हैं ॥ १४ ॥

सभी विभक्तियों में अगली-अगली नव विभक्तियाँ 'आत्मनेपद' संज्ञक हैं। जैसे—ते आते अन्ते, से आथे ध्वे, ए वहे महे। ऐसे ही सभी विभक्तियों में समझना चाहिये।

तीन-तीन वचन प्रथम, मध्यम, उत्तम होते हैं ॥ १५ ॥

परस्मैपद और आत्मनेपद की विभक्तियों में तीन-तीन वचन प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष संज्ञक होते हैं। जैसे—ति तस् अन्ति ये प्रथम पुरुष हैं। सि थस् थ ये मध्यम पुरुष हैं। मि वस् मस् ये उत्तम पुरुष संज्ञक हैं। ते आते अन्ते ये प्रथम पुरुष हैं। ये आथे ध्वे ये मध्यम हैं। ऐ वहे महे ये उत्तम पुरुष हैं।

अन्ति इति प्रथमपुरुषः। सि थस् थ इति मध्यमपुरुषः। मि वस् मस् इत्युत्तमपुरुषः। ते आते अन्ते इति प्रथमपुरुषः। से आथे ध्वे इति मध्यमपुरुषः। ए वहे महे इत्युत्तमपुरुषः। एवं सर्वविभक्तिषु। एता विभक्तयो धातोर्योज्यन्ते। को धातुः ?

क्रियाभावो धातुः ॥ १६ ॥

यः शब्दः क्रियां भावयति संपादयति स धातुसंज्ञो भवति। इति भ्वादीनां धातुसंज्ञायां। भू सत्तायां। भू इति स्थिते।

प्रत्ययः परः ॥ १७ ॥

प्रतीयते अनेनार्थः स प्रत्ययः। विकसितार्थः इत्यर्थः। प्रकृतेः परः प्रत्ययो भवति। इति सर्वत्यादिप्रसङ्गः।

काले ॥ १८ ॥

वर्तमानातीतभविष्यल्लक्षणः कालः। काल इत्यधिकृतं भवति।

सम्प्रति वर्तमाना ॥ १९ ॥

प्रारब्धापरिसमाप्तक्रियालक्षणः सम्प्रतीत्युच्यते। सम्प्रतिकाले वर्तमाना विभक्तिर्भवति। तत्रापि युगपदष्टादशवचनप्राप्तौ—

शेषात्कर्त्तरि परस्मैपदम् ॥ २० ॥

इसी प्रकार से सभी विभक्तियों में समझ लेना चाहिये।

ये सभी विभक्तियां धातु में लगाई जाती हैं। धातु किसे कहते हैं ?

क्रिया भाव को धातु कहते हैं ॥ १६ ॥

जो शब्द क्रिया को भावित (क्रिया का वाचक या बोध कराने वाला) करता है संपादित करता है वह धातुसंज्ञक है। इस प्रकार से भू आदि शब्दों की धातु संज्ञा हो गई। भू सत्ता अर्थ में है—सत्ता का अर्थ है व्यवहार द्वारा भवन क्रिया—'भू' धातु स्थित है।

धातु से परे प्रत्यय होते हैं ॥ १७ ॥

जिससे अर्थ प्रतीति में आता है उसे प्रत्यय कहते हैं। अर्थात् जो अर्थ को विकसित करे वह प्रत्यय है। प्रकृति से परे प्रत्यय होता है। इस नियम से सभी ति, तस् आदि विभक्तियाँ एक साथ आ गईं।

काल अर्थ में विभक्तियाँ होती हैं ॥१८ ॥

काल के तीन भेद हैं—वर्तमान, भूत और भविष्यत्। 'काले' इस सूत्र में यहाँ काल का प्रकरण अधिकार में है।

संप्रति अर्थ में 'वर्तमाना' विभक्ति होती है ॥ १९ ॥

जिसका प्रारंभ हो गया है और समाप्ति नहीं हुई है उस क्रिया का जो लक्षण है उस काल को 'संप्रति' कहते हैं। यही वर्तमान काल है। संप्रतिकाल के अर्थ में 'वर्तमाना' विभक्ति होती है। इस वर्तमाना में भी एक साथ अठारह विभक्तियाँ आ गईं। तब—

शेष से कर्ता में परस्मैपद होता है ॥ २० ॥

शेषाद्वक्ष्यमाणकारणरहिताद्धातोः कर्त्तरि परस्मैपदं भवति। तत्रापि—

नाम्नि प्रयुज्यमानेऽपि प्रथमः ॥ २१ ॥

नाम्नि प्रयुज्यमानेऽप्यप्रयुज्यमानेऽपि प्रथमपुरुषो भवति। तत्राप्येकत्वविवक्षायां प्रथमैकवचनं ति।

अन् विकरणः कर्त्तरि ॥ २२ ॥

धातोर्विकरणसंज्ञकोऽन् भवति कर्त्तरि विहिते सार्वधातुके परे।

अनि च विकरणे ॥ २३ ॥

नाम्यन्तस्य लघुनाम्युपधायाश्च गुणो भवत्यन्विकरणे परे। को गुणः ?

अर् पूर्वे द्वे च सन्ध्यक्षरे गुणः ॥ २४ ॥

यॄणां (ऋवर्णइवर्णउवर्णानां) अर् पूर्वे द्वे च सन्ध्यक्षरे गुणो भवति। इत्युवर्णस्य ओकारो गुणः। सन्धिः। स भवति। तथैव द्वित्वविवक्षायां प्रथमपुरुषद्विवचनं तस्। भू तस् इति स्थिते—

रसकारयोर्विसृष्टः ॥ २५ ॥

शेष—वक्ष्यमाण कारणों से रहित धातु से कर्ता अर्थ में परस्मैपद होता है। उसमें भी एक साथ नव वचनों के आने पर—

नाम के प्रयोग करने पर भी प्रथम पुरुष होता है ॥ २१ ॥

नाम के प्रयोग करने और नहीं करने पर भी प्रथम पुरुष होता है। उसमें एकवचन की विवक्षा होने पर प्रथम पुरुष का एकवचन 'ति' है। अतः भू + ति है।

कर्ता में 'अन्' विकरण होता है ॥ २२ ॥

कर्ता में कहे गये सार्वधातुक विभक्ति के आने पर धातु से विकरण संज्ञक 'अन्' होता है।

अन् विकरण के आने पर गुण होता है ॥ २३ ॥

जिसके अन्त में नामि (इ उ ऋ) हो तथा उपधा में नामि (इ उ ऋ) हो ऐसी धातु को अन् विकरण के आने पर गुण हो जाता है।

गुण किसे कहते हैं ?

अर् और पूर्व के दो संध्यक्षर गुणसंज्ञक हैं ॥ २४ ॥

ऋवर्ण को 'अर्' इवर्ण को 'ए' उवर्ण को 'ओ' होना गुण कहलाता है। ऋवर्ण, इवर्ण, उवर्ण इनकी संधि करने पर ऋ + इ 'रमृवर्णः' सूत्र ऋ को र् होकर रि बना। पुनः रि + उ है, 'इवर्णो यमसवर्णे न च परो लोप्यः' सूत्र से र् म् उ बना 'व्यंजनमस्वरं परवर्णं नयेत' सूत्र से 'र्यु' बन गया इसका रूप भानु के समान चलाने से 'यॄणां' पद वृत्ति में है जिसका अर्थ है, ऋवर्ण, इवर्ण और उवर्ण को क्रम से अर् और पूर्व के दो संध्यक्षर—ए, ओ, गुण होता है। इस नियम से यहाँ भू को ओ गुण होकर 'ओ अ ति है' ओ अव् सूत्र से संधि होकर 'भवति' बन गया। इसके साथ प्रथम पुरुष के 'सः' शब्द का प्रयोग करने से वाक्य स्पष्ट हो जाता है। स भवति—वह होता है। उसी प्रकार से द्विवचन की विवक्षा में प्रथम पुरुष का द्विवचन 'तस्' विभक्ति है भू तस् इति स्थित है।

'अन् विकरणः कर्तरि' से अन् विकरण करके 'अनिच विकरणे' सूत्र से गुण होकर 'भवतस्' बना।

रकार सकार को विसृष्ट (विसर्ग) हो जाता है ॥ २५ ॥

पदान्ते रेफसकारयोर्विसृष्टो भवति । तौ भवतः । तथैव बहुत्व विवक्षायां प्रथमपुरुषबहुवचनं अन्ति । भू अन्ति इति स्थिते—

असन्ध्यक्षरयोरस्य तौ तल्लोपश्च ॥ २६ ॥

इह धातुप्रस्तावे अकारसन्ध्यक्षरयोः परतोऽकारस्य अकारसन्ध्यक्षरौ भवतस्तत्परयोर्लोपो भवति । ते भवन्ति ।

युष्मदि मध्यमः ॥ २७ ॥

युष्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽपि मध्यमः पुरुषो भवति । त्वं भवसि । युवां भवथः यूयं भवथ ।

अस्मद्युत्तमः ॥ २८ ॥

अस्मदि प्रयुज्यमानेऽप्रयुज्यमानेऽपि उत्तमः पुरुषो भवति ।

अस्य वमोर्दीर्घः ॥ २९ ॥

अस्य दीर्घो भवति वमोः परतः । अहं भवामि । आवां भवावः । वयं भवामः । अप्रयुज्यमानेऽपि । भवति, भवतः, भवन्ति । भवसि, भवथः, भवथ । भवामि, भवावः, भवामः । भावकर्मविवक्षायां—

आत्मनेपदानि भावकर्मणोः ॥ ३० ॥

पद के अंत में रकार और सकार का विसर्ग हो जाता है अतः 'भवतः' बना । तौ भवतः—वे दोनों होते हैं । उसी प्रकार से बहुवचन की विवक्षा में प्रथमपुरुष को बहुवचन 'अन्ति' है । भू अन्ति यह स्थित है ।

पूर्वोक्त अन् विकरण और गुण करके 'भव् अ अन्ति' है ।

अकार और संध्यक्षर के परे अकार है उसका लोप हो जाता है ॥ २६ ॥

यहाँ धातु के प्रस्ताव में अकार और संध्यक्षर के परे रहने पर अकार को अकार और संध्यक्षर हो जाते हैं और इनके परे अकार का लोप हो जाता है । अतः 'भवन्ति' बना । ते भवन्ति—वे होते हैं ।

युष्मद् में मध्यम पुरुष होता है ॥ २७ ॥

युष्मद् का प्रयोग करने पर अथवा नहीं प्रयोग करने पर भी मध्यम पुरुष होता है । उपर्युक्त विधि के अनुसार सि थस् थ विभक्ति में—त्वं भवसि—तू होता है । युवां भवथः—तुम दोनों होते हो । यूयं भवथ—तुम सब होते हो ।

अस्मद् में उत्तम पुरुष होता है ॥ २८ ॥

अस्मद् का प्रयोग करने पर या नहीं प्रयोग करने पर भी उत्तम पुरुष होता है । भू मि है अन् विकरण् गुण करके 'भव् अ मि' रहा ।

व, म के आने पर अकार को दीर्घ हो जाता है ॥ २९ ॥

अतः 'भवामि' बना । अहं भवामि—मैं होता हूँ । आवां भवावः—हम दोनों होते हैं । वयं भवामः—हम सब होते हैं । प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुष के प्रयोग नहीं करने पर भी अर्थ स्पष्ट रहता है । यथा—भवति भवतः भवन्ति, भवसि भवथः भवथ, भवामि भवावः भवामः ।

क्रिया में भाव और कर्म की विवक्षा के होने पर भाव, कर्म में 'आत्मनेपद' होता है ॥ ३० ॥

धातोरात्मनेपदानि भवन्ति भावकर्मणोरर्थयोः। अकर्मकाद्धातोर्भावे, सकर्मकात्कर्मणि च।

लज्जासत्तास्थितिजागरणं वृद्धिक्षयभयजीवितमरणम्।
[1]स्वप्नक्रीडारुचिदीप्त्यर्था धातव एते कर्मविमुक्ताः॥ १॥
क्रियापदं कर्तृपदेन युक्तं व्यपेक्षते यत्र किमित्यपेक्षां।
सकर्मकं तं सुधियो वदन्ति शेषस्ततो धातुरकर्मकः स्यात्॥ २॥

को भावः ?

सन्मात्रं भावलिङ्गं स्यादसंपृक्तं तु कारकैः।
धात्वर्थः केवलः शुद्धः भाव इत्यभिधीयते॥ १॥

तत्र प्रथमैकवचनमेव। किं कर्म ? क्रियाविषयं कर्म। तत्र द्विवचनबहुवचनमपि। मध्यमोत्तमपुरुषावपि।

सार्वधातुके यण्॥ ३१॥

धातोर्यण् भवति भावकर्मणोर्विहिते सार्वधातुके परे।

नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोर्गुणः॥ ३२॥

भाव और कर्म के अर्थ में धातु से आत्मनेपद हो जाता है। अकर्मक धातु से भाव में एवं सकर्मक धातु से कर्म में प्रयोग होता है।

अकर्मक धातु कौन हैं ?

श्लोकार्थ—लज्जा, सत्ता, स्थिति, जागरण, वृद्धि, नाश, भय, जीवन, मरण, शयन, क्रीड़ा, रुचि, क्रांति इन अर्थ वाले धातु अकर्मक होते हैं। अर्थात् इनके प्रयोग में कर्म कारक नहीं रहता है॥ १॥

सकर्मक धातु कौन हैं ?

जहाँ कर्ता पद से युक्त क्रिया पद, "क्या" इसकी अपेक्षा रखता है, विद्वान् जन उस धातु को सकर्मक कहते हैं। बाकी शेष धातुएँ अकर्मक हैं॥ २॥

भाव किसे कहते हैं ?

श्लोकार्थ—जो सन्मात्र है स्वरूपतः है भाव लिंग है कारकों के सम्पर्क से रहित है ऐसा केवल, शुद्ध धातु का अर्थ 'भाव' कहलाता है॥ १॥

इस भाव में प्रथम पुरुष का एकवचन ही होता है।

कर्म किसे कहते हैं ?

क्रिया के विषय को कर्म कहते हैं। कर्म में द्विवचन बहुवचन भी होते हैं। एवं मध्यम, उत्तम पुरुष भी होते हैं। यहाँ भाव अर्थ में विवक्षित भू धातु से आत्मनेपद के प्रथम पुरुष का एकवचन 'ते' विभक्ति है। 'भू ते' है।

सार्वधातुक में 'यण्' होता है॥ ३१॥

भाव, कर्म में कहे गये सार्वधातुक के आने पर धातु से 'यण्' विकरण होता है। णकार का अनुबंध हो जाता है।

नाम्यंत, धातु और विकरण को गुण हो जाता है॥ ३२॥

---

१. शयन इति पाठांतरं।

नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोर्गुणो भवति। इति गुणे प्राप्ते—

न णकारानुबन्धचेक्रीयतयोः॥ ३३॥

नाम्यन्तानां नाम्युपधानां च गुणो न भवति णकारानुबन्धचेक्रीयतयोः परतः। भावे—भूयते। कर्मणि—

प्रादय उपसर्गाः क्रियायोगे॥ ३४॥

प्रादयः क्रियायोगे उपसर्गा भवन्ति। के ते प्रादयः ?

प्रपराऽपसमन्ववनिर्दुरभिव्यधिसूदतिनिप्रतिपर्यपयः।

उपआङितिविंशतिरेष सखे उपसर्गगणः कथितः कविभिः॥ १॥

अकर्मका अपि धातवः सोपसर्गाः सकर्मका भवन्ति। अनुभूयते।

आते आथे इति च॥ ३५॥

अकारात्परयोराते आथे इत्येतयोरादिरिर्भवति। अनुभूयेते। अनुभूयन्ते। अनुभूयसे अनुभूयेथे अनुभूयध्वे। अनुभूये अनुभूयावहे अनुभूयामहे। एवं सर्वधातूनां। एधङ्वृद्धौ।

कर्त्तरि रुचादिङनुबन्धेभ्यः॥ ३६॥

इस सूत्र में 'भू' को गुण प्राप्त था किन्तु—

णकारानुबंध और चेक्रीयत (यङन्त) प्रकरण के आने पर गुण नहीं होता है॥ ३३॥

णानुबंध और चेक्रीय के आने पर नाम्यंत और नामि उपधा वाले धातु को गुण नहीं होता है। अतः भाव में—'भूयते' बन गया।

कर्म की विवक्षा में—

क्रिया के योग में 'प्र' आदि उपसर्ग होते हैं॥ ३४॥

वे प्रादि उपसर्ग कौन हैं ?

श्लोकार्थ—प्र, पर, अप, सं, अनु, अव, निर्, दुर, अभि, वि, अधि, सु, उत्, अति, नि, प्रति, परि, अपि, उप, आङ्, हे सखे ! इस प्रकार से कवियों ने ये उपसर्गगण बीस बतलाये हैं॥ १॥

अकर्मक भी धातु उपसर्ग सहित होकर सकर्मक बन जाते हैं। अकर्मक भू धातु में 'अनु' उपसर्ग लगाने से उसका अर्थ अनुभव करना हो गया है अतः 'अनुभूयते' बन गया। कर्म में सभी वचन और प्रथम, मध्यम, उत्तम पुरुष होने से आत्मने पद की सभी विभक्तियाँ आयेंगी। अतः—'अनुभूय आते' हैं।

अकार से परे आते, आथे की आदि को 'इ' हो जाता है॥ ३५॥

अनुभूय + इते = अनुभूयेते, अनुभूय + अन्ते सूत्र २६ से अकार का लोप होकर 'अनुभूयन्ते' बना। अनुभूय + ए है। सूत्र २६ से एक अकार का लोप होकर 'अनुभूये' बना। अनुभूय + वहे, हे, सूत्र २९वें से व, म के आने पर अकार को दीर्घ हो जाता है अतः 'अनुभूयावहे' 'अनुभूयामहे'। बना।

अनुभूयते	अनुभूयेते	अनुभूयन्ते
अनुभूयसे	अनुभूयेथे	अनुभूयध्वे
अनुभूये	अनुभूयावहे	अनुभूयामहे

ऐसे ही सभी धातुओं के रूप चलेंगे।

एधङ् धातु वृद्धि अर्थ में है।

रुचादिभ्यो ङानुबन्धेभ्यश्च कर्त्तर्यात्मनेपदानि भवन्ति। एधते एधेते एधन्ते। एधसे एधेथे एधध्वे। एधे एधावहे एधामहे। भावे—एध्यते। डुपचषुञ् पाके। अकारः समाहारानुबन्धे।

इन्व्यजादेरुभयम्॥ ३७॥

इन्नन्तात् ञानुबन्धाद्यजादेश्च कर्त्तर्युभयपदानि भवन्ति। पचति पचतः पचन्ति। पचसि पचथः पचथ। पचामि पचावः पचामः। पचते पचेते पचन्ते। पचसे पचेथे पचध्वे। पचे पचावहे पचामहे। भावे—पच्यते। अविवक्षितकर्मकोऽकर्मको भवति। कर्मणि—पच्यते पच्येते पच्यन्ते। पच्यसे। पच्येथे पच्यध्वे। पच्ये पच्यावहे पच्यामहे।

स्मेनातीते॥ ३८॥

स्मेन संयोगेऽतीते काले वर्त्तमाना विभक्तिर्भवति। भवति स्म। एधते स्म। पचति स्म। पचते स्म इत्यादि।

रुचादि और ङानुबंध वाली धातुएँ कर्त्ता में आत्मने पद होती हैं॥ ३६॥

एध् ते है 'अन् विकरणः कर्तरि' २२वें सूत्र से अन् विकरण होकर 'एधते' बना। ऐसे ही 'एध् अ आते' हैं 'आते आथे इति च' सूत्र से आ को 'इ' होकर संधि होकर 'एधेते' 'एध् अ अन्ते' है सूत्र २६ से एक अकार का लोप होकर 'एधन्ते' बना।

एध् अ् ए २६ सूत्र से अकार का लोप होकर 'एधे' बना।

एध् अ वहे और महे है। सूत्र २९ वें से अकार को दीर्घ होकर 'एधावहे' 'एधामहे' बना।

प्रयोग—

एधते	एधेते	एधन्ते
एधसे	एधेथे	एधध्वे
एधे	एधावहे	एधामहे

भाव में—यण विकरण से 'एध्यते' बना है। यह धातु अकर्मक है अतः कर्म में रूप नहीं बने हैं।

डुपचषुञ् धातु पकाने अर्थ में है। डुषुञ् अनुबंध है, अकार समाहार अनुबंध में है।

इन्नंत, आनुबंध, यजादि धातु कर्ता में उभयपदी होते हैं ॥ ३७॥

पच् धातु में ञ् का अनुबंध होता है अतः इसके रूप परस्मैपद और आत्मनेपद दोनों में चलेंगे। पूर्वोक्त अन् विकरण और अन्ति और ए आने पर अकार का लोप और व, म के आने पर अकार को दीर्घ करके उभयपद में रूप चला लीजिये। यथा—

पचति	पचतः	पचन्ति	पचते	पचेते	पचन्ते
पचसि	पचथः	पचथ	पचसे	पचेथे	पचध्वे
पचामि	पचावः	पचामः	पचे	पचावहे	पचामहे

भाव में—पच्यते। यद्यपि पच् धातु सकर्मक है तो भी कर्म की विवक्षा न हो तो अकर्मक होकर भाव में प्रत्यय होता है।

कर्मणिप्रयोग में—

पच्यते, पच्येते पच्यन्ते। पच्यसे पच्येथे, पच्यध्वे। पच्ये, पच्यावहे, पच्यामहे।

स्म के साथ अतीत काल हो जाता है॥३८॥

'स्म' शब्द के प्रयोग के साथ 'वर्तमाना' विभक्ति अतीत काल के अर्थ में हो जाती है।

विध्यादिषु सप्तमी च ॥ ३९ ॥

विध्यादिषु वर्तमानाद्धातोः सप्तमी पञ्चमी च भवति। के विध्यादयः ? विधिनिमन्त्रणामन्त्रणाध्येषणसम्प्रश्नको विधिः। विधिः कर्त्तव्योपदेशः। अथवा अज्ञातज्ञापको विधिः। देवान् यजेत। यजतु। यजतां। होमं जुहुयात्। जुहोतु। यत्र क्रियमाणे प्रत्यवायोऽस्ति तन्निमन्त्रणं। इह श्राद्धे न भुञ्जीत। न भुङ्क्तां भवान्। यत्र क्रियमाणे प्रत्यवायो नास्ति तदामन्त्रणं। इहासीत। आस्तां भवान्। सत्कारपूर्वको व्यापारोऽध्येषणं। यूयं माणवकमध्यापयेध्वम्। कर्त्तव्यालोचना सम्प्रश्नः। अहो किं व्याकरणमधियीय उत वेदमधियीय। अहो किं नाटकमध्ययै आहोस्विदलङ्कारमध्ययै। याञ्चा प्रार्थना। भिक्षां मे दध्याः। क्षेत्रं मे दधीथाः। कन्यां मे देहि। मम सुवर्णं दत्स्व। आदिशब्दात्प्रेषणविज्ञापनाज्ञापनादयः। क्षीणं प्रति कर्मप्रतिपादनं प्रेषणं। गृहीतवेतनस्त्वं। कर्माणि कुर्याः। कुर्वीथाः। कुरु। कुरुष्व। अधिकं प्रति स्वकार्यसूचनं विज्ञापनं। अहो देव इदं कार्यमवधारयेः। अवधारय। सर्वेषां स्वस्वकार्यनियमप्रतिपादनमाज्ञापनं। विप्रा एवं प्रवर्तेरन् प्रवर्तन्ताम्। यतय एवं चरेयुः।

याशब्दस्य च सप्तम्याः ॥ ४० ॥

विधि आदि में सप्तमी और पञ्चमी होती है ॥३९॥

विधि आदि अर्थों में वर्तमान धातु से 'सप्तमी' और 'पञ्चमी' विभक्तियाँ होती हैं। विधि आदि कौन-कौन हैं ? विधि, निमन्त्रण, आमन्त्रण, अध्येषण और संप्रश्नक ये विधि शब्द से कहे जाते हैं। विधि—कर्तव्य का उपदेश देना अथवा अज्ञात को बतलाना। जैसे—देवान् यजेत, यजतु, यजतां—देवों की पूजा करना चाहिये। होमं जुहुयात्, जुहोतु—होम करना चाहिये।

जिसके करने में प्रत्यवाय (बाधा) है वह निमन्त्रण है।

जैसे—इह श्राद्धे न भुंजीत, न भुङ्क्तां भवान्—इस श्राद्ध में आपको भोजन नहीं करना चाहिए। भोजन नहीं करिये। जिसके करने में प्रत्यवाय नहीं है वह आमन्त्रण है।

जैसे—इह आसीत्, आस्तां भवान्—यहाँ आप बैठिये, ठहरिये। सत्कार पूर्वक व्यापार 'अध्येषण' कहलाता है।

जैसे—यूयं माणवकं अध्यापयेध्वं—आप लोग बालक को पढ़ाइये। कर्तव्य की आलोचना—विचार करना संप्रश्न कहलाता है। अहो किं व्याकरणमधियीय उत वेदमधियीय—मैं व्याकरण पढ़ूँ अथवा वेद पढ़ूँ ? अहो किं नाटकमध्ययै अहोस्विदलंकारमध्ययै—अहो मैं नाटक का अध्ययन करूँ या अलंकार का अध्ययन करूँ ? याञ्चा—प्रार्थना—भिक्षां मे दद्याः—मुझे भिक्षा देवो। क्षेत्रं मे दधीथाः—मुझे क्षेत्र देवो। कन्यां मे देहि—मुझे कन्या देवो।

मम सुवर्णं दत्स्व—मुझे सुवर्ण देवो।

आदि शब्द से प्रेषण, विज्ञापन, ज्ञापन, आज्ञापन आदि अर्थ लेना चाहिये। क्षीणं प्रति कर्मप्रतिपादनं प्रेक्षणं—क्षीण के प्रति कर्म का प्रतिपादन करना प्रेषण कहलाता है। जैसे—गृहीतवेतनस्त्वं—तू वेतन ले चुका है। कर्माणि कुर्याः, कुर्वीथाः, कुरु, कुरुष्व—काम करो।

अधिकं प्रति स्वकार्यं सूचनं विज्ञापनं—अधिक के प्रति अपने कार्य को सूचित करना विज्ञापन है। अहो देव ! इदं कार्यमवधारयेः, अवधारय—अहो देव ! इस कार्य को अवधारण करो। सभी को अपने अपने कार्य के नियम का प्रतिपादन करना 'आज्ञापन' कहलाता है। विप्रजन इस प्रकार प्रवृत्ति करें। यतिगण इस प्रकार की चर्या करें।

इस विधि आदि अर्थ में पहले सप्तमी आती है। भू यात् है अन् विकरण हो गया। गुण होकर 'भव् अ यात्' रहा।

अकार से परे सप्तमी के 'या' शब्द को 'इकार' होता है ॥४०॥

अकारात्परस्य सप्तमीयाशब्दस्य इर्भवति। भवेत् भवेतां।

याम्युसोरियमियुसौ ॥ ४१ ॥

अकारात्परयोर्याम्युसोरियमियुसौ भवतः। भवेयुः। भवेः भवेतं भवेत। भवेयं भवेव भवेम॥ भावे—भूयेत। कर्मणि। अनुभूयेत अनुभूयेयातां अनुभूयेरन्। एधेत ऐधेयातां एधेरन्। एधेथाः एधेयाथां एधेध्वं। एधेय एधेवहि एधेमहि। भावे—एध्येत। पचेत् पचेतां पचेयुः। पचेः पचेतं पचेत। पचेयं पचेव पचेम। पचेत पचेयातां पचेरन्। भावे—पच्येत। कर्मणि—पच्येत। पच्येयातां पच्येरन्।

पञ्चम्यनुमतौ ॥ ४२ ॥

अनुज्ञानमनुमतिः। तदुपाधिकेर्थे पञ्चमी भवति।

समर्थनाशिषोश्च ॥ ४३ ॥

क्रियासु प्रोत्साहः समर्थना। इष्टस्यार्थस्य आशंसनं आशीः। समर्थनाशिषोरर्थयोश्च पञ्चमी भवति। भवतु। आशिषि। आशिषि। तुह्योस्तातण् वा वक्तव्यः। भवतात् भवतां भवन्तु।

हेरकारादहन्तेः ॥ ४४ ॥

भव + इत् संधि होकर = भवेत् बना। सर्वत्र 'या' को 'इ' करके संधि करते जाइये। भवेतां भव युस्।

अकार से परे 'यामि, युस्' को 'इयम्, इयुस्' हो जाता है ॥४१ ॥

भव + इयुस् = भवेयुः। भव + इयम् = भवेयम् बना।

भाव में—भूयेत। कर्म में—अनुभूयेत, अनुभूयेयातां।

एध् का कर्तरि प्रयोग में—एधेत, भाव में—एध्येत।

पच् का कर्त्ता में—पचेत्। आत्मनेपद में—पचेत।

भाव में—पच्येत। कर्म में—पच्येत, पच्येयातां।

प्रयोग में—भवेत् भवेतां भवेयुः। भवेः भवेतं भवेत। भवेयम् भवेव भवेम।

एधेत एधेयातां एधेरन्। एधेथाः एधेयाथां एधेध्वं। एधेय एधेवहि एधेमहि।

भाव में—एध्येत।

परस्मै—पचेत् पचेतां पचेयुः। पचेः पचेतं पचेत। पचेयम् पचेव पचेम।

आ०—पचेत पचेयातां पचेरन्। पचेथाः पचेयाथां पचेध्वं। पच्येय पचेवहि पचेमहि।

भावे—पच्येत।

कर्म में—पच्येत पच्येयातां पच्येरन्। पच्येथाः, पच्येयाथां, पच्येध्वं। पच्येय पच्येवहि पच्येमहि।

अनुमति अर्थ में 'पञ्चमी' होती है ॥४२ ॥

अनुज्ञान को अनुमति कहते हैं। उस उपाधिक अर्थ में 'पञ्चमी' विभक्ति होती है।

समर्थन और आशिष में भी पञ्चमी होती है ॥४३ ॥

क्रियाओं में प्रोत्साह करना समर्थन है। इष्ट अर्थ को कहना आशीष है। समर्थन और आशिष के अर्थ में पञ्चमी होती है। भू धातु से 'तु' विभक्ति है अन् विकरण और गुण होकर 'भवतु' बना। "आशिषि तुह्योस्तातण् वा वक्तव्यः" इस वृत्ति से आशिष अर्थ में 'तु' और 'हि' विभक्ति को विकल्प से 'तातण्' हो जाता है। अण् का अनुबंध होकर 'भवतात्' बना। भवतां, भवन्तु 'भव हि' है।

हन् धातु को छोड़कर अकार से परे 'हि' का लोप हो जाता है ॥४४ ॥

अकारात्परस्य हेर्लोपो भवति अहन्ते: । भव, भवतात्, भवताद् भवतं भवत । भवानि भवाव भवाम । भावे—भूयतां । कर्मणि—अनुभूयतां ।

आदातामाथामादेरि: ॥ ४५ ॥

अकारात्परयो: आतां आथां । इत्येतयोरादिरिर्भवति । अनुभूयेतां । अनुभूयन्तां । अनुभूयस्व अनुभूयेथां अनुभूयध्वं । अनुभूयै अनुभूयावहै अनुभूयामहै । एधतां एधेतां एधन्तां । एधस्व एधेथां एधध्वं । एधै एधावहै एधामहै । भावे—एध्यतां । कर्मणि—एध्यतां एध्येतां एध्यन्तां । पचतु पचतात् पचताद् पचतां पचन्तु । पचतां पचेतां पचन्तां । भावे—पच्यतां । कर्मणि—पच्यतां पच्येतां पच्यन्तां ।

भूतकरणवत्यश्च ॥ ४६ ॥

भूतमतीतं करणं क्रिया यस्य तद्भूतकरणं साधनं तद्विद्यते यासां ता भूतकरणवत्य: । भूतकरणवत्यो ह्यस्तन्यद्यतनीक्रियातिपत्तयोऽतीते काले भवन्ति । ह्यो भव: कालो ह्यस्तन: तत्र ह्यस्तनी भवति ।

अड् धात्वादिर्ह्यस्तन्यद्यतनीक्रियातिपत्तिषु ॥ ४७ ॥

भव, भवतात् ।

भवतु भवतात्, भवतां, भवन्तु । भव, भवतात् । भवतं भवत । भवानि भवाव भवाम ।

भाव में—भूयतां । कर्म में—अनुभूयतां । अनुभूय आतां है ।

अकार से परे आतां, आथां की आदि को इकार हो जाता है ॥४५ ॥

अनुभूयेतां, अनुभूयन्तां ।

अनुभूयतां अनुभूयेतां अनुभूयन्तां । अनुभूयस्व, अनुभूयेथां अनुभूयध्वं । अनुभूयै अनुभूयावहै अनुभूयामहै ।

पंचमी—एधतां	एधेतां	एधन्तां	पचतु, पचतात्	पचतां	पचंतु
एधस्व	एधेथां	एधध्वं	पच, पचतात्	पचतं	पचत
एधै	एधावहै	एधामहै	पचानि	पचाव	पचाम ।

भाव में—एध्यतां ।

कर्म में—

आत्मने—पचतां	पचेतां	पचन्तां	पच्यतां	पच्येतां	पच्यन्तां
पचस्व	पचेथां	पचध्वं	पच्यस्व	पच्येथां	पच्यध्वं
पचै	पचावहै	पचामहै	पच्यै	पच्यावहै	पच्यामहै ।

भाव में—पच्यतां ।

भूतकरण वती ह्यस्तनी आदि विभक्तियाँ हैं ॥४६ ॥

अतीत काल की क्रिया है जिसमें उसे भूतकरण कहते हैं वह भूतकरण साधन जिनके पाया जाता है वे क्रियायें भूतकरणवती अर्थात् अतीत काल वाली कहलाती हैं । ह्यस्तनी, अद्यतनी और क्रियातिपत्ति ये विभक्तियाँ अतीत काल में होती हैं । ह्य:—बीता हुआ कल का काल 'ह्यस्तन:' कहलाता है उस अर्थ में 'ह्यस्तनी' विभक्ति होती है ।

'भू' धातु से दि विभक्ति आई इकार का अनुबंध होकर अन् विकरण और गुण हुआ । 'भव् अ द्' रहा ।

ह्यस्तनी, अद्यतनी, क्रियातिपत्ति के आने पर धातु की आदि में 'अट्', का आगम होता है ॥४७ ॥

धातोरादावडागमो भवति ह्यस्तन्यद्यतनीक्रियातिपत्तिषु परतः।

पदान्ते धुटां प्रथमः ॥ २५ ॥*

पदान्ते वर्तमानानां धुटां अन्तरतमः प्रथमो भवति। अभवत् अभवतां अभवन्। अभवः अभवतं अभवत। अभवं अभवाव अभवाम। भावे—अभूयत। कर्मणि—अन्वभूयत अन्वभूयेतां अन्वभूयन्त। अड् धात्वादिसूत्रबाधनार्थमुत्तरयोगः।

स्वरादीनां वृद्धिरादेः ॥४८ ॥

स्वरादीनां धातूनां आदिस्वरस्य वृद्धिर्भवति ह्यस्तन्यादिषु परतः। ऐधत ऐधेतां ऐधन्त। ऐधथा ऐधेथां ऐधध्वं। ऐधे ऐधावहि ऐधामहि। भावे—ऐध्यत। कर्मणि—ऐध्यत ऐध्येतां। ऐध्यन्त। अपचत् अपचतां अपचन्। अपचत अपचेतां अपचन्त। भावे—अपच्यत। कर्मणि—अपच्यत अपच्येतां अपच्यन्त।

पद के अंत में धुट् को प्रथम अक्षर होता है ॥२५ ॥

'अभवत्' बन गया। सि विभक्ति के इकार का अनुबंध होकर अभवः बना। व, म के आने पर पूर्व स्वर को दीर्घ होकर अभवाव अभवाम बना। अम् के आने पर भी सूत्र २६वें से अकार का लोप हुआ है।

अभवत् अभवतां अभवन्। अभवः अभवतं अभवत। अभवम् अभवाव अभवाम। भाव अर्थ में—अभूयत।

कर्म में—अन्वभूयत	अन्वभूयेतां	अन्वभूयन्त
अन्वभूयथाः	अन्वभूयेथां	अन्वभूयध्वं
अन्वभूये	अन्वभूयावहि	अन्वभूयामहि

यहाँ अट् का आगम करने के बाद में यदि उपसर्ग का प्रयोग हो तो धातु के बाद में अट् का आगम होता है। इसको बाधित करने के लिये आगे का सूत्र कहते हैं ए ध् + अ त है।

कहने का मतलब यह है कि यदि व्यञ्जन से धातु का आरम्भ तो अट् होता स्वर से वृद्धि हो उपसर्ग पूर्वक धातु का प्रयोग हो तो उपसर्ग के बाद धातु से पहले अट् हो।

ह्यस्तनी आदि के आने पर स्वर है आदि में जिसके ऐसे धातु के आदि स्वर को वृद्धि हो जाती है ॥४८ ॥

भाव अर्थ में—ऐध्यत।

अतः—ऐधत	ऐधेतां	ऐधन्तां
ऐधथाः	ऐधेथां	ऐधध्वं
ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि।

अपचत् अपचतां अपचन्। अपचः अपचतं अपचत। अपचम् अपचाव अपचाम।

आ०—अपचत अपचेतां अपचन्त। अपचथाः अपचेथां अपचध्वं। अपचे अपचावहि अपचामहि।

भाव में—अपच्यत। कर्म में—अपच्यत	अपच्येतां	अपच्यन्त
अपच्यथाः	अपच्येथां	अपच्यध्वं
अपच्ये	अपच्यावहि	अपच्यामहि

मास्मयोगे ह्यस्तनी च ॥ ४९ ॥

मास्मयोगे ह्यस्तन्यद्यतनी च भवति।

न मामास्मयोगे ॥ ५० ॥

मायोगे मास्मयोगे च धातोरादावडागमो न भवति। मास्म भवत् मास्म भवतां मास्मभवन् ॥ मास्म एधत मास्म एधेतां मास्म एधन्त। मास्म पचत् मास्म पचतां मास्म पचन् ॥ मास्म पचत मास्म पचेतां मास्म पचन्त। भावे—मास्म भूयत। कर्मणि—मास्मानुभूयत मास्मानुभूयतां मास्मानुभूयन्त। श्रु श्रवणे।

श्रुवः शृ च ॥ ५१ ॥

श्रुवो धातोर्नुप्रत्ययो भवति सार्वधातुके परे शृ आदेशश्च। शृणोति शृणुतः शृण्वन्ति। अन्विकरणः कर्त्तरीति निर्देशात् द्वित्वबहुत्वयोश्च परस्मै सप्तम्यां च हि वचने च गुणो न भवति। उत्तरत्र प्रदर्श्यते। शृणुयात् शृणुयातां शृणुयुः। शृणोतु। न णकारानुबन्धचेक्रीयितयेति श्रुवस्तातण्प्रत्यये गुणनिषेधः। शृणुतात् शृणुतां शृण्वन्तु।

नोश्च विकरणादसंयोगात् ॥ ५२ ॥

मास्म के योग में ह्यस्तनी, अद्यतनी विभक्तियाँ होती हैं ॥४९ ॥

मा और मास्म के योग में धातु की आदि में अट् का आगम नहीं होता है ॥५० ॥

मास्म भवत्, मास्म भवतां, मास्म भवन्।

मास्म एधत। मास्म पचत। भाव में—मास्म भूयत।

कर्म में—मास्म अनुभूयत। इत्यादि।

श्रु धातु सुनने अर्थ में है।

श्रु धातु से 'नु' विकरण होता है सार्वधातुक के आने पर, एवं श्रु को 'शृ' आदेश होता है ॥५१ ॥

शृणोति	शृणुतः	शृण्वन्ति
शृणोषि	शृणुथः	शृणुथ
शृणोमि	शृणुवः	शृणुमः।

"अन् विकरणः कर्तरि" इस निर्देश से द्विवचन और बहुवचन में परस्मैपद की सप्तमी में 'हि' विभक्ति गुण नहीं होती है यह बात आगे बतलायेंगे।

यह श्रु धातु "स्वादि गण" की है अतः इसमें अन् विकरण न होकर 'नु' विकरण होता है।

सप्तमी में—शृणुयात्	शृणुयातां	शृणुयुः
शृणुयाः	शृणुयातं	शृणुयात
शृणुयाम्	शृणुयाव	शृणुयाम

पञ्चमी में—"नणकारानुबंध चेक्रीयतयोः" इस सूत्र से श्रु धातु से तातण् प्रत्यय होने पर गुण का निषेध हो गया है। अतः शृणुतात् बना। शृणु हि है।

असंयोग से पूर्व नु विकरण से परे 'हि' का लोप हो जाता है ॥५२ ॥

असंयोगात् पूर्वान्नुविकरणात् परस्य हेर्लोपो भवति। शृणु शृणुतात् शृणुतं शृणुत। शृणवानि शृणवाव शृणवाम। अशृणोत् अशृणुतां अशृण्वन्। कर्मणि—

नाम्यन्तानां यणायियिन्नाशीश्विव्वेक्रीयितेषु ये दीर्घः॥ ५३॥

नाम्यन्तानां धातूनां दीर्घो भवति यणादिषु ये च्वौ च परे। श्रूयेत श्रूयते। श्रूयतां। अश्रूयत। इत्यादि। षिधु गत्यां। षिधू शास्त्रे माङ्गल्ये च।

धात्वादेः षः सः॥ ५४॥

धात्वादेः षस्य सो भवति। सेधति। स्थासेनयसेधतिसिचसञ्ज्विञ्जां अडभ्यासान्तरश्चेति सस्य षत्वं। प्रतिषेधति। तत्र सेधतेर्गताविति वचनाद्गतौ न षत्वं। परिसेधति। सेधतः। सेधन्ति। सेधेत्। सेधतु। असेधत्। णीङ् प्रापणे।

णो नः॥ ५५॥

धात्वादेर्णस्य नो भवति। नयति नयतः नयन्ति नयते नयेते नयन्ते। नयेत्। नयेत। नयतु। नयतां। अनयत्। अनयत। भावे—नीयते। कर्मण्येवं। स्रंस् भ्रंस् अवस्रंसने। ध्वंस् गतौ च। मनोरनुस्वारो धुटि इति नकारस्यानुस्वारः। स्रंसते स्रंसेते स्रंसन्ते। भ्रंसते। ध्वंसते।

पंचमी में—	शृणोतु, शृणुतात्	शृणुतां	शृण्वन्तु।
	शृणु शृणुतात्	शृणुतं	शृणुत
	शृणवानि	शृणवाव	शृणवाम।

यण् आदि, य, च्वि प्रत्यय के आने पर नाम्यंत धातु को दीर्घ हो जाता है॥५३॥

वर्तमाना—	श्रूयते	श्रूयेते	श्रूयंते	सप्तमी—	श्रूयेत	श्रूयेयातां	श्रूयेरन्
	श्रूयसे	श्रूयेथे	श्रूयध्वे		श्रूयेथाः	श्रूयेयाथां	श्रूयेध्वं
	श्रूये	श्रूयावहे	श्रूयामहे		श्रूयेय	श्रूयेवहि	श्रूयेमहि
पंचमी—	श्रूयतां	श्रूयेतां	श्रूयन्तां	ह्यः—	अश्रूयत	अश्रूयेतां	अश्रूयन्त
	श्रूयस्व	श्रूयेथां	श्रूयध्वं		अश्रूयथाः	अश्रूयेथां	अश्रूयध्वम्
	श्रूयै	श्रूयावहै	श्रूयामहै		अश्रूये	अश्रूयावहि	अश्रूयामहि

षिधु धातु गति अर्थ में है। 'षिधू' शास्त्र और मंगल अर्थ में है।

धातु के आदि का षकार सकार हो जाता है॥५४॥

सिध् है अन् विकरण और गुण होकर 'सेधति' बना। स्था, आस् सेधति, सिच् सञ्जि ष्वंजि इनमें अट् अभ्यासांतर (व्यवधान रहने पर भी) सकार को षकार हो जाता है। जैसे प्रतिषेधति।

धातु पाठ में गत्यां पढ़ा है इसलिये जहाँ गति से भिन्न अर्थ है वहाँ ष नहीं होता जैसे परिसेधति, बना।

सेधति, सेधतः सेधन्ति। सेधसि सेधथः सेधथ। सेधामि सेधावः सेधामः। सेधेत्। सेधतु। असेधत्।

णीङ् धातु ले जाने अर्थ में है।

धातु की आदि का णकार नकार हो जाता है॥५५॥

यह धातु उभयपदी है अतः परस्मैपद आत्मने पद दोनों में रूप चलेंगे।

वर्त—नयति	नयतः	नयन्ति	नयते	नयेते	नयंते
नयसि	नयथः	नयथ	नयसे	नयेथे	नयध्वे

अनिदनुबन्धानामगुणेऽनुषङ्गलोपः ॥ ५६ ॥

इदनुबन्धवर्जितानां धातूनां अनुषङ्गलोपो भवति अगुणे प्रत्यये परे कर्मणि। स्रस्यते स्रस्येते स्रस्यन्ते। एवं भ्रस्यते। ध्वस्यते। अत एव वर्जनादिदनुबन्धानां धातूनां नुरागमोस्ति गुणागुणे प्रत्यये परे। ग्रथि वकि कौटिल्ये। शकि शङ्कायां। ग्रन्थते। वङ्कते। शङ्कते। ग्रन्थ्यते ग्रन्थ्येते। शङ्क्यते। शङ्क्येते शङ्क्यन्ते। वङ्क्यते। वङ्क्येते। वङ्क्यन्ते। टुनदि समृद्धौ। नन्दति नन्दतः नन्दन्ति। नन्द्यते। वदि अभिवादनस्तुत्योः। वन्दते वन्देते वन्दन्ते। कर्मणि—वन्द्यते। दंश दशने। षञ्ज स्वङ्गे। ष्वञ्ज परिष्वङ्गे। रञ्ज रागे।

दंशिषञ्जिष्वञ्जिरञ्जीनामनि ॥ ५७ ॥

एतेषामनि विकरणे परेऽनुषङ्गलोपो भवति। दशति। दशेत्। दशतु। अदशत्। भावे—दश्यते। सजति। सजेत्। सजतु। असजत्। सज्यते। परि ध्वजते। रजति। रजेदित्यादि।

	नयामि	नयावः	नयामः	नये	नयावहे	नयामहे
सप्त—	नयेत्	नयेतां	नयेयुः	नयेत	नयेयातां	नयेरन्
	नयेः	नयेतं	नयेत	नयेथाः	नयेयाथां	नयेध्वं
	नयेयम्	नयेव	नयेम	नयेय	नयेवहि	नयेमहि
पंच—	नयतु, नयतात्	नयतां	नयन्तु	नयतां	नयेतां	नयन्तां
	नय, नयतात्	नयतं	नयत	नयस्व	नयेथां	नयध्वं
	नयानि	नयाव	नयाम	नयै	नयावहै	नयामहै
ह्य—	अनयत्	अनयतां	अनयन्	अनयत	अनयेतां	अनयन्त
	अनयः	अनयतं	अनयत	अनयथाः	अनयेथां	अनयध्वं
	अनयम्	अनयाव	अनयाम	अनये	अनयावहि	अनयामहि

भाव में नीयते। कर्म में—नीयते। नीयेत। नीयतां। अनीयत। स्रन्स् भ्रन्स धातु नष्ट होने के अर्थ में है। ध्वन्स धातु गति अर्थ में है। "मनोरनुस्वारो धुटि" इस सूत्र से नकार को अनुस्वार हो गया। स्रंसते, भ्रंसते, ध्वंसते। ऐसे चारों विभक्तियों में चलेंगे।

इत् अनुबंध से रहित धातु के अनुषंग का लोप हो जाता है ॥५६ ॥

कर्मणि प्रयोग में गुण रहित प्रत्यय के आने पर अनुषंग का लोप होता है अंतः स्रस्यते स्रस्येते स्रस्यंते। भ्रस्यते। ध्वस्यते। इसी नियम से वर्जित होने से गुणी अगुणी प्रत्यय के आने पर इत् अनुबन्ध वाले धातु को 'नु' का आगम होता है। 'ग्रथि, वकि' धातु कुटिलता अर्थ में है 'शकि' शंका अर्थ में है। इन तीनों धातुओं में इकार का अनुबंध है अतः नु का आगम होकर ग्रन्थते वङ्कते, शङ्कते। कर्मणि प्रयोग में—ग्रन्थ्यते, वङ्क्यते। शङ्क्यते। इनके पूरे रूप चारों में चलेंगे।

'टुनदि' धातु समृद्धि अर्थ में है टु और इकार का अनुबंध हुआ है। नु का आगम होकर नन्दति, नन्दतः नंदन्ति बना। कर्म में—नंद्यते। 'वदि' धातु अभिवादन और स्तुति अर्थ में है। वन्दते वन्देते वन्दन्ते। आदि। कर्म में—वंद्यते। दंश धातु काटने अर्थ में है। षञ्ज स्वंग अर्थ में है षञ्ज, आलिंगन अर्थ में है। रञ्ज धातु राग अर्थ में है।

अन् विकरण के आने पर दंश् षञ्ज् ष्वंज रञ्ज् धातु के अनुषंग का लोप हो जाता है ॥५७ ॥

अतः दशति, दशेत्, दशतु, अदशत् बनेंगे। भाव में—दश्यते। षंज्—सजति, सजेत् सजतु असजत्। सज्यते, परिष्वजते। रजति इत्यादि।

रञ्जेरिनि मृगरमणार्थे वा ॥ ५८ ॥

मृगरमणार्थे रञ्जेरनुषङ्गलोपो वा भवति इनि परे। रजति कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते। धातोश्च हेतौ इति इन् भवति। रजयति। पक्षे रञ्जयति। ष्ठिवु क्षिवु निरसने। क्लमु ग्लानौ। चमु छमु जमु जिमु अदने।

ष्ठिवुक्लमाचामामनि ॥ ५९ ॥

ष्ठिवु क्लम आचम् इत्येतेषामुपधाया दीर्घो भवति। परस्मैपदेऽनि परे। क्रियायोग प्रादय उपसर्गसंज्ञा भवन्ति। निष्ठीवति निष्ठीवतः निष्ठीवन्ति। क्लामति। भावे—क्लम्यते। आचामति। आचम्यते। आङिति किं ? चमति। विचमति। क्रमु पादविक्षेपे।

क्रमः परस्मै ॥ ६० ॥

क्रमो दीर्घो भवति परस्मैपदे अनि परे। क्रामति। परस्मै इति किं ?

प्रोपाभ्यामारम्भे ॥ ६१ ॥

लक्षणसूत्रे लक्षणं व्यभिचरन्त्याचार्याः। प्रोपाभ्यां परः क्रम् आरम्भेऽर्थे आत्मनेपदी भवति। प्रक्रमते। उपक्रमते। प्रक्रम्यते उपक्रम्यते। षुस्रुद्रुप्रुऋच्छगम्लृसृपृ गतौ। इषु इच्छायां। यमु उपरमे।

मृग को रमण कराने अर्थ में प्रेरणार्थक इन् के आने पर रञ्ज् का विकल्प से अनुषंग लोप होता है ॥५८ ॥

मृगं रजति कश्चित् तम् अन्यः प्रयुंक्ते कोई मृग के साथ रमण करता है और उसको कोई प्रेरणा से वमण—क्रीडा कराता है ।

"धातोश्च हेतौ इन्" इस सूत्र से इन् प्रत्यय होता है रजि बना पुनः अन् विकरण और गुण होकर 'रजयति' बना। पक्षे—अनुषंग लोप न होने पर रञ्जयति बना।

'ष्ठिवु क्षिवु' धातु थूकने अर्थ में हैं। क्रमु धातु ग्लानि अर्थ में है। चमु छमु जमु जिमु धातु भोजन करने अर्थ में हैं।

परस्मैपद अन् के आने पर ष्ठिवु क्लम् आचम् धातु की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥५९ ॥

क्रिया के योग में प्रादि उपसर्ग संज्ञक हो जाते हैं। ष्ठी वति नि पूर्वक 'निष्ठीवति' बना। क्लम् से क्लामति आङ् उपसर्ग पूर्वक चम् आचामति बना। कर्मप्रयोग में—क्लम्यते, आचम्यते। आङ् उपसर्ग पूर्वक चम् हो ऐसा क्यों कहा ? चमति विचमति में दीर्घ नहीं हुआ। क्रमु धातु पाद विक्षेपण करने अर्थ में है। क्रम् अ ति ।

परस्मैपद अन् के आने पर क्रम् को दीर्घ हो जाता है ॥६० ॥

क्रामति। परस्मैपद में ऐसा क्यों कहा ?

प्र, उप से परे क्रम् धातु आरंभ अर्थ में आत्मनेपदी हो जाता है ॥६१ ॥

आचार्य, लक्षण सूत्र में लक्षण को व्यभिचरित कर देते हैं। अतः प्र, उप से परे क्रम धातु आरंभ अर्थ में आत्मनेपदी हो जाता है। प्रक्रमते, उपक्रमते। कर्म में—प्रक्रम्यते उपक्रम्यते।

षु स्रु द्रु प्रु ऋच्छ, गम्लृ, सृ पृ धातु गति अर्थ में हैं। इषु धातु इच्छा अर्थ में है। यमु धातु उपरम अर्थ में है।

गमिष्यमां छः ॥ ६२ ॥

गम इषु यम् एषामन्त्यस्य छो भवत्यनि परे। गच्छति। इच्छति। यच्छति। गम्यते। इष्यते। यम्यते। पा पाने।

पः पिबः ॥ ६३ ॥

पाधातोः पिबादेशो भवत्यनि परे। पिबति। दामागायतिपिबतिस्थास्यतिजहातीनामीकारो व्यञ्जनादौ चेत्याकारस्य ईकारः। पीयते। घ्रा गन्धोपादाने।

घ्रो जिघ्रः ॥ ६४ ॥

घ्राधातोर्जिघ्रादेशो भवत्यनि परे। जिघ्रति। घ्रायते। ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः।

ध्मो धमः ॥६५ ॥

ध्माधातोर्धमादेशो भवत्यनि परे। धमति। ध्मामते। स्था गतिनिवृत्तौ।

स्थस्तिष्ठः ॥६६ ॥

स्थाधातोस्तिष्ठादेशो भवत्यनि परे। तिष्ठति। स्थीयते। म्ना अभ्यासे।

म्नो मनः ॥६७ ॥

म्नाधातोर्मनादेशो भवत्यनि परे। मनति। म्नायते। दाण् दाने।

दाणो यच्छः ॥६८ ॥

दाण्धातोर्यच्छादेशो भवत्यनि परे। प्रयच्छति। प्रदीयते। दृशिर् प्रेक्षणे।

अन् के आने पर गम् इषु यम के अन्त को 'छ' आदेश हो जाता है ॥६२ ॥

ग छ् अ ति। छ को द्वित्व और प्रथम अक्षर होकर 'गच्छति' बना। इच्छति। यच्छति। कर्म में—गम्यते। इष्यते। यम्यते बना। चारों में रूप बनेंगे। पा धातु पीने अर्थ में है।

अन् विकरण के आने पर पा धातु को पिब् आदेश हो जाता है ॥६३ ॥

अ का अनुबंध होकर पिबति पिबतः पिबन्ति। कर्मणि प्रयोग में—पा यण् ते। दा, मा, गायति पिबति, स्थास्यति, जहाति इन धातु से व्यञ्जनादि विभक्ति प्रत्यय के आने पर आकार को ईकार हो जाता है। पीयते, मीयते, गीयते आदि बन जाते हैं।

घ्रा धातु सूंघने अर्थ में है। घ्रा अन् ति।

अन् के आने पर घ्रा को जिघ्र् आदेश हो जाता है ॥६४ ॥

जिघ्रति। घ्रायते। ध्मा धातु शब्द और अग्नि के संयोग में है।

अन् के आने पर ध्मा को धम् आदेश हो जाता है ॥६५ ॥

धमति। कर्म में—ध्मायते। स्था धातु ठहरने अर्थ में है।

स्था को तिष्ठ् आदेश हो जाता है ॥६६ ॥

अन् के आने पर। तिष्ठति। स्थीयते। म्ना धातु अभ्यास अर्थ में है। म्ना अ ति।

म्ना को मन् आदेश हो जाता है ॥६७ ॥

मनति। कर्म में—म्नायते। दाण् धातु देने अर्थ में है।

दाण् को यच्छ् आदेश होता है ॥६८ ॥

अन् के आने पर। यच्छति। प्रपूर्वक कर्म में—प्रदीयते। दृशिर् धातु देखने अर्थ में है।

दृशेः पश्यः ॥६९ ॥

दृशेर्धातोः पश्यादेशो भवत्यनि परे। पश्यति। दृश्यते। ऋ प्रापणे। ऋ सृ गतौ।

अर्तेः ऋच्छः ॥७० ॥

अर्तेः ऋच्छादेशो भवत्यनि परे। ऋच्छति।

गुणोर्तिसंयोगाद्योः ॥७१ ॥

अर्तेः संयोगादेश्च धातोर्गुणो भवति। यकारादौ प्रत्यये परे। अर्य्यते।

सर्त्तेर्धावः ॥७२ ॥

सर्त्तेर्धावादेशो भवत्यनि परे। धावति। यणाशिषोर्य इति इकारागमः। स्रियते। ननु धावुगतावित्ययमपि धातुरस्ति। जवाभिधाने यथा स्यात्। तेन प्रियामनुसरति। शद्लृ शातने।

शदेः शीयः ॥७३ ॥

शदेः शीयादेशो भवत्यनि परे।

शदेरनि ॥७४ ॥

शदेरनि परे आत्मनेपदं भवति। यदि धातुः रुचादिर्भवत्यनि परे। शीयते शीयेते शीयन्ते। कर्मणि-शद्यते। पक्षे कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते शादयति। षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु।

सदेः सीदः ॥७५ ॥

अन् के आने पर दृश् को पश्य् होता है ॥६९ ॥

पश्यति। कर्म में—दृश्यते। ऋ धातु प्राप्त कराने अर्थ में है। ऋ सृ गति अर्थ में है।

अन् के परे ऋ धातु को ऋच्छ् हो जाता है ॥७० ॥

ऋच्छति। ऋ य ते इस स्थिति में—

यकारादि प्रत्यय के आने पर ऋ और संयोगादि धातु को गुण हो जाता है ॥७१ ॥

ऋ को गुण होकर अर्-अर्यते य् को द्वित्व होकर अर्य्यते। सृ अ ति।

अन् के आने पर सृ को धाव् हो जाता है ॥७२ ॥

धावति। कर्म में—सृ य ते। "यणाशिषोर्य" नियम से इकार का आगम हो गया। स्रियते बना। धावु गति अर्थ में है यह भी एक धातु है पुनः सृ को धावु आदेश क्यों किया ? यदि दौड़ने अर्थ में है तब तो धावु स्वतंत्र धातु है अन्यथा चलने अर्थ में सृ को धाव् आदेश होता है। सृ का रूप भी चलता है प्रियामनुसरति—प्रिया का अनुसरण करता है।

शद्लृ धातु शातन अर्थ में है।

अन् के आने पर शद् को शीय् आदेश होता है ॥७३ ॥

अन् के आने पर शद् को आत्मने पद हो जाता है ॥७४ ॥

अन् के आने पर शद् धातु रूचादि गण में हो जाती है। शीयते शीयेते। कर्म में—शयते। पक्ष में—शीयते तं कोऽपि प्रेरयति कोई अन्य उसको प्रेरित करता है। 'शादयति' बना।

षद्लृ धातु विशरण, गति ओर अवसादन अर्थ में है।

अन् के आने पर सद् को सीद् होता है ॥७५ ॥

सदेः सीदादेशो भवत्यनि परे। सीदति सीदतः सीदन्ति। इति भ्वादयः ॥

अथ अदादिगणः

अद् प्सा भक्षणे। पूर्ववत् वर्तमानादीनां।

अदादेर्लुग्विकरणस्य ॥७६ ॥

अदादेर्गणाद्विकरणस्य लुग्भवति।

अघोषेष्वशिटां प्रथमः ॥७७ ॥

अघोषेषु प्रत्ययेषु परे अशिटां धुटां प्रथमो भवति। अत्ति अत्तः अदन्ति। अत्सि अत्थः अत्थ। अद्मि अद्वः अद्मः। शीङ् स्वप्ने।

शीङः सार्वधातुके ॥७८ ॥

शीङो गुणो भवति सार्वधातुके परे। शेते शयाते।

आत्मने चानकारात् ॥७९ ॥

अनकाराच्चात्मनेपदे अन्तेर्नकारस्य लोपो भवति।

शेतेरिरन्तेरादिः ॥८० ॥

शेतेः परस्य अन्तेरादिरिर्भवति। शेरते। शेषे शयाथे शेध्वे। शये शेवहे शेमहे। ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि।

सीदति सीदतः सीदंति। इन सभी धातुओं के रूप सार्वधातुक चारों विभक्तियों में चलते हैं।
इस प्रकार से भ्वादि गण का प्रकरण समाप्त हुआ।

अब अदादि गण प्रारंभ होता है।

अद् प्सा, भक्षण अर्थ में है। पूर्ववत् वर्तमान आदि में चलते हैं।
अद् अ ति है।

अदादि गण से अन् विकरण का लुक् हो जाता है ॥७६ ॥

अघोष प्रत्ययों के आने पर अशिट् धुट् को प्रथम अक्षर होता है ॥७७ ॥

इसलिये अत्ति अत्तः। 'अद् अ अन्ति' विकरण का लुक् होकर अदन्ति बना।
अत्ति अत्तः अदन्ति। अत्सि अत्थः अत्थ। अद्मि अद्वः अद्मः। शीङ् धातु शयन करने अर्थ में है।
ङानुबंध धातु आत्मनेपदी होते हैं।

सार्वधातुक में शीङ् धातु को गुण होता है ॥७८ ॥

'शे अ ते' विकरण का लुक् होकर शेते।
शे + आते = शयाते।

आत्मनेपद में अन्ते के नकार का लोप हो जाता है ॥७९ ॥

शेते से परे अन्ते की आदि में रकार का आगम होता है ॥८० ॥

शेरते। शेषे शयाथे शेध्वे।
शेते शयाते शेरते। शेषे शयाथे शेध्वे। शये शेवहे शेमहे।
ब्रूञ् धातु स्पष्ट बोलने अर्थ में है।

बुव ईड्वचनादिः ॥८१ ॥

बुव ईड् भवति वचनादिर्भूत्वा व्यञ्जनादौ गुणिनि सार्वधातुके परे । नाम्यन्तयोरिति गुणः । ब्रवीति ।

द्वित्वबहुत्वयोश्च परस्मै ॥८२ ॥

सर्वेषां धातूनां विकरणानां च सार्वधातुके परस्मैपदे पञ्चम्युत्तमवर्जिते द्वित्वबहुत्वयोश्च गुणो न भवति । ब्रूतः ।

स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ ॥८३ ॥

इवर्णउवर्णान्तस्य धातोरियुवौ भवतः स्वरादावगुणे । ब्रुवन्ति । ब्रवीषि ब्रूथः ब्रूथ । ब्रवीमि ब्रूवः ब्रूमः ।

ब्रुवस्त्यादीनामडादयः पञ्च ॥८४ ॥

ब्रूधातोः परेषां त्यादिपञ्चकानामडादयः पञ्च भवन्ति । अट् अतुस् उस् थल् अथुस् इत्येते वक्तव्याः ।

तत्सन्निधौ ब्रुव आहः ॥८५ ॥

तेषामडादीनां सन्निधौ ब्रूधातोराहादेशश्च भवति । आह आहतुः आहुः ।

थल्याहेः ॥८६ ॥

थलि परे आहेरित्येतस्य हकारस्य धकारो भवति । आत्थ आहतुः ।

सर्वेषामात्मनेसार्वधातुकेऽनुत्तमे पञ्चम्याः ॥८७ ॥

व्यञ्जनादि गुणी सार्वधातुक के परे ब्रू धातु से ईट् आगम होता है ॥८१ ॥

नाम्यंत को गुण होकर ब्रो ई अ ति । अन् विकरण का लुक् होकर संधि होकर 'ब्रवीति' बना ।

द्विवचन, बहुवचन को परस्मै पद में गुण नहीं होता है ॥८२ ॥

सभी धातु को और विकरण को पञ्चमी के उत्तम पुरुष से वर्जित सार्वधातुक परस्मैपद में द्विवचन, बहुवचन को गुण नहीं होता है ।

अतः 'ब्रूतः' बना ।

स्वरादि वाली अगुणी विभक्ति के आने पर धातु के इवर्ण, उवर्ण को इय् उव् हो जाता है ॥८३ ॥

अतः 'ब्रुवन्ति' बना ।

ब्रवीति ब्रूतः ब्रुवन्ति । ब्रवीषि ब्रूथः ब्रूथ । ब्रवीमि ब्रूवः ब्रूमः ।

ब्रू धातु से परे ति आदि पाँच विभक्तियों में क्रम से अट् आदि पाँच आदेश होते हैं ॥८४ ॥

ति तस् अन्ति सि थस् इनको अट् अतुस् उस् थल् अथुस् ये पाँच आदेश होते हैं ।

इन अट् आदि की सन्निधि होने पर ब्रू धातु को आह् आदेश होता है ॥८५ ॥

ब्रू को आह् एवं ति को 'अट्' आदेश होकर 'आह' बना है । ऐसे ही आह, आहतुः, आहुः ।

थल् के आने पर आह् के हकार को धकार हो जाता है ॥८६ ॥

पुनः ध् को प्रथम अक्षर होकर 'आत्थ' आहथुः बना ।

पंचमी के उत्तम पुरुष से वर्जित सार्वधातुक आत्मने पद के आने पर सभी धातु और विकरण को गुण नहीं होता है ॥८७ ॥

सर्वेषां धातूनां विकरणानां च सार्वधातुके आत्मनेपदे परे पञ्चम्युत्तमवर्जिते गुणो न भवति। ब्रूते ब्रुवाते ब्रुवते। ब्रू षे ब्रु वाथे ब्रू ध्वे। ब्रु वे ब्रू वहे ब्रू महे। अद्यात् अद्यातां अद्युः। अद्याः अद्यातं अद्यात। अद्यां अद्याव अद्याम। शयीत शयीयातां शयीरन्। शयीथाः शयीयाथां शयीध्वं। शयीय शयीवहि शयीमहि।

सप्तम्यां च ॥८८॥

सर्वेषां धातुविकरणानां गुणो न भवति सप्तम्यां च परस्मैपदे परे। ब्रूयात् ब्रू यातां ब्रू युः। ब्रू याः ब्रू यातं ब्रूयात। ब्रूयां ब्रूयाव ब्रूयाम। ब्रुवीत ब्रुवीयातां ब्रुवीरन्। ब्रुवीथाः ब्रुवीयाथां ब्रुवीध्वं। ब्रुवीय ब्रुवीवहि ब्रुवीमहि। अत्तु अत्तात् अत्तां अदन्तु।

हुधुड्भ्यां हेर्धिः ॥८९॥

हुधुड्भ्यां परस्य हेर्धिर्भवति। अद्धि अत्तात् अत्तं अत्त। अदानि अदाव अदाम। शेतां शयातां शेरतां। शेष्व शयाथां शेध्वं। शयै शयावहै शयामहै। ब्रवीतु ब्रूतात् ब्रूतां ब्रुवन्तु।

हौ च ॥९०॥

सर्वेषां धातूनां गुणो न भवति हौ च परे। ब्रूहि ब्रूतात् ब्रूतं ब्रूत। ब्रवाणि ब्रवाव ब्रवाम। ब्रूतां ब्रुवातां ब्रुवतां। ब्रूष्व ब्रुवाथां ब्रूध्वं। ब्रवै ब्रवावहै ब्रवामहै।

अदोद् ॥९१॥

अदः परयोर्दिस्योरादेरड् भवति।

अवर्णस्याकारः ॥९२॥

धातोरादेरवर्णस्याकारो भवति ह्यस्तन्यादिपरतः। आदत् आत्तां आदन्। आदः आत्तं आत्त। आदं आद्व आद्म। अशेत अशयातां अशेरत। अशेथाः अशयाथां अशेध्वं। अशयि अशेवहि अशेमहि।

अतः ब्रूते। ब्रू + आते हैं ८३वें सूत्र से ब्रुव् होकर ब्रुवाते ब्रुवते बना। बहुवचन में आत्मने पद में ७९वें सूत्र से नकार का लोप हुआ है।

ब्रूते, ब्रुवाते ब्रुवते। ब्रूषे ब्रुवाथे ब्रूध्वे। ब्रुवे ब्रूवहे ब्रूमहे।

अद् धातु सप्तमी में—अद्यात् शयीत।

सप्तमी के परस्मैपद में सभी धातुओं और विकरण को गुण नहीं होता है ॥८८॥

अतः ब्रूयात् ब्रूयातां ब्रूयुः। आत्मने पद में ब्रू को ब्रुव् होकर ब्रुवीत ब्रुवीयातां ब्रुवीरन्। अद् पंचमी में—अत्तु अत्तां अदन्तु।

हु और धुट् से परे हि को 'धि' हो जाता है ॥८९॥

अद् धि = अद्धि। 'ब्रु हि' है।

'हि' के आने पर सभी धातुओं को गुण नहीं होता है ॥९०॥

ब्रूहि। ब्रू आनि आव आम। पंचमी के उत्तम पुरुष में गुण होकर ब्रवाणि ब्रवाव ब्रवाम बन गये आत्मने पदे में भी ब्रू, ऐ आवहै आमहै। गुण होकर ब्रवै, ब्रवावहै ब्रवामहै।

अद् अ दि, 'अद् द्' रहा अन् का लुक् हो गया है।

अद् से परे दि और सि की आदि में अट् का आगम हो जाता है ॥९१॥

धातु के आदि के अवर्ण को आकार हो जाता है ॥९२॥

ह्यस्तनी, अद्यतनी, क्रियातिपत्ति विभक्ति के आने पर। अतः आदत् आत्तां आदन्। आदः आत्तं

अब्रवीत् अब्रूतां अब्रुवन्। अब्रवी: अब्रूतं अब्रूत। अब्रुवं अब्रूव अब्रूम। अब्रूत अब्रुवातां अब्रुवत। अब्रूथा: अब्रुवाथां अब्रूध्वं। अब्रुव अब्रूवहि अब्रूमहि। भावकर्मणो:। अद्यते अद्येते अद्यन्ते।

अयीर्ये ॥९३॥

शेते: ईकारोऽय् भवति ये परे। शय्यते शय्येते। ञिष्वप् शये। धात्वादे: ष: स:।

ब्रुवो वचि: ॥९४॥

ब्रुवो वचिर्भवति अगुणे सार्वधातुके परे।

स्वपिवचियजादीनां यण्परोक्षाशी:षु ॥९५॥

स्वपिवचियजादीनामन्तस्थाया: सम्प्रसारणं भवति यण्परोक्षाशी:षु परत:। किं सम्प्रसारणं ?

सम्प्रसारणं य्वृतोन्तस्थानिमित्ता: ॥९६॥

अन्तस्थानिमित्ता इउऋत: सम्प्रसारणसंज्ञा भवन्ति। सुप्यते सुप्येते सुप्यन्ते। यज देवपूजा-संगतिकरणदानेषु। इज्यते इज्येते इज्यन्ते। असु भुवि। अस्ति। उच्यते उच्येते उच्यन्ते।

आत्त। आदं आद्व आद्म। अशेत अशयातां अशेरत। अशेथा: अशयाथां, अशेध्वं। अशयि अशेवहि अशेमहि।

ब्रू धातु से दि और सि में सूत्र ८१ से ईट् का आगम और गुण होकर अब्रवीत्, अब्रवी: बना। स्वर वाली विभक्ति में ऊ को उव् हुआ है।

अब्रवीत् अब्रूतां अब्रुवन्। अब्रवी: अब्रूतं अब्रूत। अब्रूवम् अब्रूव अब्रूम। अब्रूत अब्रुवातां अब्रुवत। अब्रुथा: अब्रुवाथां अब्रूध्वं। अब्रुवे अब्रूवहि अब्रूमहि।

भाव कर्म में—अद्यते अद्येते अद्यन्ते। 'शीयते' है—

'य' प्रत्यय के आने पर शीङ् के ईकार को 'अय्' होता है ॥९३॥

शय्यते। शय्येत। शय्यतां। अशय्यत। बन गये।

ञिष्वप् धातु सोने अर्थ में है। "धात्वादे: ष: स:" सूत्र ५४ से सकार होकर 'स्वप्' धातु है। 'ब्रू धातु से कर्म में' ब्रू य ते।

अगुण सार्वधातुक के आने पर ब्रू को वच् आदेश होता है ॥९४॥

यण् परोक्षा और आशी के आने पर स्वपि, वचि और यजादि के अंतस्थ को संप्रसारण हो जाता है ॥९५॥

संप्रसारण किसे कहते हैं ?

अंतस्थ निमित्त, इ, उ, ऋ को संप्रसारण संज्ञा है ॥९६॥

अर्थात् य् को इ व् को उ और र् को ऋ होना इसे संप्रसारण कहते हैं। संधि में इ को य् उ को व् ऋ को र् होता है, किंतु यहाँ व्यञ्जन को स्वर आदेश होता है।

अत: भाव में—स्वप् य ते है = सुप्यते बन गया।

यज् धातु देव पूजा, संगति करने, दान देने अर्थ में है। भावकर्म में—यज् य ते = इज्यते बना। ब्रू य ते को उच्यते बना। असु धातु होने अर्थ में है। अस् अति विकरण का लोप होकर अस्ति बना। अस् तस् है।

अस्तेरादेः ॥९७ ॥

अस्तेरादेर्लोपो भवति अगुणे सार्वधातुके परे। स्तः सन्ति।

अस्तेः सौ ॥९८ ॥

अस्तेरन्त्यस्य लोपो भवति सौ परे असि स्थः स्थ। अस्मि स्वः स्मः। स्यात् स्यातां। स्युः। स्याः स्यातं स्यात। स्याम् स्याव स्याम। अस्तु स्तात् स्तां सन्तु। एकदेशविकृतमनन्यवत्।

दास्त्योरेभ्यासलोपश्च ॥९९ ॥

दासंज्ञकस्य अस्तेरन्त्यस्य ए भवति अभ्यासलोपश्च हौ परे।

अस्तेः ॥१०० ॥

अस्तेः परस्य हेर्धिर्भवति।

स्थानिवदादेशः ॥१०१ ॥

यस्य स्थाने यो विधीयते स स्थानी इतर आदेशः। एधि स्तात् स्तं स्त। असानि असाव असाम।

अस्तेर्दिस्योः ॥१०२ ॥

अगुणी सार्वधातुक विभक्ति के आने पर अस् के आदि का लोप होता है ॥९७ ॥

'स्तः' बना। अस् अ अन्ति है विकरण का लोप, अस् के अकार का लोप होकर 'सन्ति' बना। अस् सि है।

सि के आने पर अस् के अन्त सकार का लोप हो जाता है ॥९८ ॥

असि स्थः स्थ। सप्तमी में अगुणी होने से अस् के आदि का ९७ सूत्र से लोप हो गया है। अतः 'स्यात्' बन गया।

अस्ति स्तः सन्ति। असि स्थः स्थ। अस्मि स्वः स्मः।

स्यात् स्यातां स्युः। स्याः स्यातं स्यात। स्याम् स्याव स्याम।

अस् हि है।

'हि' के आने पर दा संज्ञक और अस्ति अस् के अंत को 'ए' हो जाता है एवं अभ्यास का लोप हो जाता है ॥९९ ॥

यहाँ अस् के अकार का लोप होने से अस् कहाँ है ? एकदेश विकृत होने पर भी वह उसी नाम वाला रहता है। अतः स् को ए हो गया। तब 'ए हि' है।

अस्ति के परे हि को 'धि' हो जाता है ॥१०० ॥

'एधि' बन गया।

स्थानिवत् आदेश होता है ॥१०१ ॥

जिसके स्थान में जो किया जाता है वह स्थान इतर आदेश हो जाता है अर्थात् आदेश प्रथम को हटाकर आप आ जाता है। अस् आनि आव आम हैं। पञ्चमी का उत्तम पुरुष गुणी विभक्ति कहलाता है। अतः 'अस्तेरादेः' सूत्र ९७ से अकार का लोप नहीं हुआ। तब असानि असाव असाम बन गया।

अस्तु स्तात् स्तां सन्तु। एधि, स्तात् स्तं स्त। असानि असाव असाम।

अस् धातु से परे दि, सि को आदि में ईत् हो जाता है ॥१०२ ॥

अस्तेः परयोर्दिस्योरादिरीद्भवति।

अस्तेः ॥१०३॥

अस्तेरवर्णस्याकारो भवति ह्यस्तन्यादिषु परतः। आसीत् आस्तां आसन्। आसीः आस्तं आस्त। आसम् आस्व आस्म।

अस्तेर्भूरसार्वधातुके[1] ॥१०४॥

अस्तेर्भूरादेशो भवति असार्वधातुके परे। भूयते। रुदिर् अश्रुविमोचने।

रुदादेः सार्वधातुके ॥१०५॥

रुदादेः परस्य सार्वधातुकस्य व्यञ्जनादेरयकारादेरादाविडागमो भवति।

नामिनश्चोपधाया लघोः ॥१०६॥

सर्वेषां धातूनां उपधाभूतस्य पूर्वस्य लघोर्नामिनो गुणो भवति। रोदिति रुदितः रुदन्ति। रोदिषि रुदिथः रुदिथ। रोदिमि रुदिवः रुदिमः।

रोदितिः स्वपितिश्चैव श्वसितिः प्राणितिस्तथा।
जक्षितिश्चेति विज्ञेयो रुदादिः पञ्चको गणः ॥१॥

रुद्यात् रुद्यातां रुद्युः। रोदितु रुदितात् रुदितां रुदन्तु। हौ चेति गुणनिषेधः। रुदिहि रुदितात् रुदितं रुदित। रोदानि रोदाव रोदाम।

रुदादिभ्यश्च ॥१०७॥

ह्यस्तनी आदि के आने पर अस्ति के आदि को आकार हो जाता है ॥१०३॥

अस् ई त् = आसीत्।

आसीत् आस्तां आसन्। आसीः आस्तं आस्त। आसम् आस्व आस्म। अस् धातु से भाव में ते विभक्ति यण् आने पर 'अस् य ते' है।

असार्वधातुक में अस् को भू आदेश हो जाता है ॥१०४॥

भूयते बना। रुदिर धातु रोने अर्थ में है। 'रूद् ति' है।

सार्वधातुक में यकारादि रहित व्यञ्जन आदि वाली विभक्ति के आने पर रुदादि से 'इट्' का आगम हो जाता है ॥१०५॥

सभी धातु के नामि लघु उपधा को गुण हो जाता है ॥१०६॥

अतः रोद् इ ति = रोदिति रुदितः रुदन्ति बना।

रोदिति रुदितः रुदन्ति। रोदिषि रुदिथः रुदिथ। रोदिमि रुदिवः रुदिमः।

श्लोकार्थ—रोदिति, स्वपिति, स्वसिति, प्राणिति और जक्षिति ये पाँच धातुयें रुदादि पञ्चगण से कही जाती हैं ॥१॥

रुद्यात्। रोदितु। हि के आने पर 'हौ च' सूत्र ९० से गुण का निषेध होने से रुदिहि बना। रुद् दि रुद् सि है।

रुद्रादि से परे दि, सि की आदि में 'ई' हो जाता है ॥१०७॥

---

१. अस्तेर्भूरगुणे सार्वधातुके

रुदादिभ्यश्च परयोर्दिस्योरादिरीद्भवति । अरोदीत् ।

रुदादेश्च ॥१०८ ॥

रुदादेश्च परयो र्दिस्योरादिरद्भवति । अरोदत् अरुदितां अरुदन् । अरोदीः अरोदः अरुदितं अरुदित । अरोदं अरुदिव अरुदिम । एवं पञ्चानाम् । ञिष्वप् शये । स्वपिति स्वपितः स्वपन्ति । स्वपिषि । स्वप्यात् स्वप्यातां स्वप्युः । स्वपितु स्वपितात् स्वपितां स्वपन्तु । अस्वपीत् । अस्वपत् अस्वपतां अस्वपन् । श्वस प्राणने । श्वसिति । श्वस्यात् । श्वसितु । अश्वसीत् । अश्वसत् । अनपि च । प्राणिति । प्राण्यात् । प्राणितु । अप्राणीत् । अप्राणत् । जक्ष भक्षहसनयोः ।

जक्षादिश्च ॥१०९ ॥

जक्षादीनामभ्यस्तसंज्ञा भवति । जक्षिति जक्षितः ।

लोपोऽभ्यस्तादन्तिनः ॥११० ॥

अभ्यस्तात्परस्य अन्तेर्नकारस्य लोपो भवति । जक्षति । जक्ष्यात् जक्ष्यातां जक्ष्युः । जक्षितु जक्षितात् जक्षितां जक्षतु । अजक्षीत् । अजक्षत् अजक्षतां । अनउस्सिजभ्यस्तविदादिभ्योऽभुवः । इत्यनेन उस् भवति । अजक्षुः । भावकर्मणोः । रुद्यते । सुप्यते । इत्यादि । सूङ् प्राणिगर्भविमोचने । सूते सुवाते सुवते । सुवीत सुवीयातां सुवीरन् । सूतां सुवातां सुवतां । सूष्व सुवाथां । सूध्वम् ॥

सूतेः पञ्चम्याम् ॥१११ ॥

सूतेः पञ्चम्युत्तमे च गुणो न भवति । सुवै सुवावहै सुवामहै । असूत असुवातां । सूयते । हन् हिंसागत्योः । हन्ति ।

ह्यस्तनी में अट् का आगम और गुण होकर अरोदीत्, अरोदीः बना । यह वैकल्पिक होता है अतः—

रुदादि से परे दि, सि की आदि में 'अत्' होता है ॥१०८ ॥

अतः अरोदत्, अरोदः बना । ऐसे ही पाँचों के रूप समझिये । ञिष्वप्—सोना । स्वपिति स्वपितः स्वपन्ति । इत्यादि ।

अस्वपीत्, अस्वपत् आदि । श्वस् धातु श्वास लेने अर्थ में है ।

श्वसिति । श्वस्यात् । श्वसितु । अश्वसीत् अश्वसत् ।

प्राणिति । प्राण्यात् । प्राणितु । अप्राणीत्, अप्राणत् । जक्ष् धातु खाने और हँसने अर्थ में है । जक्ष् इ ति = जक्षिति, जक्षितः । जक्ष् अन्ति ।

जक्षादि को अभ्यस्त संज्ञा हो जाती है ॥१०९ ॥

अभ्यस्त से परे अन्ति के नकार का लोप हो जाता है ॥११० ॥

अतः 'जक्षति' बना । सप्तमी में—जक्ष्यात् । पंचमी में—जक्षितु, जक्षितात् । जक्षितां । जक्षतु । ह्यस्तनी में—अजक्षीत्, अजक्षत् । जक्ष् अन् है सूत्र १६६वें से भू को छोड़ कर सिच् अभ्यस्त और विवादि से परे अन् को 'उस्' हो जाता है अतः 'अजक्षुः' बना । भावकर्म में—रुद्यते । सुप्यते । इत्यादि ।

षूङ् धातु जन्म लेने अर्थ में है । "धात्वादेः षः सः" सूत्र से 'स' हो गया । अनुबंध होने से यह धातु आत्मनेपदी है ।

सूते—सू आते ऊ को ८३वें सूत्र से उव् होकर सुवाते, 'सू अन्ते' है 'आत्मने चानकारत' ७९वें सूत्र से नकार का लोप होकर 'सुवते' बना । सुवीत, सुवीयातां सुवीरन् । सूतां, सुवातां, सुवतां ।

सू धातु को पञ्चमी के उत्तम पुरुष में गुण नहीं होता है ॥१११ ॥

अतः सुवै, सुवावहै सुवामहै । असूत । भाव में—सूयते । 'हन्' धातु हिंसा और गति अर्थ में है ।

धुटि हन्तेः सार्वधातुके ॥११२ ॥

हन्तेरन्तस्य लोपो भवति धुडादावगुणे सार्वधातुके परे । हतः ।

गमहनजनखनघसामुपधायाः स्वरादावनन्यगुणे ॥११३ ॥

गमादीनामुपधाया लोपो भवत्यनण्वर्जिते स्वरादावगुणे परे ।

लुप्तोपधस्य च ॥११४ ॥

लुप्तोपधस्य च हन्तेर्हस्य घिर्भवति । घ्नन्ति । हंसि हथः हथ । हन्मि हन्वः हन्मः । हन्यात् हन्यातां हन्युः । हन्तु हतात् हतां घ्नन्तु । पूर्वोक्तपरोक्तयोः परोक्तो विधिर्बलवान् इति न्यायात्—

हन्तेर्जो हौ ॥११५ ॥

हन्तेर्जकारादेशो भवति हौ परे । जहि हतात् हतं हत । हनानि हनाव हनाम ।

व्यञ्जनाद्दिस्योः ॥११६ ॥

व्यञ्जनात्परयोर्दिस्योर्लोपो भवति । अहन् अहतां अघ्नन् । अहन् अहतं अहत । अहनं अहन्व अहन्म । चक्षङ् व्यक्तायां वाचि ।

स्कोः संयोगाद्योरन्ते च ॥११७ ॥

संयोगाद्योः सकारककारयोर्लोपो भवति धुट्यन्ते च ।

हन् ति है 'अन् विकरणः कर्तरि' से अन् होकर 'अदादेर्लुग्विकरणस्य' सूत्र ७६ से अन् का लुक् होकर 'हन्ति' बना । हन् तस् है ।

अगुण धुटादि सार्वधातुक के आने पर हन् के अंत नकार का लोप हो जाता है ॥११२ ॥

अतः 'हतः' बना । हन् अन्ति है ।

अन् अण् वर्जित स्वरादि अगुणी विभक्ति के आने पर गम् हन् जन खन घस की उपधा का लोप हो जाता है ॥११३ ॥

अतः हन् की उपधा का लोप होकर 'हन्' रहा । अर्थात् ह के अ का लोप हुआ ।

लुप्त उपधा वाले हन् के हकार को 'घ' हो जाता है ॥११४ ॥

अतः घ्न् + अन्ति = घ्नन्ति बना । हन् सि है 'मनोरनुस्वारो धुटि सूत्र से न' को अनुस्वार होकर 'हंसि' बना हथः हथ । हन्तु । हन् हि है 'पूर्वोक्त और परोक्त नियम में परोक्त विधि बलवान होती है' इस न्याय से—

'हि' के आने पर हन् को जकार हो जाता है ॥११५ ॥

और ज आदेश होने पर हि का लोप नहीं होता अतः जहि बना हतात्, हतं हत । हन् दि । हन् सि ।

व्यंजन से परे दि और सि का लोप हो जाता है ॥११६ ॥

'अहन्' अहतां । हन् अन् है 'गमहंन् इत्यादि' सूत्र ११३ से हन् की उपधा का लोप होकर ११४वें सूत्र से ह को घ होकर धातु के पूर्व अट् का आगम होकर 'अघ्नन्' बना । चक्षङ् धातु स्पष्ट बोलने अर्थ में है—चक्ष् है ।

संयोग की आदि में यदि सकार या ककार है और धुटि अंत में है तो उन सकार या ककार का लोप हो जाता है ॥११७ ॥

आ चक्ष् ते आचष् ते रहा ।

तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः ॥११८ ॥

तवर्गस्य षकारटवर्गाभ्यां परस्य टवर्गो भवत्यान्तरतम्यात्। आचष्टे आचक्षाते आचक्षते।

षढोः कः से ॥११९ ॥

षढोः को भवति सकारे परे। आचक्षे आचक्षाथे।

धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु ॥१२० ॥

धुटां तृतीयो भवति चतुर्थेषु परतः। ऋवर्णटवर्गरषा मूर्द्धन्या इति न्यायात् षकारस्य डकारः। आचड्ढ्वे। आचक्षे आचक्ष्वहे। आचक्ष्महे। आचक्षीत आचक्षीयातां आचक्षीरन्। आचष्टां आचक्षातां आचक्षतां। आचक्ष्व आचक्षाथां आचड्ढ्वं। आचक्षै आचक्षावहै आचक्षामहै। आचष्ट आचक्षातां आचक्षत। आचष्ठाः आचक्षाथां आचड्ढ्वं। आचक्षि आचक्ष्वहि आचक्ष्महि।

चक्षङ् ख्याञ् ॥१२१ ॥

चक्षङ् इत्येतस्य ख्याञादेशो भवति असार्वधातुके परे। आख्यायते। ईश् ऐश्वर्ये।

छशोश्च ॥१२२ ॥

छशोश्च षो भवति धुट्यन्ते। ईष्टे ईशाते ईशते।

ईशः से ॥१२३ ॥

तवर्ग को षकार और टवर्ग से परे टवर्ग हो जाता है ॥११८ ॥

अतः क्रम से 'आचष्टे' बना। अन्ते में सूत्र ७९ से नकार का लोप होकर आचक्ष् + अते = आचक्षते बना। आचक् ष् से ककार का लोप करके आचष् से रहा।

सकार के आने पर ष और ढ को 'क' हो जाता है ॥११९ ॥

आचक् से 'नामिकरपरः' इत्यादि से क् से परे स् को ष होकर "कषयोगे क्षः" नियम से क्ष हो गया अतः 'आचक्षे' बना। आचक्ष् ध्वे है। आचक्ष् ध्वे है 'स्कोः संयोगाद्योरन्ते च' ११७ सूत्र से ककार का लोप होकर।

चतुर्थ अक्षर के आने पर धुट् को तृतीय अक्षर हो जाता है ॥१२० ॥

पुनः "ऋवर्णटवर्गरषामूर्द्धन्या" इस न्याय से षकार को "ड" हो गया। पुनः 'तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः' सूत्र ११८वें से टवर्ग से परे तवर्ग को टवर्ग होने से 'आचड्ढ्वे' बना।

सप्तमी में—आचक्षीत। पंचमी में—आचष्टां। ध्वं में 'आचड्ढ्वं' बना। ह्यस्तनी में पूर्व में अट् का आगम होकर आङ् उपसर्ग मिलाने से वही। आ + अचष्ट = आचष्ट बना। थास् में आचष्ठाः, ध्वं में आचड्ढ्वं बना।

भाव कर्म में—चक्ष् य ते है

चक्षङ् को ख्याञ् आदेश हो जाता है असार्वधातुक के आने पर ॥१२१ ॥

आख्यायते बना।

ईश् धातु ऐश्वर्य अर्थ में है।

ईश् ते है।

धुट् अंत में आने पर छ् और श् को 'ष्' हो जाता है ॥१२२ ॥

११८वें सूत्र से तवर्ग को टवर्ग होकर 'ईष्टे' बना।

ईश् से परे स आदि विभक्ति के आने पर इट् का आगम हो जाता है ॥१२३ ॥

ईशः परस्य सादेः सार्वधातुकस्यादाविट् भवति धुटि परे। ईशिषे ईशाथे ईड्ढ्वे। ईशे ईश्वहे ईश्महे। ईशीत ईशीयातां ईशीरन्। ईष्टां ईशातां ईशतां। ईशिष्व ईशाथां ईड्ढ्वं। ऐशि ऐश्वहि ऐश्महि। ईश्यते। शासु अनुशिष्टौ। शास्ति।

शासेरिदुपधाया अण्व्यञ्जनयोः ॥१२४॥

शासेरुपधायाः इद्भवति अण्व्यञ्जनयोः परतः।

शासिवासिघसीनां च ॥१२५॥

निमितात्परः शासिवसिघसीनां सः षत्वमापद्यते। शिष्टः शासति। शास्सि। शिष्यात् शिष्यातां शिष्युः। शास्तु शिष्टात् शिष्टां शासतु।

शा शास्तेश्च ॥१२६॥

शास्तेर्हौ परे शादेशो भवति चकारात्, हेर्धिर्भवति। शाधि, शिष्टात् शिष्टं शिष्ट। शासानि शासाव शासाम्।

सस्य ह्यस्तन्यां दौ तः ॥१२७॥

ह्यस्तन्यां दौ परे सस्य तो भवति। अशात् अशिष्टां अशासुः।

ईश के परे स आदि सार्वधातुक विभक्ति से धुट् के आने पर इट् का आगम हो जाता है।

पुनः नामि से परे सकार को ष होने से 'ईशिषे' बना।

'ईश् ध्वे है छशोश्च' से श् को ष् होकर 'धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु' से तृतीय अक्षर 'ड' होकर पुनः 'तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः' सूत्र से तवर्ग को टवर्ग-ध् को ढ् होकर 'ईड्ढ्वे' बना।

सप्तमी में—ईशीत। पंचमी में—ईष्टां ईशातां ईशतां।

स्व के आने पर इट् होकर ईशिष्व 'ध्वं' में ईड्ढ्वं बना।

ह्यस्तनी में—ऐष्ट ऐशातां ऐशत, ऐष्ठाः ऐशाथां ऐड्ढ्वं ऐशि ऐश्वहि ऐश्महि।

भाव कर्म में—ईश्यते। शास् धातु अनुशासन अर्थ में है। शास् ति है। शास्ति। शास् तस् है।

अण्, अगुण व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर शास् की उपधा को इत् होता है ॥१२४॥

अतः आ को 'इ' होकर शिस् तस् रहा।

निमित्त से परे शास् वस् घस् के स को 'ष्' हो जाता है ॥१२५॥

पुनः 'तवर्गस्य षट्वर्गाट्वर्गः' नियम से ष् से परे तवर्ग को टवर्ग होकर 'शिष्टः' बना। शास् अन्ति। 'जक्षादिश्च' १०९ सूत्र से शास् को अभ्यस्त संज्ञा करके 'लोपोऽभ्यस्तादन्तिनः' ११० सूत्र से अन्ति के नकार का लोप हो गया। अतः 'शासति' बना। सप्तमी—सूत्र १२४ से इत् होकर 'शिष्यात्' बना। 'शास् हि'

'हि' के परे शास् को 'शा' आदेश एवं चकार से हि को धि होता है ॥१२६॥

शाधि। शास् दि है।

ह्यस्तनी की 'दि' विभक्ति के आने पर स् को त् हो जाता है ॥१२७॥

एवं 'व्यंजनाद्दिस्योः' सूत्र ११६ से दि सि का लोप हो जाता है। अशात् अशिष्टां। अन् को उस् होकर अशासुः। शास् सि अट् का आगम होकर

सौ वा ॥१२८॥

सस्य तो भवति वा ह्यस्तन्यां सौ परे। अशात् अशाः अशिष्टं अशिष्ट। अशासं। अशिष्व। अशिष्म। शिष्यते। दीधीङ् दीप्तिदेवनयोः वेवीङ् वेतनातुल्ये। आदीधीते। य इवर्णस्यासंयोग-पूर्वस्यानेकाक्षरस्य इति यः। आदीध्याते आदीध्यते।

दीधीवेव्योरिवर्णयकारयोः ॥१२९॥

दीधीवेव्योरन्तस्य लोपो भवति इवर्णयकारयोः परतः। आदीधीत आदीध्यातां आदीधीरन्। आदीधीतां आदीध्यातां आदीध्यतां। आदीधीष्व आदीध्याथां आदीधीध्वं।

दीधीवेव्योश्च ॥१३०॥

अनयोः पञ्चम्युत्तमे च गुणो न भवति। आदीध्यै आदीध्यावहै आदीध्यामहै। आदीधीत आदीध्यातां आदीध्यत। आदीध्यते। वेवीते वेव्याते वेव्यते। वेवीत वेवीयातां वेवीरन्। वेवीतां वेव्यातां वेव्यतां। वेवीष्व वेव्याथां वेवीध्वं। वेव्यै वेव्यावहै वेव्यामहै। अवेवीत अवेव्यातां अवेव्यत। अवेवीथाः अवेव्याथां अवेवीवं। अवेवि अवेवीवहि अवेवीमहि। वेव्यते। ईड् स्तुतौ। ईट्टे ईडाते। ईडते।

ईड्जनोः स्ध्वे च ॥१३१॥

ईड्जनोः स्ध्वे च सार्वधातुके परे इड् भवति। ईडिषे ईडाथे ईडिध्वे। ईडे ईड्वहे ईड्महे। ईडीत ईडीयातां ईडीरन्। ईट्टां ईडातां ईडतां। ऐट्ट ऐडातां ऐडत। ईड्यते। इत्यादि। णु स्तुतौ।

ह्यस्तनी की सि के आने पर स् को त् विकल्प से होता है ॥१२८॥

अशात्। विसर्ग होकर 'अशाः' बना।

भाव कर्म में—शिष्यते। दीधीङ् धातु दीप्ति और क्रीडा अर्थ में है। वेवीङ् वेतन और अतुल्य अर्थ में है। आङ् पूर्वक दीधी धातु है। आदीधी ते = आदीधीते। आदीधी आते हैं "य इवर्ण स्यासंयोग पूर्वस्यानेकाक्षरस्य" १७०वें सूत्र से इवर्ण को य् होकर 'आदीध्याते' अन्ते में नकार का लोप होकर आदीध्यते बना। सप्तमी में—आदीधी ईत है।

इवर्ण और यकार के आने पर दीधी वेवी के अंत का लोप हो जाता है ॥१२९॥

आदीधीत, आदीधीयातां। पंचमी में—आदीधीतां आदीध्यातां, आदीध्यतां। पंचमी के उत्तम पुरुष में—

दीधी और वेवी के पंचमी के उत्तम पुरुष में गुण नहीं होता है ॥१३०॥

अतः आदीधी + ऐ = आदीध्यै, आदीध्यावहै। आदीध्यामहै।

ह्यस्तनी में—अदीधीत में आङ् उपसर्ग लगकर आदीधीत बना।

भावकर्म में—आदीध्यते॥

ऐसे ही 'वेवीते' वेव्याते वेव्यते। वेवीत। वेवीतां।

अवेवीत्। भावकर्म में—वेव्यते।

ईड् धातु स्तुति अर्थ में है। ईट् ते है 'तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः' सूत्र से टवर्ग होकर 'ईट्टे' बना। ईडाते, इडते। ईट् से, ईट् ध्वे।

से ध्वे सार्वधातुक के आने पर ईट् और जन् धातु से इट् का आगम हो जाता है ॥१३१॥

ईडिषे, ईडाथे, ईडिध्वे। ईडीत। ईट्टां। ऐट्ट ऐडातां। भाव कर्म में—ईड्यते। इत्यादि। णु धातु स्तुति अर्थ में है।

'णो नः' ५५वें सूत्र से धातु की आदि का णकार 'न' हो जाता है अतः 'नु ति' है।

उतो वृद्धिर्व्यञ्जनादौ गुणिनि सार्वधातुके ॥१३२ ॥

धातोरुतो वृद्धिर्भवति व्यञ्जनादौ गुणिनि सार्वधातुके परे। वृद्धिग्रहणाधिक्यादभ्यस्तस्य वृद्धिर्न भवतीत्यर्थः ॥ नौति नुतः नुवन्ति। नौषि नुथः नुथ। नौमि नुवः नुमः। नुयात् नुयातां नुयुः। नौतु नुतात् नुतां नुवन्तु। अनौत् अनुतां अनुवन्। नूयते। एवं षुञ् स्तुतौ। स्तौति स्तवीति स्तुतः स्तुवन्ति। स्तुते स्तुवाते स्तुवते। स्तूयते। ऊर्णुज आच्छादने।

ऊर्णोतेर्गुणः ॥१३३ ॥

ऊर्णोतेर्गुणो भवति व्यञ्जनादौ गुणिनि सार्वधातुके परे। प्रोर्णोति। वृद्धिग्रहणाधिक्यात् अभ्यस्तस्य पृथक्करणाद्वा प्रोर्णौति प्रोर्णुतः प्रोर्णुवन्ति। प्रोर्णोषि प्रोर्णौषि प्रोर्णुथः प्रोर्णुथ। प्रोर्णोमि प्रोर्णौमि प्रोर्णुवः प्रोर्णुमः। प्रोर्णुते प्रोर्णुवाते प्रोर्णुवते। प्रोर्णुयात् प्रोर्णुयातां प्रोर्णुयुः। प्रोर्णुवीत। प्रोर्णोतु प्रोर्णौतु प्रोर्णुतां प्रोर्णुवन्तु। प्रोर्णुतां प्रोर्णुवातां प्रोर्णुवतां।

ह्यस्तन्यां च ॥१३४ ॥

ऊर्णुञ् इत्येतस्य ह्यस्तन्यां गुणो भवति व्यञ्जनादौ वचने परे। प्रौर्णोत् प्रौर्णुतां प्रौर्णुवन्। प्रोर्णुत प्रौर्णुवातां प्रौर्णुवत। प्रोर्णूयत इत्यादि। विद् ज्ञाने। वेत्ति वित्तः विदन्ति। विद्यात् विद्यातां विद्युः। वेत्तु वित्तात् वित्तां विदन्तु।

विद आम् कृञ् पञ्चम्यां वा ॥१३५ ॥

व्यंजनादि गुणी सार्वधातुक विभक्ति के आने पर धातु के उकार को वृद्धि हो जाती है ॥१३२ ॥

'सूत्र में वृद्धि शब्द को ग्रहण किया है इसका अर्थ है कि अभ्यस्त को वृद्धि नहीं होती है।' नौति, नुतः, नु अन्ति सूत्र ८३ से 'उ को उव् होकर नुवन्ति बना।' सप्तमी में—नुयात्। पंचमी में—नौतु, नुतात्। ह्य० में—अनौत्। भावकर्म में—नूयते। ऐसे ही 'स्तुञ्' धातु स्तुति अर्थ में है। वृद्धि होकर 'स्तौति' बना। एक बार 'ब्रुव ईड् वचनादिः' ८१वें सूत्र से 'ईट्' एवं गुण होकर 'स्तवीति' बना 'स्तुतः' स्तुवन्ति। आत्मनेपद में—स्तुते स्तुवाते स्तुवते है। भावकर्म में—स्तूयते।

ऊर्णुञ् धातु आच्छादन करने अर्थ में है। ऊर्णु ति है।

ऊर्णु धातु को व्यंजनादि गुणी सार्वधातुक में गुण हो जाता है ॥१३३ ॥

यहाँ सूत्र पृथक् बनाने से 'वा' का ग्रहण हो जाता है अतः ऊपर सूत्र में 'वृद्धि' ग्रहण की अधिकता से या अभ्यस्त को पृथक् करने से विकल्प से वृद्धि भी हो जाती है। प्र उपसर्गपूर्वक प्रोर्णोति, वृद्धि पक्ष में— प्रोर्णोति, प्रोर्णुतः प्रोर्णुवन्ति। आत्मनेपद में—प्रोर्णुते, प्रोर्णुवाते। प्रोर्णुयात्। प्रोर्णुवीत। प्रोर्णोतु। प्रोर्णौतु। प्रोर्णुतां।

ह्यस्तनी में व्यंजनादि गुणी विभक्ति के आने पर ऊर्णु को नित्य ही गुण हो जाता है ॥१३४ ॥

प्रौर्णोत्। ऊ को ह्यस्तनी में 'स्वरादीनां वृद्धिरादेः' सूत्र ४८ से वृद्धि होकर ओर्णौत् बना पुनः 'प्र' उपसर्ग से 'प्रौर्णौत्' बना। प्रौर्णुत्, प्रौर्णुवातां प्रौर्णुवत्। भावकर्म में—प्रोर्णूयते।

विद् धातु ज्ञान अर्थ में है। गुण होकर द् को प्रथम होकर वेत्ति, वित्तः, विदन्ति विद्यात्। वेत्तु, वित्तात्।

पंचमी में विद् से परे विकल्प से आम् होकर 'कृ' धातु का प्रयोग होता है ॥१३५ ॥

विद: पर आम् भवति तत: कृञ् प्रयुज्यते पञ्चम्यां। आमि विधेरेवेति गुणो न भवति। विदांकरोतु विदांकुरुतात् विदांकुरुतां विदांकुर्वन्तु। विदांकुरु। अवेत् अवित्तां अविदन्।

विदादेर्वा ॥१३६॥

विद आदन्ताद् द्विषश्चान् उस् वा भवति ह्यस्तन्यां। अविदु:। विद्यते। एवं ह्यस्तन्यां। आदन्तात्। प्सा भक्षणे। अप्सात् अप्सातां। अप्सन्।

आकारस्योसि ॥१३७॥

आकारस्य लोपो भवति उसि परे। अप्सु:। रा ला आदाने। अलात् अलातां अलान् अलु:। अरात् अरातां अरान् अरु:। द्विष् अप्रीतौ। अद्वेट् अद्विष्टां अद्विषन् अद्विषु:। भावकर्मणो:—रायते। लायते। प्सायते। द्विष्यते।

समो गमृच्छप्रच्छिसृश्रुवेत्त्यर्त्तिदृशाम् ॥१३८॥

सम: परेषामात्मनेपदं भवति। संविते। संविदाते संविदते।

वेत्तेर्वा ॥१३९॥

वेत्ते: परस्यांतेरिर्वा भवति। संविद्रते। संविदीत संविदीयातां संविदीरन्। संवित्तां संविदातां संविदतां संविद्रतां। समवित्त समविदातां समविद्रत समविदत॥ इण् गतौ। एति इत:।

इणश्च ॥१४०॥

आम् के आने पर 'आमि विधेरेव' इससे गुण नहीं होता है। विदांकरोतु विदांकुरुतात्, विदांकुरुतां विदांकुर्वंतु। आम् कृ, नहीं होने पर वेत्तु वित्तां विदन्तु। अवेत् अवित्तां अविदन्।

विद और आकारांत धातु और द्विष के परे विकल्प से अन् को उस् हो जाता है ॥१३६॥

अविदु: बना। भाव कर्म में—विद्यते। आकारांत धातु से—प्सा धातु खाने अर्थ में है। प्साति, प्सात: प्सान्ति। प्सायात्। प्सातु। अप्सात् अप्सातां अप्सा अन्, अप्सा, उस्।

उस् के आने पर आकार का लोप हो जाता है ॥१३७॥

अप्सान्, अप्सु:। रा, ला धातु लेने अर्थ में है।

लाति। लायात्। लातु, अलात् अलातां, अलान् अलु:।

राति। रायात्। रातु। अरात् अरातां अरान्, अरु:।

द्विष् अप्रीति अर्थ में है। द्वेष्टि द्विष्ट: द्विषन्ति। द्विष्यात् द्वेष्टु। अद्वेट् अद्विष्टां अद्विषन्, अद्विषु।

भावकर्म में—रायते। लायते। प्सायते। द्विष्यते।

सम उपसर्ग से परे गम्, ऋच्छ, प्रच्छ, सृ श्रु, विद्, ऋ और दृश् धातु आत्मनेपदी हो जाते हैं ॥१३८॥

संवित्ते संविदाते संविदते।

विद् के परे 'अन्ते' के आने पर विकल्प से 'इ' को 'इर्' हो जाता है ॥१३९॥

संविद्रते बना। संविदीत। संवित्तां, संविदातां, संविदतां संविदतां। समवित्त। इण् धातु गति अर्थ में है—एति इत:। इ अन्ति है।

स्वरादि अगुण विभक्ति के आने पर इण् को य् हो जाता है ॥१४०॥

इणश्च यो भवति स्वरादावगुणे। यन्ति। एषि इथः इथ। एमि इवः इमः। इयात् इयातां इयुः। एतु इतात् इतां यन्तु। इहि इतात् इतं इत। अयानि। अयाव अयाम। ऐत् ऐतां। परापि वृद्धिरिण्मात्राश्रितेन यत्वेन बाध्यते। सावकाशानवकाशयोरनवकाशो विधिर्बलवान्। इति न वृद्धिः। इणश्चेति यत्वं।

एतेर्ये ह्यस्तन्याम् ॥१४१॥

एतेर्ये परे अटोऽवर्णस्य दीर्घो भवति ह्यस्तन्यां। आयन्। ऐः ऐतं ऐत। आयं ऐव ऐम। दुह् प्रपूरणे।

दादेर्घः ॥१४२॥

दादेर्हस्य घो भवति धुट्यन्ते च।

घढधभेभ्यस्तथोर्धोऽधः ॥१४३॥

एभ्यः धाञ्वर्जितेभ्यः परयोस्तथोर्धो भवति। दोग्धि दुग्धः दुहन्ति।

तृतीयादेर्घढधभान्तस्य धातोरादिचतुर्थत्वं स्ध्वोः ॥१४४॥

घढधभान्तस्य धातोरादेस्तृतीयस्य चतुर्थत्वं भवति स्ध्वोः परतः। धोक्षि दुग्धः दुग्ध। दोह्मि दुह्वः दुह्मः। दुग्धे दुहाते दुहते। दुह्यात् दुह्यातां दुह्युः। दुहीत दुहीयातां दुहीरन्। दोग्धु दुग्धात्। दुग्धां दुहन्तु। हुधुड्भ्यां हेर्धिः। दुग्धि दुग्धात् दुग्धं दुग्ध। दोहानि दोहाव दोहाम। दुग्धां दुहातां दुहतां।

यन्ति। इयात्। एतु। इहि। इ आनि पंचमी के उत्तम पुरुष में गुण होकर 'ए अय्' सूत्र लगकर अयानि अयाव अयाम। ह्यस्तनी में—पूर्वस्वर को वृद्धि होकर ऐत ऐतां। इ अन् है। पर भी वृद्धि इण् मात्र के आश्रित यत्व से बाधित हो जाती है। अतः "इणश्च" इस सूत्र से इ को य् हुआ पुनः ह्यस्तनी में पूर्व में अट् का आगम करके—

इण् के य् के परे ह्यस्तनी में अट् के अवर्ण को दीर्घ हो जाता है ॥१४१॥

अतः 'आयन्' बना। ऐः ऐतं ऐत। आयं[1] ऐव ऐम। अम् के आने पर 'इ' को १४० सूत्र से 'य्' करके अट् और दीर्घ करके 'आयम्' बना।

दुह् धातु प्रपूरण—दुहने अर्थ में है। दुह् ति है।

धुट् अंत में आने पर दा आदि के ह् को घ् हो जाता है ॥१४२॥

दुघ् ति रहा।

धाञ् से वर्जित घ, ढ, ध, भ, से परे त और थ को 'ध्' हो जाता है ॥१४३॥

गुण होकर "धुटांतृतीयश्चतुर्थेषु" सूत्र से घ् को ग् होकर 'दोग्धि' बना। दुग्धः दुहन्ति। दुह् सि दुह ध्वे। 'ददेर्घः' से हकार को घ होकर 'दुघ्' बना।

'स्' 'ध्व' विभक्ति के आने पर तृतीयादि वाले घ, ढ, ध, भान्त धातु की आदि के तृतीय अक्षर को चतुर्थ हो जाता है ॥१४४॥

धुघ् 'अघोषे प्रथमः' से 'धुक्' हो गया 'नामिकरपरः' से स् को ष् होकर गुण होकर 'धोक्षि' बना। दुग्धः, दुग्ध। दोह्मि दुह्वः दुह्मः। दुग्धे दुहाते, दुहते। धुक्षे दुहाथे धुग्ध्वे। दुह्यात्। दुहीत। दोग्धु। दुह् हि "हुधुड्भ्यां हेर्धिः" ८९वें सूत्र 'धि' होकर दुग्धि बना। दोहानि। दुग्धां।

दुह् दि है 'दादेर्घः' सूत्र से ह् को घ् "व्यंजनाद्दिस्योः" ११६ सूत्र से दि सि का लोप हो गया।

---

१. अयम् प्रयोग में १४० सूत्र की प्राप्ति नहीं है कारण सूत्र का अर्थ है जिस स्वर पर में रहते गुण न हो अम् पर में रहते गुण होता है अतः इअम् इस दशा में इ को गुण करके अय् अप् अम् बना स्वरादि तब भी है अट् दीर्घ हो गया आयम् प्रयोग बना।

लोपे च दिस्योः ॥१४५ ॥

घढधभान्तस्य धातोरादेस्तृतीयस्य चतुर्थत्वं भवति दिस्योर्लोपेऽपि । अधोक् अदुग्धां अदुहन् । अधोक् अदुग्धं अदुग्ध । अदोहं अदुह्व अदुह्म । अदुग्ध अदुहातां अदुहत । लिह् आस्वादने ।

हो ढः ॥१४६ ॥

धातोर्हस्य ढो भवति धुट्यन्ते च ।

ढे ढलोपो दीर्घश्चोपधायाः ॥१४७ ॥

ढे परे ढलोपो भवति उपधाया दीर्घश्च । लेढि लीढः लिहन्ति । लेक्षि लीढः लीढ । लेह्मि लिह्वः लिह्मः । लीढे लिहाते लिहते । लिक्षे । लिहाथे लीढ्वे । लिहे लिह्वहे लिह्महे । लिह्यात् । लिहीत । लेढु लीढात् लीढां लिहन्तु । लेढि लीढात् लीढं लीढ । लेहानि लेहाव लेहाम ॥ लीढां लिहातां लिहतां । लिक्ष्व लिहाथां लीढ्वं । लेहै लेहावहै लेहामहै । अलेट् अलीढां अलिहन्—अलीढ । लिह्यते ॥ इत्यदादिः समाप्तः । ❑

अथ जुहोत्यादिगणः

हु दानादनयोः ।

जुहोत्यादेश्च ॥१४८ ॥

जुहोत्यादेश्च परस्य विकरणस्य लुग्भवति ।

द्विर्वचनमनभ्यासस्यैकस्वरस्याद्यस्य ॥१४९ ॥

दि सि का लोप होने पर भी घ ढ ध भान्त धातु की आदि के तृतीय अक्षर को चतुर्थ हो जाता है ॥१४५ ॥

'अघोषे प्रथमः' से घ् को प्रथम अक्षर होकर विरामे वा से अधोक् अधोग बना । 'सि' में—अधोकम् । अम्-अदोहं ।

अदुग्ध । भाव कर्म में—दुह्यते ।

लिह् धातु आस्वादन अर्थ में है ।

धुट् अंत के आने पर लिह् के ह् को 'ढ्' हो जाता है ॥१४६ ॥

लिढ् ति धढधभेभ्यस्तथोर्धोऽध १४३ सूत्र से त, थ को ध होकर 'तवर्गस्य षट्वर्गाट्टवर्गः' सूत्र ११८ से ट वर्ग होकर ध् को ढ् हुआ । गुण होकर 'लेढ् ढि' ।

ढ के परे ढ का लोप हो जाता है और उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥१४७ ॥

अतः लेढि लीढः लिहन्ति । लिढ् सि है 'षढोः कः से' सूत्र ११९ से ढ् को क् होकर स् को ष् होकर लेक्षि बना । लोढे लिहाते लिहते, लिक्षे लिहाते लिढ्ध्वे सूत्र ११८ से 'ढ्वे' बनाकर "ढे ढलोपे" १४७ ढ् को लोप होकर 'लीढ्वे' बना लिहे लिह्वहे, लिह्महे । लिह्यात् । लिहीत । लेढ । लीढां लिहातां लिहतां, लिक्ष्व । अलेढ् । अलीढ । भावकर्म में—लिह्यते ।

इस प्रकार से अदादि गण प्रकरण समाप्त हुआ । ❑

अथ जुहोत्यादि गण प्रारम्भ होता है ।

'हु' धातु दान देने और खाने अर्थ में है । 'हुञति' है ।

जुहोत्यादि से परे विकरण का लुक् हो जाता है ॥१४८ ॥

धातु के अवयव भूत अनभ्यास, एक स्वर वाले आदि के वर्ण को द्वित्व हो जाता है ॥१४९ ॥

धातोरवयवस्यानभ्यासस्य एकस्वरस्याद्यस्य वर्णस्य द्विर्वचनं भवति । इति वर्त्तते ।

जुहोत्यादीनां सार्वधातुके ॥१५० ॥

जुहोत्यादीनां द्विर्वचनं भवति सार्वधातुके परे ।

पूर्वोऽभ्यासः ॥१५१ ॥

द्विरुक्तस्य धातोः पूर्वोऽवयवोऽभ्याससंज्ञो भवति ।

हो जः ॥१५२ ॥

अभ्यासहकारस्य जकारो भवति । जुहोति जुहुतः ।

द्वयमभ्यस्तम् ॥१५३ ॥

धातोरभ्यास इतरश्चेति द्वयमभ्यस्तसंज्ञं भवति ।

लोपोऽभ्यस्तादन्तिनः ॥१५४ ॥

अभ्यस्तात्परस्यान्तेर्नकारस्य लोपो भवति ।

जुहोतेः सार्वधातुके ॥१५५ ॥

जुहोतेः उकारस्य वकारो भवति स्वरादावगुणे सार्वधातुके परे । जुह्वति । जुहोषि जुहुथः जुहुथ । जुहोमि जुहुवः जुहुमः ॥ इत्यादि । ओहाङ् गतौ ।

भृञ्हाङ्माङामित् ॥१५६ ॥

भृञ् हाङ् माङ् इत्येतेषामभ्यासस्य इद्भवति सार्वधातुके परे ।

उभयेषामीकारो व्यञ्जनादावदः ॥१५७ ॥

उभयेषामभ्यस्तक्र्यादिविकरणानां दावर्जितानामाकारस्य ईकारो भवति व्यञ्जनादावगुणे सार्वधातुके परे । जिहीते ।

यह सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है ।

सार्वधातुक के आने पर जुहोति आदि को द्वित्व हो जाता है ॥१५० ॥

'हु हु ति'

द्वित्व किये गये धातु के पूर्व अवयव की अभ्यास संज्ञा हो जाती है ॥१५१ ॥

अभ्यास के हकार को 'जकार' हो जाता है ॥१५२ ॥

जुहोति, जुहुतः । जु हु अन्ति ।

धातु के अभ्यास और इतर दोनों को 'अभ्यस्त' संज्ञा हो जाती है ॥१५३ ॥

अभ्यस्त से परे अन्ति के नकार का लोप हो जाता है ॥१५४ ॥

स्वरादि अगुण सार्वधातुक के आने पर जुहोति के उकार को 'व' हो जाता है ॥१५६ ॥

जुह्वति बना । इत्यादि । ओहाङ् गति अर्थ में है ।

'हा हा ते' है पूर्व को अभ्यास संज्ञा हो गई ।

सार्वधातुक में भृञ् हाङ् माङ् इनके अभ्यास को इकार हो जाता है ॥१५६ ॥

व्यंजनादि अगुण सार्वधातुक के आने पर दोनों ही अभ्यस्त बने हुए हैं जहाँ पर ऐसे दा वर्जित आकार को 'ईकार' हो जाता है ॥१५७ ॥

भृञ्हाङ्माङमित् १५६ सूत्र से अभ्यास को इकार होकर 'हो जः' सूत्र से जकार होकर जिहीते ।

अभ्यस्तानामाकारस्य ॥१५८ ॥

अभ्यस्तानामाकारस्य लोपो भवत्यगुणे सार्वधातुके परे। जिहाते जिहते। जिहीषे जिहाथे जिहीध्वे। जिहे जिहीवहे जिहीमहे॥ जिहीत जिहीयातां जिहीरन्। जिहीतां जिहातां जिहतां। जिहीष्व जिहाथां जिहीध्वं। जिहै जिहावहै जिहामहै। अजिहीत अजिहातां अजिहत॥ एवं माङ् माने शब्दे च। मिमीते मिमाते मिमते। मिमीषे मिमाथे मिमीध्वे। मिमे मिमीवहे मिमीमहे। डुधाञ् डुभृञ् धारणपोषणयोः।

द्वितीयचतुर्थयोः प्रथमतृतीयौ ॥१५९ ॥

अभ्यासस्य द्वितीयचतुर्थयोः प्रथमतृतीयौ भवतः। बिभर्त्ति बिभृतः बिभ्रति। बिभर्षि बिभृथः बिभृथ। बिभर्मि बिभृवः बिभृमः। बिभृते बिभ्राते बिभ्रते। बिभृषे बिभ्राथे बिभृध्वे। बिभ्रे बिभृवहे बिभृमहे।

डुधाञ्ह्रस्वः ॥१६० ॥

अभ्यासस्य ह्रस्वो भवति। दधाति।

तथोश्च दधातेः ॥१६१ ॥

दधातेर्धातोः आदेस्तृतीयचतुर्थत्वं भवति तथोः सेध्वोश्चागुणे परतः। धत्तः दधति। दधासि धत्थः धत्थ। दधामि दध्वः दध्मः। धत्ते दधाते दधते। धत्से दधाथे धद्ध्वे। दधे दध्वहे दध्महे। भावकर्मणोश्च।

अगुण सार्वधातुक आने पर अभ्यस्त के आकार का लोप हो जाता है ॥१५८ ॥

जिहाते। जिहते। 'आत्मने चानकारात्' सूत्र ७९ से नकार का लोप हो गया है। जिहीत। जिहीतां। अजिहीत।

माङ् धातु माप करने और शब्द करने अर्थ में है। मा मा ते १५६ से अभ्यास को 'इ' १५७ से अभ्यस्त को 'ई' होकर मिमीते बना। डुधाञ् और डुभृञ् धातु धारण पोषण अर्थ में हैं।

भृ भृ ति १५६ से अभ्यास को इकार होकर भि अगले को गुण होकर भिभर ति है।

अभ्यास के द्वितीय को प्रथम एवं चतुर्थ को तृतीय अक्षर हो जाता है ॥१५९ ॥

बिभर्त्ति। बिभृतः। बिभ्रति 'द्वयमभ्यस्तं' से अभ्यस्त संज्ञा करके 'लोपोऽभ्यस्तादन्तिनः' १५४ से नकार का लोप गया अतः 'रमृवर्णः' से संधि हो गई है। आत्मने पद में बिभृते।

धा धा ति 'द्वितीय चतुर्थयोः प्रथमतृतीयौ' १५९ सूत्र से पूर्व को तृतीय अक्षर होकर—दाधा ति रहा।

धाञ् धातु में अभ्यास को ह्रस्व हो जाता है ॥१६० ॥

'दधाति' बना। दा धा तस् है।

त, थ, से, ध्वे अगुणी विभक्तियों के आने पर धा धातु के आदि के तृतीय को चतुर्थ हो जाता है ॥१६१ ॥

धा धा तस् 'अभ्यस्तानामाकारस्य' १५८ सूत्र से अभ्यस्त के आकार का लोप होकर 'अघोषे प्रथमः' से प्रथम अक्षर होकर 'डुधाञ् ह्रस्वः' से अभ्यास को ह्रस्व होकर धत्तः बना। दधासि धत्थः धत्थ। दधामि दध्वः दध्मः।

धा धा ते अभ्यास के चतुर्थ को तृतीय होकर ह्रस्व होकर पुनः १६१ सूत्र से चतुर्थ हो गया और अभ्यस्त के 'आकार' का लोप होकर 'धत्ते' बना। ऐसे ही से ध्वे, विभक्ति में धत्से 'धद्ध्वे' बना। भावकर्म में—

नाम्यन्तानां यणायियन्नाशीश्च्विचेक्रीयितेषु दीर्घः ॥१६२ ॥

नाम्यन्तानां धातूनां दीर्घो भवति यणादीनां ये च्वौ च परे। हूयते।

अदाब् दाधौ दा ॥१६३ ॥

डुदाञ् दाने। दाण् दाने। दो अवखण्डने। देङ् रक्षणे। एते चत्वारो दारूपाः। डुधाञ् धारणपोषणयोः। धेट् पा पाने इत्येतौ धारूपौ। दाप् लवने, दैप् शोधने इत्येतौ वर्जयित्वा दाधा इत्येतौ दासंज्ञौ भवतः।

दामागायति पिबति स्थास्यति जहातीनामीकारो व्यञ्जनादौ ॥१६४ ॥

दासंज्ञकमारूपकगायतिपिबतिस्थास्यतिजहातीनामन्तस्य ईकारो भवति व्यंजनादावगुणे सार्वधातुके परे। दीयते। धीयते। माङ् माने शब्दे च। मीयते मीयेते मीयन्ते। कै गै रै शब्दे। गीयते। पीयते। ष्ठा गतिनिवृत्तौ। निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः। स्थीयते। षो अन्तकर्मणि। अवसीयते। ओहाक् त्यागे। हीयते। जुहुयात् जुहुयातां जुहुयुः। धेट् पा पाने। दध्यात् दध्यातां दध्युः। दधीत दधीयातां दधीरन्। जुहोतु जुहतात् जुहुतां जुह्वतु। जुहुधि जुहुतात् जुहुतं जुहुत। जुहवानि जुहवाव जुहवाम। मिमीत मिमीयाताम् मिमीरन्। मिमीतां मिमातां मिमतां। मिमीष्व मिमाथां मिमीध्वं। मिमै मिमावहै मिमामहै। बिभर्तु बिभृतां बिभ्रतु। बिभृतां बिभ्रातां बिभ्रतां। दधातु धत्तात् धत्तां दधतु। अभ्यस्तानामकारस्य इति लोपे प्राप्ते। "लोपस्वरादेशयोः स्वरादेशो विधिर्बलवान्" इति स्वरादेशो भवति।

दास्त्योरभ्यासलोपश्च ॥१६५ ॥

नाम्यन्त धातु को यण् आदि प्रत्यय, च्वि प्रत्यय के आने पर दीर्घ हो जाता है ॥१६२ ॥

हु य ते = हूयते।

दाप् देप् को छोड़कर दा धा, धातु 'दा' संज्ञक होते हैं ॥१६३ ॥

डुदाञ्—दान देना, दाण्—दान देना, दो—खंड करना, देङ्—रक्षा करना, ये चार धातु दा रूप हैं। डुधाञ्—धारण पोषण करना, धेट् पा—पीना ये दो धातु धारूप हैं।

दाप्—काटना, दैप् शोधन करना। इन दो धातुओं को छोड़कर उपर्युक्त दा, धा रूप धातु 'दा' संज्ञक होते हैं।

व्यंजनादि अगुण सार्वधातुक विभक्ति के आने पर दा, मा, गा, पा, स्था, हा धातु के अन्त को ईकार हो जाता है ॥१६४ ॥

अतः दीयते, धीयते, मीयते बन गये। कै गै रै, धातु शब्द करने अर्थ में हैं। गीयते, पा—पीयते। ष्ठा—ठहरना। 'धात्वादेः षः सः' सूत्र से सकार होने से निमित्त के अभाव में नैमित्तिक का भी अभाव हो गया अतः ठकार को थकार होकर स्था रहा स्थीयते। षो अंत करना—अवसीयते। ओहाक् त्याग करना, हीयते। इत्यादि।

सप्तमी में—जुहुयात्। दध्यात्। दधीत १५८ से आकार का लोप हुआ है। जुहोतु। जुहुधि। उत्तम पुरुष में गुण होकर जुहवानि जुहवाव जुहवाम। मितीत, मिमीयातां मिमीरन्। मिमीतां। बिभर्तु। बिभृतां। दधातु। 'धा धा हि' 'अभ्यस्तानामाकारस्य' सूत्र से अभ्यस्त के आकार का लोप प्राप्त था किंतु लोप और स्वर के आदेश में स्वर के आदेश की विधि बलवान् होती है इस न्याय के अनुसार—

'हि' विभक्ति के आने पर दा संज्ञक और अस् धातु के अन्त को 'ए' होकर अभ्यास का लोप हो जाता है ॥१६५ ॥

दासंज्ञकस्यास्तेश्च हौ परेन्तस्य एत्वं भवति अभ्यासलोपश्च। यथासंख्यं। धेहि धत्तात् धत्तं धत्त। दधानि दधाव दधाम। धत्तां दधातां दधतां। अजुहोत् अजुहुतां।

अन उस्सिजभ्यस्तविदादिभ्योऽभुवः ॥१६६॥

सिजभ्यस्तविदादिभ्यः परस्य अन उस् भवति। अभुवः।

अभ्यस्तानामुसि ॥१६७॥

अभ्यस्तानां गुणो भवति उसि परे। अजुहवुः। अजुहोः अजुहुतं अजुहुत। अजुहवं अजुहुव अजुहुम। अजिहीत अजिहातां अजिहत। अबिभः अबिभृतां अबिभरुः। अबिभः अबिभृतं अबिभृत। अबिभरं अबिभृव अबिभृम। अबिभृत अबिभ्रातां अबिभ्रत। अमिमीत अमिमातां अमिमत। अमिमीथाः अमिमाथां अमिमीध्वं। अमिमि अमिमीवहि अमिमीमहि। अदधात् अधत्तां।

आकारस्योसि ॥१६८॥

आकारस्य लोपो भवति उसि परे। अदधुः। अधत्त अदधातां अदधत। ञिभी भये। बिभेति बिभितः बिभीतः।

भियो वा ॥१६९॥

भियो वा इकारो भवति व्यञ्जनादावगुणे सार्वधातुके परे।

य इवर्णस्यासंयोगपूर्वस्यानेकाक्षरस्य ॥१७०॥

असंयोगपूर्वस्यानेकाक्षरस्य इवर्णस्य यो भवति स्वरादावगुणे परे। बिभ्यति इत्यादि। ह्री लज्जायां।

क्रम से—धेहि तातण् में—धत्तात्। धत्तां। अजुहोत्। अजुहु अन् है।

भू को छोड़कर सिच् अभ्यस्त और विवादि से परे अन् को 'उस्' हो जाता है ॥१६६॥

उस् के आने पर अभ्यस्त को गुण हो जाता है ॥१६७॥

अजुहवुः बना अजुहोः अजुहु + अम्—अजुहवम्। अजिहीत।

अबि भृ दि। 'व्यंजनादिस्योः' से सि दि का लोप होकर गुण होकर र् का विसर्ग हुआ अबिभः। अन् में—अबिभरुः। अबिभ्रत। अमिमीत। अदधात्। अधत्तां। 'अ द धा उस्'।

उस् के आने पर आकार का लोप हो जाता है ॥१६८॥

अदधुः। अधत्त। ञिभी धातु भय अर्थ में है

भी भी ति चतुर्थ को तृतीय अक्षर एवं डुधाञ् ह्रस्वः १६० सूत्र से अभ्यास को ह्रस्व होकर एवं धातु को गुण होकर 'बिभेति' बना।

'बिभी तस्' है।

व्यंजनादि अगुण सार्वधातुक के आने पर 'भी' को विकल्प से इकार हो जाता है ॥१६९॥

अतः बिभितः, बिभीतः। बिभी अन्ति १५४वें सूत्र से नकार को लोप होकर—

स्वरादि अगुणी विभक्ति के आने पर असंयोग पूर्व अनेकाक्षर वाले इवर्ण को यकार हो जाता है ॥१७०॥

बिभ्यति बना। ह्री धातु—लज्जित होना। ह्री ह्री ति 'हो जः' से 'ज्री' १६० सूत्र से ह्रस्व होकर ज्रि

अभ्यासस्यादिव्यञ्जनमवशेष्यम् ॥१७१ ॥

अभ्यासस्यादिव्यञ्जनमवशेष्यं भवति। अनादेर्लोप इत्यर्थः। जिह्रेति जिह्रीतः। स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवाविति इयादेशः। जिह्रियति। ओहाक् त्यागे। जहाति जहीतः।

जहातेर्वा ॥१७२ ॥

जहातेः सार्वधातुके व्यञ्जनादावगुणे परे आकार इकारादेशो भवति वा। जहितः जहीतः जहति। जहासि। उभयेषामीकारो व्यञ्जनादावदः। जहीथः जहिथः जहीथ जहिथ। जहामि जहीवः जहिवः जहीमः जहिमः।

लोपः सप्तम्यां जहातेः ॥१७३ ॥

जहातेरन्तस्य लोपो भवति सप्तम्यां व्यञ्जनादावगुणे सार्वधातुके परे। जह्यात् जह्यातां जह्युः। जहातु जहीतात् जहितात् जहीतां जहितां जहतु।

आत्वं वा हौ ॥१७४ ॥

जहातेरन्तस्य आत्वं ईत्वमित्वं च भवति वा हौ परे। जहाहि जहिहि जहीहि जहीतात् जहितात् जहीतं जहितं जहीत जहित। जहानि जहाव जहाम। अजहात् अजहीतां अजहितां अजहुः। अजहाः अजहीतं अजहितं अजहीत अजहित। अजहां अजहिव अजहीव अजहिम अजहीम। इत्यादि। ऋ सृ गतौ। पॄ पालनपूरणयोः।

अर्तिपिपर्त्योश्च ॥१७५ ॥

अनयोरभ्यासस्य इद्भवति सार्वधातुके परे।

अभ्यास का आदि व्यंजन अवशेष रहता है ॥१७१ ॥

अर्थात् आदि से बाद के रकार का लोप हो जाता है तब गुण होकर 'जिह्रेति' जिह्रीतः बना। जिह्री अति 'स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ' ८३ सूत्र से इय् आदेश होकर 'जिह्रियति' बना। ओहाक्—त्याग करना।

'हा हा ति' 'हो जः' सूत्र से अभ्यास को 'ज' होकर सूत्र १६० से ह्रस्व होकर 'जहाति' जहा तस्।

सार्वधातुक व्यंजनादि अगुण विभक्ति के आने पर जहाति धातु के आकार को विकल्प से इकार हो जाता है ॥१७२ ॥

जहितः, १५७वें सूत्र से ईकार होकर 'जहीतः' बना जहा। अन्ति १५८ से आकार को लोप होकर नकार का लोप होकर 'जहति' बना। 'ज हा यात्'

सप्तमी में जहाति के अन्त का लोप हो जाता है ॥१७३ ॥

जह्यात्। जहातु जहितात्, जहीतात्। ज हा हि।

हि के आने पर जहाति के अन्त को 'आ' ई और 'इ' हो जाता है ॥१७४ ॥

जहाहि, जहीहि, जहिहि। अजहात्। इत्यादि। ऋ सृ गति अर्थ में है। पॄ धातु पालन और पूरण अर्थ में है।

ऋ ऋ ति। पॄ पॄ ति।

सार्वधातुक में ऋ के अभ्यास को इकार हो जाता है ॥१७५ ॥

इ ऋ ति।

अभ्यासस्यासवर्णे ॥१७६ ॥

अभ्यासस्य इवर्णोवर्णयोरियुवौ भवतोऽसवर्णे परे। इयर्ति इयृतः इय्रति। इयर्षि इयृथः इयृथ। इयर्मि इयृवः इयृमः। इयृयात् इयृयातां इयृयुः। इयर्तु इयृतात् इयृतां इय्रतु। इयृहि इयृतात् इयृतं इयृत। इयराणि इयराव इयराम। ऐयः ऐयृतां ऐयरुः। ऐयः ऐयृतं ऐयृत। ऐयरं ऐयृव ऐयृम। गुणोर्तिसंयोगाद्योरिति गुणः। भावे-अर्यते।

ऋवर्णस्याकारः ॥१७७ ॥

अभ्यासस्य ऋवर्णस्याकारो भवति। ससर्ति ससृतः सस्रति। ससृयात् ससृयातां ससृयुः। ससर्तु ससृतात् ससृतां सस्रतु। असस: अससृतां अससरुः।

यणाशिषोर्ये ॥१७८ ॥

ऋदन्तादिकारागमो भवति यणाशिषोर्ये परे। स्रियते। पिपर्ति पिपृतः। पिप्रति। पिपृयात् पिपृयातां पिपृयुः। पिपर्तु पिपृतात् पिपृतां पिप्रतु। अपिपः अपिपृतां अपिपरुः। णिजिर् शौचपोषणयोः। विजिर् पृथग्भावे। विष्लृ व्याप्तौ। विष् शब्दे।

निजिविजिविषां गुणः सार्वधातुके ॥१७९ ॥

निजादीनामभ्यासस्य गुणो भवति सार्वधातुके परे।

चवर्गस्य किरसवर्णे ॥१८० ॥

चवर्गस्य किर्भवति असवर्णे धुटि परे अन्ते च। नेनेक्ति नेनिक्तः नेनिजति। नेनेक्षि नेनिक्थः नेनिक्थ। नेनेज्मि नेनिज्वः नेनिज्मः। नेनिज्यात् नेनिज्यातां नेनिज्युः। नेनेक्तु नेनिक्तात् नेनिक्तां नेनिजतु। नेनेग्धि नेनिक्तात् नेनिक्तं नेनिक्त।

असवर्ण के आने पर अभ्यास के इवर्ण उवर्ण को इय् उव् होता है ॥१७६ ॥

आगे गुण होकर इयर्ति, इयृतः 'रमृवर्णः' से संधि होकर इय् ऋ अति = इयर्ति। इयृयात्। इयर्तु। इय् ऋ आनि गुण होकर इयराणि बना।

भावकर्म में—ऋ य ते 'गुणोर्तिसंयोगाद्योः' ७१ सूत्र से गुण होकर 'अर्यते' बना। सृ सृ ति

अभ्यास के ऋवर्ण को अकार हो जाता है ॥१७७ ॥

गुण होकर 'ससर्ति' बना। ससृतः सस्रति। ससृयात्। ससर्तु। असस: अससृतां अससरुः। भावकर्म में—

यण् आशिष् और य् प्रत्यय के आने पर ऋकार से इकार का आगम होता है ॥१७८ ॥

सृ इ 'रमृवर्णः' से रियते बना। पृ पृ ति 'अर्तिपिपर्त्योश्च' १७५ सूत्र से अभ्यास को 'इ' होकर गुण होकर पिपर्ति बना। पिपृयात्। पिपर्तु। अपिपः अपिपृतां अपिपरुः। णिजिर्—शुद्धि करना, पोषण करना। विजिर्—पृथक् होना, विष्लृ—व्याप्त होना, विष्—शब्द करना।

'णो नः' सूत्र से ण् को न् करके निज् धातु है। निज् निज् ति १७१ से अभ्यास के आदि को शेष रखने से ज् का लोप हुआ।

सार्वधातुक में निज् विज् और विष् के अभ्यास को गुण हो जाता है ॥१७९ ॥

एवं गुणी विभक्ति को गुण होकर ने ने ज् ति रहा।

असवर्ण, धुट् के परे और अन्त में चवर्ग को कवर्ग हो जाता है ॥१८० ॥

नेनेक्ति नेनिक्तः नेनिजति, नेनेक्षि नेनिक्थः।

नेनिज्यात्। नेनेक्तु। नेनेग्धि। नेनिज् आनि।

अभ्यस्तस्य चोपधाया नामिनः स्वरे गुणिनि सार्वधातुके ॥१८१॥

अभ्यस्तस्य चोपधाया नामिनो गुणो न भवति स्वरादौ गुणिनि सार्वधातुके परे। नेनिजानि नेनिजाव नेनिजाम। अनेनेक् अनेनिक्तां अनेनिजुः। अनेनेक् अनेनिक्तं अनेनिक्त। अनेनिजं अनेनिज्व अनेनिज्म। वेवेक्ति वेविक्तः वेविजति। वेविज्यात् वेविज्यातां वेविज्युः। वेवेक्तु वेविक्तात् वेविक्तां वेविजतु। वेविग्धि। अवेवेक् अवेविक्तां अवेविजुः। वेवेष्टि वेविष्टः वेविषति। वेवेक्षि वेवेष्ठिः वेविष्ठ। वेवेष्मि वेविष्वः वेवेष्मिः। वेविष्यात् वेविष्यातां वेविष्युः। वेवेष्टु वेविष्टात् वेविष्टां वेविषतु। धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु इति तृतीयः। ऋवर्णटवर्गरषा मूर्धन्या इति न्यायात् षकारस्य डकारः। वेविड्ढि वेविष्टात् वेविष्टं वेविष्ट। वेविषाणि वेविषाव वेविषाम। अवेवेट् अवेविष्टां अवेविषुः। अवेवेः अवेविष्टं अवेविष्ट। अवेविषं अवेविष्व अवेविष्म। भावकर्मणोः-निज्यते। विज्यते। विष्यते। इति जुहोत्यादिः। ❑

अथ दिवादिगणः

दिवु क्रीडाविजिगीषाव्यवहारद्युतिस्तुतिमोदमदस्वप्नकान्तिगतिषु।

दिवादेर्यन् ॥१८२॥

दिवादेर्गणाद्विकरणसंज्ञको यन् भवति कर्तरि विहिते सार्वधातुके परे।

नामिनोर्वोरकुर्छुरोर्व्यञ्जने ॥१८३॥

अकुर्छुरोर्वोरुपधाभूतस्य नामिनो दीर्घो भवति व्यञ्जने परे। दीव्यति दीव्यतः दीव्यन्ति। दीव्येत् दीव्येतां दीव्येयुः। दीव्यतु दीव्यतात् दीव्यतां दीव्यन्तु। अदीव्यत् अदीव्यतां अदीव्यन्। षूङ् प्राणिप्रसवे।

स्वरादि गुणी सार्वधातुक के आने पर अभ्यस्त और उपधा के नामि को गुण नहीं होता है ॥१८१॥

नेनिजानि। अनेनेक्। "व्यंजनाद्दिस्योः" से दि सि का लोप हो गया है। विज् धातु से—वेवेक्ति वेविक्तः। वेविज्यात्। वेवेक्तु। वेविग्धि। विष्—वेवेष्टि। वेविष् से 'षढोकः सूत्र से' ष को क् होकर आगे सकार को षकार होकर वेवेक्षि।

वेविष् + हि 'धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु' सूत्र १२० से तृतीय अक्षर होता था तब "ऋवर्ण टवर्ग रषा मूर्धन्याः" इस न्याय से षकार को 'उ' पुनः 'तवर्गस्य षट्वर्गाट्टवर्गः' से धि को ढि होकर 'वेविड्ढि' अवेवेट्। भावकर्म में—निज्यते। विज्यते। विष्यते।

इस प्रकार से जुहोत्यादि गण समाप्त हो गया। ❑

अथ दिवादिगण

दिवु धातु क्रीड़ा, जीतने की इच्छा, व्यवहार, कांति इच्छा, स्तुति, मोद, मद, स्वप्न, कांति और गति अर्थ में है।

दिव् ति है।

दिवादि से 'यन्' विकरण होता है ॥१८२॥

कर्त्ता में सार्वधातुक से परे दिवादिगण से विकरण संज्ञक 'यन्' होता है।

व्यंजन वाली विभक्ति के आने पर कुर् छुर् को छोड़कर व की उपधाभूत नामिको दीर्घ हो जाता है ॥१८३॥

दीव्यति दीव्यतः दीव्यंति। दीव्येत्। दीव्यतु। अदीव्यत्। षूङ् धातु प्राणी को जन्म देने अर्थ में

सूयते सूयेते सूयन्ते। सूयेत सूयेयातां सूयेरन्। सूयतां सूयेतां सूयन्तां। असूयत असूयेतां असूयन्त। असूयथा: असूयेथां असूयध्वं। असूये असूयावहि असूयामहि। णहञ् बन्धने। संनह्यति संनह्यत: संनह्यन्ति। संनह्यते संनह्येते संनह्यन्ते। संनह्येत् संनह्येतां संनह्येयु:। संनह्ये: संनह्येतं संनह्येत। संनह्येयं संनह्येव संनह्येम। संनह्येत संनह्येयातां संनह्येरन्। संनह्यतु संनह्यतात् संनह्यतां संनह्यन्तु। संनह्य संनह्यतात् संनह्यतं संनह्यत। संनह्यानि संनह्याव संनह्याम। संनह्यतां संनह्येतां संनह्यन्तां। संनह्यस्व संनह्येथां संनह्यध्वं। संनह्यै संनह्यावहै संनह्यामहै। समनह्यत् समनह्यतां समनह्यन्। समनह्यत समनह्येतां समनह्यन्त। इत्यादि। भावकर्मणोश्च। दीव्यते। सूयते। संनह्यते। ञिमिदा स्नेहने।

मिदे: ॥१८४॥

मिदेरित्येतस्य नाम्युपधस्य धातोर्यन्स्वविकरणे परे गुणो भवति। प्रमेद्यति प्रमेद्यत: प्रमेद्यन्ति। प्रमेद्येत्। प्रमेद्यतु। प्रामेद्यत्। शो तनूकरणे। छो छेदने। षो अन्तकर्मणि। दो अवखण्डने।

यन्योकारस्य ॥१८५॥

धातोरोकारस्य लोपो भवति यनि परे। श्यति श्यत: श्यन्ति। श्यसि श्यथ: श्यथ। श्यामि श्याव: श्याम:। छ्यति छ्यत: छ्यन्ति। स्यति स्यत: स्यन्ति। द्यति द्यत: द्यन्ति। शम् दम् उपशमे। तमु काक्षांयां। श्रम् तपसि खेदे च। भ्रमु अनवस्थाने। क्षमूष् सहने। क्लमु ग्लानौ। मदी हर्षे।

शमादीनां दीर्घो यनि ॥१८६॥

शमादीनां दीर्घो भवति यनि परे। शाम्यति। दाम्यति। ताम्यति। श्राम्यति। भ्राम्यति क्षाम्यति। क्लाम्यति। माद्यति। जनी प्रादुर्भावे।

जा जनेर्विकरणे ॥१८७॥

जने: स्वविकरणे परे जा भवति। जायते। जायेत। जायतां। अजायत।

है। ङ् की इत्संज्ञा होने से आत्मनेपद हुआ। 'धात्वादे: ष: स:' सूत्र से 'सू' रहा। सूयते। सूयेते। सूयेत। सूयतां। असूयत। णहञ् धातु-बंधन अर्थ में है।

'णो न:' से न होकर नह्यति संनह्यति बना। संनह्यते। संनह्येत्। संनह्ये। संनह्यतु। संनह्यतां। समनह्यत्। समनह्यत। इत्यादि। भावकर्म में—दीव्यते, सूयते। संनह्यते। ञिमिदा धातु स्नेह अर्थ में है।

'मिद्' इस नामि उपधा वाली धातु को 'यन्' विकरण के आने पर गुण हो जाता है ॥१८४॥

मेद्यति, प्रमेद्यति। प्रमेद्येत्। प्रमेद्यतु। प्रामेद्यत्। शो-कृश करना। छो-छेदन करना। षो-समाप्त होना। दो-टुकड़े करना। शो यन् ति है।

'यन्' के आने पर धातु के ओकार का लोप हो जाता है ॥१८५॥

श्यति, श्यत: श्यन्ति। छ्यति। स्यति। द्यति। शम् दम् धातु उपशम अर्थ में हैं। तमु कांक्षा अर्थ में, श्रम, धातु तपश्चर्या और खेद अर्थ में हैं। भ्रमु-भ्रमण करने। क्षमूष्-सहन करने। क्लमु-ग्लानि अर्थ में, मदी धातु-हर्ष अर्थ में है।

यन् के आने पर शम् आदि को दीर्घ हो जाता है ॥१८६॥

शाम्यति, दाम्यति, ताम्यति, भ्राम्यति, क्षाम्यति, क्लाम्यति, माद्यति। जनी उत्पन्न होना।

जन् धातु को अपने विकरण के आने पर 'जा' हो जाता है ॥१८७॥

जायते। जायेत। जायतां। अजायत।

यणि वा ॥१८८ ॥

यणि परे जनेर्जादिशो वा भवति। जायते जन्यते। इति दिवादिः। ❑

अथ स्वादिगणः

षुञ् अभिषवे।

नुः स्वादेः ॥१८९ ॥

स्वादेर्गणाद्विकरणसंज्ञको नुर्भवति कर्तरि विहिते सार्वधातुके परे। सुनोति सुनुतः।

नोर्वकारो विकरणस्य ॥१९० ॥

नोर्विकरणस्यासंयोगपूर्वस्योकारस्य वकारो भवति स्वरादावगुणे सार्वधातुके परे। सुन्वन्ति। सुनोषि सुनुथः सुनुथ। सुनोमि।

उकारलोपो वमोर्वा ॥१९१ ॥

असंयोगपूर्वस्य विकरणस्योकारस्य लोपो वा भवति वमोः परतः। सुन्वः सुनुवः सुन्मः सुनुमः। सुनुते सुन्वाते सुन्वते। सुनुषे सुन्वाथे सुनुध्वे। सुन्वे सुन्वहे सुनुवहे सुन्महे सुनुमहे।

नाम्यन्तानां यणायिन्नाशीश्च्विचेक्रीयितेषु दीर्घः ॥१९२ ॥*

नाम्यन्तानां धातूनां दीर्घो भवति यण् आय् इन् आशीः चेक्रीयितेषु ये च्वौ च परे। सूयते सूयेते। अशूङ् व्याप्तौ। अश्नुते।

यण् के आने पर जन् को 'जा' विकल्प से होता है ॥१८८ ॥

भाव में—यण् के आने पर जायते। जन्यते दोनों रूप बन गये।

इस प्रकार से दिवादि गण समाप्त हुआ। ❑

अथ स्वरादिगण प्रारंभ होता है।

षुञ् धातु का अर्थ—स्नपन, पीडन, स्नान और सुरा बनाने अर्थ में है।

कर्ता में सार्वधातुक के आने पर 'सु आदि' गण से 'नु' विकरण होता है ॥१८९ ॥

धात्वादेः षः सः सूत्र ५४ से स होता है पुनः 'नाम्यंतयोर्धातुविकरणयोर्गुणः' ३२वें सूत्र से गुण होकर 'सुनोति, सुनुतः' बना। 'धात्वादेः षः सः' सूत्र ५४ से 'सुनु अन्ति' है।

नु विकरण के उकार को 'वकार' होता है ॥१९० ॥

पूर्व में संयोग अक्षर के न होने से स्वरादि अगुणी सार्वधातुक के आने पर 'नु' के 'उ' को 'व' हो जाता है। सुन्वन्ति।

व, म, विभक्ति के आने पर असंयोग पूर्व के विकरण के उकार का लोप विकल्प से होता है ॥१९१ ॥

सुन्वः, सुनुवः। सुन्मः सुनुमः बना। आत्मनेपद में—सुनुते सुन्वाते सुन्वते 'आत्मने चानकारात्' सूत्र से अन्ते के नकार का लोप हो गया। सुनुषे। सुन्वे, सुन्वहे, सुनुवहे। सुन्महे, सुनुमहे। भावकर्म में—सु य ते है—

यण् आय् इन्, आशी, चेक्रीयित, य और च्वि प्रत्यय के आने पर नाम्यंत धातु को दीर्घ हो जाता है ॥१९२ ॥

नोर्विकरणस्य ॥१९३ ॥

नुविकरणस्योकारस्य संयोगपूर्वस्य उवादेशो भवति स्वरादावगुणे सार्वधातुके परे। अश्नुवाते अश्नुवते। चिञ् चयने। चिनोति चिनुतः चिन्वन्ति। चिनुते चिन्वाते चिन्वते। सुनुयात् सुनुयातां सुनुयः। अश्नुवीत अश्नुवीयातां अश्नुवीरन्। अश्नुवीथाः अश्नुवीयाथां अश्नुवीध्वं। अश्नुवीय अश्नुवीवहि अश्नुवीमहि। चिनुयात्। चिन्वीत। सुनोतु सुनुतात् सुनुतां सुन्वन्तु।

नोश्च विकरणादसंयोगात् ॥१९४ ॥

असंयोगपूर्वान्नुविकरणाच्च परस्य हेर्लोपो भवति। सुनु सुनुतात् सुनुतं सुनुत। सुनवानि सुनुवाव सुनुवाम। अश्नुतां अश्नुवातां अश्नुवतां। अश्नुष्व अश्नुवाथां अश्नुध्वं। अश्नवै अश्नवावहै अश्नवामहै। चिनोतु चिनुतात् चिनुतां चिन्वन्तु। चिनुतां चिन्वातां। चिनुष्व चिन्वाथां चिनुध्वं। चिनवै चिनवावहै चिनवामहै। असुनोत् असुनुतां असुन्वन्। आश्नुत आश्नुवातां आश्नुवत। अचिनोत्। अचिनुत। इत्यादि। इति स्वादिः। ❑

अथ तुदादिगणः

तुद् व्यथने ॥

तुदादेरनि ॥१९५ ॥

तुदादेर्गुणो न भवति अनि परे। तुदति तुदतः तुदन्ति। मृङ् प्राणत्यागे।

यहाँ यण् प्रत्यय के आने पर दीर्घ होने से 'सूयते, सूयेते' आदि बनेगा। अशूङ् धातु व्याप्ति अर्थ में है। अश्नुते बना।

नु विकरण के उकार को 'उव्' आदेश हो जाता है ॥१९३ ॥

संयोग पूर्व वाली धातु से नु विकरण के उकार को स्वरादि अगुण सार्वधातुक के आने पर 'उव्' आदेश होता है। अश्नुवाते अश्नुवते बना। चिञ् धातु-चयन अर्थ में है—फूल चुनना। आदि। चिनोति चिनुतः चिन्वन्ति। चिनुते चिन्वाते चिन्वते।

सप्तमी में—सुनुयात्। अश्नुवीत। चिनुयात्। चिन्वीत। इसमें १९० सूत्र से 'उ' को 'व' हुआ है। पंचमी में—सुनोतु। सुनु हि है।

असंयोग पूर्व से परे नु विकरण होने से 'हि' का लोप हो जाता है ॥१९४ ॥

सुनु। पंचमी के उत्तमपुरुष में गुण होने से सुनवानि सुनवाव सुनवाम। अश्नुतां अश्नुवातां अश्नुवतां।

उत्तमपुरुष में—अश्नवै, अश्नवावहै, अश्नवामहै। चिनोतु। चिनुतां। उत्तमपुरुष में—चिनवै, चिनवावहै चिनवामहै।

ह्यस्तनी में—असुनोत्। आश्नुत। अचिनोत्। अचिनुत।

इस प्रकार से स्वादि गण समाप्त हुआ। ❑

अथ तुदादि गण प्रारंभ होता है।

तुद् धातु पीड़ा अर्थ में है। 'तुद् ति' है 'अन् विकरणः कर्तरि' से अन् विकरण होता है। पुनः।

अन् विकरण के आने पर तुदादि को गुण नहीं होता है ॥१९५ ॥

तुदति तुदतः तुदन्ति। मृङ् धातु प्राण त्याग—मरने अर्थ में है।

इरन्यगुणे ॥१९६ ॥

ऋदन्तादिकारागमो भवति अगुणे अन्विकरणे परे। स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ। म्रियते म्रियेते म्रियन्ते। मुच्लृ मोक्षणे।

मुचादेरागमो नकारः स्वरादनि विकरणे ॥१९७ ॥

मुचादेः स्वरान्नकारागमो भवत्यनि विकरणे परे। मुञ्चति मुञ्चतः मुञ्चन्ति। लुप्लृञ् छेदने। विद्लृञ् लाभे। लिप् उपदेहे। षिचिर् क्षरणे। लुम्पति लुम्पते। विन्दति विन्दते। लिम्पति लिम्पते। सिञ्चति। सिञ्चते। इति मुचादिः। तुदेत्। म्रियेत। मुञ्चेत्। मुञ्चेत। तुदेत्। म्रियतां। मुञ्चन्तु। मुञ्चतां। अतुदत्। अम्रियत। अमुञ्चत्। अमुञ्चत अमुञ्चेतां अमुञ्चन्त। अमुञ्चथाः अमुञ्चेथां अमुञ्चध्वं। अमुञ्चे अमुञ्चावहि अमुञ्चामहि। भावकर्मणोः—तुद्यते।

यणाशिषोर्ये ॥१९८ ॥

ऋदन्तादिकारागमो भवति यणाशिषोर्ये परे। म्रियते। मुच्यते। लुप्यते। विद्यते। लिप्यते। सिच्यते इत्यादि। कॄ विक्षेपे। गॄ निगरणे।

ऋदन्तस्येरगुणे ॥१९९ ॥

ऋदन्तस्य इर् भवत्यगुणे परे। किरति। गिरति।

अगुण विभक्ति में अन् विकरण के आने पर ऋकारांत धातु से 'इकार्' का आगम हो जाता है ॥१९६ ॥

'रमृवर्णः' सूत्र से ऋ को र् होकर 'म्रि ते' रहा 'स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ' ८३ सूत्र से इकार को 'इय्' होकर म्रियते बना, म्रियेते म्रियंते। इस गण में 'आत्मने चानकारात्' सूत्र से अन्ते के नकार का लोप नहीं होता है। मुच्लृ धातु मुक्त—छूटने अर्थ में है। मुच् अ ति है।

अन् विकरण के आने पर मुचादि में स्वर से परे 'नकार' का आगम हो जाता है ॥१९७ ॥

'मु न् च् अ ति' है 'वर्गे तद्वर्गपञ्चमं वा' ९३ सूत्र से चवर्ग का अंतिम अक्षर होकर 'मुञ्चति' बना। 'मुञ्च् अ अन्ति में 'असंध्यक्षरयोरस्य तौ तल्लोपश्च' २६ वें सूत्र से अकार का लोप हो गया है। 'मुञ्चन्ति' बना।

लुप्लृञ् धातु छेदन अर्थ में है। लृञ् का अनुबंध होकर लुप् रहा। विद्लृञ्—लाभ अर्थ में है 'विद्' रहता है। लिप् वृद्धि अर्थ में है। षिचिर्—क्षरण अर्थ में है 'षिच्' रहता है।

इन सबमें नकार का आगम होकर—लुम्पति। लुम्पते। विन्दति, विन्दते। लिम्पति, लिम्पते। सिञ्चति, सिञ्चते। ये 'मुचादि' धातु कहलाती हैं।

तुदेत्। म्रियेत। मुञ्चेत्, मुञ्चेत। तुदतु। म्रियतां। मुञ्चतु मुञ्चतां। अतुदत्। अम्रियत। अमुञ्चत्। अमुञ्चत। भावकर्म में तुयते। मृ य ते है।

यण् आशी और 'य' प्रत्यय के आने पर ऋकारांत से इकार का आगम हो जाता है ॥१९८ ॥

म्रियते। मुच्यते। लुप्यते। विद्यते। लिप्यते। सिच्यते। कॄ—धातु विक्षेपण करने अर्थ में है। गॄ निगलने अर्थ में है।

अगुण विभक्ति के आने पर ऋकारांत को 'इर्' हो जाता है ॥१९९ ॥

किरति। गिरति।

वा स्वरे ॥२०० ॥

गिरतेरश्रुतेर्लश्रुतिर्भवति वा स्वरे परे। गिलति गिलतः गिलन्ति। इरुरोरीरूरौ। कीर्यते गीर्यते इत्यादि।

तुदादिः समाप्तः। ❑

अथ रुधादिगणः

रुधिर् आवरणे।

स्वराद्रुधादेः परो नशब्दः ॥२०१ ॥

रुधादेर्गणस्य स्वरात्परो विकरणसंज्ञको नकारागमी भवति कर्तरि विहिते सार्वधातुके परे। णत्वं घढधभेभ्यस्तथोर्धोधः। धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु। रुणद्धि।

रुधादेर्विकरणान्तस्य लोपः ॥२०२ ॥

रुधादेर्विकरणान्तस्य लोपो भवति अगुणे सार्वधातुके परे। रुन्द्धः रुन्धन्ति। रुन्द्धे, रुन्धाते, रुन्धते। रुन्त्से। रुन्धाथे रुन्ध्वे। रुन्धे रुन्ध्वहे रुन्ध्महे। भुज पालनाभ्यवहारयोः।

अशनार्थे भुजा ॥२०३ ॥

स्वर के आने पर गिर् को विकल्प से गिल् हो जाता है ॥२०० ॥

गिलति गिलतः गिलन्ति। भावकर्म में—किर् य ते गिर् य ते है 'इरुरोरीरूरौ' ११२वें सूत्र से इर् को ईर् होकर कीर्यते गीर्यते बना इत्यादि।

इस प्रकार से तुदादि गण समाप्त हुआ। ❑

अथ रुधादि गण प्रारंभ होता है।

रुधिर् धातु आवरण—रोकने अर्थ में है। रुध् शेष रहता है।

कर्ता में कहे गये सार्वधातुक के आने पर रुधादि गण में स्वर से परे विकरण संज्ञक 'नकार' का आगम होता है ॥२०१ ॥

रु न ध् ति 'नो णमनन्त्यः' इत्यादि सूत्र से 'न' को 'ण' हो गया।

'घढधभेभ्यस्तथोर्धोधः' सूत्र १४३ से 'ति' को 'धि' हो गया 'रुण ध् धि' रहा 'धुटां तृतीयश्चतुर्थेषु' सूत्र १२० से प्रथम ध् को द् होकर 'रुणद्धि' बन गया।

अगुण सार्वधातुक के आने पर रुधादि गण में विकरण के अन्त न के अकार का लोप हो जाता है ॥२०२ ॥

अतः 'रुन्द्धः' बना रुन्ध् अन्ति = रुन्धन्ति बना।

रुणत्सि रुन्द्धः रुन्द्ध, रुणध्मि रुन्ध्वः रुन्ध्मः।

रुन्द्धे रुन्धाते रुन्धन्ते, रुन्त्से रुन्धाथे रुन्ध्वे।

भुज् धातु पालन और भोजन अर्थ में है। अशन अर्थ में भुज् धातु आत्मने पद ही होती है और पालन अर्थ में परस्मैपदी होती है।

अशन अर्थ में भुज् धातु रुधादि हो जाती है ॥२०३ ॥

अशनार्थे भुज रुधादिर्भवति। इति रुधादिः। भुङ्क्ते भुञ्जाते भुञ्जते। भुङ्क्षे भुञ्जाथे। भुङ्ग्ध्वे। भुञ्जे भुञ्ज्वहे भुञ्ज्महे। युजिर् योगे। युनक्ति युङ्क्तः युञ्जन्ति॥ युञ्जते। युङ्क्षे। युञ्जाथे युङ्ध्वे। युञ्जे युञ्ज्वहे युञ्ज्महे। रुन्ध्यात्। रुन्धीत। भुञ्जीत। युञ्ज्यात् युञ्जीत। रुणद्धु रुन्द्धात् रुन्द्धां रुन्धन्तु। रुन्द्धि। रुन्द्धात् रुन्द्धं रुन्द्ध। रुणधानि रुणधाव रुणधाम। भुङ्क्तां भुञ्जातां भुञ्जतां। भुङ्क्ष्व भुञ्जाथां भुङ्ग्ध्वं। भुनजै भुनजावहै भुनजामहै। युनक्तु युङ्क्तात् युङ्क्तां युञ्जन्तु। युङ्ग्धि युङ्क्तात् युङ्क्तं युङ्क्त। युनजानि युनजाव युनजाम। युङ्क्तां। अरुणत् अरुणद् अरुन्द्धां अरुन्धन्।

सोऽपदान्ते वा॥२०४॥

दधोरत्वं वा स्यात् तत्रापि शब्दबहुलभावात्।

सोऽपदान्तेऽरेफप्रकृत्योरपि॥२०५॥

पदान्ते वर्तमानयोर्दधोरत्वं वा स्यात् ह्यस्तन्यां मध्यमपुरुषैकवचने। अरुणत्त्वं अरुणस्त्वं। अरुन्द्धं। अरुन्द्ध। अरुणधं अरुन्ध्व अरुन्ध्म। अभुङ्क्त अभुञ्जातां अभुञ्जत। अभुङ्क्थाः अभुञ्जाथां अभुङ्ग्ध्वं। अभुञ्जि। अभुञ्ज्वहि अभुञ्ज्महि। अयुनक् अयुनग् अयुङ्क्तां अयुञ्जन्। अयुनक् अयुनग् अयुङ्क्तं अयुङ्क्त। अयुनजं अयुञ्ज्व अयुञ्ज्म। अयुङ्क्त अयुञ्जातां अयुञ्जत। अयुङ्क्थाः अयुञ्जाथां अयुङ्ग्ध्वं। अयुञ्जि अयुञ्ज्वहि अयुञ्ज्महि। भावकर्मणोः। रुध्यते रुध्येते रुध्यन्ते। भुज्यते भुज्येते भुज्यन्ते। भिदिर् विदारणे। छिदिर् द्विधाकरणे। भिनत्ति। छिनत्ति। भिन्द्यात्। छिन्द्यात्। भिनत्तु। छिनत्तु। अभिनत् अभिन्तां अभिन्दन्। अभिनत्त्वं अभिनस्त्वं अभिन्तं अभिन्त। अभिनदं अभिन्द्व अभिन्द्म। अच्छिनत् अच्छिन्ताम् अच्छिन्दन्। अच्छिनत्त्वं अच्छिनस्त्वं अच्छिन्तं अच्छिन्नत। अच्छिन्नत। अच्छिन्दम् अच्छिन्द्व अच्छिन्द्म। इति रुधादिः। ❑

भुज् ते 'स्वराद्रुधादेः परो नशब्दः' सूत्र में 'न' विकरण होकर 'रुधादेर्विकरणान्तस्य लोपः' सूत्र से नकार के अकार का लोप होकर 'चवर्गस्यकिरसवर्णे' सूत्र १८० से चवर्ग को कवर्ग होकर 'वर्ग तद्वर्गपञ्चमं वा' सूत्र से वर्ग का अंतिम अक्षर होकर भुङ्क्ते भुञ्जाते भुञ्जते। 'भुङ् क्षे' स् को ष होकर क्ष हो गया। युजिर् धातु योग अर्थ में है। युनक्ति युङ्क्तः युञ्जन्ति। रुन्ध्यात्। रुन्धीत। भुञ्जीत। युञ्ज्यात्। युञ्जीत। रुणद्धु। 'रुन्द्धि' हुधुड्भ्यां हेर्धिः' सूत्र से हिको धि होकर बना है। पंचमी के उत्तम पुरुष में रुणधानि रुणधाव रुणधाम्। भुनजै भुनजावहे भुनजामहे। युनक्तु। अरुणत्।

द और ध से अकार विकल्प से होता है। वहाँ भी शब्द बहुलता होती है॥२०४॥

ह्यस्तनी के प्रथम पुरुष के एकवचन में पदान्त में वर्तमान द और ध को अकार विकल्प से होता है॥२०५॥

अरुणत् त्वं। जब अकार हुआ तब—अरुणः त्वं। अरुणधम् अरुन्ध्व अरुन्ध्म। अभुङ्क्त अभुञ्जातां अभुञ्जत। अयुनक् अयुनग्। अयुङ्क्त। भावकर्म में—रुध्यते। भुज्यते। भिदिर् विदारण अर्थ में है एवं छिदिर् द्विधा करने के अर्थ में है। भिनत्ति। छिनत्ति। भिन्द्यात् छिन्द्यात्। भिनत्तु। छिनत्तु अभिनत् अभिन्तां अभिन्दन्। अभिनत् अभिनः। अच्छिनत्। अच्छिनत। अच्छिनः। अच्छिन्दम् इस प्रकार से रुधादि गण समाप्त हुआ। ❑

अथ तनादिगणः

तनु विस्तारे।

तनादेरुः ॥२०६॥

तनादेर्गणाद्विकरणसंज्ञक उर्भवति कर्तरि विहिते सार्वधातुके परे। तनोति तनुतः तन्वन्ति। मनुङ् अवबोधने। मनुते मन्वाते मन्वते। मनुषे मन्वाथे मनुध्वे। मन्वे मनुवहे मन्वहे मनुमहे मन्महे। डुकृञ् करणे। करोति।

करोतेः ॥२०७॥

करोतेरकारस्य उकारो भवति अगुणे सार्वधातुके परे। कुरुतः कुर्वन्ति। करोषि कुरुथः कुरुथ। करोमि।

अस्याकारः सार्वधातुकेऽगुणे॥

करोतेर्नित्यम् ॥२०८॥

करोते परस्य उकारस्य नित्यं लोपो भवति वमोः परतः कुर्वः कुर्मः। कुरुते कुर्वाते कुर्वते। भावकर्मणोश्च। तन्यते मन्यते।

ये च ॥२०९॥

करोते परस्य उकारस्य नित्यं लोपो भवति ये च परे। कुर्यात् कुर्वीत। तनोतु तनुतात् तनुतां तन्वन्तु।

उकाराच्च ॥२१०॥

अथ तनादि गण प्रारम्भ होता है।

तनु धातु विस्तार अर्थ में है। तन् ति है।

कर्ता से सार्वधातुक में तनादि गण से विकरण संज्ञक 'उ' होता है ॥२०६॥

तनोति तनुतः तन्वन्ति। मनुङ् धातु मानने अर्थ में है। मनुते मन्वाते मन्वते। तनोमि तनुवः 'उकारलोपो वर्गोवा' सूत्र १९१ से व, म के आने पर उकार का लोप विकल्प से होता है। तन्वः तन्मः। मनुवहे मन्वहे मनुमहे मन्महे।

डुकृञ् धातु करने अर्थ में है। 'करोति' बना है।

'नाम्यंतयोर्धातु विकरणयोर्गुणः' सूत्र से सर्वत्र गुण हुआ।

अगुण सार्वधातुक के आने पर करोति के अकार को उकार हो जाता है ॥२०७॥

कुरुतः कुर्वन्ति। कुरु वस्।

व, म के आने पर करोति के उकार का नित्य ही लोप हो जाता है ॥२०८॥

कुर्वः, कुर्मः। कुरुते कुर्वाते कुर्वते। भावकर्म में—तन्यते, मन्यते। कुरु यात्।

'य' विभक्ति के आने पर कुरु के उकार का नियम से लोप हो जाता है ॥२०९॥

कुर्यात्। कुरु ईत = कुर्वीत। तनोतु तनुतात्।

उकार विकरण से 'हि' का लोप हो जाता है ॥२१०॥

उकाराच्च विकरणात्परस्य हेर्लोपो भवति । तनु तनुतात् तनुतं तनुत । तनवानि तनवाव तनवाम । मनुतां मन्वातां मन्वतां । करोतु कुरुतात् कुरुतां कुर्वन्तु । कुरुतां । अतनोत् अतनुतां अतन्वन् । अतनोः । अमनुत अमन्वातां अमन्वत । अमनुथाः अमन्वाथां अमनुध्वं । अमन्वि अमनुवहि अमन्वहि अमनुमहि अमन्महि । अकरोत् अकुरुतां अकुर्वन् । अकुरुत । भावकर्मणोः । तन्यते । मन्यते । "भावकर्मणोश्च । यणाशिषोर्ये" इतीकारागमः । क्रियते । इति तनादिः । ❑

अथ क्र्यादिगणः

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।

ना क्र्यादेः ॥२११ ॥

क्र्यादेर्विकरणसंज्ञको ना भवति कर्तरि विहिते सार्वधातुके परे । क्रीणाति । उभयेषामिति ईकारः । क्रीणीतः ।

क्र्यादीनां विकरणस्य ॥२१२ ॥

क्र्यादीनां विकरणाकारस्य लोपो भवति स्वरादावगुणे सार्वधातुके परे । क्रीणन्ति । वृञ् संभक्तौ । वृणीते वृणाते वृणते । ग्रहञ् उपादाने ।

सपरस्वरायाः सम्प्रसारणमन्तस्थायाः ॥२१३ ॥

परेण धातुस्वरेण सह अन्तस्थायाः सम्प्रसारणं भवति । इत्यधिकृत्य ।

ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिव्यचिप्रच्छिव्रश्चिभ्रस्जीनामगुणे ॥२१४ ॥

तनु तनुतात् । तनवानि । मनुतां । करोतु । कुरुतां । अतनोत् । अमनुत । अकरोत् । अकुरुत । भावकर्म में—तन्यते । मन्यते कृ य ते 'यणाशिषोर्ये' इस सूत्र से इकार का आगम होकर 'क्रियते' बना ।

इस प्रकार से तनादि प्रकरण समाप्त हुआ । ❑

अथ क्र्यादिगण प्रारम्भ होता है ।

डुक्रीञ् खरीदने अर्थ में है ।

कर्ता में सार्वधातुक के आने पर क्र्यादि गण में विकरण संज्ञक 'ना' हो जाता है ॥२११ ॥

क्रीणाति । 'उभयेषामीकारो व्यञ्जनादावदः' सूत्र १५७ से क्र्यादि गण में व्यंजनादि अगुण विभक्ति के आने पर विकरण को ईकार हो जाता है । क्रीणीतः । क्रीणा अन्ति ।

स्वरादि अगुण सार्वधातुक के आने पर क्र्यादि गण में विकरण ना के आकार का लोप हो जाता है ॥२१२ ॥

अतः 'क्रीणन्ति' बना । वृङ् धातु वरण अर्थ में है ।

वृणीते वृणाते वृणते । ग्रहञ् धातु ग्रहण अर्थ में है ।

पर धातु स्वर के साथ अंतस्थ को संप्रसारण हो जाता है ॥२१३ ॥

इस सूत्र को अधिकृत करके—

ग्रह्, ज्या, वय्, व्यध्, वश्, व्यच् प्रच्छ् व्रश्च भ्रस्ज् धातु के अन्तस्थ को पर स्वर के साथ अगुण विभक्ति के आने पर संप्रसारण हो जाता है ॥२१४ ॥

ग्रहादीनामन्तस्थाया: परेण स्वरेण सह सम्प्रसारणं भवत्यगुणे परे। किं सम्प्रसारणं।

सम्प्रसारणं य्वृतोऽन्तस्था निमित्ता: ॥२१५॥

अन्तस्था निमित्ता इ उ ऋत: संप्रसारणसंज्ञा भवन्ति। गृह्णाति गृह्णीत: गृह्णन्ति। गृह्णीते गृह्णाते गृह्णते। ज्या वयोहानौ। जीनाति। भावकर्मणोश्च। जीयते। वेञ् तन्तुसन्ताने। वयति वयत: वयन्ति। वयते। ऊयते। व्यध् ताडने। विध्यति विध्यते। वश कान्तौ।

छशोश्च ॥२१६॥

छशोश्च षो भवति धुट्यन्ते च। वष्टि उष्ट: उशन्ति। वक्षि उष्ठ: उष्ठ। वश्मि उश्व: उश्म:। उश्यते। व्यच व्याजीकरणे। विचति विचत: विचन्ति। विच्यते। प्रच्छ ज्ञीप्सायां। पृच्छति पृच्छत: पृच्छन्ति। पृच्छते। व्रश्चू छेदने। वृश्चति। वृश्चते। भ्रस्ज पाके। लृवर्णतवर्गलसा इति न्यायात् भृज्जति। भृज्जते। त्रिषु व्यञ्जनेषु संयुज्यमानेषु सजातीयानामेकव्यञ्जनलोप:। क्रीणीयात्। वृणीत। गृह्णीयात् गृह्णीत। क्रीणातु क्रीणीतात् क्रीणीताम्। क्रीणन्तु। क्रीणीहि क्रीणीतात् क्रीणीतं क्रीणीत। क्रीणानि क्रीणीव क्रीणीम। वृणीत। गृह्णातु गृह्णीतात् गृह्णीतां गृह्णन्तु।

आन व्यञ्जनान्ताद्धौ ॥२१७॥

संप्रसारण किसे कहते हैं ?

अन्तस्थ य् व् र् को इ उ ऋ संप्रसारण संज्ञा होती है ॥२१५॥

ग्रह को गृह हो गया गृह्णाति = गृह्णाति गृह्णीत: गृह्णन्ति। गृह्णीते गृह्णाते गृह्णते। ज्यावय की हानि अर्थ में है। ज्या में या को ई होकर 'जीनाति' बना। भाव-कर्म में—जीयते। वेञ् धातु बुनना। वयति। वयते। वे को आकारांत होकर वा को ऊ होकर 'ऊयते'। व्यध्—ताडित करना। य को इ होकर विध्यति। विध्यते। 'वयति' भ्वादिगण में बना है एवं 'विध्यति' दिवादिगण में बना है। वश् धातु—कांति (चमकना)—यह धातु अदादि का है और विकरण का लोप हो जाता है।

धुट् के अन्त में आने पर छ् और श् को ष् हो जाता है ॥२१६॥

वष् होकर 'तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्ग:' ११८ सूत्र से टवर्ग होकर वष्टि बना। अगुणी में संप्रसारण होकर उष्ट: उशन्ति। वक्षि "षढो क: से" ११९वें सूत्र से ष् को क् होकर पुन: सि को षि होकर वक्षि बना है। उष्ठ: उष्ठ। वश्मि उश्व: उश्म:। व और म अन्तस्थ, अनुनासिक होने से धुट् नहीं है।

व्यच्—कपट करना। य को इ होकर तुदादि गण में विचति विचत: विचन्ति बना।

विच्यते। प्रच्छ् धातु—प्रश्न करना।

र् को ऋ होकर पृच्छति। पृच्छते। व्रश्चू—छेदन करना। वृश्चति। वृश्चते। भ्रस्ज्—भूनना। "लृ वर्ण त वर्ग ल और स ये दन्त्य कहलाते हैं।" 'तवर्गस्य चटवर्गयोमे चटवर्गौ' सूत्र से और दन्त्य होने के न्याय से सकार को त वर्ग मानकर आगे च वर्ग के योग में उसे च वर्ग कर देने से 'भृज्जति' बना। भृज्जते। भ्रस्ज् में र् को ऋ संप्रसारण हुआ है। तीन व्यञ्जनों के संयुक्त करने पर सजातीय में से एक व्यञ्जन का लोप हो जाता है। क्रीणीयात्। वृणीत। गृह्णीयात्। गृह्णीत। क्रीणातु। क्रीणीहि। वृणीत। गृह्णातु।

व्यञ्जनांत धातु से क्र्यादि गण में 'हि' के आने पर विकरण संज्ञक 'आन' हो जाता है ॥२१७॥

व्यञ्जनान्तात् क्र्यादेर्विकरणसंज्ञक आनो भवति हौ परे। गृहाण गृह्णीतात् गृह्णीतं गृह्णीत। गृह्णानि गृह्णाव गृह्णाम। गृह्णीतां। अक्रीणात् अक्रीणीतां अक्रीणन्। अक्रीणाः अक्रीणीतं अक्रीणीत। अक्रीणां अक्रीणीव अक्रीणीम। अवृणीत अवृणातां अवृणत। अवृणीथाः अवृणाथां अवृणीध्वं। अवृणि अवृणीवहि अवृणीमहि। अगृह्णात् अगृह्णीत। भावकर्मणोः—विक्रीयते। व्रियते। गृह्यते। पूञ् पवने।

प्वादीनां ह्रस्वः ॥२१८॥

प्वादीनां ह्रस्वो भवति स्वविकरणे परे। पुनाति पुनीतः पुनन्ति। पुनीयात् पुनीयातां पुनीयुः। पुनातु पुनीतात् पुनीतां पुनन्तु। पुनीहि पुनीतात् पुनीतं पुनीत। पुनानि पुनाव पुनाम। अपुनात् अपुनीतां अनुनन्। अपुनाः अपुनीतं अपुनीत। अपुनां अपुनीव अपुनीम। एवं लूञ् छेदने। लुनाति। लुनीत लुनन्ति। अलुनात्। ज्ञा अवबोधने।

ज्ञश्च ॥२१९॥

ज्ञश्च स्वविकरणे जा भवति। जानाति जानीतः जानन्ति। जानीयात्। जानातु जानीतात् जानीतां जानन्तु। अजानात् अजानीतां अजानन् इति क्र्यादिः। ❑

अथ चुरादिगणः

चुर स्तेये।

चुरादेश्च ॥२२०॥

चुरादेः कारितसंज्ञक इन् भवति स्वार्थे। उपधाया गुणः।

ते धातवः ॥२२१॥

गृहाण। गृह्णीतां। अक्रीणात् दि सि विभक्ति गुणी हैं। अतः विकरण को ईकार नहीं हुआ। अवृणीत। अगृह्णात्। अगृह्णीत। भाव और कर्म में—क्रीयते, विक्रीयते। 'यणाशिषोर्ये' सूत्र १९८ से इकार का आगम होकर व्रियते बना। गृह्यते। पूञ्-पवित्र करना।

अपने विकरण के आने पर पू आदि को ह्रस्व हो जाता है ॥२१८॥

पुनाति पुनीतः पुनन्ति। पुनीयात्। पुनातु। पुनीहि। अपुनात्। लूञ्-छेदना 'लुनाति' लुनीतः लुनन्ति। अलुनात्। ज्ञा-समझना।

स्वविकरण के आने पर 'ज्ञा' को 'जा' हो जाता है ॥२१९॥

जानाति। जानीयात्। जानातु। जानीहि। अजानात्।

इस प्रकार से क्र्यादि गण समाप्त हुआ।

अब चुरादिगण प्रारम्भ होता है।

चुर् धातु—चुराना।

चुरादिगण में स्वार्थ में कारित संज्ञक 'इन्' होता है ॥२२०॥

और उपधा को गुण हो जाता है 'चोरि' बना। पुनः—

वे सन् आदि प्रत्ययान्त धातु संज्ञक हो जाते हैं ॥२२१॥

ते सनादिप्रत्ययान्ता धातुसंज्ञा भवन्ति। अन् विकरणः कर्तरि। अनि च विकरणे इति गुणः। चोरयति चोरयतः चोरयन्ति। मंत्रि गुप्तभाषणे। 'अनिदनुबन्धानामगुणे' अत एव इदनुबन्धानां धातूनां नुरागमोऽस्ति गुणागुणे प्रत्यये परे। मन्त्रयते मन्त्रयेते मन्त्रयन्ते। वृञ् आवरणे।

अस्योपधाया दीर्घो वृद्धिर्नामिनामिनिचट्सु ॥२२२॥

अस्योपधाया दीर्घो भवति नाम्यन्तानां वृद्धिर्भवति इन् इच् अट् एषु परतः। वारयति वारयतः वारयन्ति। वारयते। भावकर्मणोश्च।

कारितस्यानामिड्विकरणे ॥२२३॥

कारितस्य लोपो भवति आम्इड्विकरणवर्जिते प्रत्यये परे।

स्वरादेशः परनिमित्तकः पूर्वविधिं प्रति स्थानिवत् ॥२२४॥

स्वरादेशः परनिमित्तकः पूर्ववर्णस्य विधिं प्रति स्थानिवद्भवति। चोर्यते। वार्यते। गुडि सजि पल रक्षणे। गुण्डयति। सञ्जयति। पालयति। उपधाभूतस्येति किं ? अर्च पूजायां। अर्चयति। चोरयेत्। मन्त्रयेत्। वारयेत्। चोरयतु। मन्त्रयतां। वारयतु वारयतां। अचोरयत्। अमन्त्रयत। अवारयत। गुण्डयेत्। गुण्डयतु। अगुण्डयत्। संजयेत। संजयतु। असंजयत्। पालयेत्। पालयतु। अपालयत्। अर्चयेत्। अर्चयतु। आर्चयत्। भावकर्मणोश्च। गुण्ड्यते। संज्यते। पाल्यत। अर्च्यत इत्यादि। एवं सर्वमुन्नेयं। इति चुरादिः।

इस सूत्र से 'चोरि' को धातु संज्ञा होकर 'अन् विकरणः कर्तरि' से अन् विकरण होकर 'अनि च विकरणे' सूत्र २३ से गुण होकर 'चोरयति' बना। मत्रि—गुप्त भाषण करना। 'अनिदनु-बंधानामगुणे' सूत्र ५६ से इकार अनुबंध धातु को नु का आगम होता है गुणी अगुणी प्रत्यय के आने पर। नु का आगम 'मन्त्र्' 'चुरादेश्च' सूत्र से इन् प्रत्यय 'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर अन् विकरण और गुण होकर 'मन्त्रयते' बना। वृञ्—आवरण करना।

इन् इच् अट् प्रत्ययों के आने पर इसकी उपधा को दीर्घ होता है और नाम्यन्त को वृद्धि होती है ॥२२२॥

वृ को वृद्धि होने से वार् इन् होकर धातु संज्ञा होकर अन् विकरण एवं गुण होकर 'वारयति' बना। वारयते इत्यादि। भाव और कर्म में—

आम् और इट् प्रत्यय को छोड़कर अन्य प्रत्यय के आने पर कारित संज्ञक 'इन्' प्रत्यय का लोप हो जाता है ॥२२३॥

परनिमित्तक स्वरादेश पूर्व वर्ण की विधि के प्रति स्थानिवत् होता है ॥२२४॥

अतः चोर्यते, मन्त्र्यते, वार्यते। गुड्, सज्, पल्—रक्षण करना।

इन प्रत्यय, धातु संज्ञा, नु का आगम, अन् विकरण और गुण होकर गुण्डयति। सञ्जयति। पालयति। उपधाभूत को ही दीर्घ हो ऐसा क्यों कहा ? अर्च-पूजा अर्थ में है। इन् प्रत्यय होकर गुण होकर 'अर्चयति'। चोरयेत्। मन्त्रयेत। वारयेत्। चोरयतु। मन्त्रयतां। वारयतु। वारयतां। अचोरयत्। अमन्त्रयत। अवारयत। गुण्डयेत्। गुण्डयतु। अगुण्डयत्। संजयेत्। संजयतु। असञ्जयत्। पालयेत्। पालयतु। अपालयत्। अर्चयेत्। अर्चयतु। आर्चयत्।

सार्वं तीर्थकराख्यानं धातोस्तत्प्रकृतेरभूत्।
शास्त्रमेतत् तत्र मुख्यं सार्वधातुकमुच्यते ॥१॥

इत्याख्याते सार्वधातुकं ❑

अथाऽसार्वधातुकमुच्यते

भूतकरणवत्यश्च ॥२२५॥

इति अतीतमात्रे अद्यतनी भवति अद्यभवोऽद्यतनः। तत्रातीतेऽद्यतनी भवति। भू सत्तायां।

सिजद्यतन्याम् ॥२२६॥

धातोः सिज्भवति अद्यतन्यां परतः।

इडागमोऽसार्वधातुकस्यादिव्यञ्जनादेरयकारादेः ॥२२७॥

धातोः परस्य व्यञ्जनादेरयकारादेरसार्वधातुकस्यादाविडागमो भवति।

इणिक्स्थादापिबतिभूभ्यः[1] सिचः परस्मै ॥२२८॥

इणादिभ्यः परस्याः सिचो लुग्भवति परस्मैपदे परे।

भवतेः सिज्लुकि ॥२२९॥

भुव इडागमो न भवति सिज्लुकि।

भाव और कर्म में—गुण्ड्यते। सञ्ज्यते। पाल्यते। अर्च्यते। इत्यादि। इसी प्रकार से सभी धातुओं के रूप चला लेना चाहिये।

इस प्रकार से चुरादिगण समाप्त हुआ।

सभी का हित करने वाले तीर्थंकर भगवान् के उपदेश में धातु और प्रकृति का शास्त्र हुआ है उसमें भी सार्वधातुक प्रकरण मुख्य कहा जाता है ॥१॥

इस प्रकार से आख्यात में सार्वधातुक प्रकरण समाप्त हुआ। ❑

अथ असार्वधातुक प्रकरण प्रारंभ होता है।

भूतकाल में अद्यतनी होती है ॥२२५॥

अतीत मात्र के अर्थ में अद्यतनी होती है। आज का ही होने वाला भूतकाल 'अद्यतन' कहलाता है। उस अतीत काल में अद्यतनी होती है। भू—सत्ता अर्थ में है।

अद्यतनी परे धातु से सिच् प्रत्यय होता है ॥२२६॥

धातु से परे यकारादि रहित, व्यञ्जनादि जो असार्वधातुक उसकी आदि में 'इट्' का आगम होता है ॥२२७॥

परस्मैपद में इण् इक् स्था दा पिब् और भू धातु से परे सिच् का 'लुक्' हो जाता है ॥२२८॥

सिच् का लुक् होने पर 'भू' से इट् का आगम नहीं होता है ॥२२९॥

---

१ इणस्था—इत्यादि सूत्रं हस्तलिखिते पुस्तके वर्तते। इक तत्र न गृहीतं।

भुवः सिज्लुकि ॥२३० ॥

भुवो गुणो न भवति सिज्लुकि । अभूत् अभूतां ।

भुवो वोन्तः परोक्षाद्यतन्योः ॥२३१ ॥

भूधातोरन्ते वकारागमो भवति परोक्षाद्यतन्योः स्वरे परे । अभूवन् । अभूः अभूतं अभूत । अभूवं अभूव अभूम । इण् गतौ ।

इणो गाः ॥२३२ ॥

इणो गा भवत्यद्यतन्यां परतः ।

अनिडेकस्वरादातः ॥२३३ ॥

एकस्वरादाकारात्परमसार्वधातुकमनिड् भवति । अगात् अगातां ।

आलोपोऽसार्वधातुके ॥२३४ ॥

धातोराकारस्य लोपो भवत्यसार्वधातुके स्वरादावगुणे परे । अगुः । अगाः अगातं अगात । अगाम् अगाव अगाम । इक् स्मरणे ।

इकोऽपि ॥२३५ ॥

इकोऽपि गा भवत्यद्यतन्यां परतः । इङिकावध्युपसर्गं न व्यभिचरतः । अध्यगात् अध्यगातां अध्यगुः । अस्थात् अस्थातां अस्थुः । अधात् । अदात् । इत्यादि ।

इङ् अध्ययने ।

सिच् का लुक् होने पर भू को गुण नहीं होता है ॥२३० ॥

अतः भू द् ह्यस्तनी अद्यतनी आदि में धातु की आदि में अट् का आगम होकर 'अभूत्' अभूतां बन गया ।

अभू अन् है ।

परोक्षा और अद्यतनी में स्वर विभक्ति के आने पर भू धातु के अंत में 'वकार' का आगम हो जाता है ॥२३१ ॥

अभूवन् । अभूः अभूतं अभूत । अभूवम् अभूव अभूम । इण्—गति अर्थ में है ।

इण् धातु को अद्यतनी में 'गा' आदेश हो जाता है ॥२३२ ॥

आकारांत एक स्वर वाली धातु असार्वधातुक में इट् रहित होती है ॥२३३ ॥

अगात् अगातां । अन् को उस् होकर—

असार्वधातुक में स्वरादि अगुणी विभक्ति के आने पर धातु के आकार का लोप हो जाता है ॥२३४ ॥

अगुः । इक् धातु स्मरण अर्थ में है ।

अद्यतनी में इक् को भी 'गा' आदेश हो जाता है ॥२३५ ॥

इङ् और इक् धातु 'अधि' उपसर्ग को व्यभिचरित नहीं करते हैं अर्थात् इनमें 'अधिः' उपसर्ग अवश्य लगता है । अध्यगात् अध्यगातां अध्यगुः । स्था धातु से—अस्थात् । धा दा धातु से अधात् । अदात् इत्यादि । इङ् धातु अध्ययन अर्थ में है ।

अद्यतनीक्रियातिपत्त्योर्गी वा ॥२३६॥

अद्यतनीक्रियातिपत्त्योरात्मनेपदे परे इङो वा गी आदेश इष्यते।

इवर्णादश्विश्रिडीङ्शीङः ॥२३७॥

शिवश्रिडीङ्शीङ्वर्जितादेकस्वरादिवर्णात्परमसार्वधातुकमनिङ् भवति। आदेशबलादगुणित्वे। अध्यगीष्ट अध्यगीषातां अध्यगीषत। अध्यगीष्ठाः अद्यगीषाथां।

सिचो धकारे ॥२३८॥

सिचो लोपो भवति धकारे परे।

नाम्यन्ताद्धातोराशीरद्यतनीपरोक्षासु धो ढः ॥२३९॥

नाम्यन्ताद्धातोराशीरद्यतनीपरोक्षासु धो ढो भवति। अध्यगीढ्वं। अध्यगीषि अध्यगीष्वहि अध्यगीष्महि। पक्षे स्वरादीनां वृद्धिरादेः। अध्यैष्ट अध्यैषातां अध्यैषत। अध्यैष्ठाः अध्यैषाथां अध्यैढ्वं। अध्यैषि अध्यैष्वहि अध्यैष्महि। परस्मै इति किम् ?

भूप्राप्तौ ॥२४०॥

भूधातोः भूप्राप्तावात्मनेपदी भवति। अभविष्ट अभविषातां अभविषत। अभविष्ठाः अभविषाथां अभविढ्वं। अभविषि अभविष्वहि अभविष्महि। समवप्रविभ्यश्चेति स्था रुचादिः।

स्थादोरिरद्यतन्यामात्मने ॥२४१॥

स्थादासंज्ञकयोरन्तस्य इर्भवति अद्यतन्यामात्मनेपदे परे।

अद्यतनी और क्रियातिपत्ति में आत्मनेपद के आने पर 'इङ्' को विकल्प से 'गी' आदेश होता है ॥२३६॥

श्वि, श्रि, डीङ्, शीङ् को छोड़कर एक स्वरादि वर्ण से परे असार्वधातुक अनिट् होते हैं ॥२३७॥

आत्मनेपद में 'त' विभक्ति में अध्यगीष् में सिच् पर में रहते गुण क्यों नहीं हुआ गी आदेश करने से गुण नहीं होता है अध्यगीष्ट बना, इसमें सिच् का आगम होकर स् को ष् हुआ है और ष् के निमित्त से तवर्ग को टवर्ग हुआ है। अध्यगीष्ध्वं है।

धकार के आने पर सिच् का लोप हो जाता है ॥२३८॥

नाम्यंत धातु से आशी अद्यतनी और परोक्षा में 'ध' को ढ् हो जाता है ॥२३९॥

अतः अध्यगीढ्वं बना। पक्ष में जब 'गी' आदेश नहीं हुआ तब 'इ' को 'स्वरादीनां वृद्धिरादेः' सूत्र ४८ से पूर्व स्वर को वृद्धि होकर सिच् होकर 'अध्यैष्ट' बना।

परस्मैपद में ऐसा क्यों कहा ?

भू धातु प्राप्ति अर्थ में आत्मनेपदी होता है ॥२४०॥

आत्मनेपद में 'सिच् इट्' होकर 'अभविष्ट' बनेगा। सम्, अव, प्र, वि उपसर्ग से परे स्था धातु रुचादि हो जाता है अर्थात् इन उपसर्गों के योग से स्था धातु आत्मनेपद में चलता है। सम् अस्था त।

आत्मनेपद में अद्यतनी से स्था, दा संज्ञक धातु के अंत को इकार होता है ॥२४१॥

स्थादोश्च ॥२४२ ॥

स्थादासंज्ञकयोर्गुणो न भवति अनिटि सिजाशिषोश्चात्मनेपदे परे ।

ह्रस्वाच्चानिटः ॥२४३ ॥

ह्रस्वात्परस्य अनिटः सिचो लुग्भवति धुटि परे ॥ समस्थित समस्थिषातां समस्थिषत । समस्थिथाः समस्थिषाथां समस्थिध्वं । समस्थिषि समस्थिष्वहि समस्थिष्महि ॥ अदित अदिषातां अदिषत । अदिथाः अदिषाथां अदिध्वं । अदिषि अदिष्वहि । अदिष्महि । ऐधिष्ट ऐधिषातां ऐधिषत । ऐधिष्ठाः ऐधिषाथां ऐधिध्वं । ऐधिषि ऐधिष्वहि ऐधिष्महि ।

पचिवचिसिचिरुचिमुचेश्चात् ॥२४४ ॥

एभ्यः पञ्चभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति ।

अस्य च दीर्घः ॥२४५ ॥

व्यञ्जनान्तानामनिटामुपधाभूतस्यास्य दीर्घो भवति परस्मैपदे सिचि परे ।

सिचः ॥२४६ ॥

सिचः परयोर्दिस्योरादिरीद्भवति । अपाक्षीत् ।

धुटश्च धुटि ॥२४७ ॥

धुटः परस्य सिचो लोपो भवति धुटि परे । अपाक्तां अपाक्षुः । अपाक्षीः अपाक्तं अपाक्त । अपाक्षं अपाक्ष्व अपाक्ष्म । अपक्त अपक्षातां अपक्षत । अपक्थाः अपक्षाथां अपग्ध्वं । अपक्षि अपक्ष्वहि अपक्ष्महि । वद व्यक्तायां वाचि ।

स्था दा संज्ञक धातु को अनिट् सिच् आशीस के आने पर आत्मनेपद में गुण नहीं होता है ॥२४२ ॥

ह्रस्व से परे इट् नहीं होने से सिच् का लोप हो जाता है ॥२४३ ॥

समस्थित, प्रास्थित आदि बनेंगे । दा धातु से अदित अदिषातां अदिषत ।

एध् धातु से ऐधिष्ट ऐधिषातां ऐधिषत ।

पच् वच् सिच् रुच् और मुच् ये पांच धातु असार्वधातुक में इट् रहित होते हैं ॥२४४ ॥

परस्मैपद में सिच् के आने पर व्यञ्जनान्त अनिट् धातु की उपधा के अकार को दीर्घ हो जाता है ॥२४५ ॥

सिच् के परे दि और सि विभक्ति की आदि में 'ई' हो जाता है ॥२४६ ॥

पच् दि है सिच् अट् उपधा को दीर्घ, 'ई' आदेश होकर अपाक्ष् ई त् = अपाक्षीत् बना ।

धुट से परे धुट् के आने पर सिच् का लोप हो जाता है ॥२४७ ॥

अपाक्तां अपाक्षुः । आत्मनेपद में पच् की उपधा को दीर्घ न होकर अपक्त अपक्षातां अपक्षत बना ।

वद—स्पष्ट बोलना ।

वदव्रजरलन्तानां च ॥२४८ ॥

वदव्रजरलन्तानामुपधाभूतस्यास्य दीर्घो भवति परस्मैपदे सिचि परे ।

इटश्चेटि ॥२४९ ॥

इटः परस्य सिचो लोपो भवति ईटि परे । अवादीत् अवादिष्टां अवादिषुः । ध्रज ध्वज वज व्रज गतौ । प्राव्राजीत् प्राव्राजिष्टां प्राव्राजिषुः । वर ईप्सायां । अवारीत् अवारिष्टां अवारिषुः । चर गतिभक्षणयोः । अचारीत् अचारिष्टां अचारिषुः । फल निष्पत्तौ । अफालीत् अफालिष्टां अफालिषुः । शल श्वल्ल आशुगतौ । अशालीत् । अशालिष्टां अशालिषुः । अशालीः अशालिष्टं अशालिष्ट । अशालिषं अशालिष्व अशालिष्म ।

व्यञ्जनादीनां सेटामनेदनुबन्धहम्यन्तकणक्षणश्वसवधां वा ॥२५० ॥

एदनुबन्धहम्यन्तकणक्षणश्वसवर्जितानां सेटां व्यञ्जनादीनां धातूनां उपधाभूतस्यास्य दीर्घो भवति वा परस्मैपदे सिचि परे । रद विलेखने । अरादीत् अरादिष्टां अरादिषुः । अरदीत् अरदिष्टां अरदिषुः । गद् व्यक्तायां वाचि । अगादीत् अगादिष्टां अगादिषुः । अगदीत् अगदिष्टां अगदिषुः । व्यञ्जनादीनामिति किं ?

मायोगेऽद्यतनी ॥२५१ ॥

माशब्दयोगे धातोरद्यतनी भवति । अट पट इट किट कट गतौ । मा भवानटीत् मा भवन्तावटिष्टां । मा भवन्तोऽटिषुः । मा त्वमटीः मा युवामटिष्टं मा यूयमटिष्ट । माहमटिषं मा वामटिष्व मा वयमटिष्म । सेटामिति किं ? अपाक्षीत् अपाक्तां अपाक्षुः । अपाक्षीः अपाक्तं अपाक्त । अपाक्षं अपाक्ष्व अपाक्ष्म । नित्यमुपधाभूतस्येति किं ? अव रक्ष पालने । अरक्षीत् अरक्षिष्टां अरक्षिषुः । अरक्षीः अरक्षिष्टं अरक्षिष्ट । अरक्षिषं अरक्षिष्व अरक्षिष्म् । तक्षू त्वक्षू तनूकरणे । अतक्षीत् । अत्वक्षीत् । अस्येति किं ? मुष स्तेये ।

परस्मैपद में सिच् के आने पर वद् व्रज रकारान्त और लकारांत धातु की उपधा के अकार को दीर्घ हो जाता है ॥२४८ ॥

इट् के परे ईट् के आने पर सिच् का लोप हो जाता है ॥२४९ ॥

अवादीत् । अवादिष्टां अवादिषुः । धृज ध्वज वज व्रज धातु गति अर्थ में हैं । प्राव्राजीत् । वर ईप्सा अर्थ में है । अवारीत् । चर-गति और भक्षण । अचारीत् । फल-निष्पत्ति अर्थ में है । अफालीत् । शल श्वल्ल-शीघ्रगति अर्थ में है । अशालीत् अशालिष्टां अशालिषुः ।

एत् अनुबंध, हकार मकारांत, कण क्षण श्वस और वध इन धातुओं से रहित इट् सहित व्यंजनादि धातु के उपधाभूत अकार को परस्मैपद में सिच् के आने पर दीर्घ विकल्प से होता है ॥२५० ॥

रद-विलेखन अर्थ में । अरादीत् । अरदीत् । गद्-स्पष्ट बोलना । अगादीत्, अगदीत् । व्यंजनादि धातुओं को ऐसा क्यों कहा ?

मा शब्द के योग में धातु से अद्यतनी विभक्ति हो जाती है ॥२५१ ॥

अट पट इट किट कट गति अर्थ में हैं, अटीत् माभवानटीत् । इसमें उपधा को दीर्घ नहीं हुआ । इट् सहित हो ऐसा क्यों कहा ? अपाक्षीत् । यह इट् रहित है अतः विकल्प नहीं हुआ । नित्य ही उपधा भूत हो ऐसा क्यों कहा ? अव, रक्ष पालन अर्थ में हैं । अरक्षीत् । तक्षू त्वक्षू-कृश-करना । अतक्षीत् । अत्वक्षीत् । अकार को हो ऐसा क्यों कहा ? मुष-चुराना । अमोषीत् । कुष्-निष्कर्ष अर्थ में है । अकोषीत् । वर्जन ऐसा क्यों कहा ? खगै-हंसना । अखगीत् । रगे-शंका अर्थ में । अरगीत् ।

अमोषीत् अमोषिष्टां अमोषिषुः। कुष निष्कर्षे। अकोषीत् अकोषिष्टां अकोषिषुः। वर्जनं किं ? खगे हसने अखगीत् अखगिष्टां अखगिषुः। रगे शङ्कायां। अरगीत्। कगे नोचिते। अकगीत् अकगिष्टां अकगिषुः। ग्रहञ् उपादाने॥ अग्रहीत् अग्रहीष्टां अग्रहीषुः। इटो दीर्घो ग्रहेरपरोक्षायामिति दीर्घः। वह परिकल्कने। रह त्यागे। अरहीत् अरहिष्टां अरहिषुः। टुवमु उद्गिरणे। अवमीत्। क्रमु पादविक्षेपे। अक्रमीत् अक्रमिष्टां अक्रमिषुः। चमु छमु जमु झमु जिमु अदने। अचमीत्। अच्छमीत्। अजमीत्। अझमीत्। अजिमीत्। अजिमिष्टां अजिमिषुः। व्यय क्षये। अव्ययीत् अव्ययिष्टां अव्ययिषुः। अय वय मय पय तय चय रय णय गतौ। आयीत्। अवयीत्। अमयीत्। अपयीत्। अतयीत्। अचयीत्। अरयीत्। अनयीत् अनयिष्टां अनयिषुः। कण निमीलने। अकणीत्। क्षण क्षुण हिंसायां। अक्षणीत्। श्वस प्राणने। अश्वसीत् अश्वसिष्टां अश्वसिषुः। हनु हिंसागत्योः। अद्यतन्यां च वधादेशः। अवधीत् अवधिष्टां अवधिषुः। इत्यादि। टुणदि समृद्धौ। अनन्दीत् अनन्दिष्टां अनन्दिषुः। श्रंसु भ्रंसु अवस्रंसने। ध्वंस गतौ च। अश्रंसिष्ट अश्रंसिषातां अश्रंसिषत। अश्रंसिष्ठाः अश्रंसिषाथां अश्रंसिध्वं। अश्रंसिषि अश्रंसिष्वहि अश्रंसिष्महि। अभ्रंसिष्ट अभ्रंसिषातां अभ्रंसिषत। अध्वंसिष्ट। व्येञ् संवरणे।

सन्ध्यक्षरान्तानामाकारोऽविकरणे ॥२५२॥

सन्ध्यक्षरान्तानां धातूनां आकारो भवति अविकरणे परे।

यमिरमिनम्यादन्तानां सिरन्तश्च ॥२५३॥

एषामिडागमः सकारपूर्वो भवति परस्मैपदे सिचि परे। यमु उपरमे। अयंसीत् अयंसिष्टां अयंसिषुः। रमु क्रीडायां। अरंसीत् अरंसिष्टां अरंसिषुः।

कगे-अनुचित अर्थ में। अकगीत्। ग्रहञ् ग्रहण करना। अग्रहीत् अग्रहीष्टां अग्रहीषुः। "इटो दीर्घो ग्रहेरपरोक्षायां" इस २९० सूत्र से इट् को सर्वत्र दीर्घ हो गया है। वह—परिकल्कने। रह—त्याग अर्थ में है। अरहीत्। टुवम् उद्गिरण-उगलने अर्थ में है। वमति—अवमीत्, क्रमु-पाद विक्षेपण करना। अक्रमीत्। चमु छमु जमु झमु जिमु—खाने अर्थ में है। अचमीत्। अच्छमीत्। अजमीत्। अझमीत्। अजिमीत्। व्यय—क्षय होना। अव्ययीत्। अय, वय, मय, पय, तय, चय, रय, णय्, गति अर्थ में हैं। आयीत्। अवयीत्। अमयीत्। अपयीत्। अतयीत्। अचयीत्। अरयीत्। अनयीत्। कण-निमीलन अर्थ में है। अकणीत्। क्षण क्षुण-हिंसा अर्थ में। अक्षणीत्। श्वस्—जीवित रहना। अश्वसीत्। हनु-हिंसा और गति अर्थ में है। 'अद्यतन्यां च वधादेशः' अद्यतनी में हन् को वध आदेश हो जाता है। अवधीत्। इत्यादि टुणदि धातु समृद्धि अर्थ में है। 'णो नः' सूत्र से न होकर इकार अनुबंध से 'नु' का आगम होकर अनन्दीत्। श्रंसु भ्रंसु-अवश्रंसन अर्थ में। ध्वंस-गति अर्थ में। अश्रंसिष्ट अभ्रंसिष्ट। अध्वंसिष्ट। आत्मनेपद में हैं। व्येञ्-संवरण करना।

अविकरण में संध्यक्षरांत धातु को आकार हो जाता है ॥२५२॥

यम् रम् नम् और आकारांत धातु को परस्मैपद सिच् के आने पर इट् का आगम सकारपूर्वक होता है ॥२५३॥

यमु-उपरम होना। अयंसीत् अयंसिष्टां अयंसिषुः। रमु-क्रीडा करना। अरंसीत् अरंसिष्टां अरंसिषुः।

व्याङ्परिभ्यो रमः ॥२५४॥

विआङ्परिभ्यः परस्य रमुधातोः परं परस्मैपदं भवति ॥ व्यरंसीत् । णमु प्रह्वत्वे शब्दे । अनंसीत् । अव्यासीत् अव्यासिष्टां अव्यासिषुः । अव्यास्त अव्यासातां अव्यासत ।

सणनिटः शिडन्तान्नाम्युपधाददृशः ॥२५५॥

दृशवर्जितात् नाम्युपधादनिटः शिडन्ताद्धातोः सण् भवति अद्यतन्यां परतः । सिचोपवादः । रिश रुश हिंसायां । क्रुश आह्वाने गाने रोदने च । लिश विच्छ गतौ । क्रुश ह्वरणदीप्त्योः ।

रिशिरुशिक्रुशिलिशिविशिदिशिदृशिस्पृशिमृशिदंशेः शात् ॥२५६॥

एभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति । अरिक्षत् अरिक्षतां अरिक्षन् । अरिक्षः अरिक्षतं अरिक्षत । अरिक्षं अरिक्षाव अरिक्षाम । अक्रुक्षत् अक्रुक्षतां अक्रुक्षन् । अक्रुक्षः अक्रुक्षतं अक्रुक्षत ।

सणो लोपः स्वरे बहुत्वे ॥२५७॥

सणोऽस्य लोपो भवत्यबहुत्वे स्वरे परे । अक्रुक्षम् अक्रुक्षाव अक्रुक्षाम् । विश प्रवेशने । अविक्षत् । त्विष दीप्तौ ।

त्विषिपुष्यतिकृषिश्लिष्यतिद्विषिपिषिविषिशिषिशुषितुषिदुषेः षात् ॥२५८॥

एभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति । अत्विक्षत् अत्विक्षतां अत्विक्षन् । कृष विलेखने । अकृक्षत् अकृक्षतां अकृक्षन् । श्लिष आलिङ्गने । अश्लिक्षत् । द्विष अप्रीतौ । अद्विक्षत् । पिष्लृ संचूर्णने । अपिक्षत् । विष्लृ व्याप्तौ । अविक्षत् । शिष्लृ विशेषणे । तुष तुष्टौ । अतुक्षत् । दुष वैकृत्ये । अदुक्षत् अदुक्षतां अदुक्षन् । दुह प्रपूरणे ।

वि और आङ् उपसर्ग से परे रम धातु परस्मैपद में होती है ॥२५४॥

व्यरंसीत् । णमु धातु नमस्कार करने और शब्द करने अर्थ में है । अनंसीत् । अव्यासीत् । अव्यासिष्टां । अव्यास्त, अव्यासातां ।

दृश वर्जित, नामि उपधा से अनिट् और शिट् अंत वाली धातु को अद्यतनी में 'सण्' हो जाता है ॥२५५॥

और सिच् का अपवाद हो जाता है । सण् प्रत्यय लाने पर गुण वृद्धि नहीं होता है । रिश रुश-हिंसा करना । क्रुश-आह्वानन करना, गाना, रोना । लिश, विच्छ्-गमन करना । क्रुश-हरण और दीप्ति । विश्-प्रवेश करना । दिश-अतिसर्जन करना ।

रिश् रुश् क्रुश् लिश् विश् दिश् दृश् स्पृश् मृश् और दंश् धातु अनिट् होती हैं ॥२५६॥

'छशोश्च' सूत्र से श को ष हुआ, 'षढो कः से' सूत्र से ष को क होकर सण् के स को ष होकर अरिक्षत् अरिक्षतां अरिक्षन् । अक्रुक्षत् ।

अबहुत्व स्वर के आने पर सण् के अकार का लोप हो जाता है ॥२५७॥

अक्रुक्षम् । विश-प्रवेश अर्थ में । अविक्षत् । त्विष्-दीप्त होना । पुष्-पुष्ट होना ।

त्विष् पुश् कृष् श्लिष् द्विष् पिष् विष् शिष् शुष् तुष् और दुष् धातु से परे असार्वधातुक में इट् नहीं होता है ॥२५८॥

अत्विक्षत् । कृष-विलेखन करना । अकृक्षत् । श्लिष्-आलिंगन करना । अश्लिक्षत् । द्विष् अप्रीति अर्थ में है—अद्विक्षत् । पिष्लृ-चूर्ण करना । अपिक्षत् । विष्लृ-व्याप्त होना । अविक्षत् । शिष्लृ—विशेष करना । तुष्-तुष्ट होना अतुक्षत् । दुष्-दुषित होना । अदुक्षत् । दुह्-प्रपूरण अर्थ में ।

दहिदिहिदुहिमिहिरिहिरुहिलिहिलुहिनहिवहेर्हात् ॥२५९ ॥

एभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति। अधुक्षत् अधुक्षतां अधुक्षन्। दिह उपचये। अधिक्षत्। अनिटामिति किं ? कुष निष्कर्षे। अकोषीत् अकोषिष्टां अकोषिषुः। शिडन्तादिति किं ? अभुक्त अभुक्षातां अभुक्षत। अभुक्थाः अभुक्षाथां अभुग्ध्वं। अभुक्षि अभुक्ष्वहि अभुक्ष्महि। नाम्युपधादिति किं ? दह भस्मीकरणे। अधाक्षीत्। प्रकृत्याश्रितमन्तरङ्गं प्रत्यायाश्रितं बहिरङ्गं। "अन्तरङ्गबहिरङ्गयोरन्तरङ्गो विधिर्बलवान्। इति धत्वं चतुर्थत्वं च। अदाग्धां अधाक्षुः। अधाक्षीः अदाग्धं अदाग्ध। अधाक्षं अधाक्ष्व अधाक्ष्म। अदृश इति किं ? दृशिर् प्रेक्षणे।

सृजिदृशोरागमोऽकारः स्वरात्परो धुटि गुणवृद्धिस्थाने ॥२६० ॥

सृजिदृशोः स्वरात्परोऽकारागमो भवति गुणवृद्धिस्थाने धुटि परे। अद्राक्षीत् अद्राष्टां अद्राक्षुः।

भृजादीनां षः ॥२६१ ॥

भृजादीनां षो भवति धुट्यन्ते च। सृज विसर्गे। अस्राक्षीत् अस्राष्टां अस्राक्षुः। इति भ्वादिः ॥ ❑

अथ अदादिगण

अदेर्घस्लृ सनद्यतन्योः ॥२६२ ॥

अदेर्घस्लृ आदेशो भवति सनद्यतन्योः परतः।

दह् दिह् दुह् मिह् रिह् रुह् लिह् लुह् नह् वह् इन हकारांत धातुओं को असार्वधातुक में इट् नहीं होता है ॥२५९ ॥

अदुह् स् त् = अधुक्षत्। दिह् उपचय अर्थ में है। अधिक्षत्। इट् रहित हो ऐसा क्यों कहा ? कुष निष्कर्ष अर्थ में है। अकोषीत्। शिडन्त हो ऐसा क्यों कहा ? भुज्-पालन करने और भोजन करने में है। अभुक्त अभुक्षातां अभुक्षत। नामि उपधा से हो ऐसा क्यों कहा ?

दह् भस्म करने अर्थ में है। अधाक्षीत् बना। 'प्रकृति से आश्रित कार्य अन्तरंग कार्य है एवं प्रत्यय के आश्रित कार्य बहिरंग कार्य है एवं अंतरंग और बहिरंग विधि में अंतरंग विधि बलवान होती है' इसलिये द को चतुर्थ अक्षर 'ध' हो गया है। अदाग्धां अधाक्षुः। दृश् को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? दृशिर्-देखना।

सृज् और दृश के स्वर से परे धुट् के आने पर गुणवृद्धि के स्थान में अकार का आगम हो जाता है ॥२६० ॥

अद्राक्षीत् अद्राष्टां अद्राक्षुः।

धुट् के अन्त में आने पर भृज् आदि के अन्त को षकार हो जाता है ॥२६१ ॥

सृज् धातु विसर्ग अर्थ में है। अस्राक्षीत् अस्राष्टां अस्राक्षुः।

इस प्रकार से भ्वादिगण में अद्यतनी प्रकरण समाप्त हुआ। ❑

अथ अदादि गण प्रारम्भ होता है।

सन् और अद्यतनी में अद् को घस्लृ आदेश हो जाता है ॥२६२ ॥

पुषादिगण, द्युतादि गण, लृकारानुबंध, ऋ सृ और शास् धातु से।

पुषादिद्युतादिलृकारानुबन्धार्त्तिसर्त्तिशास्तिभ्यश्च परस्मै ॥२६३ ॥

एभ्योऽण् भवति अद्यतन्यां परस्मैपदे। सिचोऽपवादः। अघसत् अघसतां अघसन्। पुष पुष्टौ॥ अपुषत् अपुषतां अपुषन्। शुष शोषणे। अशुषत् अशुषतां अशुषन्। द्युत शुभ रुच दीप्तौ। अद्युतत् अद्युततां अद्युतन्। अद्युतः अद्युततं अद्युतत। अद्युतं अद्युताव अद्युताम। अशुभत्। अरुचत्। श्वित आवर्णे। अश्वितत्। षु, श्रु, द्रु, दु, ऋच्छ, गम्लृ, सृप्लृ गतौ।

अर्त्तिसर्त्योरणि ॥२६४ ॥

अर्त्तिसर्त्योर्गुणो भवति अणि परे। आरत् असरत्। शासु अनुशिष्टौ।

शासेरिदुपधाया अण्व्यञ्जनयोः ॥२६५ ॥

शासेरुपधाया इद्भवति अण्व्यञ्जनयोः परतः।

शासिवसिघसीनां च ॥२६६ ॥

निमित्तात् परः शासिवसिघसीनां सकारः षत्वमापद्यते। अशिषत्। परस्मा इति किं ? व्यद्योतिष्ट व्यद्योतिषातां व्यद्योतिषत। शीङ् स्वप्ने। अशयिष्ट। ब्रुवो वचिरिति वचिरादेशः।

अणऽसुवचिख्यातिलिपिसिचिह्वः ॥२६७ ॥

एभ्योऽण् भवति अद्यतन्यां परतः। असु क्षेपणे।

अस्यतेस्थोन्तः ॥२६८ ॥

अस्यतेरन्ते थकारागमो भवत्यणि परे। अपास्थत् अपास्थताम् अपास्थन्।

अणि वचेरोदुपधायाः ॥२६९ ॥

वचेरुपधाया ओद्भवति कर्त्तरि विहितायामद्यतन्यामणि परे। अवोचत्। अवोचत। ख्या प्रकथने।

परे अद्यतनी परस्मैपद में अण् प्रत्यय होता है ॥२६३ ॥

सिच् नहीं होता है। अघसत् अघसतां अघसन्। पुष् पुष्टि अर्थ में है। अपुषत्। शुष-शोषण करना। अशुषत्। द्युत शुभ रुच्-दीप्ति अर्थ में हैं। अद्युतत्। अशुभत्। अरुचत्। श्वित-आवरण अर्थ में है। अश्वितत्। शु श्रु द्रु दु ऋच्छ गम्लृ सृप्लृ-गति अर्थ में हैं।

अण् के आने पर ऋ और सृ को गुण हो जाता है ॥२६४ ॥

अ अर् अ त = आरत्। असरत्। शास्-अनुशासन करना।

अण् और व्यंजन के जाने पर शास् की उपधा को इकार हो जाता है ॥२६५ ॥

निमित्त से परे शास् वस् और घस् के सकार को षकार हो जाता है ॥२६६ ॥

अशिषत्। परस्मैपद में ऐसा क्यों कहा ? व्यद्योतिष्ट इसमें आत्मनेपद होने से सिच् इट् गुण सभी हो गया है।

शीङ्-सोना। अशयिष्ट। 'ब्रुवो वचि' इस ९४वें सूत्र से ब्रू को वच् आदेश हो जाता है।

अस् वच् ख्या, लिप् सिच् और ह्व धातु से अद्यतनी में अण् हो जाता है ॥२६७ ॥

अस्—क्षेपण करना। अस्यति।

अण् प्रत्यय के आने पर अस् के अंत में थकार का आगम हो जाता है ॥२६८ ॥

आस्थत् अप उपसर्ग पूर्वक—'अपास्थत्' बना।

कर्ता से अद्यतनी में अण् के आने पर वच् की उपधा को 'ओ' हो जाता है ॥२६९ ॥

अवोचत् बना। ख्या-कहना। ख्याति।

आलोपोऽसार्वधातुके ॥२७० ॥

धातोराकारस्य लोपो भवति स्वरादावगुणेऽसार्वधातुके परे । आख्यत् आख्यतां आख्यन् । लिप् उपदेहे । अलिपत् । व्यवस्थितवाधिकाराल्लिम्पादीनामात्मनेपदे वा अण् पक्षे सिच् । अलिपत अलिप्त । धुटश्च धुटि सिचो लोपः । अलिपेतां अलिप्सातां अलिपन्त अलिप्सत । अलिपथाः अलिप्थाः । अलिपेथां अलिप्साथां अलिपध्वं अलिब्ध्वं । अलिपे अलिप्सि अलिपावहि अलिप्स्वहि अलिपामहि अलिप्स्महि । षिचिर् क्षरणे । असिचत् । ह्वेञ् स्पर्धायां शब्दे च । आह्वत् आह्वतां आह्वन् । आह्वत आह्वेतां आह्वन्त । हन् हिंसागत्योः ।

अद्यतन्यां च ॥२७१ ॥

हन्तेर्वधिरादेशो भवति अद्यतन्यां परतः । अवधीत् अवधिष्टां अवधिषुः । 'आत्मनेपदे वा' हन्तेर्वधिरादेशो वा भवति । आङो यमहनौ स्वाङ्गकर्मकौ चेत्यात्मनेपदं भवति ।

हनः ॥२७२ ॥

हन्तेरन्तस्य लोपो भवत्यद्यतन्यां सिच्यात्मनेपदे तथयोः परतः । आहत आहसातां आहसत । अवधिष्ट अवधिषातां अवधिषत ॥ इत्यादिः ॥ हु दानादनयोः ।

सिचि परस्मै स्वरान्तानाम् ॥२७३ ॥

स्वरान्तानां वृद्धिर्भवति परस्मैपदे सिचि परे । नामिन एव ।

असार्वधातुक में स्वरादि अगुण प्रत्यय के आने पर धातु के आकार का लोप हो जाता है ॥२७० ॥

आख्यत् । लिप्—अलिपत् ।

व्यवस्थित वा के अधिकार से लिंपादि को आत्मनेपद में अण् होता है और विकल्प से सिच् होता है । अण् में—अलिपत । सिच् में अलिप्त 'धुटश्च धुटि' इस २४७ सूत्र से सिच् का लोप हो गया है । अलिप्सातां अलिप्सत । षिचिर्—क्षरण होना ।

असिचत् । ह्वेञ्-स्पर्धा करना और शब्द करना-बुलाना । २५२ सूत्र से संध्यक्षर धातु को आकारांत होकर २७० से आकार का लोप होकर २६७ से अण् होकर आह्वत् बना । आह्वत । हन्-हिंसा और गति ।

अद्यतनी में हन् को वध आदेश हो जाता है ॥२७१ ॥

अवधीत् 'आत्मनेपदे वा' ३६९वें सूत्र से आत्मनेपद में हन् को वध आदेश विकल्प से होता है । "आङो यमहनौ स्वाङ्गकर्मकौ च" इस नियम से आत्मनेपद हो जाता है ।

हन् के नकार का लोप हो जाता है आत्मनेपद में अद्यतनी के सिच् के आने पर ॥२७२ ॥

आङ् उपसर्ग पूर्वक अट् का आगम होकर आअहत = आहत । आहसातां आहसत । पक्ष में—अवधिष्ट ।

इस प्रकार से अदादिगण में अद्यतनी प्रकरण समाप्त हुआ ।

अद्यतनी में जुहोत्यादि गण प्रारम्भ होता है ।

हु—दान देना और भोजन करना ।

परस्मैपद में सिच् के आने पर स्वरांत धातु को वृद्धि हो जाती है ॥२७३ ॥

नामि को ही वृद्धि होती है ।

उतोऽयुरुणुस्नुक्षुहुवः ॥२७४॥

युरुणुस्नुक्षुहुवर्जितादेकस्वरादुदन्तात्परमसार्वधातुकमनिड् भवति। अहौषीत् अहौष्टां अहौषुः। अधात् अधातां अधुः। स्थादोरिरद्यतन्यामात्मने। इति इकारादेशः।

स्थादोश्च ॥२७५॥

स्थादासंज्ञकयोर्गुणो न भवति अनिटि सिजाशिषीश्चात्मनेपदे परे। इति गुणनिषेधः। ह्रस्वाच्चानिट इति सिचो लोपः। अधित अधिषातां अधिषत। अधिथाः अधिषाथां अधिढ्वं। अधिषि अधिष्वहि अधिष्महि। समस्थित समस्थिषातां समस्थिषत। इति जुहोत्यादिः ॥ दिवु क्रीडाविजिगीषादीति। अदेवीत् अदेविष्टां अदेविषुः।

स्वरतिसूतिसूयत्यूदनुबन्धाच्च ॥२७६॥

एभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति वा। षूङ प्राणिप्रसवे। असोष्ट असोषातां असोषत। असोष्ठाः आसोषाथाम्।

नाम्यन्ताद्धातोराशीरद्यतनीपरोक्षासु धो ढः ॥२३९॥*

नाम्यन्ताद्धातोराशीरद्यतनीपरोक्षासु धो ढो भवति। असोढ्वं। असोषि असोष्वहि असोष्महि। असविष्ट असविषाताम्। असविषत। दहि दिहि दुहि इत्यादिनानिट् ॥

यु, रु, णु, स्नु, क्षु और णु को छोड़कर उकारांत एक स्वर वाली धातु को असार्वधातुक में इट् नहीं होता है ॥२७४॥

अहौषीत् अहौष्टां अहौषुः। अधात्। सूत्र २४१ से स्था और दा संज्ञक धातु को आत्मनेपद में अद्यतनी में इकार हो जाता है।

अनिट् आशिष् सिच् के परे आत्मनेपद में स्था और दा संज्ञक को गुण नहीं होता है ॥२७५॥

इस सूत्र से गुण का निषेध हो गया है। 'ह्रस्वश्चानिटः' सूत्र २४३ से सिच् का लोप हो गया। अधित अधिषातां अधिषत। समस्थित समस्थिषातां।

इस प्रकार से अद्यतनी में जुहोत्यादि गण समाप्त हुआ है।

अद्यतनी में दिवादि गण प्रारंभ होता है।

दिवु—क्रीड़ा विजिगीषा आदि अर्थ में है।

अदेवीत् अदेविष्टां अदेविषुः।

षुञ् षूङ धातु और ऊकारानुबंध धातु से असार्वधातुक में अनिट् विकल्प से होता है ॥२७६॥

षूङ् प्राणि प्रसव अर्थ में है। अनिट् पक्ष में—असोष्ट-असोषातां असोषत। असो ध्वं है।

नाम्यंत धातु से आशीः अद्यतनी परोक्षा में ध को 'ढ' हो जाता है ॥२३९॥

इससे असोढ्वं बना। इट् पक्ष में—असविष्ट असविषातां।

"दहिदिहिदुहि इत्यादि" सूत्र से इट् नहीं होता है।

सेट्सु वा ॥२७७ ॥

नाम्यन्ताद्धातोः परस्य सेटामाशीरद्यतनीपरोक्षाणां धकारस्य ढो भवति वा । असविढ्वं असविध्वं ।

नहेर्द्धः ॥२७८ ॥

नहेर्हकारस्य धो भवति धुट्यन्ते च । अनात्सीत् अनाद्धां अनात्सुः । अनात्सीः अनाद्धं अनाद्ध । अनात्सं अनात्स्व अनात्स्म । अनद्ध अनत्सातां अनत्सत । अनद्धाः अनत्साथां अनद्ध्वं । अनत्सि अनत्स्वहि अनत्स्महि । इति दिवादिः ।

स्तुसुधूञ्भ्यः परस्मै ॥२७९ ॥

स्तुसुधूञ्भ्य इडागमो भवति परस्मैपदे सिचि परे । अस्तावीत् अस्ताविष्टां अस्ताविषुः । धूञ् कम्पने । अधावीत् । उदनुबन्धत्वाद्विकल्पेनेट् । आशिष्ट आशिषातां आशिषत । आष्ट आक्षातां आक्षत । अचैषीत् अचैष्टां अचैषुः । अचेष्ट अचेषातां अचेषत । इति स्वादिः ।

अदितुदिनुदिक्षुदिस्विद्य-
तिविद्यतिविन्दतिविनत्तिछिदिभिदिहदिशदिसदिपदिस्कन्दिखिदेर्दात् ॥२८० ॥

एभ्यः षोडशभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति ।

व्यञ्जनान्तानामनिटाम् ॥२८१ ॥

नाम्यंत धातु से आशीः अद्यतनी परोक्षा में इट् सहित होने पर धकार को ढकार विकल्प से होता है ॥२७७ ॥

असविढ्वं, असविध्वं । अट् नह सिच् 'ई' दि ।

नह् के हकार को धुट् अन्त में धकार हो जाता है ॥२७८ ॥

'अघोषे प्रथमः' से प्रथम अक्षर होकर उपधा को दीर्घ होकर अनात्सीत् अनाद्धां अनात्सुः । आत्मनेपद में—अनद्ध अनत्सातां अनत्सत ।

इस प्रकार से अद्यतनी में दिवादिगण समाप्त हुआ है ।

अद्यतनी में स्वादिगण प्रारम्भ होता है ।

परस्मैपद में सिच् के आने पर स्तु, सु और धू धातु से इट् का आगम होता है ॥२७९ ॥

अस्तावीत् अस्ताविष्टां । धूञ्—कंपित होना । अधावीत् । उदनुबंध में विकल्प से इट् होता है । अशूङ्व्याप्तौ आशिष्ट आशिषातां । अनिट् पक्ष में—आष्ट आक्षातां आक्षत । चिञ्—चयन अर्थ में है । अचैषीत् अचैष्टां अचैषुः । अचेष्ट अचेषातां ।

इस प्रकार से अद्यतनी में स्वादि गण समाप्त हुआ ।

अद्यतनी में तुदादिगण प्रारंभ होता है ।

अद् तुद् नुद् क्षुद् स्विद् विद् विन्द् विद् छिद् भिद् हद् शद् सद् पद् स्कंद और खिद् इन सोलह दकारांत धातु से असार्वधातुक में इट् नहीं होता है ॥२८० ॥

परस्मैपद में सिच् के आने पर व्यंजनान्त अनिट् धातु की वृद्धि हो जाती है ॥२८१ ॥

व्यञ्जनान्तानामनिटां धातूनां वृद्धिर्भवति परस्मैपदे सिचि परे। तुद व्यथने। अतौत्सीत् अतौत्तां *अतौत्सुः। अतुत्त अतुत्सातां अतुत्सत। मृङ् प्राणत्यागे।*

ऋतोऽवृङ्वृञः ॥२८२ ॥

वृङ्वृञ्वर्जितादेकस्वरादृतः परमसार्वधातुकमनिड् भवति।

ऋदन्तानां च ॥२८३ ॥

ऋदन्तानां च गुणो न भवति अनिटि सिजाशिषोश्चात्मनेपदे परे। अमृत अमृषातां अमृषतां अमुचत् अमुचतां अमुचन्।

सिजाशिषोश्चात्मने ॥२८४ ॥

नामिन उपधायाः सिच्यानात्मनेपदे परे आशिषि चानिटि गुणो न भवति कर्तरि विहितायामद्यतन्यां परस्मैपदे। अमुक्त अमुक्षातां अमुक्षत।

स्पृशमृशकृशतृपिदृपिसृपिभ्यो वा ॥२८५ ॥

एभ्यः सिज्वा भवति अद्यतन्यां।

स्पृशादीनां वा ॥२८६ ॥

स्पृशादीनां स्वरात्परः अकारागमो भवति वा गुणवृद्धिस्थाने धुटि परे॥ स्पृश संस्पर्शने॥ अस्प्राक्षीत् अस्प्राष्टां अस्प्राक्षुः। अस्पार्क्षीत् अस्पार्ष्टां अस्पार्क्षुः। सण इति सण्। अस्पृक्षत्। मृश आमर्शने॥ अम्राक्षीत् अम्राष्टां अम्राक्षुः। अमार्क्षीत् अमार्ष्टां अमार्क्षुः। अमृक्षत्। कृश विलेखने।

तुद्—व्यथित होना। अतौत्सीत् अतौत्तां अतौत्सुः। आत्मनेपद में वृद्धि नहीं होने से सिच् का लोप होकर अतुत्त, अतुत्सातां अतुत्सत।

मृङ्—प्राण त्याग करना।

वृङ् वृञ् को छोड़कर एक स्वर वाले ऋकारांत धातु अनिट् होते हैं ॥२८२ ॥

आत्मनेपद में अनिट् में सिच् आशिष के आने पर ऋकारांत को गुण नहीं होता है ॥२८३ ॥

ह्रस्वान्त से स को लोप होता है अमृत अमृषातां अमृषत। मुच्—अमुचत्।

आत्मनेपद में सिच् और आशिष के आने पर अनिट् में नामि उपधा को गुण नहीं होता है ॥२८४ ॥

अमुक्त अमुक्षातां अमुक्षत।

स्पृश्, मृश् कृश् तृप् दृप् सृप् से परे अद्यतनी में सिच् विकल्प से होता है ॥२८५ ॥

स्पृश आदि धातु को स्वर से परे गुण वृद्धि के स्थान में धुट के आने पर अकार का आगम विकल्प से होता है ॥२८६ ॥

स्पृश—संस्पर्श करना। गुण होने पर अकार का आगम होने से अस्प्राक्षीत् अस्प्राष्टां अस्प्राक्षुः। वृद्धि होकर अकार का आगम होने पर अस्पार्क्षीत् अस्पार्ष्टां अस्पार्क्षुः। सण् प्रत्यय में—अस्पृक्षत् बना।

मृश्—छूना। अम्राक्षीत्। अमार्क्षीत्। अमृक्षत्। कृश्—विलेखन अर्थ में हैं—अक्राक्षीत्। अकार्क्षीत् अकृक्षत्। तृप्—प्रीणन अर्थ में। अत्राप्सीत्। अतार्प्सीत् 'पुषादित्वात्' अण् होने से 'अतृपत्'। दृप्—हर्ष और मोहन अर्थ में। अद्राप्सीत्। अदार्प्सीत्। अदृपत्।

अक्राक्षीत् अक्राष्टां अक्राक्षुः। अकार्क्षीत् अकार्ष्टां अकार्क्षुः। अकृक्षत्॥ तृपिदृप्योर्वा॥ तृप प्रीणने॥ अत्राप्सीत् अत्राप्तां अत्राप्सुः। अतार्प्सीत्। पुषादित्वादण् भवति। अतृपत्। दृप हर्षमोहनयोः। अद्राप्सीत् अद्राप्ताम् अद्राप्सुः अदार्प्सीत्। अदृपत् एतौ पुषादी। सृप्लृ वि गतौ। अस्राप्सीत्। असार्प्सीत्। असृपत्। इति तुदादिः।

इरनुबन्धाद्वा॥२८७॥

इरनुबन्धाद्धातोर्वा अण् भवति। कर्तर्यद्यतन्यां परस्मैपदे परे। अरुधत् अरुधतां अरुधन्। अरौत्सीत् अरौद्धां अरौत्सुः। अरौत्सीः अरौद्धं अरौद्ध। अरौत्सं अरौत्स्व अरौत्स्म। अणभावपक्षे सिच्।

राधिरुधिक्रुधिक्षुधिबन्धिशुधिसिध्यतिबुध्यतियुधिव्यधिसाधेर्धात्॥२८८॥

एभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति। इत्यनेन पूर्वोदाहरणेषु नेट्।

युजिरुजिरञ्जिभुजिभजिभञ्जिसञ्जित्यजिभ्रस्जियजिमस्जिसृजिनिजिविजिष्वञ्जेर्जात् ॥२८९॥

एभ्यः परमसार्वधातुकमनिड् भवति। अभुक्त अभुक्षातां अभुक्षत। इरनुबन्धाद्वेत्यण्। अयुजत् अयुजतां अयुजन्। अणभावे अयौक्षीत् अयौक्तां अयौक्षुः। अयुक्त अयुक्षातां अयुक्षत। इति रुधादिः। तनु विस्तारे। अतनीत् अतनिष्टां अतनिषुः। अतनिष्ट अतनिषातां अतनिषत। अमनिष्ट अमनिषातां अमनिषत। अकार्षीत् अकार्ष्टां अकार्षुः। अकृत अकृषातां अकृषत इत्यादि। इति तनादिः। अक्रैषीत् अक्रैष्टां अक्रैषुः। अक्रेष्ट अक्रेषातां अक्रेषत। नञा निर्दिष्टमनित्यत्वात्।

ये दो धातु पुषादिगण की हैं। सृप्लृ—गति अर्थ में है। अस्राप्सीत्। असार्प्सीत्। असृपत्।

इस प्रकार से अद्यतनी में तुदादिगण समाप्त हुआ।

अद्यतनी में तुदादि गण प्रारंभ होता है।

कर्ता से विहित अद्यतनी के परस्मैपद में इर् अनुबंध धातु से विकल्प से अण् प्रत्यय होता है॥२८७॥

रुधिर्—आवरण करना। अरुधत् अरुधातां। अण् के अभाव में-सिच्, ईत्, वृद्धि होकर अरौत्सीत् अरौद्धां अरौत्सुः।

राध् रुध् क्रुध् क्षुध् बन्ध् शुध् सिध् बुध् युध् व्यध् और साध् इन धकारांत धातु से असार्वधातुक में अनिट् हो जाता है॥२८८॥

युज् रुज् रञ्ज् भुज् भज् भञ्ज् सञ्ज् त्यज् भ्रस्ज् यज् मस्ज् सृज् निज् विज् और स्वञ्ज् इन जकारांत धातु से परे असार्वधातुक में इट् नहीं होता है॥२८९॥

अभुक्त अभुक्षातां अभुक्षत। इन सभी धातुओं में इट् का अनुबंध हो जाने से विकल्प से अण् होता है। अयुजत्। अण् के अभाव में अयौक्षीत् अयौक्तां अयौक्षुः। आत्मनेपद में—आयुक्त अयुक्षातां अयुक्षत।

इस प्रकार से अद्यतनी में रुधादिगण समाप्त हुआ।

अद्यतनी में तनादिगण प्रारंभ होता है।

तनु-विस्तारे—अतनीत् अतनिष्टां। अतनिष्ट। मनुङ् अवबोधन अर्थ में—अमनिष्ट। कृ—अकार्षीत्। आत्मने अकृत।

श्लोकः

ऋद्वृङ्वृञां सनीड् वा स्यादात्मने च सिजाशिषोः।
संयोगादेर्ऋतो वाच्यः सुडसिद्धो बहिर्भवः ॥१॥

संयोगादेः ऋतः—स्मृ आध्याने इत्यस्य यथा। तर्हि 'सुड् भूषणे संपर्युपात्' इत्यनेन कृञो धातोः सुटि प्रत्यये समागते सति संस्कृ उपस्कृ इत्यत्र संयोगो वर्तते, तत्रापि इट् प्रत्ययो भविष्यति विकल्पेन; नैवं यतः कारणात् सुडसिद्धो बहिर्भवः। सुट् प्रत्यय आगतोऽपि अनागत इव वर्तते। तत्कारणगर्भितं विशेषणमाह—कथंभूतः सुट् ? बहिर्भवो बहिरङ्गः। असिद्धं बहिरङ्गमन्तरङ्गे इति न्यायादित्यर्थः।

इति इड्विकल्पेन। पुनरपि,

ऋद्वृङ्वृञोपि वा दीर्घो न परोक्षाशिषोरिटः।
न परस्मै सिचि प्रोक्त इति योगविभञ्जनात् ॥२॥

इति इटो दीर्घो विकल्पेन। वृङ् सभक्तौ। अवृत अवृषातां अवृषत। अवरिष्ट अवरिषातां अवरिषत। अवरीष्ट अवरीषातां अवरीषत। ग्रहीङ् उपादाने।

इटो दीर्घो ग्रहेरपरोक्षायाम् ॥२९०॥

ग्रहेः परस्य इटो दीर्घो भवति अपरोक्षायां। अग्रहीत् अग्रहीष्टां अग्रहीषुः। अग्रहीष्ट अग्रहीषातां अग्रहीषत। इति क्र्यादिः।

इस प्रकार से तनादिगण समाप्त हुआ।

अद्यतनी में क्र्यादिगण प्रारंभ होता है।

क्री—अक्रैषीत् अक्रैष्टां। आत्मनेपद में—अक्रेष्ट अक्रेषातां। अर्थ—ऋकारांत वृङ् वृञ् धातु को सन् के आने पर, आत्मनेपद में एवं सिच् आशिष के आने पर इट् विकल्प से होता है।

संयोगादि ऋकारांत से—स्मृ—धातु आध्यान—स्मरण अर्थ में है। ऐसे ही "सुड् भूषणे संपर्युपात्" सूत्र से सं, परि, उप उपसर्ग के योग में कृ धातु से सुट् प्रत्यय के आने पर 'संस्कृ' उपस्कृ इस प्रकार कृ धातु भी संयोगादि ऋदन्त बन गई। वहाँ पर भी विकल्प से इट् होने वाला था। किन्तु नहीं हुआ क्योंकि 'सुडसिद्धो बहिर्भवः' इस श्लोकार्थ के अन्तिम चरण के नियम से सुट् प्रत्यय होने पर भी नहीं हुये के समान है। उस कारण से गर्भित विशेषण को कहते हैं। सुट् कैसा है ? बाहर में होने वाला बहिरंग कहलाता है। 'अन्तरंग के होने पर बहिरंग असिद्ध हो जाता है' इस न्याय से ऐसा अर्थ होता है।

इस प्रकार से यहाँ इट् विकल्प से होता है। पुनरपि।

श्लोकार्थ—वृङ् वृञ् को ऋकारांत धातु से परोक्षा और आशिष के इट् को विकल्प से दीर्घ हो जाता है।

इस नियम से विकल्प से इट् दीर्घ हो जाता है। वृङ् संभक्ति अर्थ में है। जब इट् नहीं हुआ तब अवृत अवृषातां अवृषत। इट् होने पर दीर्घ नहीं हुआ। अवरिष्ट। इट् को दीर्घ करने पर अवरीष्ट अवरीषातां अवरीषत। गृहीञ्—ग्रहण करना।

अपरोक्षा में ग्रह धातु से परे इट् को दीर्घ हो जाता है ॥२९०॥

अग्रहीत् अग्रहीष्टां अग्रहीषुः। अग्रहीष्ट।

इस प्रकार से अद्यतनी में क्र्यादि गण समाप्त हुआ।

श्रिद्रुस्रुकमिकारितान्तेभ्यश्चण् कर्त्तरि ॥२९१ ॥

एभ्यश्चण् भवति कर्त्तर्यद्यतन्यां परतः ।

चण् परोक्षाचेक्रीयितसनन्तेषु ॥२९२ ॥

चणादिषु धातोर्द्विर्वचनं भवति। अभ्यासस्यादिव्यञ्जनमवशेष्यमिति अनादेर्लोपः। भज श्रिञ् सेवायां। अशिश्रियत्। अदुद्रुवत् अदुद्रुवतां। असुस्रुवत्। कमु कान्तौ।

कवर्गस्य चवर्गः ॥२९३ ॥

अभ्यासकवर्गस्य चवर्गो भवति आन्तरतम्यात्। अचकमत्। इति अभ्यासो धातुवत्। पक्षे अचीकमत्।

इन्यसमानलोपोपधाया ह्रस्वश्चणि ॥२९४ ॥

समानलोपवर्जितस्य लघ्वन्तस्योपधाया ह्रस्वो भवति लघुनि धात्वक्षरे इनि चण्परे।

दीर्घो लघोरस्वरादीनाम् ॥२९५ ॥

समानलोपवर्जितस्य लघ्वन्तस्य दीर्घो भवति लघुनि धात्वक्षरे इनि चण्परे। कारितस्य लोपः। अचूचुरत् अचूचुरतां अचूचुरन्। असमानलोपोपधाया इति किम् ? क्षिप क्षान्तौ। अचिक्षिपत्। क्षल शौचे। अचिक्षलत्।

अद्यतनी में चुरादि गण प्रारम्भ होता है।

अद्यतनी से कर्ता में श्रि, द्रु, स्रु, कम् और कारित प्रत्ययान्त धातुओं से 'चण्' प्रत्यय होता है ॥२९१ ॥

अट् श्रि दि।

चण् प्रत्यय, परोक्षा, ये क्रीयित और सन्नंत के आने पर धातु को द्वित्व होता है ॥२९२ ॥

अ श्रि श्रि त् 'अभ्यासस्यादिव्यञ्जनमवशेष्यं' सूत्र से अभ्यास को आदि व्यंजन शेष रहकर अन्त व्यञ्जन का लोप भज् श्रिञ्—सेवा अर्थ में। इवर्ण को इय् होकर चण् का अकार शेष रहकर अशिश्रियत् बना। द्रु—अदुद्रुवत्। अदुद्रुवतां अदुद्रुवन्। असुस्रुवत्। कमु—कांत होना।

अट् क कम् अत्

क्रम से अभ्यास के कवर्ग को चवर्ग हो जाता है ॥२९३ ॥

अचकमत्।

समान लोप वर्जित लघ्वन्त उपधा को लघु धात्वक्षर इन् चण् के आने पर ह्रस्व हो जाता है ॥२९४ ॥

लघु धात्वक्षर इन् चण् के आने पर समान लोप वर्जित लघ्वन्त को दीर्घ हो जाता है ॥२९५ ॥

कारित प्रत्यय का लोप हो जाता है। चुर् चुर् इन् चण् दि = अचूचुरत्। समान लोप वर्जित लघ्वन्त उपधा को ऐसा क्यों कहा ? क्षिप्-क्षांति अर्थ में है। अचि क्षिपत्। क्षल्-अचि क्षलत्।

अलोपे समानस्य सन्वल्लघुनीनि चण्परे ॥२९६ ॥

समानस्यालोपे सति लघुनि धात्वक्षरे अभ्यासस्य सन्वत्कार्यं भवति इनि चण्परे । किं सन्वत्कार्यं ?

सन्यवर्णस्य ॥२९७ ॥

अभ्यासावर्णस्य इत्वं भवति सनि परे । अपीपलत् अपीपलतां अपीपलन् । अलोपे समानस्येति किं ? अदन्ताः कथं वाक्यप्रबन्धे इत्यादयः ।

धातोश्च ॥२९८ ॥

अनेकाक्षरस्य धातोरन्ते स्वरादेर्लोपो भवति इनि परे । अचकथत् अचकथतां अचकथन् । एवं रच प्रयत्ने । व्यररचत् व्यररचतां व्यररचन् । इत्यादि । समानस्येति किम् ? पटुमाचष्टे पटुं करोति तत्करोति तदाचष्टे इति इन् । अपीपटत् । वृद्धौ सन्ध्यक्षरलोपः । रूप रूपक्रियायां । व्यरुरूपत् व्यरुरूपतां व्यरुरूपन् । लघुनि धात्वक्षरे इति किं ? तर्ज भर्त्स सन्तर्जने । अततर्जत अततर्जेतां अततर्जन्त । संयोगविसर्गानुस्वारपरोऽपि गुरुः स्याद् ह्रस्वः । अबभर्त्सत अबभर्त्सेताम् अबभर्त्सन्त । वृङ् वरणे । अवीवरत् अवीवरतां अवीवरन् । अततन्त्रत् ।

स्वरादेर्द्वितीयस्य ॥२९९ ॥

स्वरादेर्धातोर्द्वितीयावयवस्य द्विर्वचनं भवति । तत्र च ।

न नबदराः संयोगादयोऽये ॥३०० ॥

स्वरादेर्धातोर्द्वियीयावयवस्य संयोगादयो नबदरा न द्विरुच्यन्ते न तु ये परे । अर्च पूजायां । आर्चिचत् आर्चिचतां आर्चिचन् । एवं अर्ह पूजायां । आर्जिहत् ।

समान के अलोप होने पर लघु धात्वक्षर के आने पर अभ्यास को सन्वत् कार्य होता है इन् चण् के आने पर ॥२९६ ॥

सन्वत् कार्य क्या है ?

सन् के आने पर अभ्यास के अकार को इकार हो जाता है ॥२९७ ॥

अपीपलत् । अलोप में असमान को ऐसा क्यों कहा ? अदन्त धातु में 'कथ'—कहता है ।

इन् के आने पर अनेकाक्षर धातु के अंत स्वर का लोप हो जाता है ॥२९८ ॥

अचकथत् । रच—प्रयत्न करना-अररचत् = व्यररचत् । समानस्य ऐसा क्यों कहा ? पटुं आचष्टे, पटुं करोति है "तत्करोति तदाचष्टे इन्" इस सूत्र से इन् होकर द्वित्व होकर अपीपटत् । वृद्धि में संध्यक्षर का लोप हो जाता है । रूपृ-धातु रूप क्रिया अर्थ में है । व्यरु रूपत्—अभ्यास को ह्रस्व हुआ है । लघु धात्वक्षर में ऐसा क्यों कहा है ? तर्ज भर्त्स-संतर्जन करना अततर्जत । 'संयोगविसर्गानुस्वार परोपि' से गुरु ह्रस्व हो गया अबभर्त्सत । वृङ् वरण अर्थ में है । अवीवरत् । अततन्त्रत् ।

स्वरादि धातु के द्वितीय अवयव को द्वित्व होता है ॥२९९ ॥

और उसमें—

स्वरादि धातु के द्वितीय अवयव के संयोगादि 'न ब द र' अक्षर द्वित्व नहीं होते हैं और य प्रत्यय के परे भी द्वित्व नहीं होते हैं ॥३०० ॥

अर्च—पूजा करना । अर्च च त् 'सन्यवर्णस्य' सूत्र २९७ से इकार होकर आर्चिचत् । अर्हपूजा योग्य है—आर्जिहत् ।

न शासृनुबन्धानाम् ॥३०१ ॥

शास ऋदनुबन्धानां चोपधाया ह्रस्वो न भवति इनि चण्परे । अशशासत् अशशासताम् अशशासन् । ढौकृ तौकृ गतौ । अडुढौकत अडुढौकेतां अडुढौकन्त । अतुतौकत । शासेरिति किं ? आङः शासूङ् इच्छायां । आशीशसत् भ्राज् भ्राष् दीप्तौ ।

भाषदीपजीवमीलपीडकणवणभणश्रणमणहेठलुपां वा ॥३०२ ॥

एषामुपधाया ह्रस्वो भवति वा इनि चण्परे । भाष् व्यक्तायां वाचि । दीप दीप्तौ । जीव प्राणधारणे । मील निमेषणे । पीड गहने । कण वण भण श्रण मण शब्दे । हेठ गतौ । लुप्लृ छेदने अबिभ्रजत् अबिभ्रजतां अबिभ्रजन् । अबिभ्रजत । अबिभ्राजत् अबभ्राजत । अबिभ्रशत् । अबिभ्रशत । अबभ्राशत् । अबभ्राशत । अबिभषत । अबभाषत । अदीदिपत् । अदिदीपत् । अजीजिवत् । अजिजीवत् । अमीमिलत् । अमिमीलत् । अपिपीडत् । अपीपिडत् । अचीकणत् । अचकाणत् । अवीवणत् । अववाणत् । अबीभणत् । अबभाणत् । अमीमणत् । अममाणत् । अशीश्रणत् । अशश्राणत् । अजीहेठत् । अजिहेठत् । अलूलुपत् अलुलूपत् । चिति स्मृत्यां । अचिचिन्तत् । स्फुट परिहासे ।

शिट्परो घोषः ॥३०३ ॥

शिटः परो घोषोऽवशेष्यो भवति । शिटो लोप इत्यर्थः । अपुस्फुटत् । लक्ष दर्शनाङ्कनयोः । अललक्षत् । भक्ष अदने । अबभक्षत् । कुट्ट अनृतभाषणे । अचुकुट्टत् । लड उपसेवायां । अलीलडत् । मिदि तिल स्नेहने । अमिमिन्दत् । अतितिलत् । ओलडि उत्क्षेपे । अललण्डत् । पीड अवगाहने ।

शास और ऋदनुबंध की उपधा को इन् चण् के आने पर ह्रस्व नहीं होता है ॥३०१ ॥

अशशासत् । ढौकृ, तौकृ-गति अर्थ में हैं । अडुढौकत अतुतौकत । शासेः ऐसा क्यों कहा ? आङ्पूर्वक शासूङ् धातु-इच्छा अर्थ में है । आशीशसत् । भ्राज् भ्राष्-दीप्ति अर्थ में हैं ।

भ्रण भ्राष भाष, दीप, जीव, मील, पीड, कण, वण, भण, श्रण, मण, हेठ और लुप इन धातु की उपधा को इन् चण् के आने पर विकल्प से ह्रस्व होता है ॥३०२ ॥

भाष-स्पष्ट बोलना । दीप्-दीप्त होना । जीव-प्राणधारण करना । मील-बंद करना । पीड—गहन । कण वण भण श्रण मण-शब्द करना । हेठ-गमन करना । लुप्लृ-छेदन करना । भ्राज्-अबिभ्रजत् । अबभ्राजत् । अबभ्राजत । अबिभ्रषत । अबभ्राषत् । अबिभ्राषत् । अबिभाषत् अबभाषत । अदिदीपत् । अदीदिपत् । अजीजिवत् अजिजीवत् । अमीमिलत् । अमिमीलत् । अपिपीडत, अपीपिडत् । अचीकणत् । अचकाणत् । अवीवणत् अववाणत् । अबीभणत्, अबभाणत् । अमीमणत् अममाणत् । अशिश्रणत् । अशश्राणत् । अजीहेठत् अजिहेठत् । अलूलुपत् अलुलूपत् । चिति-स्मृति अर्थ में है । अचिचिंतत् । स्फुट-खिलना ।

शिट् के परे अघोष अवशेष रहता है ॥३०३ ॥

अर्थात् शिट् का लोप हो जाता है । अपुस्फुटत् । लक्ष-दर्शन और अंकन अर्थ में है । अललक्षत् । भक्ष्-भोजन करना । अबभक्षत् । कुट्ट-झूठ बोलना । अचुकुट्टत् । लड्-उपसेवा अर्थ में—अलीलडत् । मिदि और तिल-स्नेह करना । अमिमिन्दत् । अतितिलत् । ओलडि-उत्क्षेपण करना—अललण्डत् । पीड-अवगाहन करना अपीपिडत् । नट-अवस्यंदने-अनीनटत् । वध-संयमन करना । अवीबधत् । चुट् छुट् कुट्-छेदन करना । अचूचुटत् अचूछुटत् अचूकुटत् । पुट् चुट-अल्पीभाव अर्थ में है । अपूपुटत् । अचूचुटत् । मुट्-चूर्ण करना, अमूमुटत् । घट-चलना, अजीघटत् । छद, षद, संवरण करना अची छदत्

अपीपिडत्। नट अवस्यन्दने। अनीनटत्। बध संयमने। अबीबधत्। चुट छुट कुट छेदने। अचूचुटत्। अचूछुटत्। अचूकुटत्। पुट चुट अल्पीभावे। अपूपुटत्। अचूचुटत्। मुट चूर्णने। अमूमुटत्। घट चलने। अजीघटत्। छद षद संवरणे। अचीछदत्। असीषदत्। क्षिप क्षान्तौ। अचिक्षिपत्। नक्क धक्क पिशि नाशने। अननक्कत्। अदधक्कत् अपिपिंशत्। चक्क चुक्क व्यथने। अचचक्कत् अचुचुक्कत्। क्षल शौचे। अचिक्षलत् चुद संचोदने। अचूचुदत्। गुडि सुजि जसि पल रक्षणे। अजुगुण्डत्। असुसुञ्जत। अजजंसत् अजजंसतां अजजंसन्। अपीपलत्। तिल प्रतिष्ठायां। अतीतिलत्। तुल उन्माने। अतूतुलत् मूल रोहणे। अमूमुलत्। मान पूजायां। अमीमनत्। श्लिष श्लेषणे। अशिश्लिषत्। जप मानसे। अजीजपत्। ज्ञप मानुबन्धे। अजिज्ञपत्। व्यय क्षये। अविव्ययत्। चूर्ण संकोचने। अचुचूर्णत्। पूज पूजायां। अपुपूजत्। अर्क्कईड स्तवने। आर्चिक्कत्। ऐडिडत्। शुठ आलस्ये। अशूशुठत्। शुठि शोषणे। अशुशुण्ठत्। पचि विस्तारवचने। अपपञ्चत्। तिज निशामने। अतीतिजत्। वर्ध छेदनपूरणयोः। अववर्धत्। कुबि आच्छादने। अचुकुंबत्। लुबि तुबि अर्दने। अलुलुम्बत्। अतुतुम्बत्। म्रक्ष म्लक्ष रक्षणे। अमम्रक्षत्। अमम्लक्षत्। इल प्रेरणे। ऐलिलत्। लुण्ट स्तेये। अलुलुण्टत्। छर्द वमने। अचछर्दत्। गुडि वेष्टने। अजुगुण्डत्। गर्द अभिकाङ्क्षायां। अजगर्दत्। रुष रोषणे। अरूरुषत्। मडि भूषायां हर्षे च। अममण्डत्। श्रण दाने। अशिश्रणत्। भडि कल्याणे। अबभण्डत्। तत्रि कुटुम्बधारणे। अततन्त्रत्। मत्रि गुप्तभाषणे। अममन्त्रत्। विद संवेदने। अवीविदत्। दंश दशने। अददंशत्। रूप रूपणे। अरुरूपत्। भ्रूण आशायां। अबुभ्रूणत्। शठ श्लाघायां। अशीशठत्। स्यम वितर्के। असिस्यमत्। गूरी उद्यमे। अजूगुरत्। कुत्स अवक्षेपणे। अचुकुत्सत्। कूट प्रमादे। अचूकुटत्। वञ्च प्रलंभने। अववञ्चत्। मद तृप्तियोगे। अमीमदत्। दिव परिकूजने। अदीदिवत्। कुस्म कुस्मयने। अचुकुस्मत्। चर्च अध्ययने। अचचर्चत्। कण निमीलने। अचीकणत्। जसु ताडने। अजीजसत्। पष बन्धने। अपीपषत्। अम रोगे। आमिमत्। चट स्फुट भेदने। अचीचटत् अपुस्फुटत्। घुषिर् शब्दे। अजूघुषत्। लस शिल्पयोगे। अलीलसत्। भूष अलङ्कारे। अबूभुषत। रक लक आस्वादने। अरीरकत्। अलीलकत्। लिगि विचित्रीकरणे। अलिलिङ्गत्। मुद संसर्गे। अमूमुदत्। मुच प्रमोचने। अमूमुचत्। ग्रस कवलग्रहणे। अजिग्रसत्। पूरी आप्यायने। अपूपुरत्।

असीषदत्। क्षिप-क्षांति करना, अचिक्षिपत्। नक्क धक्क पिशि-नाश होना, अननक्कत्। अदधक्कत। अपि-पिंशत्। चक्क चुक्क-व्यथित होना, अचचक्कत्। अचुचुक्कत् क्षण शुद्ध होना, अचिक्षलत्। चुद-संचोदन करना। किसी कार्य के लिये प्रेरित करना अचूचूदत्। गुडि सुजि जसि पल-रक्षण करना अजुगुण्डत्। असुसुञ्जत्। अजजंसत्। अपीपलत्। तिल-प्रतिष्ठा अर्थ में है, अतीतिलत्। तुल-उत्मान करना तौलना अतूलुलत्। मूल-रोहण करना, अमुमूलत्। मान-पूजा अमीमनत्। शिलष्-आलिंगन करना, अशिश्लिषत्। जप-मन में जपना, अजीजपत्। ज्ञप, मानु-बंध होना, अजिज्ञपत्। व्यय-क्षय होना, अविव्ययत्। चूर्ण-संकोचन करना, अचुचूर्णत्। पूज-पूजा करना, अपुपूजत्। अर्क्क ईड-स्तुति करना, आर्चिकत्। ऐडिडत्। शुठ-आलस्य करना अशू-शुठत। शुठि-शोषण करना, अशुशुण्ठत्। पचि-विस्तार करना, अपपञ्चत्। तिज-निशामन करना, अतीतिजत्। वर्ध-छेदन पूरण करना, अवबर्धत्। कुबि-आच्छादन करना, अचुकुम्बत्। लुबि तुबि-अर्दन करना, अलुलुंवत् अतुतुम्वत्। म्रक्ष म्लक्ष-रक्षण करना, अमम्रक्षत्। अमम्लक्षत्। इल-प्रेरणा ऐलिलित्, लुण्ट्-चुराना, अलुलुण्ठत्। छर्द-वमन करना अचछर्दत्। गुडि-वेष्टित करना, अजुगुण्डत्। गर्द-अभिकांक्षा करना। अदगर्दत्। रुष-रूष्ट होना अरूरुषत्। मडि-भूषा और हर्षित होना, अममण्डत्। श्रण-दान देना, अशिश्रणत् भडि-कल्याण करना, अबभण्डत्। तत्रि-कुटुम्ब धारण करना

इत: परमदन्ता: कथ्यन्ते । कथ वाक्यप्रबन्धने । अचकथत् । गण संख्याने । अजगणत् । पठ वट ग्रन्थे । अपपठत् । अववटत् । रह त्यागे । अररहत् । पद गतौ । अपपदत् । कल गतौ संख्याने च । अचकलत् । मह पूजाणां । अममहत् । स्पृह ईप्सायां । अपस्पृहत् । शूच पैशुन्ये । अशुशूचत् । कुमार क्रीडायां । अचुकुमारत् । गोम् उपदेहे । अजुगोमत् । गवेष मार्गणे । अजगवेषत् । भाज पृथक्कर्मणि । अबभाजत् । स्तेन चौर्ये । अतिस्तेनत् । परस्मैभाषा । आगर्वादात्मनेपदी । पद गतौ । अपपदत अपपदेतां अपपदन्त । अपपदथा: अपपदेथां अपपदध्वं । अपपदे अपपदावहि अपपदामहि । मृग अन्वेषणे । अममृगत । कुह विस्मापने । अचुकुहत । शूर वीर विक्रान्तौ । अशुशूरत । अविवीरत । स्थूल परिवृंहणे । अतुस्थूलत । अर्थ उपयाच्ञायां । आर्तिथत । संग्राम संयुद्धे । असंग्रामत् । गर्व माने । अजगर्वत् । आत्मने भाषा ॥ मूत्र प्रस्नवणे । अमुमूत्रत् । पार तीर कर्मसमाप्तौ । अपपारत् । अतितीरत् । चित्र विचित्रीकरणे । अचिचित्रत । छिद्र कर्णभेदे । अचिछिद्रत । अन्ध दृष्ट्युपसंहारे । आन्दधत् । दण्ड दण्डनिपातने । अददण्डत् । सुख दु:ख तत्क्रिययो: । असुसुखत् । अदुदु:खत् । रस आस्वादनस्नेहनयो: । अररसत् । व्यय वित्तसमुत्सर्गे । अवव्ययत् । वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचने । अववर्णत् । पर्ण हरितभावे । अपपर्णत् । अघ पापकरणे । आजिघत् । इति चुरादय: ।

अततन्त्रत् । मत्रि-गुप्त भाषण करना अममन्त्रत् । बिद-जानना अवीविदत् । दंश-दशना, अददंशत् । रूप-देखना । अरूरुपत । भ्रूण-आशा करना, अबुभ्रूणत् । शठ-श्लाघा अशीशठत् । स्यम्-वितर्क करना, असिस्यमत् । गूरा-उद्यम करना अजुगरत् । कुत्स-अवक्षेपण करना, निन्दा । अचुकुत्सत् । कूट कपट-प्रमाद करना, अचुकूटत् । वञ्च-प्रलंभन ठगना, अववञ्चत् । मद-तृप्त होना, अमीमदत् । दिव-परिकूजन करना, अदीदिवत् । कुस्म-कुस्मयने आश्चर्य करना । अचुकुस्मत् । चर्च-अध्ययन करना, अचचर्चत् । कण-निमीलित होना एक आँख बन्द कर निशाना करना । अचीकणत् । जसुताडित करना, अजीजसत् । पष-बन्धन करना, अपीपषत् । अम रोगी होना, आमिमत् । चट, स्फुट-भेदन करना, अचीचटत् अपुस्फुटत् । घुषिर्-शब्द करना, अजूघुषत् । लस-शिल्प योगे, अलीलसत् । भूष-अलंकृत होना, अबुभुषत् । रक, लक-आस्वादन करना, अरीरकत् अलीलकत् । लिगि विचित्रीकरण, अलिलिंगत् । मुद-संसर्ग, अमूमुदत् । मुच् छूटना, अमूमुचत् । ग्रस-ग्रास खाना, अजिग्रसत् । पूरी-वृद्धिगत होना, अपूपुरत् ।

इससे आगे अकारांत कहे जाते हैं—

कथ-कहना, अचकथत्, गण-संख्या करना, अजगणत् । पठ वट-ग्रन्थ पढ़ना, अपपठत्, अववटत् रह-त्याग करना, अररहत् । पद-गमन करना, अपपदत् । कल-गति और संख्या करना, अचकलत् । मह—पूजा करना, अममहत् । स्पृह—इच्छा करना, अपस्पृहत् । शुच्—पैशुन्य करना, अशुशूचक कुमार क्रीड़ा करना, अचूकुमारत् । गोम—उपदेह करना, अजुगोमत् । गवेष—मार्गण करना, अजवगवेषत् । भाज्, पृथक् क्रिया में है, अबभाजत् । स्तेन—चोरी करना, अतिस्तेनत् । यहां तक परस्मैपद हुआ । आगे गर्वपर्यंत आत्मनेपदी हैं । पद—गति अर्थ में, अपपदत । अपपदेतां अपपदन्त । मृग-अन्वेषण करना, अममृगत । कुह—विस्मापन करना, अचुकुहत । शूर, वीर-विक्रांति अर्थ में है, अशुशूरत अविवीरत । स्थूल-परिवृंहण होना, अतुस्थूलत । अर्थ—पास जाकर माँगना । आर्तिथत । संग्राम—युद्ध करना, अससंग्रामत । गर्व—मान करना, अजगर्वत । यहाँ तक आत्मनेपदी हुई हैं ।

मूत्र—प्रस्रवण करना, अमुमूत्रत् 'पार, तीर—कार्य की समाप्ति, अपपारत् । अतितीरत् । चित्र-विचित्रीकरण, अचिचित्रत् ।' छिद्र—कर्ण भेदन करना, अचिछिद्रत । अंथ-दृष्टि का उपसंहार आन्दधत् । दण्ड—दण्डे से मारना, अददण्डत् । सुख-सुखी होना, दु:ख-दु:खी होना, असुसुखत् । अदुदु:खत् । रस-आस्वादन करना, स्नेह करना, अररसत् । व्यय-धन त्याग करना, अवव्ययत् । वर्ण-वर्ण,

मास्म भूत्। मास्मैधिष्ट। मास्म पाक्षीत् मास्म पाक्तां मास्म पाक्षुः मास्म पाक्षीः मास्म पाक्तं मास्म पाक्त मास्म पाक्षं मास्म पाक्ष्व मास्म पाक्ष्म। मास्म पक्त मास्म पक्षातां मास्म पक्षत। मास्म पक्थाः मास्म पक्षायां मास्म पग्ध्वं। मास्म पक्षि मास्म पक्ष्वहि मास्म पक्ष्महि। मा भूत्। मैधिष्ट। मा पाक्षीत्। मा पक्त।

इति अद्यतनी समाप्ता। ❑

परोक्षा ॥३०४॥

चिरातीते काले परोक्षा विभक्तिर्भवति। अक्ष्णां परः परोक्षं। सम्प्रति इन्द्रियाणामविषय इत्यर्थः। चण परोक्षाचेक्रीयितसन्नन्तेषु द्विर्वचने सति।

भवतेरः ॥३०५॥

भवतेरभ्यासस्य अकारो भवति परोक्षायां। आगमादेशयोरागमो विधिर्बलवान्। इति गुणो न भवति। बभूव बभूवतुः बभूवुः। इडागमो सार्वधातुकस्यादिव्यञ्जनादेरिति व्यञ्जनादाविडागमः। बभूविथ बभूवथुः बभूव। बभूव बभूविव बभूविम।

नाम्यादेर्गुरुमतोऽनृच्छः ॥३०६॥

ऋच्छ इति वर्जितान्नाम्यादेर्गुरुमतो धातोरेकस्वरादाम् भवति परोक्षायां।

क्रिया, विस्तार और गुण के अर्थ में है। अववर्णत्। पर्ण-हरित भाव में—अपपर्णत्। अघ-पाप करना, आजिघत्।

इस प्रकार से अद्यतनी में चुरादिगण समाप्त हुआ। मा और मास्म के योग में अद्यतनी में अट् का आगम नहीं होता है जैसे—मास्मभूत्। मास्म ऐधिष्ट। मास्म पाक्षीत्। मास्म पाक्तां। मास्म पाक्षुः। इत्यादि।

इस प्रकार से अद्यतनी प्रकरण समाप्त हुआ। ❑

अथ परोक्षा प्रकरण प्रारम्भ होता है।

चिरकाल के अतीत काल में 'परोक्षा' विभक्ति होती है ॥३०४॥

अक्ष्णां परे = परोक्षं—इन्द्रियों से जो परे है वह परोक्ष है। अर्थात् वर्तमान काल में जो इन्द्रियों का विषय नहीं है।

भू अट् अतुस् उस्। "चण् परोक्षा चेक्रीयितसन्नंतेषु" इस सूत्र से द्वित्व करने पर भू भू अ।

परोक्षा में भू के अभ्यास को अकार हो जाता है ॥३०५॥

आगम और आदेश में आगम विधि बलवान् होती है। इससे गुण नहीं होता है। अभ्यास को तृतीय अक्षर हो जाता है। बभूव, बभूवतुः बभूवुः। 'इडागमो सार्वधातुकस्यादिव्यञ्जनादेरिति' इस सूत्र से व्यञ्जन की आदि में इट् का आगम हो जाता है। बभूविथ बभूवथुः बभूव, बभूव बभूविव, बभूविम।

ऋच्छ को छोड़कर नाम्यन्त, गुरुमान् एकस्वर वाली धातु से परोक्षा में 'आम्' होता है ॥३०६॥

परोक्षा में आम् के बाद कृ धातु का प्रयोग किया जाता है ॥३०७॥

एधाम् कृ कृ ए

आमः कृञनुप्रयुज्यते ॥३०७॥

आमन्तस्य कृञनुप्रयुज्यते परोक्षायां। द्विर्वचनं।

ऋवर्णस्याकारः ॥३०८॥

अभ्यास ऋवर्णस्याकारो भवति।

सर्वत्रात्मने ॥३०९॥

सर्वेषां धातूनां गुणो न भवति परोक्षायामात्मनेपदे सर्वत्र। अधाञ्चक्रे एधाञ्चक्राते एधाञ्चक्रिरे।

कृञोऽसुटः ॥३१०॥

असुटः कृञः परोक्षायां थलि चानिड् भवति। एधाञ्चकृषे एधाञ्चक्राथे एधाञ्चकृढ्वे। एधाञ्चक्रे एधाञ्चकृवहे एधाञ्चकृमहे।

असु भुवौ च परस्मै ॥३११॥

आमन्तस्यासु भुवावप्यनुप्रयुज्यते परस्मैपदे परे परस्मैपदं चातिदिश्यते। एधामास एधामासतुः एधामासुः। एधामासिथ एधामासथुः एधामास। एधामास एधामासिव एधामासिम। एधांबभूव एधांबभूवतुः एधांबभूवुः। अस्योपधायामित्यादिना दीर्घः। पपाच।

परोक्षायां च ॥३१२॥

सर्वेषां धातूनां गुणो न भवति परोक्षायां परस्मैपदे द्वित्वबहुत्वयोः परतः।

अस्यैकव्यञ्जनमध्येनादेशादेः परोक्षायाम् ॥३१३॥

अनादेशादेर्धातोरेकव्यञ्जनमध्यगतस्यास्य एत्वं भवत्यभ्यासलोपश्च परोक्षायामगुणे। पेचतुः पेचुः।

अभ्यास के ऋ वर्ण को अकार हो जाता है ॥३०८॥

आत्मने पद में परोक्षा में सभी धातु को गुण नहीं होता है ॥३०९॥

एधांचक्रे। आते इरे। एधांचक्राते एधांचक्रिरे।

परोक्षा में थल् के आने पर सुट् रहित कृ धातु अनिट् होता है ॥३१०॥

एधांचकृषे, एधांचक्राथे, एधांचकृढ्वे। एधांचक्रे एधांचकृवहे एधांचकृमहे।

परस्मैपद में आम् के अन्त में असु और भू धातु का प्रयोग होता है ॥३११॥

और परस्मैपद ही होता है। एधामास एधामासतुः एधामासुः एधांबभूव, एधांबभूवतुः एधांबभूवुः।
पच् पच् पपच 'अस्योपधायाम्' इत्यादि से दीर्घ होकर पपाच बना।

परोक्षा में परस्मैपद में द्वित्व-बहुत्व विभक्ति के आने पर सभी धातु को गुण नहीं होता है ॥३१२॥

आदेश रहित एक व्यंजन मध्यगत धातु के अकार को 'एकार' हो जाता है ॥३१३॥

और परोक्षा में अगुण विभक्ति के आने पर अभ्यास का लोप हो जाता है। पेचतुः पेचुः।

श्लोकार्थ—अकारांत, स्वरांत सृज् और दृश धातु से थल् विभक्ति के आने पर विकल्प से इट् होता है। ऋच् में नित्य ही अनिट् रहता है। वृ और व्येङ धातु से थल् के आने पर नित्य ही इट् होता है।

नित्यात्वतां स्वरान्तानां सृजिदृशोश्च वेट् थलि।
ऋचि नित्यानिटः स्युश्चेद् वृव्येडां नित्यमिट् थलि॥

इत्येषामिड् वा भवति थलि परे।

थलि च सेटि ॥३१४॥

अनादेशादेर्धातोरेकव्यञ्जनमध्यगतस्य अस्य एत्वं भवत्यभ्यासलोपश्च सेटि थलि परे। पेचिथ पपक्थ पेचथुः पेच।

अट्युत्तमे वा ॥३१५॥

उपधाया अस्य दीर्घो भवति अन्त्यानां नामिनां च वृद्धिर्भवति वा परोक्षायामुत्तमपुरुषेऽटि परे। पपाच पपच।

सृवृभृस्तुद्रुस्तुश्रुव एव परोक्षायाम् ॥३१६॥

एषामेव न इट् भवति परोक्षायामन्येषां भवत्येव। इति स्रादिनियमादिट्। पेचिव। पेचिम। पेचे पेचाते पेचिरे। पेचिषे पेचाथे पेचिध्वे। पेचे पेचिवहे पेचिमहे। अस्यैकव्यञ्जनमित्युपलक्षणम्। उपलक्षणं किं ? स्वस्य स्वसदृशस्य च ग्राहकमुपलक्षणम्। इत्याकारस्यानेकव्यञ्जनस्यापि क्वचित्। राध् साध् संसिद्धौ।

राधो हिंसायाम् ॥३१७॥

हिंसार्थस्य राध एत्वं भवति अभ्यासलोपश्च परोक्षायामगुणे। अपरराध अपरेधतुः अपरेधुः। इत्यादि। हिंसायामिति किं ? आरराध आरराधतुः। इत्यादि॥

इस श्लोक से थल् के आने पर इस पच् में इट् विकल्प से होता है।

इट् सहित थल् के आने पर आदेश रहित धातु के एक व्यंजन मध्यगत अकार को एकार हो जाता है॥३१४॥

और अभ्यास का लोप हो जाता है। पेचिथ, पपक्थ।

परोक्षा के उत्तम पुरुष अट् के आने पर उपधा के अकार को विकल्प से दीर्घ होता है॥३१५॥

और अन्त्य नामिको वृद्धि हो जाती है। पपाच, पपच।

सृ वृ भृ स्रु द्रु स्तु और श्रु इन धातु से परोक्षा में इट् नहीं होता है॥३१६॥

अन्य धातु से इट् हो जाता है। इस सूत्र के नियम से पच् में इट् हो जाता है पेचिव, पेचिम। आत्मनेपद में—पेचे, पेचाते इस पच् में एक व्यंजन जो कहा है वह उपलक्षण है। उपलक्षण किसे कहते हैं ? अपने और अपने सदृश को ग्रहण करने वाला उपलक्षण कहलाता है। इस प्रकार से अनेक व्यंजन वाले आकार को भी कहीं पर हो जाता है। जैसे—राध् साध्—सिद्धि अर्थ में हैं।

हिंसा अर्थ में राध धातु को 'एत्व' हो जाता है और परोक्षा के अगुण विभक्ति में अभ्यास का लोप हो जाता है॥३१७॥

अपरराध, अपरेधतुः अपरेधुः। हिंसा अर्थ में हो ऐसा क्यों कहा ? आरराध, आरराधतुः आरराधुः। इत्यादि।

राजिभ्राजिभ्रासिभ्लासीनां वा ॥३१८ ॥

एषां वा एत्वं भवति अभ्यासलोपश्च परोक्षायामगुणे। राजृ दीप्तौ। रराज रेजतुः रराजतुः रेजुः रराजुः। रेजिथ रराजिथ। थलि च सेटि वा एत्वमभ्यासलोपश्च। रेजथुः रराजथुः रेज रराज। रराज रेजिव रराजिव रेजिम रराजिम। रेजे रजाजे रेजाते रराजाते रेजिरे रराजिरे। रेजिषे रराजिषे रेजाथे रराजाथे रेजिद्वे रराजिद्वे। रेजे रराजे रेजिवहे रराजिवहे रेजिमहे रराजिमहे। भ्रासृट् भ्राजृट भ्लास्सृट् दीप्तौ। भ्रेजे बभ्राजे। भ्रेसे बभ्रासे। भ्लेसे बभ्लासे। कासृ भासृ दीप्तौ। चकासे चकासाते चकासिरे। चकासिषे चकासाथे चकासिध्वे। चकासे चकासिवहे। चकासिमहे। एवं बभासे बभासाते बभासिरे। एकव्यञ्जनमध्यगतस्येति किं ? ननन्द ननन्दतुः ननन्दुः ननन्दिथ ननन्दथुः ननन्द ननन्दिव ननन्दिम।

परोक्षायामिन्धिश्रन्थिग्रन्थिदम्भीनामगुणे ॥३१९ ॥

इन्धिश्रन्थिग्रन्थिदम्भीनामनुषङ्गलोपो भवति परोक्षायामगुणे। इत्यनेनानुषङ्गलोपः। जिइन्धि दीप्तौ। समीधे समीधाते समीधिरे।

तृफलभजत्रपश्रन्थिदम्भीनां च ॥३२० ॥

एषामुपधाया अस्य एत्वं भवति अभ्यासलोपश्च परोक्षायामगुणे सेटि थलि च। तृ प्लवनतरणयोः। ततार।

ऋदन्तानां च ॥३२१ ॥

ऋदन्तानां गुणो भवति परोक्षायामगुणे। तेरतुः तेरुः। तेरिथ तेरथुः तेर। ततार ततर तेरिव तेरिम। फल निष्पत्तौ। पफाल फेलतुः फेलुः। भज श्रीङ् सेवायां। बभाज भेजतुः भेजुः। त्रपूष् लज्जायां। त्रेपे त्रेपाते त्रेपिरे। श्रन्थ ग्रन्थ संदर्भे। शश्रन्थ श्रेथतुः श्रेथुः। निरनुषङ्गैः तृप्रभृतिभिः साहचर्यादभ्यासलोपः अकारस्य एत्वं च न स्यात्। शश्रन्थिथ। जग्रन्थ। ग्रेथतुः ग्रेथुः। जग्रन्थिथ। दम्भू दम्भे। ददम्भ देभतुः देभुः। ददम्भिथ। अन्यत्र नानुषङ्गलोप इति किं ? ननन्द ननन्दतुः ननन्दुः। ननन्दिथ। सस्रंसे। बभ्रंसे। दध्वंसे।

परोक्षा के अगुणी में राजि, भ्राजि, भ्रासि और भ्लासि धातु को एत्व विकल्प से होता है और अभ्यास का लोप हो जाता है ॥३१८ ॥

राजृ—दीप्त होना। रराज, रेजतुः रराजतुः। रेजुः, रराजुः। थल् में इट् के आने पर एत्व और अभ्यास का लोप विकल्प से होता है। रेजिथ, रराजिथ। सारे ही रूप विकल्प से दो दो रहेंगे। आत्मनेपद में भी दो दो रहेंगे। रेजे, रराजे। रेजाते, रराजाते। भ्रासृट् भ्राजृट् भ्लासृट्—दीप्त होना। भ्रेजे, बभ्राजे। भ्रेसेसे—बभ्रासे। भ्लेसे बभ्लासे। कासृ भासृ—दीप्त होना। चकासे चकासाते चकासिरे। बभासे बभासाते बभासिरे।

'एकव्यंजनमध्यगतस्य' ऐसा क्यों कहा है ? ननन्द ननन्दतुः ननंदुः।

परोक्षा में अगुण विभक्ति के आने पर इन्धि श्रन्थि ग्रन्थि और दंभि धातु के अनुषंग का लोप हो जाता है ॥३१९ ॥

ञि इन्धी—दीप्त होना। अनुषंग का लोप होकर सम् उपसर्ग पूर्वक समीधे[1] समीधाते समीधिरे।

परोक्षा के अगुण में इट् सहित थल् के आने पर तृ फल भज् त्रप् श्रन्थि ग्रन्थि और दंभि की उपधा के अकार को एकार और अभ्यास का लोप होता है ॥३२० ॥

तृ—प्लवन और तरना। ततार।

परोक्षा के अगुणी में ऋदन्त को गुण हो जाता है ॥३२१ ॥

---

१. उपधा को दीर्घ होता है।

परोक्षायामभ्यासस्योभयेषाम् ॥३२२ ॥

उभयेषां ग्रहादिस्वप्यादीनामभ्यासस्यान्तस्थायाः सम्प्रसारणं भवति परोक्षायां। गुण्यर्थोयं योगः। ग्रहीङ् उपादाने। जग्राह। ग्रहिज्यावयीत्यादिना संप्रसारणं। जगृहतुः जगृहुः।

आकारादट औ ॥३२३ ॥

आकारात्परस्याट् और्भवति।

सन्ध्यक्षरे च ॥३२४ ॥

धातोराकारस्य लोपो भवति सन्ध्यक्षरे च परे। ज्या वयोहानौ। जिज्यौ॥

य इवर्णस्य ॥३२५ ॥

असंयोगा पूर्वस्यानेकाक्षरस्य इवर्णस्य यो भवति। इति इवर्णस्य यकारः। जिज्यतुः जिज्युः।

इटि च ॥३२६ ॥

धातोराकारस्य लोपो भवति इटि परे। जिज्यिथ जिज्यथुः जिज्य। जिज्यौ जिज्यिव जिज्यिम। वेञ तन्तुसन्ताने।

वेञश्च वयिः ॥३२७ ॥

वेञो वा वयिर्भवति परोक्षायाम्। तत्र च संप्रसारणं भवति। उवाय ऊयतुः ऊयुः। उवयिथ ऊयथुः ऊय। उवाय उवय ऊयिव ऊयिम। पक्षे सन्ध्यक्षरान्तानामाकारो विकरणे इत्याकारादेशः।

एवं उपधा के अकार को 'ए' होकर अभ्यास का लोप होने से तेरतुः तेरुः। फल-निष्पन्न होना, पफाल फेलतुः फेलुः। भज, श्रीङ्—सेवा करना। बभाज भेजतुः भेजुः। त्रपूष्—लज्जा करना त्रेपे त्रेपाते त्रेपिरे। श्रन्थ ग्रन्थ—संदर्भ। शश्रन्थ श्रेथतुः श्रेथुः। अनुषंग रहित तृ आदि धातु के सहचारी होने से अभ्यास का लोप और अकार को एकार नहीं हुआ। शश्रन्थिथ। जग्रन्थ ग्रेथतुः ग्रेथुः। जगन्थिथ। दम्भू—दम्भ करना। ददम्भ देभतुः देभुः। ददम्भिथ। अन्यत्र अनुषंग लोप नहीं होता है ऐसा क्यों कहा? तो ननन्द ननन्दतुः ननन्दुः में अनुषंग लोप नहीं हुआ है। सस्रंसे बभ्रंसे दध्वंसे।

ग्रहादि और स्वप्यादि धातुओं में अभ्यास के अंतस्थ को परोक्षा में संप्रसारण हो जाता है ॥३२२ ॥

गुणी विभक्ति के लिये यह योग—सूत्र है इससे यह अर्थ हुआ कि अगुणी में दोनों को संप्रसारण कर दो। ग्रह धातु से—जग्राह। "ग्रहिज्या" इत्यादि सूत्र से संप्रसारण होकर जगृहतुः जगृहुः।

आकार के परे अट् को 'औ' हो जाता है ॥३२३ ॥

संध्यक्षर के आने पर धातु के आकार का लोप हो जाता है ॥३२४ ॥

ज्या-जिज्यौ। पूर्व अभ्यास के जी को ह्रस्व होकर 'जि' बना है।

असंयोग अपूर्व अनेकाक्षर के इवर्ण को य हो जाता है ॥३२५ ॥

इवर्ण को यकार होकर जिजी अतुस् = जिज्यतुः जिज्युः।

इट् के आने पर धातु के आकार का लोप हो जाता है ॥३२६ ॥

जिज्यिथ जिज्यथुः जिज्य। वेञ्—कपड़ा बुनना।

परोक्षा में वेञ् को वय् आदेश विकल्प से होता है ॥३२७ ॥

और संप्रसारण होकर उवाय ऊयतुः ऊयुः। उवयिथ। पक्ष में—'संध्यक्षरान्तानामाकारो विकरणे' सूत्र से आकार हो जाने से 'वा' बन गया। वा—गति और बंधन करना।

न वाश्व्योरगुणे च ॥३२८ ॥

वाश्व्योरगुणे च गुणिनि संप्रसारणं न भवति परोक्षायां। ववौ ववतुः ववुः। वविथ ववाथ ववथुः वव। ववौ वविव वविम। व्यध ताडने। विव्याध विविधतुः विविधुः। विव्यधिथ विव्यद्ध। वश कान्तौ। उवाश ऊशतुः ऊशुः। उवशिथ उवष्ठ। व्यच व्याजीकरणे। विव्याच विविचतुः विविचुः। विव्यचिथ। प्रच्छ ज्ञीप्सायां।

प्रच्छदीनां परोक्षायाम् ॥३२९ ॥

प्रच्छादीनां संप्रसारणं न भवति परोक्षायां। पप्रच्छ पप्रच्छतुः पप्रच्छुः। पप्रच्छिथ पप्रष्ठ। ओव्रश्चू छेदने। वव्रश्च वव्रश्चतुः वव्रश्च। वव्रश्चिथ। इवर्णतवर्गलसा दन्त्यः इति न्यायात् सकारस्य दकारः। भ्रस्ज पाके। बभ्रज्ज बभ्रज्जतुः बभ्रज्जुः। बभ्रज्जिथ। स्कोः संयोगाद्योरन्ते च इति सकारलोपः। भृज्जादीनां ष इति षत्वं। बभ्रष्ठ। स्वपि वचि यजादीनां यण् परोक्षाशीष्षु। इति संप्रसारणं भवति। ञिष्वप् शये। सुष्वाप सुषुपतुः सुषुपुः सुष्वपिथ सुष्वप्थ सुषुपथुः सुषुपु। सुष्वाप सुष्वप सुषुपिव सुषुपिम। वच परिभाषणे। उवाच ऊचतुः ऊचुः। उवक्थ।

यजो वयो वहेश्चैव वेञ्व्येञौ ह्वयतिस्तथा।
वद्वसौ श्वयतिश्चैव स्मृता नव यजादयः ॥१ ॥

यज देवपूजासंगतिकरणदानेषु। इयाज ईजतुः ईजुः। इयजिथ। भ्रज्जादीनां षः इति षत्वं। इयष्ठ। ईजथुः ईज। इयाज इयज ईजिव ईजिम। ईजे ईजाते ईजिरे। ईजिषे ईजाथे ईजिध्वे। ईजे ईजिवहे ईजिमहे। टुवप् बीजसन्ताने। उवाप ऊपतुः ऊपुः। उवपिथ उपप्थ ऊपथुः ऊप। ऊपे ऊपाते ऊपिरे। वहि प्रापणे। उवाह ऊहतुः ऊहुः। उवहिथ। सहिवहोरोदवर्णस्येति ओत्वं। उवोढ। ऊहे ऊहाते ऊहिरे।

परोक्षा में 'वा' आदि में गुणी और अगुणी के आने पर संप्रसारण नहीं होता है ॥३२८ ॥

ववौ ववतुः ववुः। वविथ ववाथ, ववथुः वव। ववौ वविव वविम। व्यध—ताड़ित करना। विव्याध विविधतुः विविधुः। विव्यधिथ, विव्यद्ध। वश—कान्ति अर्थ में है। उवाश ऊशतुः ऊशुः। उवशिथ, उवष्ठ। व्यच्—बहाना करना।

विव्याच विविचतुः विविचुः। विव्यचिथ। प्रच्छ—प्रश्न करना।

परोक्षा में प्रच्छ आदि को संप्रसारण नहीं होता है ॥३२९ ॥

पप्रच्छ पप्रच्छतुः पप्रच्छुः। पप्रच्छिथ पप्रष्ठ। ओव्रश्चू—छेदना। वव्रश्च वव्रश्चतुः वव्रश्चुः वव्रश्चिथ। "लृवर्णतवर्गलसा दन्त्या" इस न्याय से भ्रस्ज् के सकार को दकार होकर च वर्ग होकर 'भ्रज्ज्' बना। वभुज्ज वभुज्जतुः। थल, में—"स्कोः संयोगाद्योरंते च" ११७, सूत्र से सकार का लोप होकर "भृज्जादीनां षः" २६१ सूत्र से ष होकर थ को ठ होकर वभ्रष्ठ बना।

इट् में बभुज्जिथ। "स्वपिवचियजादीनां यण् परोक्षाशीष्षु"। सूत्र से संप्रसारण हो जाता है। ञिष्वप—शयन करना। सुष्वाप। सुषुपतुः सुषुपुः। सुष्वपिथ, सुष्वप्थ। वच—बोलना। उवाच ऊचतुः ऊचुः उवचिथ उवक्थ। यजादिगण में किन-किन धातु को लेना ?

श्लोकार्थ—यज् वय् वह् वेञ् व्येञ् ह्वेञ्, वद वस और श्वि ये नव धातु यजादि कहलाते हैं। ।१ ॥

यज—देव पूजा, संगतिकरण और दान देने अर्थ में है। इयाज ईजतुः ईजुः 'इयजिथ' "भ्रज्जादीनां षः" सूत्रे से ज् को ष् करके इयष्ठ बना। आत्मनेपद में—ईजे ईजाते ईजिरे।

टुवप्—बीज बोना। उवाप ऊपतुः ऊपुः। उवपिथ, उवप्थ। ऊपे ऊपाते ऊपिरे। वह्—प्राप्त कराना। उवाह ऊहतुः उहुः उवहिथ। 'सहिवहोरोदवर्णं' इस सूत्र से अवर्ण को ओ होकर उवोढ "होढः" सूत्र से ह् को ढ् हुआ है। ऊहे ऊहाते ऊहिरे। व्येञ्—बुनना।

न व्ययतेः परोक्षायाम् ॥३३० ॥

व्ययतेराकारो न भवति परोक्षायां गुणिनि। विवाय विव्यतुः विव्युः। विव्यिथ विव्येथ विव्यथुः विव्य। विव्याय विव्यय विव्यिव विव्यिम। विव्ये विव्याते विव्यिरे। ह्वेञ्-स्पर्धायां वाचि।

अभ्यस्तस्य च ॥३३१ ॥

ह्वयतेरभ्यस्तमात्रस्य च संप्रसारणं भवति। जुहाव जुहुवतुः जुहुवुः। जुहविथ जुहोथ। जुहुवे जुहुवाते जुहुविरे। वद व्यक्तायां वाचि। उवाद ऊदतुः ऊदुः। उवदिथ। ऊदे ऊदाते ऊदिरे। वस निवासे। उवास ऊषतुः ऊषुः। उवसिथ उवस्थ। ऊषे ऊषाते ऊषिरे। टुओश्वि गतिवृद्ध्योः।

श्वयतेर्वा ॥३३२ ॥

श्वयतेर्वा संप्रसारणं भवति परोक्षायां चेक्रीयिते च। शुशाव शुशुवतुः शुशुवुः। शुशविथ शुशोथ शुशुवथुः शुशुव। शुशाव शुशव शुशुविव शुशुविम। शुशुवे शुशुवाते शुशुविरे। शिश्वाय शिश्वियतुः शिश्वियुः। शिश्वयिथ शिश्वेथ शिश्वियथुः शिश्विय। शिश्वाय शिश्वय। शिश्विये शिश्वियाते शिश्वियिरे। इति भ्वादिः॥

वा परोक्षायाम् ॥३३३ ॥

अदेर्घस्लृ आदेशो भवति वा परोक्षायां। जघास। गमहनेत्यादिना उपधालोपो भवत्यगुणे। जक्षतुः जक्षुः। जघसिथ जघस्थ जक्षथुः जक्ष। जघास जघस जक्षिव जक्षिम। घस्लृभावे।

परोक्षा के गुणी में व्येञ् धातु आकारांत नहीं होता है ॥३३० ॥

विव्याय विव्यतुः विव्युः, विपिव्यथ विव्येथ। आत्मनेपद में—विव्ये विव्याते विव्यिरे। ह्वेञ्—बुलाना।

ह्वे धातु के अभ्यस्त मात्र को संप्रसारण हो जाता है ॥३३१ ॥

जुहाव जुहुवतुः जुहुवुः। जुहुविथ जुहोथ। आत्मनेपद में—जुहुवे जुहुवाते जुहुविरे। वद—स्पष्ट बोलना। उवाद ऊदतुः ऊदुः। उवदिथ। ऊदे ऊदाते ऊदिरे। वस—निवास करना। उवास ऊषतुः ऊषुः उवसिथ, उवस्थ। ऊषे ऊषाते ऊषिरे।

टुओश्वि—गति और वृद्धि अर्थ में। श्वि—

परोक्षा और चेक्रीयित में श्वि को विकल्प से संप्रसारण होता है ॥३३२ ॥

शुशाव शुशुवतुः शुशुवुः। संप्रसारण न होने से—शिश्वाय। शिश्वियतुः शिश्वियुः। आत्मनेपद में—शिश्विये शिश्वियाते।

इस प्रकार से परोक्षा में भ्वादि गण समाप्त हुआ।

परोक्षा में अदादि गण प्रारम्भ होता है।

परोक्षा में विकल्प से अद् को घस् आदेश होता है ॥३३३ ॥

जघास। जघस् अतुस् 'गमहन्' इत्यादि सूत्र से अगुणी में उपधा का लोप हो जाता है अतः घ के अ का लोप होकर प्रथम अक्षर क् होकर स को ष होकर जक्षतुः जक्षुः बन गया।

इट् में जघसिथ-अनिट् में—जघस्थ बना। जब घस् आदेश नहीं हुआ तब—

अस्यादेः सर्वत्र ॥३३४॥

अभ्यासस्यादेरस्य दीर्घो भवति परोक्षायां सर्वत्र। आद आदतुः आदुः। आदिथ आत्थ आदथुः आद। आद आद्व आद्म। शीङ् स्वप्ने। शिश्ये शिश्याते शिशियरे। उवाच ऊचतुः ऊचुः। ऊचे ऊचाते ऊचिरे। उष दाहे। विद ज्ञाने। जागृ निद्राक्षये।

उषविदजागृभ्यो वा ॥३३५॥

उषादिभ्यो वा आम् भवति परोक्षायां। ओषाञ्चकार ओषाञ्चक्रतुः ओषाञ्चक्रुः।

आमि विदेरेव ॥३३६॥

आमि परे विदेरेव गुणो न भवति। विदाञ्चकार विदाञ्चक्रतुः विदाञ्चक्रुः। जागराञ्चकार जागराञ्चक्रतुः जागराञ्चक्रुः। आमभावे अभ्यासस्यासवर्णे इत्युवादेशः। उवोष ऊषतुः ऊषुः। विवेद विविदतुः विविदुः। जजागार।

परोक्षायामगुणे ॥३३७॥

जागर्तेर्गुणो भवति परोक्षायामगुणे परे। जजागरतुः जजागरुः। इत्यदादिः।।

भीह्रीभृहुवां तिवच्च ॥३३८॥

एषां वा आम् भवति परोक्षायां स च तिवद्भवति। इति तिवद्भावाद् द्विर्वचनं। जुहवाञ्चकार जुहवाञ्चक्रतुः जुहवाञ्चक्रुः। जुहाव जुहुवतुः जुहुवुः। जुहविथ जुहोथ जुहुवथुः जुहुव। जुहाव जुहव जुहुविव जुहुविम। ञिभी भये। बिभयाञ्चकार बिभयाञ्चक्रतुः बिभयाञ्चक्रुः। बिभाय बिभ्यतुः बिभ्युः। बिभयिथ

परोक्षा में सर्वत्र अभ्यास के आदि के 'अ' को दीर्घ हो जाता है ॥३३४॥

आद आदतुः आदुः। आदिथ,। शीङ्—सोना। शिश्ये शिश्याते शिशियरे। वच—उवाच ऊचतुः ऊचुः। ऊचे। उष—दाह। विद—ज्ञान। जागृ = निद्राक्षय।

उष विद जागृ से परोक्षा में आम् विकल्प से होता है ॥३३५॥

गुण होकर ओषांचकार ओषांचक्रतुः ओषांचक्रुः।

आम् के आने पर विद् धातु को ही गुण नहीं होता है ॥३३६॥

विदाञ्चकार विदाञ्चक्रतुः विदाञ्चक्रुः। गुण होकर—जागराञ्चकार। जागराञ्चक्रतुः जागराञ्चक्रुः। आम् के अभाव में 'अभ्यासस्यासवर्णे' इस १७६ सूत्र से उव् आदेश हो गया। उवोष ऊषतुः ऊषुः। विवेद विविदतुः विविदुः। जजागार।

परोक्षा के अगुण में जागृ को गुण हो जाता है ॥३३७॥

जजागरतुः जजागरुः।

इस प्रकार से परोक्षा में अदादिगण समाप्त हुआ।

परोक्षा में जुहोत्यादिगण प्रारंभ होता है।

भी, ह्री, भृ और हु धातु को परोक्षा में विकल्प से आम् होता है एवं वह तिवत् हो जाता है ॥३३८॥

तिवत् होने से धातु को द्वित्व हो जाता है। जुहवाञ्चकार। जुहाव। ञिभी—भयभीत होना। बिभयाञ्चकार। बिभाय। ह्री—लज्जा करना। जिह्रयाञ्चकार। जिह्राय। भृञ्—धारण पोषण करना। बिभराञ्चकार। इत्यादि। ओहाङ्—जहे जहाते दधौ दधतुः दधुः। दधे दधाते दधिरे।

बिभेथ। ह्री लज्जायां। जिह्रयाञ्चकार जिह्रयाञ्चक्रतुः जिह्रयाञ्चक्रुः। जिह्राय जिह्रियतुः जिह्रियुः। बिभराञ्चकार बिभराञ्चक्रतुः बिभराञ्चक्रुः। इत्यादि। जहे जहाते जहिरे। दधौ दधतुः दधुः। दधिथ दधाथ। दधे दधाते दधिरे। दधिषे दधाथे दधिध्वे। दधे दधिवहे दधिमहे। इति जुहोत्यादिः। दिदेव दिदिवतुः दिदिवुः। सुषुवे सुषुवाते सुषुविरे। ननाह नेहतुः नेहुः। नेहिथ ननद्ध नेहथुः नेह। ननाह नेहिव नेहिम। नेहे नेहाते नेहिरे। इति दिवादिः। सुषाव सुषुवतुः सुषुवुः। सुषविथ सुषोथ।

अस्यादेः सर्वत्र ॥३३९॥

अभ्यासस्य अकारस्य दीर्घो भवति परोक्षायां सर्वत्र।

अश्नोतेश्च ॥३४०॥

अश्नोतेस्तस्माद्दीर्घीभूतादभ्यासाकारात्परः परादौ नकारागमो भवति परोक्षायां। आनशे आनशाते आनशिरे। व्यानशे व्यानशाते व्यानशिरे। ऋच्छ गतीन्द्रियप्रलयमूर्त्तिभावेषु।

ऋच्छ ऋतः ॥३४१॥

ऋच्छधातोर्गुणो भवति परोक्षायां।

तस्मान्नागमः परादिरन्तश्चेत्संयोगः ॥३४२॥

तस्माद्दीर्घीभूतादभ्यासस्याकारात्परः परादौ नकारागमो भवति धातोरन्तः संयोगश्चेत्परोक्षायां। आनर्छ आनर्छतुः। आनर्छुः। अञ्जू व्यक्तिमर्षणकान्तिगतिषु। आनञ्ज आनञ्जतुः आनञ्जुः। आनञ्जिथ आनङ्क्थ आनञ्जथुः आनञ्ज। आनञ्ज आनञ्जिव आनञ्जिम। तस्मादिति किं। आछि आयामे। आञ्छ आञ्छतुः आञ्छुः। अयमस्यादेः सर्वत्र इति न क्लृप्तो दीर्घः। अन्तश्चेत्संयोग इति किं ? आट आटतुः। ऋध वृद्धौ।

इस प्रकार से परोक्षा में जुहोत्यादिगण समाप्त हुआ।

अथ परोक्षा में दिवादि गण

दिवु—क्रीड़ादि। दिदेव दिदिवतुः दिदिवुः। सुषुवे सुषुवाते। ननाह नेहतुः नेहुः। नेहे नेहाते नेहिरे।
इस प्रकार से परोक्षा में दिवादि गण समाप्त हुआ।

अथ परोक्षा में स्वादि गण।

षुञ्—अभिषव करना। सुषाव सुषुवतुः सुषुवुः।

परोक्षा में सर्वत्र अभ्यास के अकार को दीर्घ हो जाता है ॥३३९॥

दीर्घीभूत अभ्यास के आकार वाले अश् धातु से पर की आदि में नकार का आगम हो जाता है ॥३४०॥

परोक्षा में—अशूङ् व्याप्त होना। आनशे आनशाते आनशिरे। व्यानशे। ऋच्छ—गति, इंद्रिय प्रलय, मूर्ति भाव।

परोक्षा में ऋच्छ धातु को गुण हो जाता है ॥३४१॥

उस दीर्घीभूत अभ्यास के अकार से परे पर की आदि में नकार का आगम होता है यदि परोक्षा में अंत संयोग है ॥३४२॥

अर्च्छ, आर्च्छ 'न' आगम से आनर्च्छ आनर्छतुः। अञ्जू—व्यक्ति, मर्षण कांति और गति। आनञ्ज आनञ्जतुः। तस्मात् ऐसा क्यों कहा ? आछि—आयाम अर्थ में है। आञ्छ आञ्छतुः आञ्छुः अयं

ऋकारे च ॥३४३ ॥

तस्माद्दीर्घीभूतादभ्यासाकारात्परः परादौ नकारागमो भवति ऋकारे च परोक्षायां । आनृधे आनृधाते आनृधिरे ।

चेः किर्वा ॥३४४ ॥

चेः किर्वा भवति परोक्षायां । चिकाय चिक्यतुः चिक्युः । चिक्ये । चिचाय चिच्यतुः चिच्युः । चिच्ये चिच्याते चिच्यिरे । इति स्वादिः । तुतोद तुतुदतुः तुतुदुः । मृञ् प्राणत्यागे ।

आशीरद्यतन्योश्च ॥३४५ ॥

मृञ् आत्मनेपदी भवति चकारादनि च परे नान्यत्र । ममार मम्रतुः मम्रुः ।

थल्यृकारात् ॥३४६ ॥

ऋकारान्तात् थलि नेड् भवति । ममर्थ मम्रथुः मम्र । मुमोच मुमुचतुः मुमुचुः । मुमुचे मुमुचाते मुमुचिरे । इति तुदादिः ॥ रुरोध रुरुधतुः । बुभुजे बुभुजाते । युयोज । युयुजे । इति रुधादिः । ततान तेनतुः तेनुः । तेने तेनाते तेनिरे । मेने मेनाते मेनिरे । चकार चक्रतुः । चक्रे चक्राते ।

"अस्यादेः सर्वत्र" इससे दीर्घ नहीं हुआ। 'अंतश्चेत् संयोगः' ऐसा क्यों कहा ? अटआट आटतुः। ऋध-वृद्धि होना।

परोक्षा में दीर्घीभूत अभ्यास अकार से परे ऋकार के आने पर पर की आदि में नकार का आगम होता है ॥३४३ ॥

आनृधे आनृधाते आनृधिरे । चिञ्—चयन करना ।

परोक्षा में चवर्ग को कवर्ग विकल्प से होता है ॥३४४ ॥

चिकाय चिक्यतुः चिक्युः । चिक्ये । चिचाय चिच्यतुः चिच्युः । चिच्ये चिच्याते चिच्यिरे ।

इस प्रकार से परोक्षा में स्वादि गण समाप्त हुआ ।

अथ परोक्षा में तुदादि गण

तुतोद तुतुदतुः तुतुदुः । मृङ्—प्राण त्याग करना ।

अन् विकरण के आने पर मृङ् आत्मनेपद में चलता है अन्यत्र नहीं ॥३४५ ॥

ममार मम्रतुः मम्रुः ।

थल् के आने पर ऋकारांत से इट् नहीं होता है ॥३४६ ॥

ममर्थ मम्रथुः मम्र । मुच्—मुमोच मुमुचतुः मुमुचुः । मुमुचे ।

परोक्षा में तुदादिगण समाप्त हुआ ।

अथ परोक्षा में रुधादि गण ।

रुरोध रुरुधतुः रुरुधुः । भुज धातु भोजन अर्थ । उसमें आत्मनेपदी है भुज्—बुभुजे बुभुजाते बुभुजिरे । युजिर्—युयोज युयुजतुः युयुजुः । युयुजे ।

इस प्रकार से परोक्षा में रुधादि गण समाप्त हुआ ।

अथ परोक्षा में तनादि गण प्रारंभ होता है ।

तनु—विस्तार करना । ततान तेनतुः तेनुः । तेने तेनाते । मेने मेनाते मेनिरे । डुकृञ्—चकार चक्रतुः चक्रुः । चक्रे चक्राते चक्रिरे ।

सुट् भूषणे सम्पर्युपात् ॥३४७ ॥

सम्पर्युपात्परस्य कृञ् आदौ सुट् भवति भूवर्णेऽर्थे द्विर्वचने ।

शिट्परोऽघोषः ॥३४८ ॥

अभ्यासस्य शिटः परोऽघोषोऽवशेष्यो भवति । शिटो लोप इत्यर्थः । संचस्कार ।

ऋतश्च संयोगादेः ॥३४९ ॥

संयोगादेर्धातोः ऋतो गुणो भवति परोक्षायामगुणे । संचस्करतुः संचस्करुः । संचस्करिथ संचस्करथुः संचस्कर । परिचस्कार परिचस्करतुः । उपचस्कार उपचस्करतुः उपचस्करुः । उपचस्करे उपचस्कराते उपचस्करिरे । उपचस्करिवे उपचस्कराथे उपचस्करिध्वे । उपचस्करे उपचस्करिवहे उपचस्करिमहे । इति तनादिः । चिक्राय चिक्रियतुः चिक्रियुः । चिक्रियिथ चिक्रियथुः । चिक्रिये चिक्रियाते चिक्रियिरे । वव्रे वव्राते वव्रिरे ।

सृवृभृस्तुद्रुस्रुश्रुव एव परोक्षायाम् ॥३५० ॥

एभ्यो धातुभ्यः परो नेड् भवति एव परोक्षायां । जग्राह जगृहतुः जगृहुः । जगृहे । इति क्र्यादिः ।

चकास्कास्प्रत्ययान्तेभ्य आम् परोक्षायाम् ॥३५१ ॥

एभ्य आम् भवति परोक्षायां । चकासृ दीप्तौ । चकासाञ्चकार चकासाञ्चक्रतुः । चकासाञ्चक्रे चकासाञ्चक्राते चकासाञ्चक्रिरे । कासृ भासृ दीप्तौ । कासाञ्चक्रे । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चक्रे । पालयामास पालयामासतुः । पालयाञ्चकार पालयाञ्चक्रतुः पालयाञ्चक्रुः । एवं पालयाञ्चक्रे पालयाञ्चक्राते पालयाञ्चक्रिरे । तन्त्रयाञ्चक्रे । वारयाञ्चकार । वारयाञ्चक्रे ।

भूषण अर्थ में सम् परि उप् उपसर्ग से परे कृ धातु की आदि में सुट् होता है ॥३४७ ॥
द्वित्व होता है ।

अभ्यास शिट् के परे अघोष अवशेष रहता है ॥३४८ ॥
अर्थात् शिट् का लोप हो जाता है । संचस्कार ।

परोक्षा के अगुण में संयोगादि धातु से ऋकार को गुण हो जाता है ॥३४९ ॥
संचस्करतुः संचस्करुः । परिचस्कार । उपचस्कार ।
इस प्रकार से परोक्षा में तनादि गण समाप्त हुआ ।

अथ परोक्षा में क्र्यादि गण ।

क्री-चिक्राय चिक्रियतुः चिक्रियुः । चिक्रिये । वव्रे ।

परोक्षा में सृ, वृ, श्रृ, स्तु, द्रु, स्रु और श्रु धातु से परे इट् नहीं होता है ॥३५० ॥
जग्राह जगृहतुः जगृहुः । जगृहे ।
इस प्रकार से परोक्षा में क्र्यादि गण समाप्त हुआ ।

अथ परोक्षा में चुरादि गण ।

परोक्षा में चकास् कास् और प्रत्ययांत से आम् होता है ॥३५१ ॥

चकासृ—दीप्त होना । चकासाञ्चकार । चकासाञ्चक्रतुः चकासाञ्चकुः । चकासाञ्चक्रे । कासृ भासृ-दीप्त होना कासाञ्चक्रे । चुर्-स्तेये । चोरयाञ्चकार । चोरयाञ्चक्रे । पालयामास । पालयांबभूव । पालयाञ्चकार पालयाञ्चक्रे । तन्त्रयाञ्चक्रे । वारयाञ्चकार । वारयाञ्चक्रे ।

दयायासश्च ॥३५२ ॥

एभ्य आम् भवति परोक्षायां । दय दानगतिहिंसादानेषु । दयाञ्चक्रे । अयाञ्चक्रे । आसाञ्चक्रे । इति परोक्षा समाप्ता ॥

भविष्यति भविष्यन्त्याशीःश्वस्तन्यः ॥३५३ ॥

भविष्यति काले भविष्यन्त्याशीःश्वस्तन्यो भवन्ति ।

तासां स्वसंज्ञाभिः कालविशेषः ॥३५४ ॥

तासां विभक्तीनां स्वसंज्ञाभिः कालस्य विशेषो भवति । श्वो भवः कालः श्वस्तनस्तत्र श्वस्तनी भवति । भविता भवितारौ भवितारः । भवितासि भवितास्थः भवितास्थ । भवितास्मि भवितास्वः भवितास्मः । एधिता एधितारौ एधितारः । एधितासे एधितासाथे एधिताध्वे । एधिताहे एधितास्वहे एधितास्महे । पक्ता । नन्दिता । स्रंसिता । भ्रंसिता । ध्वंसिता । शकि वकि कौटिल्ये । शङ्किता । वङ्किता । वदिङ् अभिवादनस्तुत्योः । वन्दिता वन्दितारौ वन्दितारः । वन्दितासे । वेञ् तन्तुसन्ताने । व्याता व्यातारौ व्यातारः । व्यातासे । इति भ्वादिः । अत्ता । शयिता । वक्ता । इत्यदादिः । होता । धाता । भर्त्ता । इति जुहोत्यादिः । देविता । सेविता । नद्धा । इति दिवादिः । सोता । अशिता । चेता । इति स्वादिः । तोत्ता । मर्त्ता । मोक्ता । इति तुदादिः । रोद्धा । भोक्ता । योक्ता । इति रुधादिः । तनिता । मनिता । कर्त्ता । इति तनादिः । क्रेता । वरिता । ग्रहीता । इति क्र्यादिः । चोरयिता । तन्त्रयिता । वारयिता । इति चुरादिः । इति श्वस्तनी समाप्ता ॥

दय् अय् आस् से परे परोक्षा में आम् होता है ॥३५२ ॥

दय—दान, गति, हिंसा अर्थ में है। दयांचक्रे। अय्-गमन अयाञ्चक्रे। आस्-उपवेशन करना-बैठना। आसाञ्चक्रे।

इति चुरादि।

इस प्रकार से परोक्षा प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ श्वस्तनी विभक्ति प्रारम्भ।

भविष्यत् काल में भविष्यति, आशीः और श्वस्तनी विभक्तियाँ होती हैं ॥३५३ ॥

उन विभक्तियों का अपनी-अपनी संज्ञाओं से काल में विशेष होता है ॥३५४ ॥

श्वो भवः कालः श्वस्तनः आगे आने वाला कल दिन श्व कहलाता है उसमें होने वाली क्रिया श्वस्तनी है।

उसमें ता तारो तारस् आदि विभक्तियाँ होती हैं। भविता भवितारौ भवितारः। भवितासि भवितास्थः भवितास्थ। भवितास्मि भवितास्वः भवितास्मः। एधिता। पक्ता। नन्दिता। स्रंसिता। भ्रंसिता। ध्वंसिता। शकि, वकि—कुटिलता करना। शङ्किता। वङ्किता। वदिङ्—अभिवादन करना, स्तुति करना। वंदिता वंदितारौ वन्दितारः। वंदितासे। वेञ्—बुनना। व्याता व्यातारौ। इति भ्वादिः।

अत्ता। शयिता। वक्ता। इत्यदादिः। होता। धाता। भर्ता। इति जुहोत्यादिः। देविता सेविता। नद्धा। इति दिवादिः। सोता। अशिता। चेता। इति स्वादिः। तोत्ता। मर्ता। मोक्ता। इति तुदादिः। रोद्धा। भोक्ता। योक्ता। इति रुधादिः। तनिता। मनिता। कर्ता। इति तनादिः। क्रेता। वरिता। ग्रहीता। इति क्र्यादिः। चोरयिता। तन्त्रयिता। वारयिता। इति चुरादिः।

इस प्रकार से श्वस्तनी प्रकरण समाप्त हुआ।

भविष्यति भविष्यन्तीत्यादिना भविष्यति काले आशीः। इष्टस्याशंसनमाशीः।

आशिषि च परस्मै ॥३५५॥

सर्वेषां धातूनां गुणो न भवति आशिषि च सर्वत्र परस्मैपदे परे। भूयात् भूयास्तां भूयासुः। भूयाः भूयास्तं भूयास्त। भूयासं भूयास्व भूयास्म। विनिमये वागतिहिंसाशब्दार्थहस इति चुरादित्वादात्मनेपदं। व्यतिभविषीष्ट। एधिषीष्ट एधिषीयास्तां एधिषीरन्। एधिषीष्ठाः एधिषीयास्थां एधिषीध्वं। एधिषीय एधिषीवहि। पच्यात्। पक्षीष्ट नद्यात्। स्रंसिषीष्ट। भ्रंसिषीष्ट। ध्वंसिषीष्ट। स्वपिवचियजादीनामिति संप्रसारणम्। नाम्यन्तानामिति दीर्घश्च। सुप्यात्। इज्यात्। व्येञ् संवरणे। उभयपदी। वीयात् वीयास्तां वीयासुः। व्यासीष्ट व्यासीयास्तां व्यासीरन्। चिञ् चयने। चीयात्। चेषीष्ट। वेञ् तन्तुसन्ताने। उभयपदी। ऊयात् ऊयास्तां ऊयासुः। वासीष्ट वासीयास्तां वासीरन्। ज्या वयोहानौ। पराजीयात्। व्यध ताडने। विध्यात्। अद्यात्। अशूञ् व्याप्तौ। अशिषीष्ट अशिषीयास्तां अशिषीरन्। ब्रुङ् व्यक्तायां वाचि।

ब्रुवो वचिः ॥३५६॥

ब्रुवो वचिर्भवत्यसार्वधातुकविषये। उच्यात्। वक्षीष्ट। इत्यादि। अध्यात्। शयिषीष्ट। हूयात्। हासीष्ट।

आशिष्येकारः ॥३५७॥

दामादीनामेकारो भवत्याशिष्यगुणे। विधेयात्। विधासीष्ट विधासीयास्तां विधासीरन्। उभयपदी। देयात्। मेयात्। गेयात्। पेयात्। स्थेयास्तां। अवसेयास्तां। हेयात्। अगुण इति किं ? धासीष्ट

अथ आशीः प्रकरण प्रारंभ

'भविष्यति भविष्यन्त्याशीःश्वस्तन्यः' ३५३ सूत्र से भविष्यत् काल में आशीः विभक्ति होती है। इष्ट का आशंसन करना आशीः है अर्थात् आशीर्वाद देना।

आ शिष् में सर्वत्र परस्मैपद में सभी धातुओं को गुण नहीं होता है ॥३५५॥

भूयात् भूयास्तां भूयासुः। भूयाः भूयास्तं भूयास्त। भूयासं। भूयास्व भूयास्म। विनिमय अर्थ में—अदल बदल करना 'विनिमये वा गतिहिंसा—शब्दार्थहस' इति चुरादित्वात् आत्मने पदं। वि और अति उपसर्ग से भू धातु आत्मनेपदी हो जाता है। आत्मनेपदी में गुण हो जायेगा। व्यतिभविषीष्ट। एधिषीष्ट। पच्यात्। पक्षीष्ट। नद्यात्। स्रंसिषीष्ट। भ्रंसिषीष्ट। ध्वंसिषीष्ट। 'स्वपिवचियजादीनां' इस सूत्र से संप्रसारण हुआ है।

सुप्यात्। इज्यात्। व्येञ्—उभयपदी है—संप्रसारण दीर्घ होकर। वीयात्। व्यासीष्ट। चिञ्—चयने। चीयात्। चेषीष्ट। वेञ्—उभयपदी। ऊयात्। वासीष्ट। ज्या—वयोहानौ। पराजीयात्। व्यध—ताडन करना। विध्यात्। अद्यात्। अशूङ्—व्याप्तौ। अशिषीष्ट। ब्रूञ्—स्पष्ट बोलना।

ब्रू को असार्वधातुक में वच् हो जाता है ॥३५६॥

व को उ संप्रसारण। उच्यात्। वक्षीष्ट। इत्यादि।

इङ्—स्मरण करना। अधीयात्। शयिषीष्ठ। हूयात्। हासीष्ट।

आशिष में अगुण विभक्ति के आने पर दा मा, आदि धातुओं को एकार हो जाता है ॥३५७॥

वा-विधेयात्। विधासीष्ट। दा-देयात्। मेयात्। गेयात्। पेयात्। स्थेयात्। अवसेयात्। हेयात्।

धासीयास्तां ॥ दासीष्ट । दीव्यात् । सविषीष्ट । विकल्पेन । सोषीष्ट सोषीयास्तां । नह्यात् । नत्सीष्ट । षुञ् अभिषवे । सूयात् । अभिषूयात् । अभिषोषीष्ट । वा । "वा संयोगादेस्त इति वक्तव्यम्" ॥ ज्या वयोहानौ । ज्येयात् । ज्यायात् । म्लै गात्रविनामे । म्लेयात् । ग्लै हर्षक्षये । ग्लेयात् । टोश्वि गतिवृद्ध्योः । निश्वीयात् । निश्वेषीष्ट । इत्यादि । तुद्यात् । शद्लृ शातने । शत्सीष्ट । भृषीष्ट । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । रुध्यात् रुत्सीष्ट । भुज्यात् भुक्षीष्ट । युज्यात् युक्षीष्ट । तन्यात् । तनिषीष्ट । मनिषीष्ट । विक्रीयात् । विक्रीषीष्ट । गृह्यात् । ग्रहीशीष्ट । चोर्यात् । चोरयिषीष्ट । चोरयिषीयास्तां । पाल्यात् । पल शल पतलृ पथे च गतौ । पाल रक्षणे च । उभयपदी । पालयिषीष्ट । अर्च पूजायां । अर्च्यात् अर्च्यास्तां अर्च्यासुः । अर्चयिषीष्ट अर्चयिषीयास्तां । तन्त्रयिषीष्ट । वार्यात वारयिषीष्ट । इत्याशीः समाप्ता ॥ भविष्यति भविष्यन्तीत्यादिना भविष्यत्काले भविष्यन्ती । विभक्तिर्भवति । भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति । भविष्यसि भविष्यथः भविष्यथ । भविष्यामि भविष्यावः भविष्यामः । एधिष्यते एधिष्येते एधिष्यन्ते । एधिष्यसे एधिष्येथे । एधिष्यध्वे । एधिष्ये एधिष्यावहे । एधिष्यामहे । पक्ष्यति पक्ष्यते । नन्दिष्यते । स्रंसिष्यते । भ्रंसिष्यते । ध्वंसिष्यते । एवं शङ्किष्यते । वङ्किष्यते । वन्दिष्यते । वेञ् संवरणे । वास्यति । वास्यते । अत्स्यति । वक्ष्यति वक्ष्यते । होष्यते । होष्यति । धास्यति । धास्यते । दास्यति । दास्यते । देविष्यति । सेविष्यति । नत्स्यति । नत्स्यते । सोष्यति । अशिष्यते । अक्ष्यते । चेष्यति । चेष्यते । तोत्स्यति ।

हनृदन्तात्स्ये ॥३५८ ॥

अगुण ऐसा क्यों कहा ? धासीष्ट । दासीष्ट । दीव्यात् । सविषीष्ट । विकल्प से इट् होता है । अतः सोषीष्ट । नह्यात् । नत्सीष्ट । नहेर्द्धः सूत्र २७८ से ह को ध व ध को प्रथम अक्षर त हुआ है । षुञ्-सूयात् । अभिषूयात् । अभिषोषीष्ठ । (वा संयोगादेः) संयोग हों आदि में ऐसा आकारान्त धातु से परे आशिष में एत्व विकल्प से होता है । ज्या-वयोहानौ । ज्येयात् । ज्यायात् । म्लै मुर्झाना—म्लेयात् । ग्लै-हर्ष क्षय होना । ग्लायात् । टोश्वि-गति और वृद्धि होना । निश्वीयात् । निश्वेषीष्ट । इत्यादि । तुद्यात् । शद्लृ-शातन करना । शत्सीष्ट । भृषीष्ट । मुच्यात् । मुक्षीष्ट । रुध्यात् । रुत्सीष्ट । भुज्यात् । भुक्षीष्ट । युज्यात्, युक्षीष्ट । तन्यात्, तनिषीष्ट । मनिषीष्ट । विक्रीयात् । विक्रीषीष्ट । गृह्यात्, ग्रहीषीष्ट । चोर्यात्, चोरयिषीष्ट । पाल्यात् । पल शल पत्लृ-पथ और गति अर्थ में । पाल-रक्षण अर्थ में है—उभयपदी है । पालयिषीष्ट । अर्च-पूजा । अर्च्यात् । यह धातु एक मात्र परस्मैपदी है अतः यह रूप ठीक नहीं । तन्त्रयिषीष्ट । वृञ्-वार्यात् । वारयिषीष्ट ।

इस प्रकार से आशिष् प्रकरण समाप्त हुआ ।

अथ भविष्यति प्रकरण प्रारम्भ

भविष्यत् काल में भविष्यति विभक्ति होती है ।

भू-स्यति इट् गुण, अव् षत्व होकर = भविष्यति भविष्यतः भविष्यन्ति । एधिष्यते । पक्ष्यति । पक्ष्यते । नन्दिष्यति । नदि-परस्मैपदी है । अतः नन्दिष्यति ठीक है । स्रंसिष्यते । भ्रंसिष्यते । ध्वंसिष्यते । शङ्किष्यते । वङ्किष्यते । वंदिष्यते । वेञ्-वास्यति । वास्यते । अद्-अत्स्यति । वक्ष्यति । वक्ष्यते । होष्यते । होष्यति । धास्यति । धास्यते । दास्यति । दास्यते । देविष्यति । सेविष्यति । नत्स्यति । नत्स्यते । सोष्यति । अशूङ् व्याप्तौ । अशिष्यते । अक्ष्यते । चेष्यति । चेष्यते । तोत्स्यति ।

स्यकार के आने पर हन् और ऋदंत से इट् का आगम होता है ॥३५८ ॥

हनः ऋदन्ताच्च इडागमो भवति स्यकारे परे। हनिष्यति। मोक्ष्यति। रोत्स्यति। रोत्स्यते। भोक्ष्यते। योक्ष्यते। तनिष्यते। मनिष्यति। मनिष्यते। करिष्यति। करिष्यते। क्रेष्यति। वरिष्यति वरिष्यते। ग्रहीष्यति ग्रहीष्यते। चोरयिष्यति चोरयिष्यते। तन्त्रयिष्यते। वारयिष्यते। एवं ज्ञातव्यं। इति भविष्यन्ती समाप्ता॥ भूतकरणवत्यश्चेत्यतीते काले क्रियातिपत्तिः। क्रियाया अतिपतनं क्रियातिपत्तिः। अभविष्यत् अभविष्यतां अभविष्यन्। अभविष्यः अभविष्यतं अभविष्यत। अभविष्यं अभविष्याव अभविष्याम। ऐधिष्यत ऐधिष्येतां ऐधिष्यन्त। ऐधिष्यथाः ऐधिष्येथां ऐधिष्यध्वं। ऐधिष्ये ऐधिष्यामहि। अपक्ष्यत् अपक्ष्यतां अपक्ष्यन्। अनन्दिष्यत्। अस्रंसिष्यत्। अभ्रंसिष्यत। अध्वसिष्यत अव्यास्यत। आत्स्यत्। अशयिष्यत। अवक्ष्यत्। अवक्ष्यत। अहोस्यत्। अहास्यत्। अधास्यत्। अधास्यत। अदेविष्यत्। असविष्यत। विकल्पेन। असोष्यत असोष्येतां असोष्यन्त। अनत्स्यत् अनत्स्यत। असोष्यत्। अशिष्यत्। विकल्पेन। आक्ष्यत आक्ष्येतां आक्ष्यन्त। अचेष्यत। अचेष्यत। अतोत्स्यत्। अमरिष्यत। अमोक्ष्यत्। अमोक्ष्यत। अरोत्स्यत्। अभोक्ष्यत। अयोक्ष्यत्। अयोक्ष्यत। अतनिष्यत्। अमविष्यत् अकरिष्यत्। अवरिष्यत् अवरीष्यत। अग्रहीष्यत्। अग्रहीष्यत। अचोरयिष्यत्। अचोरयिष्यत अचोरयिष्येतां। अतन्त्रयिष्यत। अवारयिष्यत्। अवारयिष्यत। पल रक्षणे उभ० अपालयिष्यत्। अपालयिष्यत। अर्च पूजायां। उभ०। आर्चयिष्यत् आर्चयिष्यत आर्चयिष्येतां आर्चयिष्यन्त। एवं सर्वमवगन्तव्यम्।

इति क्रियातिपत्तिः।

हनिष्यति। मोक्ष्यति। रोत्स्यति। रोत्स्यते। भोक्ष्यते योक्ष्यते। तनिष्यते। मनिष्यति। करिष्यति। करिष्यते। क्रेष्यति। वरिष्यति। वरिष्यते। ग्रहीष्यति। ग्रहीष्यते। चोरयिष्यति। चोरयिष्यते। तन्त्रयिष्यते। वारयिष्यते।

इस प्रकार से भविष्यति प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ क्रियातिपत्ति प्रकरण प्रारम्भ

'भूतकरणवत्यश्च' सूत्र से भूतकाल में "क्रियातिपत्ति" विभक्ति होती है। क्रिया के अतिपतन को क्रियातिपत्ति कहते हैं—"इसमें दो वाक्यों का प्रयोग करना पड़ता है तभी एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया का अधिपतन होता है।

अड्धात्वादिर्ह्यस्तन्यद्यतनीक्रियातिपत्तिषु" सूत्र ४७ से क्रियातिपत्ति में अट् का आगम होता है। अभविष्यत् अभविष्यतां अभविष्यन् अभविष्यः अभविष्यतं अभविष्यत अभविष्यम् अभविष्याव अभविष्याम। ऐधिष्यत। अपक्ष्यत्। अनन्दिष्यत्। अस्रंसिष्यत्। अभ्रंसिष्यत। अध्वंसिष्यत। अव्यास्यत। आत्स्यत। अशयिष्यत। अवक्ष्यत्। अवक्षयत। अहोष्यत्। अहास्यत। अधास्यत्। अधास्यत। अदेविष्यत्। असविष्यत्। विकल्प से—असोष्यत। अशिष्यत्। आक्ष्यत। अचेष्यत्। अचेष्यत। अतोत्स्यत्। अमरिष्यत्। अभोक्ष्यत्। अमोक्ष्यत। अरोत्स्यत् अभोक्ष्यत। अयोश्यत्। अयोक्ष्यत। अतनिष्यत्। अमनिष्यत। अकरिष्यत्। अवरिष्यत। अवरीष्यत। अग्रहीष्यत् अग्रहीष्यत। अचोरयिष्यत्। अचोरयिष्यत। अतन्त्रयिष्यत। अवारयिष्यत्। अवारयिष्यत। पल-रक्षण करना। उभयपदी। अपालयिष्यत्। अपालयिष्यत। अर्च-पूजा। आर्चयिष्यत्। इसी प्रकार से सभी समझना चाहिए।

इस प्रकार से क्रियातिपत्ति प्रकरण समाप्त हुआ।

अथाद्यतन्याः क्वचिद्विशेषः उच्यते

इजात्मनेपदे प्रथमैकवचने ॥३५९ ॥

पद्धातोरिज्भवति कर्तर्यद्यतन्यामात्मनेपदे प्रथमैकवचने परे ।

इचस्तलोपः ॥३६० ॥

इचः परस्तलोपो भवति । उदपादि उदपत्सातां उदपत्सत । उदपत्थाः उदपत्साथां उदपद्ध्वं । उदपत्सि उदपत्स्वहि उदपत्स्महि । समपादि ।

दीपजनबुधपूरितायिप्यायिभ्यो वा ॥३६१ ॥

एभ्यो वा इज भवति कर्त्तर्यद्यतन्यामात्मनेपदे प्रथमैकवचने परे । दीपी दीप्तौ । अदीपि अदीपिष्ट ।

जनिवध्योश्च ॥३६२ ॥

जनिवध्योरुपधाभूतस्य दीर्घस्य ह्रस्वो भवति इचि परे । जनी प्रादुर्भावे । अजनि अजनिष्ट । अवधि अवधिष्ट । बुध अवबोधने । अबोधि । अबुद्ध । हचतुर्थान्तस्य धातोस्तृतीयादेरादिचतुर्थत्वमकृतवत् । अभुत्सत् अभुत्साताम् अभुत्सत । पूरी आप्यायने । अपूरि । तायृ सन्तानपालनयोः । स्फायी ओप्यायी वृद्धौ । अतायि अतायिष्ट । अप्यायि अप्यायिष्ट । इति विशेषः ।

भावकर्मणोरद्यतन्यादयः प्रदर्श्यन्ते ।

भावकर्मणोश्च ॥३६३ ॥

अथ अद्यतनी में कुछ विशेषता बताई जाती है ।

अद्यतनी के आत्मनेपद में प्रथमा के एकवचन में कर्ता में पद् धातु से इच् होता है ॥३५९ ॥

इच् से परे 'त' का लोप हो जाता है ॥३६० ॥

उत् अपादि = उदपादि + उदपत्सातां उदपत्सत । उदपत्थाः उदपत्साथां उदपद्ध्वं उदपत्सि उदपत्स्वहि उदपत्स्महि । समपादि ।

दीप, जन, बुध पूरि, तायि, प्यायि धातु से प्रथमैकवचन में विकल्प से इच् होता है ॥३६१ ॥

दीपी-दीप्त होना । अदीपि । इच् के अभाव में-अदीपिष्ट ।

इच् के आने पर जन् और वध की उपधा को ह्रस्व हो जाता है ॥३६२ ॥

जनी-प्रादुर्भावे । अजनि अजनिष्ट । अवधि, अवधिष्ट । बुध-अवबोधन करना । अबोधि, अबुद्ध "हचतुर्थांतस्य धातोस्तृतीयादेरादिचतुर्थत्वमकृतवत्" सूत्र से तृतीय को चतुर्थ अक्षर होकर अभुत्सत् । पूरी-पूर्ण करना । अपूरि । तायृ-सन्तान और पालन अर्थ में है । स्फायी, ओप्यायीवृद्धि अर्थ में हैं । अतायि, अतायिष्ट । अप्यायि, अप्यायिष्ट ।

इस प्रकार से विशेष प्रकरण हुआ ।

भाव और कर्म में अद्यतनी आदि को दिखाते हैं ।

भाव और कर्म में सभी धातु से इच् होता है ॥३६३ ॥

सर्वस्माद्धातोरिज्भवति भावकर्मणोर्विहिते अद्यतन्यामात्मनेपदे प्रथमैकवचने परे । अभावि । कर्मणि अन्वभावि । ऐधि । अपाचि । अनन्दि । अस्तम्भि । अभ्रंसि । अध्वंसि ।

आयिरिच्यादन्तानाम् ॥३६४ ॥

आदन्तानां धातूनामायिर्भवतीचि परे ॥ अवायि । अव्यायि । अपायि । अधायि अदायि । ग्लै हर्षक्षये । अग्लायि । म्लै गात्रविनामे । अम्लायि । अगायि । अमायि । अस्थायि । अवासायि । अरायि । अशायि । अवाचि । अहावि । अधायि । अद्रायि । अभारि । अदेवि । असावि । अजायि ।

उपसर्गात्सुनोतिसुवतिस्यतिस्तौतिस्तोभतीनामडन्तरोपि ॥३६५ ॥

उपसर्गस्थनिमित्तात्परेषामडन्तरोपि षत्वमापद्यते । अपिशब्दादनन्तरोपि ॥ अभ्यषावि । आशायि । अचायि । अतोदि । अमारि । अमोचि । अरोधि । अभोजि । अयोजि । अतानि । अमानि । अकारि । अक्रायि । अवारि । अग्रायि । अचोरि । अपालि । अतन्त्रि । अवारि । आर्चि । अद्यतनी समाप्ता ॥ बभूवे देवदत्तेन । एधाञ्चक्रे ॥ पेचे । इत्यादि ॥ इति परोक्षा ॥ भविता देवदत्तेन । एधिता । पक्ता । इति श्वस्तनी समाप्ता ॥ आशीः । भविषीष्ट देवदत्तेन । एधिषीष्ट । पक्षीष्ट । भविष्यन्ती । भविष्यते देवदत्तेन । एधिष्यते । पक्ष्यते । इत्यादि ॥ क्रियातिपत्तिः । अभविष्यत देवदत्तेन । एधिष्यत । अपक्ष्यत इत्यादि ॥

स्यसिजाशीःश्वस्तनीषु भावकर्मार्थासु स्वरहनग्रहदृशामिडिज्वद्वा ॥३६६ ॥

अद्यतनी के आत्मनेपद में प्रथमा के एकवचन में इच् होता है । भू-अभावि । कर्म में-अन्वभावि । ऐधि । अपाचि । अनन्दि । अस्तंभि । अभ्रंसि । अध्वंसि ।

इच् के परे आदन्त धातु को 'आय्' होता है ॥३६४ ॥

वेञ्-अवायि । व्येञ्-अव्यायि । पा-अपायि । अधायि । अदायि । अग्लायि । अम्लायि । अगायि । अमायि । अस्थायि । अवासायि । अरायि । अशायि । अहावि । अधायि । अदायि । अभारि । अदेवि । असावि । अजायि ।

उपसर्ग से परे सु सो, स्तु, स्तुम धातु में अट् अन्तर में होते हुए भी 'ष' हो जाता है ॥३६५ ॥

अपि शब्द से अनन्तर में भी 'ष' हो जाता है ।

अभ्यषायि । अशायि । अचायि । अतोदि । अमारि । अमोचि । अरोधि । अभोजि । अतानि । अकारि । अक्रायि । अचोरि । आर्चि । इस प्रकार से अद्यतनी समाप्त हुई ।

परोक्षा में—बभूवे देवदत्तेन । एधांचक्रे । पेचे । इत्यादि । श्वस्तनी में—भविता देवदत्तेन । ऐधिता । पक्ता । इत्यादि । आशीः में—भविषीष्ट देवदत्तेन । एधिषीष्ट । पक्षीष्ट । आदि । भविष्यन्ती में—भविष्यते देवदत्तेन । एधिष्यते । पक्ष्यते । आदि । क्रियातिपत्ति में—अभविष्यत देवदत्तेन । ऐधिष्यत । अपक्ष्यत आदि ।

भाव, कर्म और अर्थ में स्य सिच् आशी और श्वस्तनी के आने पर स्वर हन् ग्रह दृश् धातु में इट् को इच् वत् विकल्प से होता है ॥३६६ ॥

भावकर्मार्थासु स्यसिजाशीःश्वस्तनीषु परतः स्वरहनग्रहदृशामिड् इज्वद्भवति वा। अन्वभावि अन्वभाविषातां अन्वभाविषत। अन्वभाविष्ठाः अन्वभाविषाथां अन्वभाविढ्वं ॥ अन्वभाविषि अन्वभाविष्वहि अन्वभाविष्महि। अन्वभवि अन्वभविषातां अन्वभविषत। असाविषातां। असाविषत। असोषातां असोषत। असविषातां। असविषत।

***हस्य हन्तेर्घिरिनिचोः ॥३६७॥**

हन्तेर्हस्य घिर्भवति इनिचोः परतः। अघानि अघानिषातां अघानिषत॥

हनिमन्यतेर्नात् ॥३६८॥

आभ्यां परमसार्वधातुकमनिड् भवति। अहसातां अहसत।

हनेः सिच्यात्मने दृष्टः सूचनेर्थे यसेरपि।
विवाहे तु विभाषैव सिजाशिषोर्गमेस्तथा॥

आत्मनेपदे वा ॥३६९॥

अद्यतन्यामात्मनेपदे परे हन्तेर्वधिरादेशो वा भवति। अवधि अवधिषातां अवधिषत।

नेज्वदिटः ॥३७०॥

इज्वदिटो दीर्घो न भवति। अग्राहिषातां अग्राहिषत। अग्रहीषातां अग्रहीषत। अदर्शि अदर्शिषातां अदर्शिषत। अदृक्षातां अदृक्षत्। अदृष्ठाः अदृक्षाथां अदृड्ढ्वं॥ श्वस्तनी। भाविता भविता। साविता सविता। सोता। घानिता। हन्ता। ग्राहिता। ग्रहीता। दर्शिता। दृष्टा॥ आशीः। भविषीष्ट। भविषीष्ट। साविषीष्ट सविषीष्ट। सोषीष्ट॥

हन्तेर्वधिराशिषि ॥३७१॥

अन्वभावि अन्वभाविषातां अन्वभाविषत। अन्वभवि। असावि असाविषातां असाविषत। असोषातां असोषत। असविषतां।

इन् और इच् के आने पर हन् के ह को घ हो जाता है ॥३६७॥

अघानि अघानिषातां अघानिषत।

हन् और मन् से परे असार्वधातुक अनिट् होता है ॥३६८॥

अहसातां अहसत।

श्लोकार्थ—सिच् और आत्मनेपद में हन धातु से आत्मनेपद होने पर सिच् प्रत्यय परे इट् का अभाव होता है यम धातु से सूचना अर्थ में इट का अभाव होता है विवाह अर्थ में तो विकल्प से होता है तथा गम धातु से सिच् और आशीर्वाद में इट् का अभाव होता है।

अद्यतनी में आत्मनेपद के आने पर हन् को वध आदेश विकल्प से होता है।।३६९॥

अवधि अवधिषातां अवधिषत।

इच् के समान इट् को दीर्घ नहीं होता है ॥३७०॥

अग्राहिषातां अग्राहिषत्। अग्रहीषातां अग्रहीषत। अदर्शि अदर्शिषातां अदर्शिषत। अदृक्षातां अदृक्षत। श्वस्तनी में—भाविता भविता। साविता, सविता, सोता। घानिता, हन्ता। दर्शिता दृष्टा आदि।

आशी में—भाविषीष्ट, भविषीष्ट।

आशिष् के आने पर हन् को वध आदेश होता है ॥३७१॥

हन्तेर्वधिरादेशो भवति आशिषि च परे। वाधिषीष्ट वधिषीष्ट। ग्राहिषीष्ट। ग्रहीषीष्ट। दर्शिषीष्ट। दृक्षीष्ट॥ भविष्यन्ती। भाविष्यते भविष्यते। साविष्यते सविष्यते। चायिष्यते चेष्यते। घानिष्यते हनिष्यते। ग्राहिष्यते। ग्रहीष्यते। दर्शिष्यते दृक्ष्यते॥ क्रियातिपत्त्यां। अभाविष्यत अभविष्यत। असाविष्यत असविष्यत असोष्यत। अचायिष्यत अचेष्यत। अघानिष्यत। अहनिष्यत। अग्राहिष्यत अग्रहीष्यत। अदर्शिष्यत अदृक्ष्यत। इत्यादि। एवं सर्वमुन्नेयं। ❑

अथ सनादिप्रत्ययान्ता धातवः प्रदर्श्यन्ते

गुप्तिज्किद्भ्यः सन्॥३७२॥

गुप् तिज् कित् एभ्यः परः सन् भवति स्वार्थे।

गुपादेश्च॥३७३॥

गुपादेः सनि परे नेड् भवति।

स्मिङ्पूङ्रञ्ज्वशकृगृदृधृप्रच्छां सनि॥३७४॥

एषां धातूनां सनि परे इडागमो भवति। इति स्मिङादिनियमाभावात्।

सनि चानिटि॥३७५॥

नामिन उपधाया गुणो न भवति अनिटि सनि परे। द्विर्वचनमभ्यासकार्यं च कार्यं।

ते धावतः॥३७६॥

ते सनादिप्रत्ययान्ताः शब्दाः धातुसंज्ञा भवन्ति।

पूर्ववत्सनन्तात्॥३७७॥

वाधिषीष्ट, वधिषीष्ट। ग्राहिषीष्ट, ग्रहीषीष्ट। दर्शिषीष्ट दृक्षीष्ट।

भविष्यन्ती में—भाविष्यते। भविष्यते। चायिष्यते। चेष्यते। घानिष्यते हनिष्यते। ग्राहिष्यते ग्रहीष्यते। दर्शिष्यते, द्रक्ष्यते।

क्रियातिपत्ति में—अभाविष्यत अभविष्यत। असाविष्यत असविष्यत असोष्यत। अचायिष्यत अचेष्यत। अघानिष्यत अहनिष्यत। अग्राहिष्यत अग्रहीष्यत। अदर्शिष्यत। अद्रक्ष्यत। इत्यादि। इसी प्रकार सभी समझ लेना चाहिये। ❑

अथ सनादिप्रत्ययान्त धातु कहे जाते हैं।

गुप् तिज् कित् से परे स्वार्थ में सन् प्रत्यय होता है॥३७२॥

गुपादि से सन् प्रत्यय के आने पर इट् नहीं होता है॥३७३॥

स्मिङ् पूङ् रञ्जु आदि धातु को सन् के आने पर इट् का आगम हो जाता है॥३७४॥

इस प्रकार से स्मिङ् आदि के नियम का अभाव है।

अनिट् सन् के आने पर नामि की उपधा को गुण नहीं होता है॥३७५॥

सन् प्रत्यय के आने पर द्वित्व एवं अभ्यास कार्य भी होते हैं।

गुप् गुप् सन् ते जुगुप् स ते

वे सनादि प्रत्ययान्त शब्द धातु संज्ञक होते हैं॥३७६॥

अर्थात् जो धातु आत्मनेपदी है वह आत्मनेपद होता है अतः जुगुप्ससे आत्मनेपद हुआ।

सन्नंत धातु से पूर्ववत् पद संज्ञा होती है॥३७७॥

सनन्ताद्धातोः पूर्ववत्पदं भवति ॥ गुप् गोपनकुत्सनयोः । जुगुप्सते मां जुगुप्सेते । जुगुप्सन्ते । जुगुप्सेत । जुगुप्सतां अजुगुप्सत ।

अस्य च लोपः ॥३७८ ॥

धातोरस्य लोपो भवत्यननि प्रत्यये परे । अजुगुप्सिष्ट । जुगुप्साञ्चक्रे । जुगुप्सिता । जुगुप्सिषीष्ट । जुगुप्सिष्यते । अजुगुप्सिष्यत ॥ तिज निशाने क्षमायाञ्च । तितिक्षते ॥ कित निवासे रोगापनयने च । विचिकित्सति । अकारोच्चारणं किं ? स्वरादेर्द्वितीयस्येति सन एव द्विर्वचनार्थं । तेन अर्थान् प्रतीषिषति ।

मान्बधदान्शान्भ्यो दीर्घश्चाभ्यासस्य ॥३७९ ॥

मानादिभ्यो धातुभ्यः परः सन् भवति तेषां धातूनामभ्यासस्य दीर्घो भवति स्वार्थे ॥ मानपूजायां । मोमांसते । बध बन्धने । बीभत्सते । दान अवखण्डने । दीदांसते । शान तेजने । शीशांसति । शीशांसते ।

गुपो बधेश्च निन्दायां क्षमायां च तथा तिजः ॥
संशये च प्रतीकारे कितः सन्नभिधीयते ॥१ ॥
जिज्ञासावज्ञयोरेव मानदानोर्विधीयते ॥
निशानेऽर्थे तथा शानो नायमर्थान्तरे क्वचित् ॥२ ॥

धातोर्वा तुमन्तादिच्छतिनैककर्तृकात् ॥३८० ॥

तुमन्तादिच्छतिना सह एककर्तृकाद्धातोः परः सन् वा भवति ।

उवर्णान्ताच्च ॥३८१ ॥

गुप्-गोपन और कुत्सन अर्थ में है । जुगुप्सते । जुगुप्सेत । जुगुप्सतां । अजुगुप्सत ।

अन् प्रत्यय के न होने पर धातु के अकार का लोप होता है ॥३७८ ॥

अजुगुप्सिष्ट । जुगुप्साञ्चक्रे । जुगुप्सिता । जुगुप्सिषीष्ट जुगुप्सिष्यते । अजुगुप्सिष्यत । तिज-निशान और क्षमा अर्थ है । तितिक्षते । कित-निवास और रोग को दूर करना । चिकित्सति । अकार का उच्चारण क्यों ? 'स्वरादेर्द्वितीयस्य' इस सूत्र से सन् प्रत्यय में द्वित्व होता है ।

मान् वध, दान, शान् से परे सन् होता है और स्वार्थ में धातु के अभ्यास को दीर्घ होता है ॥३७९ ॥

मान-पूजा अर्थ में है "सन्यवर्णयस्य" २९७ सूत्र से अभ्यास को इत्व होकर इसी ३७९ सूत्र से दीर्घ होकर मीमांसते बना । बध-बन्धन होना । बीभत्सते । दान-अवखण्डन करना । दीदांसते । शान-तेज अर्थ में है । शीशांसति । शीशांसते ।

श्लोकार्थ—गुप और वध धातु निंदा अर्थ में तिज धातु तितिक्षा क्षमा अर्थ में कित धातु संशय और प्रतीकार अर्थ में हैं ॥१ ॥

मान और दान धातु जिज्ञासा और अवज्ञा अर्थ में एवं शान् धातु निशान अर्थ में हैं ये क्वचित् अर्थांतर में नहीं हैं ॥२ ॥

तुमन्त से इच्छति धातु के साथ एक कर्तृक, धातु से परे सन् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥३८० ॥

उवर्णान्त धातु से सन् के आने पर इट् नहीं होता है ॥३८१ ॥

उवर्णान्ताद्धातोर्नेड् भवति सनि परे। भवितुमिच्छति बुभूषति। एदिधिषते। पिपक्षति। पिपक्षते। निनन्दिषति। सिस्रंसिषते। बिभ्रंशिषते। दिध्वंसिषते। विवासति। विवासते। विव्यासति। विव्यासते।

जेर्गिः सन्परोक्षयोः ॥३८२॥

जयतेर्गिर्भवति सन्परोक्षयोः परतः।

स्वरान्तानां सनि ॥३८३॥

स्वरान्तानां धातूनां दीर्घो भवति सनि परे।

नाम्यन्तानामनिटाम् ॥३८४॥

नाम्यन्तानां धातुनामनिटां सनि गुणो न भवति। विजिगीषते। परोक्षायां। जिगाय जिग्यतुः जिग्युः। विजिग्ये विजिग्याते विजिग्यिरे॥ चिचीषति। निनीषति। तुष्टूषति। अदेर्घस्लृ सनद्यतन्योः।

वसतिघसेः सात् ॥३८५॥

आभ्यां परमसार्वधातुकमनिड् भवति।

सस्य सेऽसार्वधातुके तः ॥३८६॥

सस्य तकारो भवति असार्वधातुके सकारे परे। जिघत्सति। वस निवासे। विवत्सति। शिशयिषते। विवक्षति। विवक्षते। जुहूषति। जिहासते।

सनि मिमीमादारभलभशकपतपदामिस् स्वरस्य ॥३८७॥

भवितुं इच्छति—होना चाहता है। यहाँ भवितुं क्रिया और इच्छति क्रिया का कर्ता एक है अतः सन् प्रत्यय आने से 'चण् परोक्षाचेक्रीयितसन्नंतेषु' से द्वित्व होकर 'पूर्वोऽभ्यासः' से पूर्व को अभ्यास हुआ, ह्रस्व हुआ और तृतीय अक्षर होकर बुभूषति अब इसके रूप भवति के समान दशों लकारों में चल जायेंगे। एधितुम् इच्छति = एदिधिषते। पतुम् इच्छति = पिपक्षति। पिपक्षते। नन्दितुम् इच्छति = निनन्दिषति। स्रंसितुम इच्छति = सिस्रंसिषते। बिभ्रंसिषते। दिध्वंसिषते। वातुमिच्छति विवासति। विवासते। वायितुमिच्छति। विव्यासति। विव्यासते। विजेतुम् इच्छति = विजि जि स ति।

सन् और परोक्षा में जि को गि हो जाता है ॥३८२॥

सन् के आने पर स्वरांत धातु को दीर्घ होता है ॥३८३॥

नाम्यन्त अनिट् धातु को सन् के आने पर गुण नहीं होता है ॥३८४॥

विजिगीषते। परोक्षा में—जिगाय जिग्यतुः जिग्युः। विजिग्ये। चेतुम् इच्छति = चिचीषति ३८३ सूत्र से दीर्घ हुआ है। नेतुम् इच्छति = निनीषति। स्तोतुम् इच्छति = तुष्टूषति। अद् को २६२ सूत्र से घस्लृ आदेश होकर।

वस और घस् से असार्वधातुक में इट् नहीं होता है ॥३८५॥

घस् घस् सन् ति क वर्ग को च वर्ग होकर अभ्यास को इवर्ण एवं तृतीय अक्षर होकर जिघस् स ति।

असार्वधातुक सकार के आने पर धातु के सकार को तकार हो जाता है ॥३८६॥

जिघत्सति। वस-निवास करना = विवत्सति। शयितुम् इच्छति। शिशयिषते। वक्तुम् इच्छति = विवक्षति। विवक्षते। होतुम् इच्छति = जुहूषति। हातुम् इच्छति = जिहासते।

मिञ् मीङ् माङ् दा रभ लभ शक पत पद के स्वर को इस् आदेश हो जाता है और सन् के आने पर अभ्यास का लोप हो जाता है ॥३८७॥

मित्रादीनां स्वरस्य इसादेशो भवति अभ्यासलोपश्च सनि परे। डुमिञ् प्रक्षेपणे। मातुमिच्छति मित्सति मित्सते। मीङ् श्लेषणे। मातुमिच्छति मित्सते। मा इति मेङ्माङोरपि ग्रहणं। मातुमिच्छति मित्सते। धित्सति धित्सते। दित्सति। दित्सते। रभ राभस्ये। आरिप्सते। डुलभष् प्राप्तौ। आलिप्सते। शक्लृ शक्तौ। शक्तुमिच्छति शिक्षति। पल शल पत्लृ गतौ। पित्सति। पद गतौ। पित्सते।

इबन्तर्धभ्रस्जदम्भुश्रियूर्णुभरज्ञपिसनिततनिपतिदरिद्रां वा ॥३८८॥

एषां वा इड् भवति सनि परे। देवितुमिच्छति सन् दिदेविषति॥ ऋध वृद्धौ। अर्द्धितुमिच्छति सन् अर्दिधिषति। भ्रस्ज पाके॥ बिभ्रज्जिषति। बिभ्रक्षति अत्र भ्रस्जेर्भृजादेशो वा इति भ्रस्जेस्थाने भृजादेशः। दम्भु दम्भे। दिदम्भिषति। भज श्रिङ् सेवायां। शिश्रयिषति शिश्रीषति। यु मिश्रणे।

उवर्णस्य जान्तस्थापवर्गपरस्यावर्णे ॥३८९॥

जान्तस्थापवर्गपरस्याभ्यासोवर्णस्य इत्वं भवत्यवर्णे परे सनि। यियविषति। युयूषति। जु इति सौत्रोऽयं धातुः। जिजावयिषति॥ टु क्षु रु कु शब्दे। रिरावयिषति। लिलावयिषति। लुनाति कश्चित्तमन्यः प्रयुङ्क्ते। धातोश्च हेताविन्। पिपावयिषति। पिपिविषति। बिभावयिषति। बिभविषति। ऊर्णुञ् आच्छादने। प्रोर्णवितुमिच्छति सन् प्रोर्णुनविषति। बिभरिषति। ज्ञपि। जिज्ञपयिषति ज्ञीप्सति। षणु दाने॥ सिषनिषति।

स्तौतीनन्तयोरेव षणि ॥३९०॥

निमित्तात् परः स्तौतीनन्तयोरेव सः षमापद्यते षणि षत्वभूते सनि परे। इति नियमात्र षत्वम्। सिसासति॥ दरिद्रा दुर्गतौ।

डुमिञ्—प्रक्षेपण करना। मातुम् इच्छति 'सस्य सेऽसार्वधातुकेतः' से स को त् होकर मित्सति। मित्सते। मीङ्-श्लेषण करना। मातुम् इच्छति = मित्सते। मा इससे मेङ् माङ का भी ग्रहण होता है। मातुम् इच्छति = मित्सते। धातुम् इच्छति = धित्सति धित्सते। दातुम् इच्छति = दित्सति दित्सते। रभ-प्रारंभ करना = आरिप्सते डुलभष्-प्राप्त करता है = आलिप्सते। शक्लृ = शक्ति अर्थ में है शक्तुम् इच्छति = शिक्षति। पल शल पत्लृ-गति अर्थ में है। पित्सति। पद-गति अर्थ में है पित्सते।

इप् अन्तः ऋध भ्रस्ज् दम्भु श्रि यु ऊर्ण भर ज्ञप सन् तन् पति दरिद्र शब्दों से सन् के आने पर इट् विकल्प से होता है ॥३८८॥

देवितुम् इच्छति = दिदेविषति। ऋध-वृद्धि होना = अर्द्धितुम् इच्छति = अर्दिधिषति। भ्रस्ज्-भर्ज्जितुम् इच्छति = बिभ्रज्जिषति। बिभ्रक्षति। भ्रस्जको विकल्प से भृज आदेश हो जाता है। दम्भु-दम्भ करना। दिदम्भिषति। भ ज श्रिञ्—सेवा करना। शिश्रयिषति। शिश्रीषति। यु-मिश्रण करना।

जकारान्त प वर्ग से रहित अभ्यास के उ वर्ण को सन् के आने पर इ वर्ण हो जाता है ॥३८९॥

विकल्प से—यियविषति, युयूषति जु यह धातु सूत्र में है। जिजावयिषति। टु, क्षुरु, कु-शब्द करना। रिरावयिषति। लिलावयिषति। कोई काटता है, अन्य कोई उसको प्रेरित करता है इस अर्थ में "धातोश्च हेताविन्"४४७ से पाययितुम् इच्छति = पिपावयिषति। पिपविषति। विभावयितुम् इच्छति विभावयिषति विभविषति। ऊर्णञ्-आच्छादन करना प्रोर्णवितुम् इच्छति। प्रोर्णुन-विषति। भर्तुम् इच्छति = बिभरिषति। ज्ञप्-जिज्ञपयिषति, ज्ञीप्सति। षणु-देना। सिषनिषति।

सन् के आने पर निमित्त से परे स्तौति और इन्नंत में ही स को ष होता है ॥३९०॥

दरिद्रातेरसार्वधातुके ॥३९१ ॥

दरिद्रातेरन्तस्य लोपो भवत्यसार्वधातुके स्वरे परे ॥ दिदरिद्रिषति । अत्र इटि च आकारलोपः ।

छ्वोः शूठौ पञ्चमे च ॥३९२ ॥

छकारवकारयोर्यथासंख्यं शु ऊद् इत्येतौ भवतः क्वौ धुट्यगुणे प्रत्यये पञ्चमे परे । दिद्यूषति ।

ऋधिज्ञपोरीरीतौ ॥३९३ ॥

ऋधिज्ञपोरीरीतौ भवतोऽभ्यासलोपश्च सनि परे । ज्ञीप्सति । ईर्त्सति ।

भृजादीनां षः ॥३९४ ॥

भृजादीनां धातूनामन्तः षो भवति धुट्यन्ते च । इति जकारस्य षकारः । बिभृक्षति ।

दम्भेस्सनि ॥३९५ ॥

दंभेरनुषङ्गो लोप्यो भवत्यनिटि सनि परे । तृतीयादेर्घढधभान्तस्येत्यादिना धत्वं ।

दम्भेरिच्च ॥३९६ ॥

दम्भः स्वरस्य इत् ईच्च भवति अभ्यासलोपश्च सनि परे । धिप्सति । धीप्सति । शिश्रीषति । युयूषति ।

उरोष्ठ्योपधस्य च ॥३९७ ॥

ओष्ठ्योपधस्य ऋदन्तस्य उर् भवति अगुणे प्रत्यये परे । नामिनो र्वोरकुर्च्छुर्व्यञ्जने इत्युपधाया दीर्घो भवति । बुभूर्षति ।

इस नियम से ष नहीं हुआ तो सिसासति । दरिद्रा-दुर्गति अर्थ में है ।

असार्वधातुक स्वर के आने पर दरिद्रा के अन्त का लोप हो जाता है ॥३९१ ॥

दिदरिद्रिषति । यहाँ आकार का लोप और इट् हुआ है ।

क्वि, धुट् अगुण, प्रत्यय पञ्चम के आने पर छकार वकार को क्रम से शु और ऊठ हो जाता है ॥३९२ ॥

दिधूषति ।

सन् के आने पर ऋध ज्ञप् को 'ई' 'ईत्' हो जाता है और अभ्यास का लोप हो जाता है ॥३९३ ॥

ज्ञीप्सति । ईर्त्सति ।

धुट् अन्त में आने पर भृजादि धातु के अंत को 'ष' होता है ॥३९४ ॥

इस प्रकार से जकार को षकार हो गया है बिभृक्षति ।

अनिट् सन् के आने पर दम्भ के अनुषंग का लोप हो जाता है ॥३९५ ॥

"तृतीयादेघढधभान्तस्य ......" १४४वें सूत्र से धकार हो गया है ।

सन् के आने पर दंभ के स्वर को इत् ईत् हो जाता है और अभ्यास का लोप हो जाता है ॥३९६ ॥

द् को ध् अनुषंग का लोप अ को इ और ई तथा भ् को प् होकर धिप्सति, धीप्सति । शिश्रीषति युयूषति ।

अगुण प्रत्यय के आने पर ओष्ठ्य की उपधा के ऋदन्त को उर् हो जाता है ॥३९७ ॥

"नामिनोर्वो ....." इत्यादि सूत्र १८३ से उपधा को दीर्घ होकर बुभूर्षति बना ।

पञ्चमोपधाया धुटि चागुणे ॥३९८ ॥

पञ्चमस्योपधाया दीर्घो भवति क्वौ धुट्यगुणे प्रत्यये परे।

वनतितनोत्यादिप्रतिषिद्धेटां धुटि पञ्चमोऽच्चातः ॥३९९ ॥

वनतेस्तनोत्यादेः प्रतिषिद्धेटां च धातूनां पञ्चमो लोप्यो भवति आतश्च अद्भवति यथासंभवं क्वौ धुट्यगुणे पञ्चमे प्रत्यये परतः अनद्यतने धुटि परे। धुटि खनिसनिजनां पञ्चमस्याकार इति नकारस्थाने आकारादेशः। षणु दाने। सिषासति पिपतिषति। पिपित्सति। पतितुमिच्छति।

तनोतेरनिटि वा ॥४०० ॥

तनोतेरुपधाया दीर्घो भवति अनिटि सनि परे। तितांसति। तितंसति। तितनिषति। दरिद्रातेरसार्वधातुक इत्यन्तलोपे प्राप्ते।

अनिटि सनि ॥४०१ ॥

अनिटि सनि परे दरिद्रातेरन्त्यस्य लोपो न। दरिद्रासति। दरिद्रिषति।

स्तौतीनन्तयोरेव षणि ॥४०२ ॥

निमित्तात्परः प्रत्ययविकारागमस्थः स्तौतीनन्तयोरेव सः षमापद्यते षत्वभूते सनि परे। तुष्टूषति। सिषेवयिषति। इति नियमात्। सूसूषति। निनत्सति। निनत्सते। "स्मिङ्पूरञ्ज्वशकृगृदृधृप्रच्छां सनि"। स्मिङ्ग ईषद्धसने। सिस्मयिषते। पूङ्ग पिपविषते।

पूञस्तु न स्यात् ॥४०३ ॥

क्वि एवं धुट् अगुण प्रत्यय के आने पर पञ्चम की उपधा को दीर्घ हो जाता है ॥३९८ ॥

पञ्चम के उपधा को दीर्घ होकर तनितुं इच्छति—तितांसति।

वन, तन, आदि इट् रहित धातु के पञ्चम का लोप होता है। क्वि, धुट् अगुण पञ्चम प्रत्यय के आने पर आत् को अत् होता है ॥३९९ ॥

"धुट् के आने पर खन सन जन के पञ्चम अक्षर को अकार" अर्थात् ७०४ सूत्र से नकार को अकार हो जाता है। षणु—दान देना = सिषासति। पतितुम् इच्छति = पिपतिषिति। पिपित्सति।

अनिट् सन् के आने पर तन् की उपधा को दीर्घ विकल्प से होता है ॥४०० ॥

तितांसति, तितंसति, तितनिषति। "दरिद्रातेरसार्वधातुके" ३९१ से अन्त्य का लोप प्राप्त था—

अनिट् सन् के आने पर दरिद्रा के अन्त्य का लोप नहीं होता है ॥४०१ ॥

दरिद्रासति। दरिद्रिषति। [दिदरिद्रासति। दिदरिद्रिषति।]

निमित्त से परे प्रत्ययविकारागमस्थ स्तौति और इन्नंत का सकार षकार हो जाता है षत्वभूत सन् के आने पर ॥४०२ ॥

तुष्टूषति। सिसेवयिषति। इस नियम से सुसूषति। निनत्सति। निनत्सते। "स्मिङ पूङ रञ्ज्व शक् गृदृधृप्रच्छांसनि" सूत्र ३७४ से इट् होने से—स्मिङ्-किंचित् हंसना-मुस्कराना। सिस्मयिषते। पूङ्-पिपविषते।

पूञ् धातु से इट् नहीं होता है ॥४०३ ॥

पवितुं इच्छति = पुपूषति। ऋ—अरिरिषति। अञ्ज-अञ्जिजिषति। अश् = अशिशिषति। री-म्

पूञ् धातोः पर इड् न स्यात्। पूञ् पवने। पवितुमिच्छति पुपूषति। ऋ अरिरिषति। अंज अञ्जिजिषति। अश् अशिशिषति। चिकरिषति। गृ निगरणे। जिगरिषति। जिग लिषति। दृञ् अनादरे। दिदरिषति। धृञ् अनवस्थाने दिधरिषति।

ग्रहिस्वपिप्रच्छां सनि ॥४०४॥

एषां सम्प्रसारणं भवति सनि परे। पिपृच्छिषति। सुषुप्सति।

चेः किर्वा ॥४०५॥

चेः किर्भवति वा परोक्षायां सनि च परे। चिकीषति। चिकीषते। तुतुत्सति। मुमूर्षति मुमूर्षते। मुमुक्षति। मुमुक्षते। रुरुत्सति। बुभुक्षते। युयुक्षति युयुक्षते।

ऋदन्तस्येरगुणे ॥४०६॥

ऋदन्तस्य इर भवति अगुणे परे। चिकीर्षति। चिकीर्षते। चिक्रीषति। चिक्रीषते।

वृङ्वृञोश्च ॥४०७॥

वृङ्वृञोश्च ऋकारस्य उर् भवत्यगुणे परे। वुवूर्षते। विवरिषते।

ग्रहिगुहोः सनि ॥४०८॥

ग्रहिगुहोः सनि नेड् भवति। जिघृक्षति। जिघृक्षते। गुहू संवरणे। जुघुक्षति। चोरयितुमिच्छति सन्। चुचोरयिषति। तन्त्रयितुमिच्छति। सन्। तितन्त्रयिषति। विवारयिषति। विवारयिषते। इत्यादि। एवं सर्वमुन्नेयं।

इति सनन्तः समाप्तः। ❑

कृ = चिकरिषति। गृ-जिगरिषति। जिगलिषति। दृञ् = अनादर करना। दिदरिषति। धृञ्-घूमना, दिधरिषति।

सन् के आने पर गृह स्वप और प्रच्छ को संप्रसारण हो जाता है ॥४०४॥

पिपृच्छिषति। सुषुप्सति।

परोक्षा और सन् में चवर्ग को कवर्ग होता है ॥४०५॥

चेतुम् इच्छति = चिकीषति। चिकीषते। तुतुत्सति। मर्तुम् इच्छति—ऋ को उर् और उपधा को दीर्घ होकर मुमूर्षति। मुमूर्षते। मोक्तुम् इच्छति = मुमुक्षति। मुमुक्षते। रुधिर-रुरुत्सति। भोक्तुम् इच्छति = बुभुक्षते। युयुक्षति। युयुक्षते।

अगुण में ऋदंत को इर् होता है ॥४०६॥

कर्तुम् इच्छति चिकीर्षति। चिकीर्षते। क्री—खरीदना चिक्रीषति। चिक्रीषते।

अगुण के आने पर वृञ् और वृङ् के ऋकार को उर् होता है ॥४०७॥

वुवूर्षते। विवरिषते।

सन् के आने पर ग्रह और गुह को इट् नहीं होता है ॥४०८॥

ग्रह, ग्रह् कवर्ग को चवर्ग होकर ज ग्रह अभ्यास को इवर्ण, ग्रह को संप्रसारण तृतीय को चतुर्थ अक्षर घृ एवं "हो ढः" से ढ "षढोः कः से" सूत्र से क् होकर चिघृक्षते। गुहू—संवरण करना। जुघुक्षति। चोरयितुम् इच्छति = चुचोरयिषति। तंत्रयितुं इच्छति = तितन्त्रयिषति। विवारयिषति। विवारयिषते। इत्यादि।

इस प्रकार से सन्नंत प्रकरण समाप्त हुआ। ❑

धातोर्यशब्दश्चेक्रीयितं क्रियासमभिहारे ॥४०९ ॥

क्रियासमभिहारे वर्तमानाद्धातोर्व्यञ्जनादेर्यशब्दग्रहणाधिक्याच्चेक्रीयितसंज्ञको यो भवति क्रियासमभिहारे। शुभरुचादिवर्जितादेकस्वरत्परो यशब्दो भवति। क्रियासमभिहारः पौनःपुन्यं भृशार्थो वा। भृशं भवति पुनः पुनर्वा भवति।

गुणश्चेक्रीयिते ॥४१० ॥

अभ्यासस्य गुणो भवति चेक्रीयिते प्रत्यये परे।

चेक्रीयितान्तात् ॥४११ ॥

चेक्रीयितान्ताद्धातोः कर्तर्यात्मनेपदं भवति। बोभूयते। बोभूयेत। बोभूयतां। अबोभूयत। अस्य च इति लोपः। अबोभूयिष्ट। बोभूयाञ्चक्रे। बोभूयिता। बोभूयिषीष्ट। अबोभूयिष्ट। अबोभूयिष्यत।

दीर्घोऽनागमस्य ॥४१२ ॥

अनागमस्याभ्यासस्य दीर्घो भवति चेक्रीयिते प्रत्यये परे। पापच्यते। पापच्येत। पापच्यतां। अपापच्यत।

यस्यानिनि ॥४१३ ॥

व्यञ्जनात्परस्य यस्य लोपो भवति अननि प्रत्यये परे। अपापचिष्ट।

गत्यर्थात्कौटिल्ये च ॥४१४ ॥

गत्यर्थाद्धातोः कौटिल्येऽर्थे चेक्रीयितसंज्ञको यो भवति।

अथ चेक्रीयित प्रत्ययान्त धातु प्रकरण प्रारंभ।

क्रिया समभिहार में धातु से चेक्रीयित प्रत्यय 'य' होता है ॥४०९ ॥

क्रिया समभिहार अर्थ में वर्तमान धातु से व्यञ्जनादि 'य' शब्द ग्रहण की अधिकता से चेक्रीयित संज्ञक 'य' प्रत्यय होता है।

शुभ रुचादिवर्जित एकस्वर से परे 'य' प्रत्यय होता है।

क्रिया समभिहार किसे कहते हैं ? पौनः पुन्यं भृशार्थो वा पुनः पुनः अथवा अतिशय अर्थ को क्रिया समभिहार कहते हैं। भृशं भवति, पुनः पुनर्वा भवति। भूभू य "चण् परोक्षा चेक्रीयित सन्नंतेषु" सूत्र से द्वित्व होकर अभ्यास को तृतीय अक्षर हो गया है।

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर अभ्यास को गुण होता है ॥४१० ॥

चेक्रीयितान्त धातु से कर्ता में आत्मनेपद होता है ॥४११ ॥

'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर ते विभक्ति आकर बोभूयते बना। बोभूयेत, बोभूयतां अबोभूयत। 'अस्य च' सूत्र से अकार का लोप होकर इट् सिच् होकर अबोभूयिष्ट। बोभूयाञ्चक्रे बोभूयिता। बोभूयिषीष्ट। बोभूयिष्यते। अबोभूयिष्यत। पपच् यते।

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर अनागम अभ्यास को दीर्घ हो जाता है ॥४१२ ॥

पापच्यते। पापच्येत। पापच्यतां। अपापच्यत।

अन् प्रत्यय के न आने पर व्यंजन से परे 'य' का लोप हो जाता है ॥४१३ ॥

इट् सिच् होकर अपापचिष्ट। इत्यादि। क्रमु—पादविक्षेपण करना।

गत्यर्थ धातु से कुटिलता अर्थ में चेक्रीयित संज्ञक 'य' प्रत्यय होता है ॥४१४ ॥

अतोन्तोऽनुस्वारोऽनुनासिकान्तस्य ॥४१५ ॥

अनुनासिकान्तस्य धातोरभ्यासस्यान्ते अनुस्वारागमो भवति चेक्रीयिते परे । चंक्रम्यते । कुटिल इति किम् ? भृशं पुनः पुनर्वा क्रामति ।

वञ्चिस्रंसिध्वंसिभ्रंसिकसिपतिपदिस्कन्दामन्तो नी ॥४१६ ॥

एषामभ्यासस्यान्तो नी आगमो भवति चेक्रीयिते प्रत्यये परे। वनीवच्यते। अनिदनुबन्धानामगुणेनुषङ्गलोपः । अत्यर्थं स्रंसते सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते । कस गतौ । कसि गतिशासनयोः । अत्यर्थं कसति चनीकस्यते । पनीपत्यते । स्कन्दिर् गतिशोषणयोः । चनीष्कद्यते ।

घ्राध्मोरी ॥४१७ ॥

घ्राध्मोरित्येतयोराकारस्य ईकारो भवति चेक्रीयिते प्रत्यये परे । जेघ्रीयते । देध्मीयते । "हन्तेर्घ्नी वा वक्तव्यं" हन्तेर्घ्नी वा भवति चेक्रीयिते प्रत्यये परे अत्यर्थं हन्ति जेघ्नीयते ।

अभ्यासाच्च ॥४१८ ॥

अभ्यासात्परस्य हन्तेर्हस्य घो भवति ।

अतोन्तोऽनुस्वारोऽनुनासिकान्तस्य ॥४१९ ॥

धातोरभ्यासस्य अतः अकारास्यान्तोऽनुस्वारागमो भवति चेक्रीयिते परे । जंघन्यते ।

ये वा ॥४२० ॥

अनुनासिकान्त धातु से चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर अभ्यास के अंत में अनुस्वार का आगम हो जाता है ॥४१५ ॥

च क्रम्यते = चंक्रम्यते । कुटिल अर्थ में हो ऐसा क्यों कहा ? भृशं पुनः पुनर्वा क्रामति यहाँ चेक्रीयित प्रत्यय नहीं हुआ है ।

वञ्च, स्रंस, ध्वंस् भ्रंस कसि पति पदि स्कंद धातु को चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर अभ्यास के अंत में 'नी' का आगम हो जाता है ॥४१६ ॥

'इदनुबंध' को अगुण में अनुषंग का लोप हो गया । वनीवच्यते । अत्यर्थं स्रंसते = सनीस्रस्यते । दनीध्वस्यते । बनीभ्रस्यते । कस—गमन करना । कसि—गमन और शासन । अत्यर्थं कसति = चनीकस्यते । अत्यर्थं पतति = पनीपत्यते । स्कंदिर्—गति और शोषण अर्थ में है । चनीस्कद्यते ।

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर घ्रा और ध्मा के आकार को ईकार हो जाता है ॥४१७ ॥

जेघ्रीयते । देध्मीयते । "हन् को घ्नी विकल्प से होता है" अत्यर्थं हन्ति = जेघ्नीयते । पक्ष में—ज हन् य ते ।

अभ्यास से परे हन् के ह को घ हो जाता है ॥४१८ ॥

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर अनुनासिकांत होने से धातु के अभ्यास के अंत में अनुस्वार का आगम हो जाता है ॥४१९ ॥

जंघन्यते ।

अगुण यकार प्रत्यय के आने पर खन सन जन के अंत को विकल्प से आकार हो जाता है ॥४२० ॥

यकारादावगुणे प्रत्यये परे खनिसनिजनामन्तस्य आकारो भवति वा। खनु अवदारणे। चंखन्यते। चाखायते। षणु दाने। संसन्यते। सासायते। जंजन्यते। जाजायते।

स्वपिस्यमिव्येञां चेक्रीयिते ॥४२१॥

एषां धातूनां सम्प्रसारणं भवति चेक्रीयिते परे। ञिष्वप् शये। सोषुप्यते। स्यम स्वन ध्वन शब्दे। सेसिम्यते। व्येञ् संवरणे। अत्यर्थं व्ययति वेवीयते।

अर्त्त्यट्यश्नात्यूर्णुसूचिसूत्रिमूत्रिभ्यश्च ॥४२२॥

एभ्यः परश्चेक्रीयितसंज्ञको यो भवति।

चेक्रीयिते च ॥४२३॥

अर्त्तिसंयोगाद्योश्च गुणो भवति चेक्रीयिते। अकारस्य रेफरस्य द्विरुक्तिर्भवति यकारेऽपि। अरार्यते। स्मृ ध्यै चिन्तायां। सास्मर्यते। अट् गतौ। अटाट्यते। अश् भोजने। अशाश्यते। प्रणोनूयते। सूच् पैशून्ये। सोसूच्यते। सूत्र अवमोचने। सोसूत्र्यते। मूत्र प्रस्रवणे। मोमूत्र्यते।

अयीर्ये ॥४२४॥

शीङो अय् यो भवति यकारे परे। शाशय्यते। वावच्यते। जोहूयते। जाहीयते। देधीयते। मेमीयते। जेगीयते। पेपीयते। तेष्ठीयते। अवसेषीयते। जेहीयते। देदीव्यते। सोषूयते। नानह्यते। अभिषोषूयते। अशाश्यते। चेचीयते। चायृ पूजानिशामनयोः।

चायः किश्चेक्रीयिते ॥४२५॥

खनु—अवदारण करना—खोदना। चंखन्यते, चाखायते।

षणु—दान देना, संसन्यते, सासायते। जंजन्यते, जाजायते।

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर स्वप, स्यम और व्येञ् धातु को संप्रसारण हो जाता है ॥४२१॥

ञिष्वप—सोषुप्यते। स्यम स्वन ध्वन—शब्द करना। सेसिम्यते। स्यम को संप्रसारण में सिम हुआ है। अत्यर्थं व्ययति। व्ये = वेवीयते। ऋ धातु है—

ऋ, अट् अश, ऊर्णु नु सूचि सूत्रि मूत्रि से परे चेक्रीयित 'य' प्रत्यय होता है। ।४२२॥

चेक्रीयित में ऋ और संयोगादि को गुण होता है ॥४२३॥

यकार के आने पर भी अकार और रकार को द्वित्व होता है। अरार्यते। स्मृ ध्यै—चिंतवन करना। सास्मर्यते। अटाट्यते। ४१२ से अभ्यास को दीर्घ हो रहा है। अश्—भोजन करना = अशाश्यते। प्रोर्णोनूयते। सूत्र—पैशुन्य करना। सोसूच्यते। सूत्र—अवमोचने। सोसूत्र्यते। मूत्र—प्रस्रवण करना। मोमूत्र्यते।

यकार के आने पर शीङ् के अय् को य् हो जाता है ॥४२४॥

शाशय्यते। वावच्यते। जोहूयते। जाहीयते। देधीयते मेमीयते। जेगीयते। पेपीयते। तेष्ठीयते। अवसेषीयते। जेहीयते। देदीव्यते। सोषूयते। नानह्यते। अभिषोषूयते। अशाश्यते। चेचीयते। चाय्—पूजा करना और निशामन करना।

चेक्रीयित के आने पर चाय को कवर्ग हो जाता है ॥४२५॥

चायः किर्भवति चेक्रीयिते परे। अत्यर्थं चायति चेक्रीयते। अत्यर्थं तुदति तोतुद्यते।

ऋत ईदन्तश्च्विचेक्रीयितयिन्नायिषु ॥४२६॥

ऋदन्तस्य च्विचेक्रीयितयिन्आयिषु परत ईदन्तो भवति॥ मेम्रीयते। मोमुच्यते। रोरुध्यते। बोभुज्यते। योयुज्यते। तंतन्यते। मंमन्यते। चेक्रीयते।

जपादीनां च ॥४२७॥

जपादीनामभ्यासस्यान्तोऽनुस्वारागमो भवति चेक्रीयिते परे। जपजभदहदंशभञ्जपश षडेते जपादयः। जप मानसे भृशं पुनः पुनर्वा गर्हितं जपति जञ्जप्यते। जभ जृभी गात्रविनामे। भृशं पुनः पुनर्वा जभति जञ्जभ्यते। दह भस्मीकरणे। दंदह्यते। दंश दशने। दंदश्यते। भञ्जो अवमर्दने। भृशं भनक्ति बम्भज्यते। पश इति सौत्रौ धातुः। भृशं पशति। पंपश्यते।

चरफलोरुच्च परस्यास्य ॥४२८॥

चरफलोरभ्यासस्यान्तोऽनुस्वारागमः परस्यास्योच्च भवति चेक्रीयिते परे। अभ्र वभ्र मभ्र चर रिवि धिवि गत्यर्थाः। भृशं पुनः पुनर्वा गर्हितं चरति चञ्चूर्यते। पंफुल्यते। वेव्रीयते।

ऋमतो रीः ॥४२९॥

ऋमतो धातोरभ्यासस्यान्तो री आगमो भवति। चेक्रीयिते परे। ग्रहीङ् उपादाने—गृहिज्या इत्यादिना संप्रसारणम्। भृशं पुनः पुनर्वा गर्हितं गृह्णाति जरीगृह्यते। नृती गात्रविक्षेपे।

नृतेश्चेक्रीयिते ॥४३०॥

नृतेर्नकारस्य णकारो न भवति चेक्रीयिते परे। नरीनृत्यते। परीपृच्छ्यते। चोचूर्यते। एवं सर्वं वेदितव्यं।

इति चेक्रीयितप्रकरणम्॥

अत्यर्थं चायति = चेकीयते। अत्यर्थं तुदति = तोतुद्यते।

च्वि चेक्रीयित यिन् और आय, प्रत्यय के आने पर ऋदन्त के अंत में 'ई' हो जाता है ॥४२६॥

मेम्रीयते। मोमुच्यते। रोरुध्यते। बोभुज्यते। योयुज्यते। तंतन्यते। मंमन्यते। चेक्रीयते।

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर जपादि को अभ्यास के अंत में अनुस्वार का आगम हो जाता है ॥४२७॥

निंदा अर्थ में—जपादि से क्या-क्या लेना ? जप, जभ, दह, दंश, भञ्ज और पश ये छह धातु लेना चाहिये। जप—मानस में जपना। भृशं, पुनः पुनर्वा, गर्हितं जपति = जंजप्यते। जभ् जृभी जंभाई लेना। जञ्जभ्यते। दह—भस्म करना। दंदह्यते। दंश—काटना = दंदश्यते। भञ्जअवमर्दन—तोड़ना। भृशं भनक्ति = बम्भज्यते। पशं यह धातु सूत्र में है। भृशं पशति = पंपश्यते।

चेक्रीयित प्रत्यय के आने पर चर फल के अभ्यास के अंत में अनुस्वार आगम और पर के अकार को उकार हो जाता है ॥४२८॥

अभ्र वभ्र मभ्र चर रिवि धिवि धातु-गत्यर्थ हैं। भृशं-गर्हितं वा चरति = चञ्चूर्यते। पंफुल्यते।

चेक्रीयित के आने पर ऋकारांत के अभ्यास के अंत में री का आगम होता है ॥४२९॥

भृशं ग्रह्णाति जरीगृह्यते। नृती—नृत्य करना।

चेक्रीयित में नृत के नकार को णकार नहीं होता है ॥४३०॥

नरीनृत्यते। परीपृच्छ्यते। चोचूर्यते। इसी प्रकार से सभी रूप बना लेना चाहिये।

इस प्रकार से चेक्रीयित प्रकरण समाप्त हुआ।

तस्य लुग्वा ॥४३१॥

तस्य चेक्रीयितस्य लुग्वा[1] भवति। यस्य स्थाने यो विधीयते स स्थानीतर आदेशः। स्थानीव भवत्यादेशः। प्रकृतिग्रहणे चेक्रीयितलुगन्तस्यापि ग्रहणं। धातुप्रकृतीनां ग्रहणे चेक्रीयितलुगन्तस्यापि धातोर्ग्रहणं भवतीति द्विर्वचनादि कार्यं भवति॥ **चर्करीतं परस्मैपदमदादौ दृश्यते।**

चर्करीताद्वा ॥४३२॥

चर्करीताद्धातोर्वा इड् भवति व्यञ्जनादौ गुणिनि सार्वधातु के परे।

यिलोपे च चेक्रीयितः ॥४३३॥

यिलोपे आयिलोपे च परस्मैपदं भवति। अत्यर्थं भवति बोभवीति बोभोति बोभूतः। स्वरादाविवर्णो-वर्णान्तस्य धातोरियुवौ। बोभुवति। बोभूयात् बोभूयातां बोभूयुः॥ बोभवीतु बोभोतु बोभूतात् बोभूतां बोभुवतु। बोभूहि बोभूतात् बोभूतं बोभूत। अबोभवीत् अबोभोत् अबोभूतां अबोभुवुः। पापचीति। पापक्ति पापक्तः पापचति। पापच्यात्। पापक्तु पापक्तात् पापक्तां पापचतु। हुधुड्भ्यां हेर्धिः॥ पापग्धि पापक्तात् पापक्तं पापक्त। अपापचीत् अपापक् अपापक्तां अपापचुः॥ टुणदि समृद्धौ। नानंदीति नानंति नानंतः नानंदति। ध्वंसु गतौ च। दनीध्वसीति दनीध्वस्तः दनीध्वसति। एवं सर्वमवगन्तव्यं। शेशयीति॥

न तिबनुबन्धगणसंख्यैकस्वरोक्तेषु ॥४३४॥

तिबनुबन्धगणसंख्यैकस्वर एभिरुक्तेषु निदानेषु प्रकृतिग्रहणे चेक्रीयितलुगन्तस्य ग्रहणं न भवति॥ तिपा उक्ते—सोषवीति सोषोति। सोषूयात्। सोषवीतु सोषोतु सोषूतात् सोषूतां सोषुवतु। सोषूहि सोषूतात्

उस चेक्रीयित प्रत्यय का विकल्प से लुक् होता है ॥४३१॥

जिसके स्थान में जो किया जाता है वह स्थानीतर आदेश है। स्थानी के समान ही आदेश होता है। प्रकृति के ग्रहण करने में चेक्रीयित लुगन्त का भी ग्रहण होता है। धातु और प्रकृति के ग्रहण करने में चेक्रीयित लुगन्त धातु का भी ग्रहण होता है। इस प्रकार से कार्य होता है। अदादि में चर्करीत परस्मैपदी हो जाता है।

व्यञ्जनादि गुणी सार्वधातुक के आने पर चर्करीत धातु से ईट् विकल्प से होता है ॥४३२॥

यि आयि प्रत्यय के लोप होने पर परस्मैपद होता है ॥४३३॥

अत्यर्थं भवति = इट् गुण होकर दीर्घ होकर बोभवीति इट् के अभाव में—बोभोति। बोभूतः। बोभू अन्ति "स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ" सूत्र ८३ से बोभुवति नकार का लोप हुआ है। बोभूयात्। बोभवीतु, बोभोतु। अबोभवीत्, अबोभोत्।

पच—पापचीति, पापक्ति। पापच्यात्। पापचीतु, पापक्तु। "हुधुड्भ्यां हेर्धिः" सूत्र से पापग्धि। अपापचीत्, अपापक्। व्यञ्जनाद्दिस्योः से दि सि का लोप और च् को क् होकर अपापक बना। टुनदि—समृद्ध होना। नानंदीदि। नानंति ध्वंसु—गति अर्थ में है। ४१६ सूत्र से नी का आगम हुआ है। दनी ध्वसीति। शेशयीति, शेशेति।

इसी प्रकार से सभी समझ लेना चाहिये।

तिप्, अनुबंध, गुण, संख्या और एक स्वर के कहने पर चेक्रीयित लुगन्त का ग्रहण नहीं होता है ॥४३४॥

---

[1] लुकि सति चेक्रीयितस्य चर्करीतसंज्ञा बोद्धव्या।

सोषूतं सोषूत । सोषवाणि सोषवाव सोषवाम ॥ तिपा निर्देशात् सूतेः पञ्चम्यामिति गुणप्रतेषेधो न स्यात् । अनुबन्धोक्तेः—शेशितः शेश्यति । शिङः सार्वधातुके इति ङानुबन्ध इति निर्देशात् गुणो न भवति ॥ गुणोक्तेः—चोकोटीति । कुटादेरनिनिचट्स्वति गुणप्रतिषेधो न स्यात् । संख्योक्तेः—रोरुदीति । रोरोत्ति । रुदादिः पञ्चको गण इति रुदादेः सार्वधातुके इतीण् न स्यात् । एकस्वरोक्तेः—पापचीति । अनिडेकस्वरादात । इत्येकस्वराधिकारे पचिवचीत्यादिनेट्प्रतिषेधो न स्यात् ॥ वावचीति । वावक्ति वावक्तः वावचति । जाहेति । दादेति दात्तः दादति ।

अभ्यस्तस्य चोपधाया नामिनः स्वरे गुणिनि सार्वधातुके ॥४३५ ॥

अभ्यस्तस्य चोपधाया नामिनो गुणो न भवति स्वरादौ गुणिनि सार्वधातुके परे । अत्यर्थं पुनः पुनर्वा दीव्यति देदिवीति ।

य्वोर्व्यञ्जने ये ॥४३६ ॥

धातोर्यकारवकारयोर्लोपो भवति यकारवर्जिते व्यञ्जने च परे । देदेति देद्यूतः देदिवति । सोषवीति सोषोति । नानहीति नानद्धि । अभिषोषवीति अभिषोषोति । पुनः पुनर्वा क्रीणाति चेक्रीयीति चेक्रेति । तोतोदीति तोतोत्ति ।

रि रो री च लुकि ॥४३७ ॥

ऋमतो धातोरभ्यासस्यान्ते रि रो री च भवति चेक्रीयितस्य लुकि । मरिमरीति मर्मरीति मरीमरीति । मरिमर्त्ति मर्मर्त्ति मरीमर्त्ति । मर्मृतः मरीमृतः मरिमृतः । मर्म्रति मरीम्रति मरिम्रति । मरीमरीषि मर्मरीषि

तिप् से कहने पर—सोषवीति सोषोति, सोषूयात् । सोषवीतु सोषोतु । सोसूहि । सोषवाणि सोषवाव सोषवाम, तिप् के द्वारा निर्देश होने से 'सूतेः पञ्चम्यां' १११ सूत्र से तीनों में गुण का प्रतिषेध नहीं होता है ।

अनुबंध से कहने पर—शेशितः शेश्यति । "शीङः सार्वधातुके" इस सूत्र से अनुबंध होने से गुण नहीं होता है ।

गुण से कहने पर—कुट-कुटिलता । चोकोटीति । "कुटादेरनिनिचट्स्वति" इस गुण का प्रतिषेध नहीं हुआ है ।

संख्या के कहने पर—रोरुदीति, रोरोत्ति । "रुदादि पञ्चको गणः" रुदादि से सार्वधातुक में इण् नहीं होता है ।

एक स्वर के कहने पर—पापचीति 'अनिडेकस्वरादात्' इत्येक स्वर के अधिकार में "पचि वचि" इत्यादि से इट् का प्रतिषेध नहीं होता है । वावचीति, वावक्ति । जोहति । दादेति ।

स्वरादि गुणी सार्वधातुक के आने पर अभ्यस्त और नामि उपधा को गुण नहीं होता है ॥४३५ ॥

अत्यर्थं दीव्यति = देदिवीति—नीचे के सूत्र से गुण का निषेध हुआ ।

यकार वर्जित व्यंजन के आने पर धातु के यकार वकार का लोप हो जाता है ॥४३६ ॥

देद्यूतः देदिवति "छ्वोः शूठौ पञ्चमे च" ३९२ सूत्र से ऊकार होकर देदि ऊ तस् = देद्यूतः बना ।

देदेति । सोषवीति, सोषोति । नानहीति, नानद्धि । अत्यर्थं क्रीणाति = चेक्रयीति, चेक्रेति । तोतोदीति, तोतोत्ति ।

चेक्रीयित लुक् होने पर ऋकार वाले धातु के अभ्यास के अंत में रि र् री आगम हो जाते हैं ॥४३७ ॥

मरिमरीषि। मरिमर्षि मर्मर्षि मरीमर्षि। मरीमृथ: मर्मृथ: मरिमृथ:। मरीमृथ मर्मृथ मरिमृथ। मरीमरीमि मर्मरीमि मरिमरीमि। मरिमर्मि मर्मर्मि मरीमर्मि। मरिमृव: मर्मृव: मरीमृव:। मरिमृम: मर्मृम: मरीमृम:। मरिमृयात् मर्मृयात् मरीमृयात्। मरिमरीतु मर्मरीतु मरीमरीतु। मरीमर्तु मर्मर्तु मरिमर्तु। मरिमृतात् मर्मृतात् मरीमृतात्। मरिमृतां मर्मृतां मर्म्रतु मरिम्रतु। मरिमृहि मर्मृहि मरीमृहि। मरिमृतात् मर्मृतात्। मरीमृतात्। मरिमृतं मर्मृतं मरीमृतं। मरिमृत मर्मृत मरीमृत। मरिमराणि मर्मराणि मरीमराणि। मरिमराव मर्मराव मरीमराव। मरिमराम मर्मराम मरीमराम। अमरिमरीत् अमर्मरीत् अमरीमरीत्। अमरिम: अमर्म: अमरीम:। अमरिमृतां अमर्मृतां अमरीमृतां। अमरिमरु: अमर्मरु: अमरीमरु:। अमरिमरी: अमर्मरी: अमरीमरी:। अमरिमृतं अमर्मृतं अमरीमृतं। अमरिमृत अमर्मृत अमरीमृत। अमरिमरं अमर्मरं अमरीमरं। अमरिमृव अमर्मृव अमरीमृव। अमरिमृम अमर्मृम अमरीमृम। एवमभ्यस्तस्य चोपधाया इत्यादिना गुणो न भवति॥ नृति गात्रविक्षेपणे।

नृतेश्चेक्रीयिते ॥४३८॥

नृतेर्नकारस्य णकारो न भवति चेक्रीयिते परे॥ नरिनृतीति नर्नृतीति नरीनृतीति। नरिनर्त्ति नर्नर्त्ति *नरीनर्त्ति। नरिनृत: नर्नृत: नरीनृत:। नर्नृतति नरीनृतति नरिनृतति॥ मोमुचीति मोमोक्ति मोमुक्त: मोमुचति।* रोरुधीति रोरोद्धि रोरुद्ध: रोरुधति। बोभुजीति बोभोक्ति बोभुक्त: बोभुजति। योयुजीति योयोक्ति योयुक्त: योयुजति॥ तंतनीति तंतंति तंतत: तंतनति। मंमनीति मंमंति मंमत: मंमनति॥ जंजपीति जंजप्ति जंजप्त: जंजपति। चरिकरीति चर्करीति चरीकरीति। चरिकर्त्ति चर्कर्त्ति चरीकर्त्ति। चरिकृत: चर्कृत: चरीक्रत:। चरिक्रति चर्क्रति चरीक्रति। चेक्रयीति चेक्रेति चेक्रीत: चेक्रियति। वरिवरीति वर्वरीति वरीवरीति। वरिवर्त्ति वर्व्वर्त्ति वरीवर्त्ति। वरिवृत: वर्वृत: वरीवृत:। वरिव्रति वर्व्रति वरीव्रति। जरीगृहीति जर्गृहीति जरिगृहीति। जरिगर्ढि जर्गर्ढि जरीगर्ढि।

न ऋत: ॥४३९॥

ढे ढलोपे ऋमतोर्धातोर्दीर्घो न भवति। जरिगृढ: जर्गृढ: जरीगृढ:। जरिगृहति जर्गृहति जरीगृहति। जरिगृहीषि जर्गृहीषि जरीगृहीषि। जरिघर्क्षि जर्घर्क्षि जरीघर्क्षि। जरिगृढ: जर्गृढ: जरीगृढ:। जरिगृढ जर्गृढ जरीगृढ। जरिगृहीमि जर्गृहीमि जरीगृहीमि। जरिगर्ह्मि जर्गर्ह्मि जरीगर्ह्मि। जरिगृह्व: जर्गृह्व: जरीगृह्व:। जरिगृह्म: जर्गृह्म: जरीगृह्म:॥ जरिगृह्यात् जर्गृह्यात् जरीगृह्यात्। जरीगृहीतु जर्गृहीतु जरिगृहीतु। जरिगर्ढु जर्गर्ढु जरीगर्ढु। जरिगृढात् जर्गृढात् जरीगृढात्। जरिगृढां जर्गृढां जरीगृढां। जरिगृहतु जर्गृहतु जरीगृहतु। जरिगृढि जर्गृढि जरीगृढि। जरिगृढात् जर्गृढात् जरीगृढात्। जरिगृढं जर्गृढं जरीगृढं। जर्गृढ जरिगृढ जरीगृढ। जरिगृहाणि जर्गृहाणि जरीगृहाणि। जरिगृहाव जर्गृहाव जरीगृहाव। जरीगृहाम जर्गृहाम *जरिगृहाम। अजरीगृहीत् अजर्गृहीत् अजरिगृहीत्। अजरिगृढां अजर्गृढां अजरीगृढां। अजरीगृहु:* अजर्गृहु: अजरिगृहु:। अजरीगृही: अजर्गृही: अजरिगृही:।

क्रम से उदाहरण—मरिमरीति, मर्मरीति मरीमरीति। मरिमर्त्ति, मर्मर्त्ति मरीमर्त्ति। नृती—नृत्य करना।

चेक्रीयित में नृत के नकार को णकार नहीं होता है ॥४३८॥

नरिनृतीति नर्नृतीति नरीनृतीति। नरिनर्ति नर्नर्त्ति नरीनर्त्ति। मुच्—मोमुचीति मोमोक्ति। रोरुधीति, रोरोद्धि। बोभुजीति बोभोक्ति। तंतनीति। मंमनीति। जंजपीति। कृ—चरिकरीति चर्करीति, चरीकरीति। चरिकर्त्ति, चर्कर्त्ति चरीकर्त्ति। वरिवरीति। जरीगृहीति।

जरिगृह तस् है 'हो ढ:' से ह को ढ् एवं तवर्ग को भी ढ होकर—

ढ के आने पर ढ का लोप होने से ऋमान् धातु को दीर्घ नहीं होता है ॥४३९॥

इस नियम से जरिगृढ:, जर्गृढ जरीगृढ: में दीर्घ नहीं हुआ। ह्यस्तनी के सि में—

न रात् ॥४४० ॥

रेफात्परः संयोगान्तो लोप्यो न भवति। अजरिघर्द् अजघर्द् अजरीघर्द्। अजरिगृढं अजर्गृढं अजरीगृढं। अजरिगृढ अजगृढ अजरीगृढ। अजरीगृहं अजर्गृहं अजरिगृहं। अजर्गृह्व अजरिगृह्व अजरीगृह्व। अजर्गृह्म अजरीगृह्म अजरिगृह्म।

इति चेक्रीयितलुगन्ताः।

इन्कारितं धात्वर्थे ॥४४१ ॥

नाम्नः कारितसंज्ञक इन्भवति धात्वर्थे।

इनि लिङ्गस्यानेकाक्षरस्यान्तस्य स्वरादेर्लोपः ॥४४२ ॥

अनेकाक्षरस्य लिङ्गस्य अन्त्यस्वरादेर्लोपो भवति इनि परे॥ हस्तिनाऽतिक्रामति अतिहस्तयति। हलिं गृह्णाति।

न हलिकल्योः ॥४४३ ॥

हलिकल्योर्वृद्धिर्न भवति। हलयति। कलयति। अजहलत्। अचकलत्। कृतयति। अचकृतत्। वस्त्रं समाच्छादयति। संवस्त्रयति। समवस्त्रत्। वर्मणा सन्नह्यति संवर्मयति। समवर्मत्। तत्करोति तदाचष्टे इति इन्। मुण्डं करोति मुण्डयति। अमुमुण्डत्। एवं मिश्रयति। अमिमिश्रत्। सूत्रमाचष्टे सूत्रयति। असुसूत्रत्।

सत्यार्थवेदानामन्त आप् कारिते ॥४४४ ॥

सत्यार्थवेदानामन्त आप् भवति कारिते परे। सत्यमाचष्टे सत्यापयति। एवं अर्थापयति।

रेफ से परे संयोगान्त का लोप नहीं होता है ॥४४० ॥

अजरिघर्द्, अजघर्द्, अजरीघर्द् में द् का संयोगान्त लोप नहीं हुआ। इत्यादि।

इस प्रकार से चेक्रीयित लुगन्त प्रकरण समाप्त हुआ।

धातु अर्थ में नाम से कारित संज्ञक इन् प्रत्यय होता है ॥४४१ ॥

इन् के आने पर अनेकाक्षर वाले लिंग के अन्त्य स्वर को आदि करके लोप होता है ॥४४२ ॥

हस्तिना अतिक्रामति—हाथी के द्वारा उल्लंघन करता है।

अति हस्तिन् इन् हस्त्-हस्ति अतिहस्ति 'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर अन् विकरण और गुण होकर अतिहस्तयति बना। हलिं गृह्णाति।

हलि और कलि में वृद्धि नहीं होती है ॥४४३ ॥

हलयति कलयति। अजहलत् अचकलत्। अद्यतनी के रूप का एक नमूना दिखा दिया है बाकी दशों लकार पूर्वोक्त प्रकार समझ लेना। कृतिं गृह्णाति = कृतयति। अचकृतत्। वस्त्रं समाच्छादयति संवस्त्रयति। समवस्त्रत्। कर्मणा संनह्यति = संवर्मयति। समवर्यत्। "तत्करोति तदाचष्टे इन्" इस नियम से मुण्डं करोति = मुण्डयति। अमुमुण्डत्। मिश्रं करोति = मिश्रयति। अमिमिश्रत्। सूत्रमाचष्टे = सूत्रयति। असुसूत्रत्।

कारित प्रत्यय के आने पर सत्य, अर्थ और वेद के अंत में 'आप्' हो जाता है ॥४४४ ॥

सत्यमाचष्टे = सत्यापयति। अर्थमाचष्टे = अर्थापयति। वेदमाचष्टे = वेदापयति।

न स्वरादेः ॥४४५ ॥

स्वरादेर्दीर्घो न भवति इन् चण् परे । आर्त्तिथपत् । वेदापयति । अविवेदपत् ।

रशब्द ऋतो लघोर्व्यञ्जनादेः ॥४४६ ॥

व्यञ्जनादेरनेकाक्षरस्य लिङ्गस्य लघोः ऋतो रशब्दादेशो भवति इनि परे । पृथ प्रख्याने । पृथुं करोति प्रथयति । अपिप्रथत् । मृदुं करोति म्रदयति । अमिम्रदत् । दृढं करोति द्रढयति । अदिद्रढत् । कृशं करोति क्रशयति । अचिक्रशत् । भृशं करोति भ्रशयति अबिभ्रशत् । परिवृढं करोति परिव्रढयति पर्यविव्रढत् । इत्यादि ।

पृथुं मृदुं दृढं चैव कृशं च भृशमेव च ।
परिपूर्वं वृढं चैव षडेतान्नविधौ स्मरेत् ॥१ ॥

धातोश्च हेतौ ॥४४७ ॥

हेतुकर्तृकव्यापारे वर्त्तमानाद्धातोः कारितसंज्ञक इन् भवति । उवर्णस्य जान्तस्थापवर्गपरस्यावर्णे इत्यभ्यसावर्णस्य इकारः ॥ दीर्घो लघोरस्वरादीनामिति दीर्घः । भवति कश्चित्तमन्यः प्रयुंक्ते भावयति भावयते । भावयेत् । भावयतु । अभावयत् । इन्व्यञ्जनादेरुभयमित्युक्तत्वात् सर्वेषामिन्प्रत्ययानामुभयपदित्वम् ॥ अबीभवत् । भावयाञ्चक्रे । भावयिता । भाव्यात् । भावयिषीष्ट । भावयिष्यति । भावयिष्यते । अभावयिष्यत् अभावयिष्यत । पाचयति । अपीपचत् । एधयति ऐदिधत् । नन्दयति । अननन्दत् । स्रंसयति असस्रंसत् ।

इन् और चण् के आने पर स्वर की आदि को दीर्घ नहीं होता है ॥४४५ ॥

आर्तिथपत् । अविवेदपत् ।

इन् के आने पर व्यञ्जनादि अनेकाक्षर लघु लिंग के ऋ को रकार हो जाता है ॥४४६ ॥

पृथ—प्रख्यान करना । पृथुं करोति = प्रथयति, ऋ को र् हुआ है अपिप्रथत् । मृदुं करोति = म्रदयति । अभिम्रदत् । दृढं करोति = द्रढयति । अदिद्रढत् । कृशं करोति = क्रशयति । अचिक्रशत् । भृशं करोति = भ्रशयति, अबिभ्रशत् । परिवृढं करोति = परिव्रढयति । पर्यविव्रढत् । इत्यादि ।

श्लोकार्थ—पृथु, मृदु, दृढ, कृश, भृश और परिवृढ ये छह हैं जिनके ऋ को र् होता है ॥१ ॥

अथ प्रेरणार्थक धातु का प्रकरण

हेतु कर्तृक व्यापार में वर्तमान धातु से कारित संज्ञक 'इन्' प्रत्यय होता है ॥४४७ ॥

कोई होता है और अन्य कोई उसको प्रेरणा देता है । इस अर्थ में कारित संज्ञक 'इन्' होता है और हुआता है । 'दीर्घो लघोरस्वरादीनां' २२२ सूत्र से वृद्धि होकर भौ इ है 'औ आव्' से 'भावि' बना 'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर अन् विकरण और गुण करके भावयति बना 'इन्यजादेरुभयम्' सूत्र ३७ से इन्नंत धातु उभयपदी होती हैं अतः भावयते । ऐसे ही दसों लकारों में देखिये ।

भावयति, भावयते । भावयेत्, भावयेत । भावयतु, भावयतां । अभावयत्, अभावयत । सूत्र २९५ से दीर्घ हुआ । अबीभवत् । भावयाञ्चकार भावयाञ्चक्रे । भावयिता । भाव्यात्, भावयिषीष्ट । भावयिष्यति, भावयिष्यते । अभावयिष्यत्, अभावयिष्यत ।

पच्—पाचयति—पकवाता है । पाचयति । अपीपचत् ।

एधयति । ऐदिधत् । नन्दयति । अननन्दत् ।

स्रंसयति । असस्रंसत् ।

शाच्छासाह्वाव्यावेपामिनि ॥४४८ ॥

एषामायिर्भवति इनि परे। शाययति। अशीशयत्। छाययति अचिच्छयत्। अवसाययति। अवासीषयत्। ह्वाययति।

ह्वयतेर्नित्यम् ॥४४९ ॥

ह्वयतेर्नित्यं संप्रसारणं भवति कारिते च संश्चणोः परयोः॥ अजूहवत्। व्याययति। अविव्ययत्। वाययति। अवीवयत्। पाययति।

लोपः पिबतेरीच्चाभ्यासस्य ॥४५० ॥

पिबतेरभ्यासस्य ईद्भवति उपधायाश्च लोपो भवति इनि चण्परे। अपीप्यत्। आदयति। आदिदत्। वाचयति अवीवचत्। हावयति अजूहवत्।

अर्त्तिह्रीब्लीरीक्नुयीक्ष्माटयादन्तानामन्तः पो यलोपो गुणश्च नामिनाम् ॥४५१ ॥

अर्त्यादीनामादन्तानां च पकारोन्तो भवति यथासंभवं यलोपश्च नामिनां गुणश्च इनि परे॥ अर्पयति आर्प्पिपत्। ह्रेपयति। अजिह्रिपत्। ब्ली वरणे। ब्लेपयति। अबिब्लिपत्। रीङ् श्रवणे। रेपयति अरीरिपत्। क्नूयी शब्दे। क्नोपयति। अचुक्नुपत्। क्ष्मायी विधूनने। क्ष्मापयति। अचिक्ष्मपत्। ह्रेपयति अजिह्रपत्। धापयति। अदीधपत्। मापयति अमीमपत्। स्थापयति। स्थापयेत्। अस्थापयत्।

तिष्ठतेरित् ॥४५२ ॥

तिष्ठतेरिद्भवति इनि चण् परे। अतिष्ठिपत् घ्रापयति।

जिघ्रतेर्वा ॥४५३ ॥

जिघ्रतेर्वा इद्भवति इति चण्परे। अजिघ्रिपत्। अजिघ्रपत्। देवयति। अदीदिवत्। सावयति। असूषुवत्। नहयति। अनीनहत्। अभिषावयति। आशयति। आशिशत्। चाययति। अचीचयत्।

इन् प्रत्यय के आने पर शा छा सा ह्वा व्या और वेप् धातु से आय् होता है ॥४४८ ॥

शाययति। छाययति। अचिच्छयत्। अवसाययति। अवासीषयत्। ह्वाययति।

कारित प्रत्यय, चण् और सन् के आने पर ह्वा को नित्य ही संप्रसारण होता है ॥४४९ ॥

अजूहवत्। व्याययति। अविव्ययत्। वाययति। अवीवयत्। पाययति।

इन् चण् के आने पर पा के अभ्यास को 'ई' और उपधा का लोप हो जाता है ॥४५० ॥

अपीप्यत्। अद्—आदयति। आदिदत्। वाचयति। अवीवचत्। हु—हावयति। अजूहवत्।

ऋ ह्री ब्ली री, क्नूयी क्ष्मा आदि धातु और आकारांत धातु के अन्त में पकार का आगम हो जाता है और इन् के आने पर यथासंभव 'य' का लोप, नामि को गुण हो जाता है ॥४५१ ॥

अर्पयति। आर्पिपत्। ह्रेपयति। अजिह्रिपत्। ब्ली-वरण। ब्लेपयति। अबिब्लिपत्। रीङ्—श्रवण करना। रेपयति। अरीरिपत्। क्नूयी-शब्द करना। क्नोपयति। अचुक्नुपत्। क्ष्मायी-हिलाना। क्ष्मापयति। अचिक्ष्मपत्। धापयति। अदीधपत्। मापयति। अमीमपत्। स्थापयति। स्थापयेत्। स्थापयतु। अस्थापयत्।

इन् चण् के आने पर स्था को विकल्प से इत् होता है ॥४५२ ॥

अतिष्ठिपत्। घ्रापयति।

इन् चण् के आने पर घ्रा को विकल्प से इत् होता है ॥४५३ ॥

अजिघ्रिपत्। अजिघ्रपत्। देवयति। अदीदिवत्। सावयति। असूषुवत्। नहयति। अनीनहत्।

तोदयति । अतूतुदत् । मारयति । अमीमरत् । मोचयति । अमूमुचत् । रोधयति । अरूरुधत् । भोजयति अबूभुजत् । योजयति । अयूयुजत् । तानयति । अतीतनत् । मानयति । अमीमनत् । कारयति अचीकरत् ।

स्मिजिक्रीङामिनि ॥४५४ ॥

एषामाकारो भवति इनि परे । विस्मापयति । व्यसस्मपत् । विजापयति । व्यजिजपत् । विक्रापयति । व्यचिक्रपत् । अध्यापयति । अध्यापिपत् । वीरयति अवीवरत् । ग्राहयति अजिग्रहत् । चोरयति अचूचुरत् । तन्त्रयति अततन्त्रत् ।

मानुबन्धानां ह्रस्वः ॥४५५ ॥

मानुबन्धानां धातूनां ह्रस्वो भवति इनि परे ॥ अस्योपधाया दीर्घो न भवति ॥ घटादयो मानुबन्धाः । घट चेष्टायां ॥ घटयति ॥ अजिघटत् । व्यथ भयचलनयोः ॥ व्यथयति । अविव्यथत् ।

जनिजृष्क्नस्रञ्जोऽमन्ताश्च ॥४५६ ॥

एषां ह्रस्वो भवति सनि परे । जनिङ् प्रादुर्भावे । जनयति । अजीजनत् । जृष् वयोहानौ ॥ जरयति अजीजरत् । क्नस ह्वरण दीप्तौ । क्नसयति । अचिक्नसत् । रञ्ज रागे ।

रञ्जेरिनि मृगरमणे ॥४५७ ॥

मृगरमणार्थे इनि परे रञ्जेरनुषङ्गलोपो भवति । रजयति । अरीरजत् । पक्षे रञ्जयति ॥ अररञ्जत् । रमु क्रीडायां । रमयति । अरीरमत् । श्रमु तमसि खेदे च । श्रमयति । अशिश्रमत् ।

ज्वलह्वलह्मलनमोनुपसर्गा वा ॥४५८ ॥

अभिषावयति । आशयति । आशिशत् । वृद्धि होकर—चाययति । अचीचयत् । तोदयति । अतूतुदत् । मारयति । अमीमरत् । मोचयति अमूमुचत् । रोधयति । कारयति । अचीकरत् । इत्यादि ।

इन् के आने पर स्मि, जि, क्री और इङ् को आकार हो जाता है ॥४५४ ॥

विस्मापयति । व्यसिस्मपत् । विजापयति । व्यजिजपत् । विक्रापयति । व्यचिक्रपत् । अध्यापयति । अध्यापिपत् । वारयति । अवीवरत् । ग्राहयति । अजिग्रहत् । चोरयति । अचूचुरत् ।

इन् के आने पर मानुबंध धातु को ह्रस्व हो जाता है ॥४५५ ॥

अ की उपधा को दीर्घ नहीं होता है । घटादि धातु मानुबंध कहलाते हैं । घट-चेष्टा करना । घटयति । अजीघटत् । व्यथ-भय, चलन । व्यथयति । अविव्यथत् ।

जन् जृष् क्नस् और रञ्ज के धातु को इन् के आने पर ह्रस्व होता है ॥४५६ ॥

जनिङ्-प्रादुर्भावे । जनयति । अजीजनत् । जृष्-जीर्ण होना या वृद्ध होना । जरयति । अजीजरत् । क्नस-ह्वरण और दीप्त अर्थ में है । क्नसयति । अचिक्सनत् । रञ्ज-रंग ।

मृगों को रमण कराने अर्थ में इन् प्रत्यय के आने पर रञ्ज के अनुषंग का लोप हो जाता है ॥४५७ ॥

रजयति । अरीरजत् । पक्षे—रञ्जयति । अररञ्जत् । रमु-क्रीडा करना । रमयति । अरीरमत् । श्रमु-श्रमयति । अशिश्रमत् ।

ज्वल्, ह्वल, ह्मल और नम धातु उपसर्ग सहित नियम से मानुबन्ध होते हैं । और उपसर्ग रहित विकल्प से मानुबन्ध होते हैं ॥४५८ ॥

एते सोपसर्गा नित्यं मानुबन्धा भवन्ति ॥ एते अनुपसर्गा वा मानुबन्धा भवन्ति । तत्र सोपसर्गपक्षे मानुबन्धानां ह्रस्वः । ज्वल दीप्तौ प्रज्वलयति ॥ प्राजिज्वलत् । ह्वल ह्मल चलने । प्रह्वलयति । प्राजिह्वलत् । प्रह्मलयति । प्राजिह्मलत् । अमन्तत्वात् ॥ प्रणमयति । प्राणीनमत् । उपनमयति । उपानीनमत् ।

अनुपसर्गा वा ॥४५९ ॥

एते अनुपसर्गा वा मानुबन्धा भवन्ति । ज्वलयति । ज्वालयति । अजिज्वलत् । ह्वलयति । ह्वालयति । अजिह्वलत् । ह्मलयति अजिह्मलत् । नमयति ॥ नामयति । अनीनमत् ।

ग्लास्नावनवमश्च ॥४६० ॥

एते मानुबन्धा वा भवन्ति । ग्लै हर्षक्षये । ग्लापयति । ग्लपयति । अजिग्लपत् । ष्णा शौचे ॥ स्नपयति । स्नापयति । असिस्नपत् । वन षण संभक्तौ ॥ वनयति । वानयति । अवीवनत् । टुवमुद्गिरणे । वमयति । वामयति । अवीवमत् ।

न कमभ्यमि चमः ॥४६१ ॥

एषां ह्रस्वो न भवति इनि परे ।

कमेरिनिङ् कारितम् ॥४६२ ॥

कमेः कारितसंज्ञक इनिङ् भवति स्वार्थे । कमु कान्तौ । कामयते । अचिकमत् । अम हम मी मृ हय गतौ ॥ आमयति । आमिमत् । चमु अदने । चामयति । अचीचमत् ।

शमोऽदर्शने ॥४६३ ॥

शमोऽदर्शनेऽर्थे ह्रस्वो भवति इनि परे । शमयति रोगान् । अशिशमत् । अदर्शन इति किं ? निशामयति रूपं । न्यशीशमत् ।

यमोऽपरिवेषणे ॥४६४ ॥

उपसर्ग पक्ष में मानुबन्ध होने से ह्रस्व होते हैं । ज्वल-दीप्त होना प्रज्वलयति । प्राजिज्वलत् । ह्वल ह्मल—चलन । प्रह्वलयति । प्राजिह्वलत् । प्रह्मलयति । प्राजिह्मलत् । प्रणमयति । प्राणीनमत् । उपनमयति । उपानिनमत् ।

उपसर्ग रहित विकल्प से मानुबन्ध होते हैं ॥४५९ ॥

ज्वलयति । ज्वालयति । अजिज्वलत् । ह्वलयति, ह्वालयति नमयति, नामयति । अनीनमत् ।

ग्ला, स्ना वन और वम ये धातु मानुबन्ध विकल्प से होते हैं ॥४६० ॥

ग्लापयति, ग्लपयति । ष्णा—नहाना । स्नपयति, स्नापयति वन षण—संभक्ति । वनयति, वानयति । वमयति । वामयति । अवीवमत् ।

कम अम और चम को इन् के आने पर ह्रस्व नहीं होता है ॥४६१ ॥

कम से कारित संज्ञक इनिङ होता है स्वार्थ में ॥४६२ ॥

कामयते । ङानुबंध प्रत्यय से आत्मनेपदी हो गया है । अचीकमत् । अम, हम, मी, मृ, हय—गमन करना । आमयति आमिमत् । चमु—खाना । चामयति । अचीचमत् ।

इन् के आने पर शम् को अदर्शन अर्थ में ह्रस्व होता है ॥४६३ ॥

शमयति । रोगों को शांत करता है । अशिशमत् । नहीं देखना अर्थ हो ऐसा क्यों कहा ? देखने अर्थ में दीर्घ हो गया । निशामयति रूपं । न्यशीशमत् ।

अपरिवेषण अर्थ में यम् को ह्रस्व होता है ॥४६४ ॥

यमः अपरिवेषणेऽर्थे ह्रस्वो भवति इनि परे। यम उपरमे। नियमयति। अपरिवेषण इति किं आयामयति। आयीयमत्।

स्खदिरवपरिभ्यां च ॥४६५ ॥

स्खदिरवपरिभ्यां च ह्रस्वो भवति इनि परे। स्खदिष् स्खदने। अवस्खदयति। अन्योपसर्गान्न भवति। उपस्खादयति। अवचिस्खदत्। पर्य्यचिस्खदत्। उपाचिस्खदत्।

पण गतौ ॥४६६ ॥

पणो गत्यर्थे ह्रस्वो भवति इनि परे ॥ पणयति ॥ अगत्यर्थ इति किं ? पाणयति। अपीपणत्।

इति इन्नन्ताः ॥

आत्मेच्छायां यिन् ॥४६७ ॥

नाम्नो यिन्भवति आत्मेच्छायां।

यिन्यवर्णस्य ॥४६८ ॥

अवर्णस्य इत्वं भवति यिनि परे ॥ पुत्रमिच्छत्यात्मनः पुत्रीयति ॥ पुत्रीयेत्। पुत्रीयतु। अपुत्रीयत्। अपुत्रीयीत् ॥ पुत्रीयाञ्चकार। पुत्रीयिता। पुत्रीय्यात्। पुत्रीयिष्यति। अपुत्रीयिषीत्। एवं घटीयति। वस्त्रीयति। सुवर्णीयति।

काम्य च ॥४६९ ॥

नाम्नः काम्यो भवति आत्मेच्छायां। पुत्रमिच्छत्यात्मनः पुत्रकाम्यति। पुत्रकाम्येत्। पुत्रकाम्यतु। अपुत्रकाम्यत्। अपुत्रकाम्यीत्। पुत्रकाम्याञ्चकार। पुत्रकाम्यिता। पुत्रकाम्यात्। पुत्रकाम्यिष्यति। अपुत्रकाम्यिष्यत्। एवं इदंकाम्यति।

नियमयति। अपरिवेषण ऐसा क्यों कहा ? आयामयति आयीयमत्।

इन् के आने पर अव, परि उपसर्ग पूर्वक स्खदिष् धातु ह्रस्व हो जाता है ॥४६५ ॥

अवस्खदयति। अन्य उपसर्ग से ह्रस्व नहीं होगा। यथा—उपस्खादयति।

इन् के आने पर पण गत्यर्थ में ह्रस्व होता है ॥४६६ ॥

पणयति। गत्यर्थ ऐसा क्यों कहा ? पाणयति।

इस प्रकार से कारित संज्ञक इन प्रत्ययान्त प्रकरण समाप्त हुआ।

अथ नाम धातु प्रकरण

आत्म इच्छा में नाम से यिन् प्रत्यय होता है ॥४६७ ॥

यिन् के आने पर अवर्ण को ईकार होता है ॥४६८ ॥

पुत्रमिच्छत्यात्मनः। अपने लिये पुत्र चाहता है।

पुत्र य् ति अवर्ण को ई होकर 'पुत्रीय्' रहा 'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर अन् विकरण और पुत्रीयति। पुत्रीयेत्। पुत्रीयतु। अपुत्रीयत्। अपुत्रीयीत्। पुत्रीयाञ्चकार पुत्रीयिता। पुत्रीय्यात्। पुत्रीयिष्यति। अपुत्रीयिष्यत्। घट इच्छति आत्मनः। घटीयति। वस्त्रीयति सुवर्णीयति।

आत्म इच्छा अर्थ में नाम से 'काम्य' प्रत्यय हो जाता है ॥४६९ ॥

पुत्रकाम्य 'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर पुत्रकाम्यति इत्यादि। इदंकाम्यति आत्मनः। इदंकाम्यति।

उपमानादाचारे ॥४७० ॥

उपमानान्नाम्नो यिन्भवति आचारेऽर्थे । पुत्रमिव आचरति पुत्रीयति माणवकं । एवं क्षीरीयति जलं । भूपीयति पुत्रकं । इति यिन्नन्तः ।

कर्तुरायिस्सलोपश्च ॥४७१ ॥

कर्त्तुरुपमानान्नाम्नः आयि भवति आचारेऽर्थे यथासंभवं सलोपश्च ॥

आय्यन्ताच्च ॥४७२ ॥

आयिप्रत्ययान्ताद्धातोरात्मनेपदं भवति । श्येन इव आचरति श्येनायते । श्येनायेत । श्येनायतां । अश्येनायत । अश्येनायिष्ट । श्येनायाञ्चक्रे । श्येनायिता । श्येनायिष्यते । अश्येनायिष्यत ॥ एवं अप्सरायते ॥

ओजसोप्सरसोर्नित्यं पयसस्तु विभाषया ॥
आयिलोपश्च विज्ञेयो गर्दभत्यश्वतीत्यपि ॥१ ॥

ओजस्वि इव आचरति । ओजायते । एवं अप्सरायते । पयायते ।

नामिव्यञ्जनान्तादायेरादेः ॥४७३ ॥

नामिव्यञ्जनान्तात्परस्य आयेरादेर्लोपो भवति । पयस्यते । वाशब्दस्येष्टाऽर्थत्वात्क्वचिदायिलोपः । आय्यन्ताच्चेत्यन्तग्रहणाधिक्यादायिलोपे परस्मैपदं भवति ॥ गर्दभ इव आचरति गर्दभति । एवं अश्वति । अग्नीयते । एवं पटूयते । पित्रीयते । रैयते ।

नलोपश्च ॥४७४ ॥

आचार अर्थ में उपमान नाम से यिन् प्रत्यय होता है ॥४७० ॥

पुत्रमिव आचरति = पुत्रीयति । क्षीरीयति । भूपीयति । इस प्रकार से नाम से यिन्नंत प्रत्ययान्त समाप्त हुआ ।

आचार अर्थ में उपमान, नामकर्ता से 'आय्' प्रत्यय होता है ॥४७१ ॥

और यथा संभव 'स' का लोप हो जाता है ।

आय् प्रत्ययान्त धातु आत्मनेपदी होता है ॥४७२ ॥

श्येन इव आचरति = श्येनायते । एवं अप्सरा इव आचरति = अप्सरायते । अप्सरस् में सकार का लोप हुआ है ।

श्लोकार्थ—ओजस् और अप्सरस् के सकार का नित्य ही लोप होता है और पयस् के सकार का विकल्प से लोप होता है । एवं गर्दभ और अश्व में आय् प्रत्यय का लोप हो जाता है ॥१ ॥

ओजस्वि इव आचरति = ओजायते । पयः इव आचरति = पयायते ।

नामि, व्यञ्जनान्त से परे आय् की आदि का लोप होता है ॥४७३ ॥

पयस्यते । वा शब्द इष्ट अर्थ वाला होने से कहीं पर आय् का लोप होता है । 'अय्यन्ताच्च' सूत्र ४७२ में 'अंत' शब्द के ग्रहण की अधिकता होने से 'आय्' प्रत्यय का लोप होने पर परस्मैपद होता है । गर्दभ इव आचरति = गर्दभति । अश्वति । अग्नीयते । आय् की आदि 'आ' का लोप होकर पूर्व स्वर को ई और या दीर्घ होकर अग्नीयते बना । पटूयते । पित्रीयते । रैयते ।

यिन् आय् प्रत्यय के आने पर 'न' का लोप हो जाता है ॥४७४ ॥

नलोपश्च भवति यिन्यायो: परत: । विध्वस्यते ॥ अनुडुह्यते ।

ओतायिन्नायिपरे स्वरवत् ॥४७५ ॥

ओत: परौ यिन्नायिस्वरवद्भवत: ॥ ओ अविति संधि: । गामित्यात्मन इच्छति गव्यति । गौरिवाचरति गव्यते ।

औत्वश्च ॥४७६ ॥

औत: परो यिन्नायिस्वरवद्भवति ॥ नावमिच्छत्यात्मन: नाव्यति । नौरिवाचरति नाव्यते ।

वा गल्भक्लीबहोढेभ्य: ॥४७७ ॥

एभ्य: परमात्मनेपदं भवति । वाशब्दस्येष्टार्थत्वात् क्वचिदायिलोप: । गल्भ इव आचरति गल्भते । क्लीबते । होढते ।

कष्टकक्षसत्रगहनाय पापे क्रमणे ॥४७८ ॥

एभ्यश्चतुर्थ्यन्तेभ्य: पापे वर्त्तमाने क्रमण इत्यर्थे आयिप्रत्ययो भवति। कष्टाय कर्मणे क्रामति कष्टायते । एवं कक्षायते । सत्रायते । गहनायते । पाप इति किं ? कष्टाय तपसे क्रामति ।

बाष्पोष्मफेनमुद्वमति ॥४७९ ॥

बाष्पादिभ्यो द्वितीयान्तेभ्य उद्वमनेऽर्थे आयिप्रत्ययो भवति ॥ बाष्पमुद्वमति बाष्पायते । ऊष्माणमुद्वमति उष्मायते । नस्य लोप: फेनमुद्वमति फेनायते ।

सुखादीनि वेदयते ॥४८० ॥

सुखादिभ्यो द्वितीयान्तेभ्यो वेदयते इत्यर्थे आयिप्रत्ययो भवति । सुखमावेदयते सुखायते । एवं दु:खायते । तदनुभवतीत्यर्थ: ।

विध्वस्यते । अनुडुह्यते ।

ओकार से परे यिन् आय् प्रत्यय स्वरवत् हो जाते हैं ॥४७५ ॥

गां इति आत्मन: इच्छति । गो य ति 'ओ अव्' गव्यति । गौरिव आचरति = गव्यते ।

औकार से परे यिन् आय् स्वरवत् होते हैं ॥४७६ ॥

नावं इच्छति आत्मन: = नाव्यति । नाव्यते ।

गल्भ, क्लीब और होढ से परे आत्मनेपद होता है ॥४७७ ॥

वा शब्द इष्ट अर्थवाची होने से कहीं पर आय् का लोप हो जाता है । गल्भते । क्लीबते । होढते । गल्भ-धृष्टता । होढ—अनादर होना ।

कष्ट, कक्ष, सत्र और गहन ये चतुर्थ्यंत शब्द पाप अर्थ में होवें तब आय् प्रत्यय होता है ॥४७८ ॥

कष्टाय कर्मणे क्रामति = कष्टायते । कक्षायते । सत्रायते । जहनायते । पाप अर्थ हो ऐसा क्यों कहा ? तो कष्टाय तपसे क्रामति । यहाँ तपस्या अर्थ में आय् प्रत्यय नहीं हुआ है ।

वाष्प, ऊष्म और फेन से उद्गमन अर्थ में आय् प्रत्यय होता है ॥४७९ ॥

वाष्पमुद्वमति = वाष्पायते । ऊष्मायते । फेनायते ।

द्वितीयान्त, सुखादि से वेदन अर्थ में आय् प्रत्यय होता है ॥४८० ॥

सुखमावेदयते = सुखायते । दु:खायते । उसका अनुभव करता है ।

शब्दादीन् करोति ॥४८१ ॥

शब्दादिभ्यो द्वितीयान्तेभ्यः । करोत्यर्थे आयिप्रत्ययो भवति । शब्दं करोति शब्दायते । एवं पैरायते । कलहायते ।

नमस्तपोवरिवसश्च यिन् ॥४८२ ॥

एभ्यो यिन्भवति करोत्यर्थे । नमस्करोति नमस्यति देवान् । एवं तपस्यति शत्रून् । वरिवस्यति गुरून् ।

कण्ड्वादिभ्यो यन् ॥४८३ ॥

कण्ड्वादिभ्यो यन्भवति करोत्यर्थे ॥ कण्डूं करोति कण्डूयते । एवं तिरस्करोति तिरस्यते । इत्यायिप्रत्ययान्ताः ।

गुपूधूपविच्छपनेरायः ॥४८४ ॥

गुपूप्रभृतिभ्य आयः प्रत्ययो भवति स्वार्थे । गोपायति । गोपायाञ्चकार ॥ गोपयिता । एवं धूपायति । विच्छायति । विश विच्छ गतौ । पणायते । पणि व्यवहारे । पनायते । पन स्तुतौ च ॥ इत्यायान्ताः ।

अभूततद्भावे कृभ्वस्तिषु विकाराच्च्विः ॥४८५ ॥

विकारान्नाम्नश्च्विर्भवति अभूततद्भावेऽर्थे कृभ्वस्तिषु परेषु ।

च्वौऽचावर्णस्य ईत्वम् ॥४८६ ॥*

अवर्णस्य ईत्वं भवति च्वौ च परे । च्विसर्वापहारिप्रत्ययस्य लोपः । अशुक्लं शुक्लं करोति शुक्लीकरोति । अशुक्लः शुक्लः क्रियते शुक्लीक्रियते । अशुक्लः शुक्लो भवति शुक्लीभवति ।

द्वितीयान्त शब्दादि से करोति अर्थ में आय् प्रत्यय होता है ॥४८१ ॥

शब्दं करोति = शब्दायते । वैरायते कलहायते ।

नमस् तपस् वरिवसस् शब्द से करोत्यर्थ में यिन् प्रत्यय होता है ॥४८२ ॥

नमस्करोति = नमस्यति । तपस्यति । वरिवस्यति ।

कण्डू आदि से करोति अर्थ में 'यन्' प्रत्यय होता है ॥४८३ ॥

कण्डूं करोति = कंडूयते । तिरस्करोति = तिरस्यते । इति आयि प्रत्ययान्त ।

गुपू, धूप, विच्छ और पन धातु से स्वार्थ में 'आय' प्रत्यय होता है ॥४८४ ॥

गुपू—रक्षणे = गोपायति । गोपायाञ्चकार । गोपायिता । धूप—संताने । धूपायति । विश् विच्छ—गमन करना । विच्छायति । पणि—व्यवहारे । पणायते । पन—स्तुति और व्यवहार । पनायते ।

इति आय प्रत्ययान्त ।

अभूत तद्भाव अर्थ में कृ भू अस् धातु से विकार होने से 'च्वि' प्रत्यय होता है ॥४८५ ॥

च्वि प्रत्यय के आने पर अवर्ण को 'ईकार' हो जाता है ॥४८६ ॥

च्वि प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो जाता है । अशुक्लं—शुक्लं करोति, शुक्ल + अम् कृ विभक्ति का लोप होकर शुक्ल कृ अवर्ण को 'ई' होकर 'शुक्ली कृ' है 'ते धातवः' से धातु संज्ञा होकर 'शुक्लीकरोति' बना । अशुक्लः शुक्लः क्रियते = शुक्लीक्रियते । शुक्लीभवति, शुक्लीस्यात् । अपटुः पटुः स्यात् ।

अशुक्लः शुक्लः स्यात् शुक्लीस्यात्। अदीर्घो दीर्घः क्रियते दीर्घीक्रियते। अदीर्घं दीर्घं करोति दीर्घीकरोति। अदीर्घो दीर्घो भवति दीर्घीभवति। अदीर्घो दीर्घः स्यात् दीर्घीस्यात्। एवं पुत्रीक्रियते पुत्रीकरोति पुत्रीभवति पुत्रीस्यात्। अवनिता वनिता क्रियते। वनितीक्रियते। एवमग्नीक्रियते अग्नीकरोति अग्नीभवति अग्नीस्यात्। पटूक्रियते पटूकरोति पटूभवति पटूस्यात्।

ऋत ईदन्तश्च्विचेक्रीयितयिन्नायिषु ॥४८७॥*

ऋदन्तस्य च्विचेक्रीयितयिन्नायिषु परत ईदन्तो भवति। मात्रीकरोति मात्रीक्रियते मात्रीभवति मात्रीस्यात्। पित्रीकरोति पित्रीक्रियते। पित्रीभवति पित्रीस्यात्। इत्यादि। एवं सर्वमवगन्तव्यं।

इति च्विप्रत्ययान्ताः समाप्ताः। ❑

अथ पुषादयः।

पुषादिद्युतादिलृकारानुबन्धार्त्तिसर्त्तिशास्तिभ्यश्च परस्मै ॥४८८॥

इत्यण् प्रत्ययः सर्वत्र भवति। पुष पुष्टौ। अपुषत्। शुष शोषणे। अशुषत्। दुःख वैकल्ये। अदुःखत्। श्लिष आलिङ्गने। अश्लिषत्। ञिच्छिदा गात्रप्रक्षरणे। अच्छिदत्। क्षुध बुभुक्षायां। अक्षुधत्। शुध शौचे। अशुधत्। षिध संराद्धौ। असिधत्। रध हिंसायां। अरधत्। तृप प्रीणने। अतृपत्। दृप हर्षणमोचनयोः। अदृपत्। मुह वैचित्ये। अमुहत्। द्रुह जिघांसायां। अद्रुहत्। ष्णुह उद्गिरणे। अस्नुहत्। ष्णिह प्रीतौ। अस्निहत्। णश् अदर्शने। अनशत्। शम् दम् उपशमे। अशमत् अदमत्। तमु कांक्षायां। अतमत्। श्रमु तपसि खेदे च। अश्रमत्। भ्रमु अनवस्थाने। अभ्रमत्। क्षमूष् सहने। अक्षमत्।

च्वि प्रत्यय के आने पर अवर्ण को 'ई' एवं अन्य स्वर में पूर्व स्वर को दीर्घ होता है। अतः पटूस्यात्।

च्वि, चेक्रीयित, यिन् आमि प्रत्यय के आने पर ऋकारांत से पर 'ई' हो जाता है ॥४८७॥

अमातरम् मातरम् करोति, मातृ + अम् कृ विभक्ति का लोप होकर, ईकार होकर मातृ + ई = मात्रीकरोति।

अपितरम् पितरम् करोति = पित्रीकरोति। पित्रीस्यात् इत्यादि। ऐसे सभी में समझ लेना चाहिये।

इति च्वि प्रत्ययांत। ❑

अथ पुषादि प्रकरण

पुषादि, द्युतादि, लृकारानुबंध, ऋ, सृ और शास् धातु से अद्यतनी के परस्मैपद में सर्वत्र 'अण्' प्रत्यय हो जाता है ॥४८८॥

पुष्—पुष्ट होना। अपुषत्। शुष—शोषण करना। अशुषत् दुःख—विकल होना। अदुःखत्। श्लिष्—आलिंगन करना। अश्लिषत्। ञिच्छिदा—गात्रप्रक्षरणे। अच्छिदत्। क्षुध्—बुभुक्षा = अक्षुधत्। शुच्—शुद्ध होना। अशुधत्। षिध्—संराद्ध अर्थ में। असिधत्। रध—हिंसा। अरधत्। तृप्—प्रीणन। अतृपत्। दृप्—हर्ष-और मोचन = अदृपत्। मुह—अमुहत्। द्रुह—द्रोह करना। अद्रुहत्। ष्णुह—उद्गिरण। अस्नुहत्। ष्णिह—प्रीति। अस्निहत्। णश्—नष्ट होना। अनशत्। शम् दम्—उपशम होना = अशमत्, अदमत्। तमु—कांक्षा = अतमत्। अश्रमत्। अभ्रमत्। अक्षमत्। अक्लमत्। अमदत्। अपासत्। अयसत्। जसु—मोक्षणे = अजसत्। तसु, दसु उपक्षये अतसत्। अदसत्। वसु—स्तंभे = अवसत्। प्लुष्—दाह। अप्लुषत्। विष्—प्रेरणा = अविषत्। कुश—श्लेषण-अकुशत्। बुस्—उत्सर्ग करना = अबुसत्। मुश—खंडन करना अमुशत्। मसि—

क्लमु ग्लानौ। अक्लमत्। मदीहर्षे। अमदत्। असु क्षेपणे। अपासत्। यसु प्रयत्ने। अयसत्। जसु मोक्षणे। अजसत्। तसु दसु उपक्षये। अतसत्। अदसत्। वसु स्तम्भे। अवसत्। प्लुष दाहे। अप्लुषत्। विष प्रेरणे। अविषत्। कुश श्लेषणे। अकुशत्। बुस उत्सर्गे। अबुसत्। मुश खण्डने। अमुशत्। मसि परिणामे। अमसत्। लुठ विलोडने। अलुठत्। उच समवाये। औचत्। भृश भ्रंश अधःपतने। अभृशत्। वृश वरणे। अवृशत्। कृश तनूकरणे। अकृशत्। ञितृष पिपासायां। अतृषत्। तुष हृष तुष्टौ। अतुषत्। अहृषत्। कुप क्रुध रुष रोषे। अकुपत्। अक्रुधत्। अरुषत्। डिप क्षेपे। अडिपत्। स्तुप समुच्छ्राये। अस्तुपत्। गुप व्याकुलत्वे। अगुपत्। युप रुप लुप विमोहने। अयुपत्। अरुपत्। अलुपत्। लुभ गार्ध्ये। अलुभत्। क्षुभ संचलने। अक्षुभत्। नभ तुभ हिंसायां। अनभत् अतुभत्। क्लिन्दू आर्द्रीभावे। अक्लिन्दत्। ञिमिदा स्नेहने। अमिदत्। ञिक्ष्विदा मोचने। आक्ष्वदत्। ऋध वृद्धौ। आर्द्धत्। गृधु अभिकांक्षायां। अगृधत्। इति पुषादिः। पुषादिद्युतादीत्यण् प्रत्ययः। द्युत शुभ रुच दीप्तौ। अद्युतत् अद्योतिष्ट। एवं सर्वत्र आत्मनेपदेऽपि। अशुभत्। अरुचत्। श्वित आवरणे।

श्वितादीनां ह्रस्वः ॥४८९॥

श्वितादीनां ह्रस्वो भवति। अश्वितत्। घुट् परिवर्तने। अघुटत्। रुट लुट लुठ प्रतीघाते। अरुटत्। अलुटत्। अलुठत्। क्षुभ संचलने। अक्षुभत्। श्रंस भ्रंस अवस्रंसने। अश्रसत्। अभ्रसत्। ध्वंस गतौ च। अध्वसत्। स्रंभु विश्वासे। अस्रभत्। वृत वर्तने। अवृतत्। वृद्ध वृद्धौ। वृधु वर्धने। अवृधत्। शृद्लृ शब्दकुत्सायां। अशृदत्। स्यन्दू प्रस्रवणे। अस्यदत्। कृपू सामर्थ्ये। अकृपत्। गृधु अभिकांक्षायां। अगृधत्।

ऋतो लृत् ॥४९०॥

कृपेर्धातोः ऋतो लृत् भवति। अक्लृपत्।

इति द्युतादिः ॥

परिणामे = अमसत्। लुठ— विलोडन = अलुठत्। उच्—समवाये = औचत्। भ्रश, भ्रंश—अधःपतन—अभृशत्। वृश्—वरण करना = अवृशत्। कृश—तनू करना अकृशत्। तृष—प्यास = अतृषत्। तुष हृष—तुष्ट होना = अतुषत्, अहृषत्। अकुपत्। अरुषत् अक्रुधत्। डिप—क्षेपण करना = अडिपत्। षुप्—समुच्छ्राये = अस्तुपत् गुप—व्याकुलता = अगुपत्। युप, रुप, लुप—विमोहन अयुपत् अरुपत् अलुपत्। लुभ—गृद्धता = अलुभत्। अशुभत्। नभ तुभ हिंसा = अनभत् अतुभत्। क्लिन्दू—गीला होना। अक्लिन्दत्। ञिमिदा—स्नेह करना = अमिदत्। ञिक्ष्विदा—मोचन = अक्ष्वदत्। ऋध—वृद्धि होना = आर्द्धत्। गृधु—अभिकांक्षा—अगृधत्। इति पुषादिः। द्युत शुभ रुच—दीप्त होना = अद्युतत्। अद्योतिष्ट। इसी प्रकार से सर्वत्र आत्मनेपद में भी रूप चलते हैं। अशुभत् अरुचत्। श्वित्—आवरण करना।

श्वित आदि को ह्रस्व हो जाता है ॥४८९॥

अश्वितत्। घुट—परिवर्तन होना = अघुटत्। रुट् लुट लुठ—प्रतिघात होना = अरुटत् अलुटत् अलुठत्। स्रंस् भ्रंस्—अस्रसत्, अभ्रसत्। अध्वसत् स्रंभु—विश्वास = अस्रभत्। वृत-वर्तने = अवृतत्। वृद्ध-वृद्धि होना। वृधु—वर्धित होना = अवृधत्। शृद् = शब्द कुत्सा में = अशृदत्। स्यंदू—प्रस्रवण करना = अस्यंदत्। कृपू—सामर्थ्य = अकृपत्। अगृधत्।

कृप धातु से ऋ को 'लृ' हो जाता है ॥४९०॥

अक्लृपत्।

इति द्युतादिः।

भावसेनत्रिविद्येन वादिपर्वतवज्रिणा।
कृतायां रूपमालायामाख्यातः परिपूर्यते ॥१॥ ❑

अथ कृदन्ताः केचित्प्रदर्श्यन्ते

सिद्धिरिज्वद्ञ्णानुबन्धे ॥४९१॥

ञ्णानुबन्धे कृत्प्रत्यये परे इचि कृतं कार्यमतिदिश्यते यथासंभवं।

धातोः ॥४९२॥

अविशेषेण धातोरित्यधिकारो वेदितव्यः।

कृत् ॥४९३॥

वक्ष्यमाणाः प्रत्ययाः कृत्संज्ञका वेदितव्याः।

कर्त्तरि कृ ॥४९४॥

कृत्प्रत्ययान्ताः कर्तृकारके भवन्ति।

वर्त्तमाने शन्तृङानशावप्रथमैकाधिकरणामन्त्रितयोः ॥४९५॥

अप्रथमैकाधिकरणामन्त्रितयोः परयोः वर्तमानकाले धातोः शन्तृङानशौ भवतः॥

सार्वधातुकवत् ॥४९६॥

शानुबन्धे कृति परि सार्वधातुकवत्कार्यं भवति। कृदन्ताः प्रायो वाच्यलिङ्गाः। शन्तृङन्तं क्विबन्तं धातुत्वं न जहाति। भवन् पुमान्। भवन्ती स्त्री। भवत्कुलं। लोकोपचारादानशानङावात्मनेपदे।

अर्थ—वादीरूपी पर्वतों के लिये वज्र के सदृश ऐसे वादिपर्वत वज्री श्री भावसेन त्रिविद्य मुनिराज ने इस रूपमाला टीका में आख्यात प्रकरण पूर्ण किया है॥१॥

इस प्रकार से यहाँ तक तिङंत प्रकरण समाप्त हुआ है। ❑

अथ कृदन्त प्रकरण प्रारंभ होता है।

ञानुबंध, णानुबंध कृत् प्रत्यय के आने पर यथासंभव इच् में कहा गया कार्य हो जाता है॥४९१॥

सामान्यतया 'धातोः' इस सूत्र से धातु का अधिकार समझना चाहिये॥४९२॥

आगे धातु से कहे जाने वाले सभी प्रत्यय 'कृत्संज्ञक' समझना चाहिये॥४९३॥

कृत् प्रत्यय वाले शब्द कर्तृकारक में होते हैं॥४९४॥

अप्रथमैकाधिकरण और आमंत्रित से परे वर्तमानकाल में धातु से शतृङ् और आनश् प्रत्यय होते हैं॥४९५॥

शानुबंध कृत् प्रत्यय के आने पर सार्वधातुकवत् कार्य होता है॥४९६॥

कृत् प्रत्यय वाले शब्द प्रायः वाच्यलिंग होते हैं। अर्थात् विशेष्य के अनुकूल होते हैं। शतृङ् प्रत्यय वाले और क्विप् प्रत्यय वाले शब्द धातुपने को नहीं छोड़ते हैं। भू शतृङ्। श् ऋ और ङ् अनुबंध हैं अतः 'भू अन्त्' रहा 'अन् विकरणः कर्तरि' सूत्र से अन् विकरण होकर 'अनि च विकरणे' सूत्र से गुण

आनोऽत्रात्मने ॥४९७॥

अत्र आनः प्रत्यय आत्मनेपदं भवति।

आन्मोन्त आने ॥४९८॥

अकारान्तान्मकारागमो भवति आने परे ॥ एधमानः पुत्रः। एधमाना लक्ष्मीः। एधमानं कुलं। तथा पचन् पचन्ती पचत्। पचमानः पचमाना पचमानमित्यादि ॥ अदन् अदन्ती अदत्। शयानः शयाना शयानं।

ङे न गुणः ॥४९९॥

नाम्यन्तयोर्धातुविकरणयोर्गुणो न भवति ङानुबन्धे कृति परे। ब्रुवन् ब्रुवाणः। जुह्वत् जुह्वानः। दधत् दधानः। दीव्यन्। सूयमानः। सुन्वन् सुन्वानः। अश्नुवानः ॥ सर्वेषामात्मने इत्यादिना गुणो न भवति। चिन्वन् चिन्वानः। भावे। भूयमानं देवदत्तेन। एध्यमानमस्माभिः। भावे सर्वत्र नपुंसकलिङ्गत्वं एकत्वं च। कर्मणि। पच्यमान ओदनः। पच्यमानौ ओदनौ। पच्यमानाः ओदनाः। क्रियमाणः कट इत्यादि।

होकर भव अत् रहा। 'असंध्यक्षरयोरस्य तौ तल्लोपश्च' सूत्र २६ से अकार का लोप होकर 'भवन्त्' बना 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र ४२३ से लिंग संज्ञा होकर व्यञ्जनान्त पुल्लिग में 'भवत्' बन गया। स्त्रीलिंग में 'नदाद्यञ्च वाह' इत्यादि सूत्र ३७२ से 'ई' प्रत्यय होकर भवन्ती बन कर लिंग संज्ञा होकर स्वरांत स्त्रीलिंग में नदी के समान रूप चलेगा। एवं नपुंसक लिंग में 'भवेत्' बनेगा।

लोकोपचार से आनश् और आनङ् प्रत्यय आत्मनेपद में होते हैं।

यहाँ आन प्रत्यय आत्मनेपद में होता है ॥४९७॥

आन प्रत्यय के आने पर अकारांत शब्द से मकार का आगम हो जाता है ॥४९८॥

एध् अ म् आन = एधमान 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से लिंग संज्ञा होकर बालकवत् एधमानः। स्त्रीलिंग में रमावत् 'एधमाना' नपुंसकलिंग में कुलवत् एधमानं बनेगा।

ऐसे ही पच् धातु से पचन्, पचन्ती, पचत् बनेंगे।

आनश् में पचमानः पचमानां, पचमानं बनेंगे।

अद्—अदन्। शीङ्—शयानः आदि।

ङानुबंध कृदन्त प्रत्यय के आने पर नाम्यंत धातु और विकरण को गुण नहीं होता है ॥४९९॥

ब्रू अन्त् 'स्वरादाविवर्णोवर्णान्तस्य धातोरियुवौ' ८३ सूत्र से ब्रुव् होकर ब्रुवन्त् है, लिंग संज्ञा होकर 'ब्रुवन्' बना। आनश् में—ब्रुवाणः। हु धातु से—हु अन्त् 'जुहोत्यादीनां सार्वधातुके' १५० सूत्र से 'हु हु अन्त् पूर्वोऽभ्यासः' १५१ से पूर्व को अभ्यास संज्ञा हुई पुनः 'हो जः' १५२ सूत्र से अभ्यास के हकार को जकार होकर जुहु अन्त् रहा 'जुहोतेः सार्वधातुके' १५५ सूत्र से उकार को वकार होकर जुह्वन्त् बना। लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर "अभ्यस्तादन्तिरनकारः" २८८ सूत्र से नकार का लोप होकर 'व्यञ्जनाञ्च' सूत्र से सि का लोप होकर 'जुह्वत्' बना। आनश् में—जुह्वानः बना। 'धा' धातु से—दधत् दधानः। दिवादि गण में—दिव् अन्त् है 'दिवादेर्यन्' सूत्र १८२ से यन् विकरण होकर १८३ सूत्र से दिव् को दीर्घ होकर २६वें सूत्र से अकार का लोप होकर 'दीव्यन्त्' बना। लिंग संज्ञा होकर 'दीव्यन्' स्त्रीलिंग में दीव्यन्ती, नपुंसक में दीव्यत् बना। सूयमानः। स्वादिगण में—नु विकरण होता है अतः सुन्वन्त् बना। सुन्वन् सुन्वानः। अश्नुवानः। "सर्वेषामात्मने सार्वधातुकेऽनुत्तमे पञ्चम्याः" ८७वें सूत्र से आत्मनेपद में गुण नहीं होता है।

चिन्वन् चिन्वानः।

भाव में—'सार्वधातुके यण्' ३१ सूत्र से यण् होकर आत्मनेपद में भूयमानं बना। ऐसे ही एध्यमानं।

भाव में सर्वत्र नपुंसकलिंग और एकवचन ही होता है।

वेत्तेः शन्तुर्वन्सुः ॥५०० ॥

विदः परस्य शन्तुर्वन्सुर्भवति । विद्वान् विद्वान्सौ ।

क्वन्सुकानौ परोक्षावच्च ॥५०१ ॥

धातोः परोक्षास्वरूपौ क्वन्सुकानौ भवतः ॥ क्वन्सु परस्मै कान आत्मनेपदं भवति ।

के यण्वच्च योक्तवर्जनम् ॥५०२ ॥

कानुबन्धे कृति परे यण्वत्कार्यं भवति योक्तं वर्जयित्वा । इति न गुणः । बभूवान् बभूवान्सौ बभूवान्सः । एधाञ्चक्रिवान् । एधाञ्चक्राणः । अत्र नाम्यादेर्गुरुमत इत्यादिना आमः कृञ् प्रयुज्यते इत्यनुप्रयोगः । पेचिवान् पेचानः । चक्रिवान् चक्राणः ।

य्वोर्व्यञ्जनेऽये ॥५०३ ॥

धातोर्यकारवकारयोर्लोपो भवति यकारवर्जिते कृति व्यञ्जने परे । क्नूयी शब्दे । चुक्नूवान् । क्ष्मायी विधूनने । चक्ष्मावान् । दिव् क्रीडादौ । दिदिवान् । षिवु तन्तुसन्ताने । सिषिवान् । ष्ठिवु क्षिवु निरसने । तिष्ठिवान् । चिक्षिवान् ।

कर्मणि प्रयोग में—वाच्य के समान तीनों लिंग और एक द्वि बहुवचन भी होते हैं। यथा—पच्यमानः औदनः पच्यमानौ ओदनौ, पच्यमानाः ओदनाः । क्रियमाणः ।

विद् के परे शन्तृ को वन्स् आदेश हो जाता है ॥५०० ॥

अतः विद्वन्स् बना । लिंग संज्ञा होकर सि आदि विभक्ति में विद्वान् विद्वांसौ विद्वान्सः ।

धातु से परोक्षा अर्थ में क्वंसु कान प्रत्यय होते हैं ॥५०१ ॥

क्वन्सु परस्मैपद में एवं कान प्रत्यय आत्मनेपद में होता है ।

कानुबन्ध कृत् प्रत्यय के आने पर योक्त को छोड़कर यणवत् कार्य होता है ॥५०२ ॥

इससे गुण नहीं होता है । भू क्वन्स् में वन्स् रहता है । 'चण् परोक्षाचेक्रीयितसनन्तेषु' २९२ सूत्र से द्वित्व होकर भू भू वन्स् । 'पूर्वोऽभ्यासः' १५१ सूत्र से अभ्यास संज्ञा होकर 'भवतेरः' इस ३०५वें सूत्र से अभ्यास को अकार होता है । "द्वितीयचतुर्थयोः प्रथमतृतीयौ" १५९ सूत्र से तृतीय अक्षर होकर बभूवन्स् बना 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'बभूवान्' ऐसे ही एध धातु से आम् कृ का प्रयोग होकर 'कान' प्रत्यय होकर एधाञ्चक्राणः । यहाँ पर 'नाम्यादेर्गुरुमतः' इत्यादि सूत्र से आम् से कृ धातु का प्रयोग होता है । पेचिवन्स् पेचान बनकर लिंग संज्ञा होकर और सि विभक्ति आने पर पेचिवान् पेचानः । चक्रिवान् । चक्राणः ।

क्नूयी—शब्द करना । क्नूय क्नूय् वन्स् न का लोप होकर 'कवर्गस्य चवर्गः' २९३ सूत्र से चवर्ग होकर २९४ सूत्र से ह्रस्व होकर चुक्नूय् वन्स् रहा ।

यकार वर्जित कृत्प्रत्यय के आने पर धातु के यकार वकार का लोप हो जाता है ॥५०३ ॥

यकार का लोप होकर चूक्नूवन्स् लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर 'चुक्नूवान्' बना ।

क्ष्मायी—कँपना । उपर्युक्त सूत्र से यकार का लोप होकर चक्ष्मावान् बना । दिव्—क्रीड़ा आदि । दिदिवान् ।

षिवु—सिषिवान् । तिष्ठिवान् चिक्षिवान् ।

गम् वन्स् द्वित्व होकर गम् गम् वन्स् कवर्ग को—

गमहनविदविशदृशां वा ॥५०४॥

एषां वन्स् आजारड् वा भवति यथासंभवं उपधालोपः। जग्मिवान्। इडभावे।

वमोश्च ॥५०५॥

वमोश्च परयोर्द्धातोर्मो नो भवति। जगन्वान् जघ्निवान्। जघन्वान्। विविदिवान्। विविद्वान्। विविशिवान्। विविश्वान्। ददृशिवान्।

दास्वान्साह्वान्मीढ्वांश्च ॥५०६॥

एते क्वन्सप्रत्ययान्ता निपात्यन्ते। दासृ दाने। दास्वान्। षह मर्षणे। साह्वान्। मिह सेचने। मीढ्वान्।

तव्यानीयौ ॥५०७॥

धातोस्तव्यानीयौ भवतः।

ते कृत्याः ॥५०८॥

ते तव्यादयः कृत्या भवन्ति।

भावकर्मणोः कृत्यक्तखलर्थाः ॥५०९॥

भावे कर्मणि च कृत्यक्तखलर्था वेदितव्याः॥ पूर्वस्यापवादोऽयं॥ सुजनेन भवितव्यं। भवनीयं। अनुक्ते कर्त्तरि तृतीया। एधितव्यं। एधनीयं। उक्ते कर्मणि प्रथमा। अभिभवितव्यः शत्रुः। अभिभवनीयः। कर्त्तव्यः करणीय कटः दातव्यं दानीयं धनं।

गम् हन् विद् विश् और दृश् धातु से वन्स् प्रत्यय के आने पर विकल्प से उपधा का लोप होता है ॥५०४॥

ज गम् वन्स् में उपधा का लोप होकर विकल्प से इट् होकर जग्मिवान् बना।

व और म से परे धातु से म् को न् हो जाता है ॥५०५॥

जगन्वान्। हन् धातु से ह को ध होकर इट् होकर जघ्निवान्। इट् के अभाव में जघन्वान्। विद धातु से विविदिवान्। विविद्वान्। विश्—विविशिवान्, विविश्वान्। ददृशिवान्।

दास्वान्, साह्वान् और मीढ्वान् शब्द क्वंस् प्रत्ययांत निपात से सिद्ध होते हैं ॥५०६॥

दासृ-देना = दास्वान्। षह-मर्षण करना = साह्वान् मिह्—सेचन करना = मीढ्वान् ये। सब शब्द परोक्षा अर्थ में क्वंसु कान प्रत्यय से बने हैं।

धातु से तव्य अनीय प्रत्यय होते हैं ॥५०७॥

ये तव्य आदि प्रत्यय 'कृत्य' संज्ञक होते हैं ॥५०८॥

कृत्य, क्त और खल अर्थ वाले प्रत्यय भाव और कर्म में होते हैं ॥५०९॥

यह पूर्व का अपवाद है। भू तव्य भू अनीय 'नाम्यंतयोधातुविकरणयोर्गुणः' सूत्र से गुण होकर 'इडागमोऽसार्वधातुकस्यादिर्व्यंजनादेरयकारादेः' २२७वें सूत्र से इट् का आगम होकर भवितव्य बना 'कृत्तद्धितसंमासाश्च' सूत्र से लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में नपुंसक लिंग का एकवचन हुआ। भवितव्यं। अनीय में इट् प्रत्यय न होकर भवनीयं बना। सूत्र में नहीं कहने पर भी तव्य् अनीय प्रत्यय वाले शब्दों के प्रयोग में कर्ता में तृतीया होती है। कर्मणि प्रयोग में कर्ता में तृतीया एवं कर्म में प्रथमा होती है। त्वया अभिभवितव्यः शत्रुः—तुम्हें शत्रु का तिरस्कार करना चाहिये। इत्यादि।

कृत्ययुटोऽन्यत्रापि ॥५१० ॥

कृत्यो युट् च उक्तादन्यत्रापि भवति। स्ना शौचे। स्नानीयं चूर्णं। दानीयो ब्राह्मण:। वृत् वर्तने। समावर्त्तनीयो गुरु: ॥

स्वराद्य: ॥५११ ॥

स्वरान्ताद्धातोर्य: प्रत्ययो भवति। चेयं जेयं नेयं।

उदौद्भ्यां कृद्य: स्वरवत् ॥५१२ ॥

उदौद्भ्यां पर: कृद्य: स्वरवद्भवति। लव्यं अवश्यलाव्यं।

शकिसहिपवर्गान्ताच्च ॥५१३ ॥

शकिसहिभ्यां पवर्गान्ताच्च यो भवति। शक्लृ शक्तौ। शक्यं सह्यं। जप्यं। लभ्यं

आत्खनोरिच्च ॥५१४ ॥

आकारान्तात्खनो नश्च यो भवति अनयोरन्त इकारागमो भवति। देयं पेयं। खनु अवदारणे। खनेरिकारादेश:। अन्येषामागम:। खेयं

यमिमदिगदां त्वनुपसर्गे ॥५१५ ॥

एषामुपसर्गाभावे यो भवति। यम्यं मद्यं। गद्यं अनुपसर्ग इति किं ? घ्यण्—प्रयाम्यं। प्रमाद्यं प्रगाद्यं।

चरेराङि चागुरौ ॥५१६ ॥

ऊपर कहे हुए भावकर्म से अतिरिक्त अन्यत्र भी कृत्य और युट् प्रत्यय होते हैं ॥५१० ॥

स्ना—शुद्ध होना। स्नानीयं। दानीय:।

वृत्—वर्तन करना। समावर्त्तनीय:।

स्वरान्त धातु से 'य' प्रत्यय होता है ॥५११ ॥

चिञ् = चेयं जेयं नेयं।

उत् औत् से परे कृदन्त 'य' प्रत्यय होता है ॥५१२ ॥

लुञ्—गुण होकर य प्रत्यय के आने पर भी स्वरवत् ओ को अव् होकर लव्यं बना।

शकि, सहि और पवर्ग से परे 'य' प्रत्यय होता है ॥५१३ ॥

शक्लृ = शक्यं। सह्यं। जप्यं। लभ्यं।

आकारान्त और खन से 'य' प्रत्यय होता है ॥५१४ ॥

इनके अन्त में इकार का आगम होता है। दा इ य = देयं पेयं इत्यादि। खनु—खन् के न को इकार आदेश होता है। और अन्य धातुओं में आगम होता है। खेयं।

यम् मद् और गद् धातु को अनुपसर्ग में 'य' होता है ॥५१५ ॥

यम्यं, मद्यं, गद्यं। अनुपसर्ग ऐसा क्यों कहा ? उपसर्ग पूर्वक इन धातुओं से ५४१वें सूत्र से घ्यण् प्रत्यय होता है और णानुबन्ध से वृद्धि हो जाती है। प्रयाम्यं। प्रमाद्यं प्रगाद्यं।

उपसर्ग रहित आङ् से अगुरु अर्थ में चर् धातु से 'य' प्रत्यय होता है ॥५१६ ॥

अनुपसर्गे आङ्गि चरेर्यो भवति अगुरौ। आचर्यो देशः। अनुपसर्ग इति किं ? अभिचार्यं। अगुराविति किं ? आचार्यो गुरुः।

पण्यावद्यवर्या विक्रेयगर्ह्यानिरोधेषु ॥५१७॥

एतेष्वर्थेषु एते निपात्यन्ते यथासंख्यं। पण्यमिति निपात्यते विक्रेयार्थे। अवद्यमिति निपात्यते गर्ह्यार्थे। वर्यमिति निपात्यते अनिरोधार्थे। पण व्यवहारे स्तुतौ च। वद व्यक्तायां वाचि। वृञ् वरणे। पण्यं। अवद्यं। वर्यं।

वह्यं करणे ॥५१८॥

वह्यमिति निपात्यते करणेऽर्थे। वह्यं शकटं वाह्यमन्यत्।

अर्यः स्वामिवैश्ये ॥५१९॥

अर्यमिति निपात्यते स्वामिनि वैश्ये चार्थे। अर्यते इति अर्यः स्वामी अर्यो वैश्यः।

उपसर्या काल्याप्रजने ॥५२०॥

प्रजने प्राप्तकाले चेत् उपसर्या इति निपात्यते। सृ गतौ। उपसर्या ऋतुमतीत्यर्थः।

अजर्यं संगते ॥५२१॥

अजर्यमिति निपात्यते संगतेऽर्थे। न जीर्यत इत्यजर्यं आर्यसंगतं।

नाम्नि वदः क्यप् च ॥५२२॥

आचर्यः देशः। अनुपसर्ग ऐसा क्यों कहा ? घ्यण् प्रत्यय में अभि उपसर्ग से परे अभिचार्यं। गुरु अर्थ न हो ऐसा क्यों कहा ? आचार्यः गुरुः।

विक्रेय गर्ह्य और अविरोध अर्थ में पण्य अवद्य और वर्य निपात से सिद्ध होते हैं ॥५१७॥

क्रम से पण् व्यवहार और स्तुति अर्थ में है, विक्रेय अर्थ में 'पण्यं' निपात से सिद्ध हुआ। वद-स्पष्ट बोलना गर्ह्य अर्थ में न वद्यं='अवद्यं' निपात से बना। वृञ्-वरण करना। अनिरोध अर्थ में—वर्यं निपात से बन गया है।

करण अर्थ में 'वह्य' निपात से सिद्ध होता है ॥५१८॥

वह धातु से वह्यं-शकटं। अन्य अर्थ में वाह्यं बना।

स्वामी और वैश्य अर्थ में 'अर्य' शब्द निपात से सिद्ध होता है ॥५१९॥

ऋ धातु से अर्यते इति अर्यः स्वामी और वैश्य।

यदि प्रजनकाल प्राप्त है तो 'उपसर्या' यह शब्द निपात से सिद्ध होता है ॥५२०॥

सृ—गमन करन। उपसर्या—गर्भ धारण करने के योग्य ऋतुमती यह अर्थ है।

संगत अर्थ में 'अजर्य' यह शब्द निपात से सिद्ध होता है ॥५२१॥

न जीर्यते, ज—अजर्यं। इसका अर्थ है आर्यसंगति जीर्ण नहीं होती है।

नाम उपपद से परे वद धातु से क्यप् और य प्रत्यय होता है ॥५२२॥

नाम्नि उपपदे वदः क्यप् भवति यश्च ।

सप्तम्युक्तमुपपदम् ॥५२३ ॥

धात्वधिकारे सप्तम्या निर्दिष्टमुपपदसंज्ञं भवति ।

तत्प्राङ्नाम चेत् ॥५२४ ॥

तदुपपदं नाम चेद्धातोः प्राग्भवति ।

तस्य तेन समासः ॥५२५ ॥

तस्य नामोपपदस्य तेन कृदन्तेन सह समासो भवति । ब्राह्मणो वदनं अथवा ब्रह्मणा उच्यते ब्रह्मोद्यं ब्रह्मवद्यं ।

भावे भुवः ॥५२६ ॥

नाम्नि उपपदे भुवो धातोः क्यप् भवति भावे । ब्रह्मभूयं गतः ब्रह्मत्वं गत इत्यर्थः ।

हनस्त च ॥५२७ ॥

नाम्नि उपपदे हन्तेः क्यप् भवति नस्य तकारादेशो भवति । ब्रह्महत्या । अश्वहत्या ।

वृञ्दृजुषीणशासुस्तुगुहां क्यप् ॥५२८ ॥

एषां क्यप् भवति । पुनः क्यप् ग्रहणं अधिकारनिवृत्यर्थं । तेन नाम्नि भावे चेति निवृत्त्यर्थं ।

धातोस्तोन्तः पानुबन्धे ॥५२९ ॥

ह्रस्वान्तस्य धातोस्तोऽन्तो भवति पानुबन्धे कृति परे । वृत्यं दृत्यं । जुषी प्रीतिसेवनयोः जुष्यते इति जुष्यं । इत्यः । शासु अनुशिष्टौ ॥ शासेरिदुपधाया इत्यादिना आकारस्य इत्वं । शिष्यः । स्तुत्यः । गुह्यः ।

धातु के अधिकार में सप्तमी से निर्दिष्ट पद 'उपपद' संज्ञक होता है ॥५२३ ॥

यदि उपपद नाम है तो धातु के पहले होता है ॥५२४ ॥

उस नाम उपपद का उस कृदन्त के साथ समास होता है ॥५२५ ॥

ब्रह्मणः वदनं अथवा ब्रह्मणा उच्यते—

ब्रह्मा का कथन अथवा ब्रह्मा के द्वारा कहा गया है । वह ब्रह्म—उद्यं = ब्रह्मोद्यं, ब्रह्मवद्यं ।

नाम उपपद से भाव अर्थ में भू धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ॥५२६ ॥

ब्रह्मभूयं गतः—अर्थात् ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गया ।

नाम उपपद में हन् धातु से क्यप् प्रत्यय होता और नकार को तकार होता है ॥५२७ ॥

ब्रह्माणं हन्ति इति ब्रह्महत्या, अश्वहत्या । इसका विग्रह भी होता है । ब्राह्मणो हननं इति ।

वृञ् दृ जुष इण् शास् स्तु गुह् धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ॥५२८ ॥

अधिकार निवृत्ति के लिए यहाँ पर पुनः क्यप् का ग्रहण किया है । इसमें 'नाम और भाव में ' इसकी भी निवृत्ति हो जाती है ।

पानुबंध कृत्प्रत्यय के आने पर ह्रस्वान्त धातु के अंत में 'त' होता है ॥५२९ ।

वृञ्—वृत्यं । दृ—दृत्यं, जुषी—प्रीति और सेवन करना जुष्यं, इण् से इत्यः शास्— "शासेरिदुपधाया" इत्यादि सूत्र से आकार को 'इ' होकर शासि वशि, से ष होकर शिष्यः, स्तुत्यः, गुह्यः ।

ऋदुपधाच्चाकृपिचृतेः ॥५३० ॥

कृपि चृति वर्जित ऋकारोपधाद्धातोः क्यप् भवति । वृत्यं नृत्यं दृश्यं स्पृश्यं ।

भृञोऽसंज्ञायाम् ॥५३१ ॥

भृञ असंज्ञायां क्यप् भवति । भ्रियत इति भृत्यः ।

ग्रहोऽपिप्रतिभ्यां वा ॥५३२ ॥

अपिप्रतिभ्यां परात् ग्रहेः क्यब् भवति वा । अपिगृह्यं । अपिग्राह्यं । पक्ष्ये घ्यण् । प्रतिगृह्यं प्रतिग्राह्यं ।

पदपक्ष्ययोश्च ॥५३३ ॥

पदपक्ष्ययोरर्थयोर्ग्रहेः क्यब् भवति । पक्षे भवः पक्ष्यः । प्रगृह्यं पदं । पक्षे अर्जुनगृह्या सेना ।

वौ नीपूञ्भ्यां कल्कमुञ्जयोः ॥५३४ ॥

वावुपपदे नीपूञ्भ्यां कल्कमुञ्जयोरर्थयोः क्यप् भवति । विनीयः कल्कः । विपूयो मुञ्जः ।

कृवृषिमृजां वा ॥५३५ ॥

कृञादिभ्यो वा क्यप् भवति । कृत्यं कार्यं । वृष वृक्ष सेचने । वृष्यं । व्रष्यं । मृज्यं । मर्ज्यं ।

मृजो मार्जिः ॥५३६ ॥

मृजु इत्येतस्य धातोर्मार्जिरादेशो भवति । चजोः कगौ धुडघानुबन्धयोरिति जकारस्य गकारः ॥ मार्ज्यं मार्ग्यं ।

कृप् चृत् को छोड़कर ऋकार उपधा वाली धातु से क्यप् होता है ॥५३० ॥

ह्रस्वान्त से तकारागम होकर वृत्यं, नृत्यं बना आगे दृश्—दृश्यं, स्पृश्—स्पृश्यं बना ।

संज्ञा रहित अर्थ में भृज् से क्यप् होता है ॥५३१ ॥

भ्रियते इति भृत्यः ।

अपि प्रति से परे ग्रह धातु से व्यप् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥५३२ ॥

अपिगृह्यं, संप्रसारण होकर र् को ऋ हुआ है । अन्यथा अपिग्राह्यं इसमें घ्यण् प्रत्यय हुआ है । ऐसे ही प्रतिगृह्यं प्रतिग्राह्यं ।

पद और पक्ष्य अर्थ में ग्रह् से क्यप् होता है ॥५३३ ॥

पक्षे भवः पक्ष्यः—प्रगृह्यं पदं प्रगृह्यय को पद कहते हैं । पक्ष में अर्जुनगृह्या सेना अर्जुन के पक्ष को ग्रहण करती है ।

'वि' उपपद से कल्क मुञ्ज अर्थ में नी पूञ् धातु से क्यप् प्रत्यय होता है ॥५३४ ॥

विनीयः, कल्कः । विपूयः । मुञ्जः ।

कृ वृष मृज धातु से विकल्प से क्यप् होता है ॥५३५ ॥

कृत्यं तकार का आगम हुआ है वृष्यं वर्ष्यं । मृज्यं मर्ज्यं ।

मृज धातु को मार्ज आदेश होता है ॥५३६ ॥

"चजोः कगौ"—इत्यादि ५४२ सूत्र से जकार को गकार हो गया । मार्ज्यं, मार्ग्यं ।

सूर्यरुच्याव्यथ्याः कर्त्तरि ॥५३७ ॥

एते कर्त्तरि निपात्यन्ते। सरति सूते वा लोकानिति सूर्यः। रोचत इति रुच्यः। व्यथ दुःखभयचलनयोः। न व्यथते इति अव्यथ्यः।

भिद्योध्यौ नदे ॥५३८ ॥

एतौ कर्त्तरि नदे निपात्येते। भिनत्ति कूलानीति भिद्यः। उज्झत्युदकमित्युध्यः।

युग्यं च पत्रे ॥५३९ ॥

युग्यमिति निपात्यते पत्रे वाहनार्थे। युज्यते अनेनेति युग्यं।

कृष्टपच्यकुप्यसंज्ञायाम् ॥५४० ॥

एते निपात्यन्ते संज्ञायां। कृष्टे स्वयमेव पच्यन्ते कृष्टपच्या व्रीहयः। कुप्यं सुवर्णरजताभ्यामन्यत्।

ऋवर्णव्यञ्जनान्ताद् घ्यण् ॥५४१ ॥

ऋवर्णान्तात् व्यञ्जनान्ताद्धातोः घ्यण् भवति। णकार इद्वद्भावार्थः। घकारश्चजोः कगौ इत्यर्थः। कार्यं। स्तृङ् आच्छादने। निस्तार्यं। श्लोकृ लोचृ दर्शने। आलोक्यं आलोच्यं। वाद्यं। कृप कृपायां। कृपे। रो लः। कल्प्यं।

चजोः कगौ धुट्घानुबन्धयोः ॥५४२ ॥

चजोः कगौ यथासंख्यं भवतः धुटि घानुबन्धे परे। वाक्यं पाक्यं योग्यं भोग्यं।

सूर्य रुच्य अव्यथ्य शब्द निपात से सिद्ध होते हैं ॥५३७ ॥

सूर्यः, रुच्यः, अव्यथ्यः।

भिद्य, उध्य नद अर्थ में निपात से बनते हैं ॥५३८ ॥

जो तटों को भेदन करे वह भिद्यः, जो उदक को छोड़े—उध्यः।

वाहन अर्थ में 'युग्य' निपात से बनता है ॥५३९ ॥

जिसके द्वारा ले जाया जाय—वह, युग्यं।

कृष्ट पच्य और कुप्य संज्ञा अर्थ में निपात से सिद्ध होते हैं ॥५४० ॥

जो जोते हुये क्षेत्र में स्वयं ही पक जाते हैं वे 'कृष्टपच्याः'। धान्य। कुप्यं—सुवर्ण रजत से भिन्न को कुप्य कहते हैं।

ऋवर्णान्त और व्यञ्जनान्त धातु से घ्यण् प्रत्यय होता है ॥५४१ ॥

णकारानुबंध इचवत् भाव के लिये है और घकारानुबंध 'चजोः कगौः' इत्यादि ५४२ सूत्र के कार्य के लिये है।

कृ—कार्यं "वृद्धिरादौसणे" सूत्र से वृद्धि होकर शब्द बने हैं। स्तृङ्—ढकना = निस्तार्यं, लोकृ लोचृ—देखना आलोक्यं आलोच्यं वाद्यं। कृप—कृपा अर्थ में = 'कृपे रो लः' सूत्र से ऋ के र् को ल् होकर कल्प्यं बना।

धुट् घानुबंध प्रत्यय के आने पर चको क और ज को ग होता है ॥५४२ ॥

वच्—वाक्यं, पच् = पाक्यं, युज् = योग्यं, युज् = योग्यं, भुज् = भोग्यं।

न कवर्गादिव्रज्यजाम् ॥५४३ ॥

कवर्गादि: व्रजे: अजश्च चजो: कगौ न भवत: । क्षीज कूज गुज अव्यक्ते शब्दे ॥ कूज्यं कूजं । खज मन्थे । खाज्यं । प्राव्राज्यं । अज क्षेपणे । आज्यं ।

घ्यण्यावश्यके ॥५४४ ॥

आवश्यके गम्यमाने चजो: कगौ न भवत: घ्यणि परे । अवश्यपाच्यं । अवश्यभोज्यं ।

प्रवचर्चिरुचियाचियजित्यजाम् ॥५४५ ॥

एषां चजो: कगौ न भवतो घ्यणि परे । प्रवाच्य: । आर्च्य: । रोच्य: । याच्य: । याज्य: । त्यज हानौ । त्याज्य: ।

नि:प्राभ्यां युजे: शक्ये ॥५४६ ॥

निप्राभ्यां परस्य युजेर्गो न भवति शक्यार्थे घ्यणि परे । नियोक्तुं शक्य: नियोज्य: । एवं प्रयोज्य: भृत्य: ।

भुजोऽन्ने ॥५४७ ॥

भुजो गो न भवति शक्यार्थे घ्यणि परे अन्ने । भोक्तुं शक्यं भोज्यं अन्नं भोज्यं पय: ।

आसुयुवपिरपिलपित्रपिदभिचमां च ॥५४८ ॥

आङ्पूवात्सुनोतेर्य्वित्यादिभ्यश्च घ्यण् भवति । आसाव्यं । यु मिश्रणे । यूयते याव्यं । टुवप् बीजतन्तुसन्ताने । वाप्यं । रप लप जल्प व्यक्तायां वाचि । राप्यं । लाप्यं । त्रपूष् लज्जायां । त्रप्यं । दंभेरिह प्रकृतिनलोप: । अवदाभ्यं । आचाम्यं ।

कवर्गादि व्रज और अज के च, ज, को क, ग नहीं होता है ॥५४३ ॥

क्षीज, कूज, गुज—अव्यक्त शब्द करना । कूज्यं कूजं । खज-मन्थे । खाज्यं । व्रज—प्राव्राज्यं । अज-क्षेपण करना = आज्यं ।

आवश्यक अर्थ में घ्यण् प्रत्यय आने पर च ज को क ग नहीं होता है ॥५४४ ॥

अवश्यपाच्यं, अवश्यभोज्यं ।

प्रवच अर्चि रुचि याच, यज और त्यज के च, ज को घ्यण् के आने पर क ग नहीं होता है ॥५४५ ॥

प्रवाच्य:, आर्च्य:, रोच्य:, याच्य: याज्य:, त्याज्य: ।

नि और प्र से परे शक्य अर्थ में घ्यण् के आने पर युज् के ज् को ग् नहीं होता है ॥५४६ ॥

नियोक्तुं शक्य: = नियोज्य: । प्रयोज्य: भृत्य: ।

शक्य अर्थ घ्यण् के आने पर अन्न अर्थ में भुज् के ज् को ग् नहीं होता है ॥५४७ ॥

भोक्तुं शक्यं = भोज्यं—अन्न दूध आदि ।

आङ् पूर्वक सु, यु, वप्, रप, लप, त्रप, दभ और चम् धातु से घ्यण् होता है ॥५४८ ॥

आसाव्यं । यु—याव्यं, वाप्यं, राप्यं, लाप्यं, त्रप्यं, अवदाभ्यं आचाम्यं ।

उवर्णादावश्यके ॥५४९ ॥

उवर्णान्तात् घ्यण् भवति अवश्यंभावे गम्यमाने। अवश्यं लूयत इति लाव्यं। एवं नाव्यं। भाव्यं।

पाधोर्मानसामिधेन्योः ॥५५० ॥

पाधोरित्येतयोर्मानसामिधेन्योरर्यथासंख्यं घ्यण् भवति। आयिरिच्यादन्तानामिति आयिप्रत्ययः। पाय्यं। धाय्यं। सामिधेनो ऋक्।

प्राङोर्नियोऽसंमतानित्ययोः स्वरवत् ॥५५१ ॥

प्राङोरुपपदयोर्नियो धातोरसंमतानित्ययोर्यथासंख्यं घ्यण् भवति स च स्वरवत्। प्रणाय्यश्चोरः। निग्राह्य इत्यर्थः। यो गार्ह्यपत्यादानीयत इति स चानित्यो रूढितः। आनाय्यो दक्षिणाग्निः।

सञ्चिकुण्डपः कृतौ ॥५५२ ॥

संपूर्वाच्चिनोतेः कुण्डपूर्वात्पिबतेर्घ्यण् भवति स च स्वरवत् कृतावभिधेये। सञ्चायः क्रतुः। कुण्डपायः क्रतुः।

राजसूयश्च ॥५५३ ॥

कृतावभिधेये राजसूय इति निपात्यते। राजा सोतव्यः राजा वा सूयते इति राजसूयः।

सान्नाय्यनिकाय्यौ हविर्निवासयोः ॥५५४ ॥

एतौ निपात्येते हविर्निवासयोरर्थयोः। सान्नाय्यं हविः विशिष्टमन्त्रनिकाय्यो निवासः।

परिचाय्योपचाय्यावग्नौ ॥५५५ ॥

एतावग्नावर्थे निपात्येते। परिचाय्योऽग्निः। उपचाय्योऽग्निः।

अवश्यंभावी अर्थ में उवर्णांत से घ्यण् प्रत्यय होता है ॥५४९ ॥

लु—लाव्यं, नु—नाव्यं, भ—भाव्यं।

पा और धा को मान् सामिधेनी अर्थ में घ्यण् होता है ॥५५० ॥

'आयिरिच्यादन्तानाम्' सूत्र से आय् प्रत्यय होता है। पाय्यं, धाय्यं।

प्र और आङ् उपपद में होने पर नी धातु से असंमत और अनित्य में स्वरवत् घ्यण् होता है ॥५५१ ॥

प्र नी य ई को ऐ होकर 'ऐ आय्' से आय् होकर प्रणाय्यः—चौरः निग्राह्यः है ऐसा अर्थ है आनाय्यः दक्षिणाग्निः।

संपूर्वक चिञ् और कुण्ड पूर्वक पा धातु से कृदन्त में घ्यण् प्रत्यय होता है। ।५५२ ॥

और वह स्वरवत् होता है। सञ्चायः क्रेतुः, कुंडपाय्यः क्रतुः।

यज्ञ अर्थ में राजसूय निपात से होता है ॥५५३ ॥

राजा सोतव्यः अथवा राजा सूयते 'राजसूयः'।

हविस् और निवास अर्थ में 'सान्नाय्य' 'निकाय्य' निपात से बनते हैं ॥५५४ ॥

सान्नाय्यः, हविः। विशिष्ट मंत्र निकाय्यः निवासः।

परिचाय्य, उपचाय्य से अग्नि अर्थ में निपात से सिद्ध होते हैं ॥५५५ ॥

परिचाय्यः उपचाय्यः = अग्निः।

चित्याग्निचित्ये च ॥५५६ ॥

एतावग्नावर्थे निपात्येते । चयनं चित्यं । अग्नेश्चयनमग्निचित्या ।

अमावास्या वा ॥५५७ ॥

अमा—सहार्थे अमापूर्वाद्वसतेर्घ्यण् भवति कालाधिकरणे वा दीर्घत्वं निपात्यते। अमा सह वसतश्चन्द्रार्कौ यस्यां तिथौ सा तिथिः अमावस्या। अमावास्या। यल्लक्षणेनानुपपन्नं तत्सर्वं निपातनात्सिद्धं।

वुण्तृचौ ॥५५८ ॥

धातोर्वुण्तृचौ भवतः ।

युवुलामनाकान्ताः ॥५५९ ॥

युवुलां स्थाने यथासंख्यं अन अक अन्त इत्येते भवन्ति । भवतीति भावकः भविता । कारकः कर्त्ता । नायकः नेता । हारकः हर्त्ता । बुभूषकः । अस्य च लोपः बुभूषिता । गुणश्चेक्रीयिते । बोभूयकः । बोभूयिता । भावकः । भावयिता । पुत्रीयिकः । पुत्रीयिता ।

हन्तेस्तः ॥५६० ॥

अग्नि अर्थ में चित्य अग्निचित्या निपात से बनते हैं ॥५५६ ॥

चयनं = चित्यं, अग्नेश्चयनं = अग्निचित्या ।

अमापूर्वक वस् धातु से कालाधिकरण में घ्यण् प्रत्यय होता है ॥५५७ ॥

और विकल्प से दीर्घता हो जाती है । अमा-साथ ।

अमा—सह चन्द्रार्कौ यस्यां तिथौ वसतः सा तिथिः—साथ है चन्द्र और सूर्य जिस तिथि में वह तिथि 'अमावस्याः' अमावास्याः ।

व्याकरण सूत्र से जो नहीं बनते हैं वे सब निपात सिद्ध कहलाते हैं ।

धातु से वुण् तृच् प्रत्यय होता है ॥५५८ ॥

यु वु और अल् को क्रम से अन अक और अन्त आदेश होते हैं ॥५५९ ॥

यहाँ वु को अक हुआ है भू—से वुण् हुआ था अतः णानुबंध से वृद्धि होकर भावकः बना तृच् से भू-तृ 'अन् विकरणः कर्तरि' २२ सूत्र से अन् होकर 'अनि च विकरणे' २३ सूत्र से गुण होकर इट् होकर भवितृ बना । 'कृत्तद्धितसमासाश्च' सूत्र से कृदन्त संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर भविता बना ।

कृ—से कारकः कर्ता, नी—नायकः, नेता । सन्नन्त में भू भू स् पूर्व को ह्रस्व और तृतीय अक्षर होकर वुभूषकः, अकार का लोप होकर इट होकर बुभूषिता बना ।

'धातोर्वा तुमन्तादिच्छति नैककर्तृकात्' ३८० सूत्र से सन् होकर 'चण् परोक्षा चेक्रीयितसन्नन्तेषु' २९२ सूत्र से द्वित्व होकर 'द्वितीय-चतुर्थयोः प्रथमतृतीयौ' सूत्र १५९ से चतुर्थ को तृतीय होकर ह्रस्व होकर बना है । चेक्रीयित में 'गुणश्चेक्रीयते' ४१० सूत्र से गुण होता है, अतः बोभूयकः बोभूयिता । कारित संज्ञक इन् से परे भावकः भावयिता । नामधातु से पुत्रीयकः पुत्रीयिता ।

ञकार णकारानुबन्ध प्रत्यय के आने पर हन् के नकार को तकार होता है ॥५६० ॥

हन्तेर्नकारस्य तो भवति ञ्णानुबन्धे प्रत्यये परे। हस्य हन्तेर्घिरिणिचोः। घातकः। हन्ता। हन हिंसागत्योः। आथिरिच्याादन्तानां। दायकः। दाता। अवसायकः। अवसाता। गायकः। गाता।

नसेटोऽमन्तस्यावमिकमिचमाम् ॥५६१॥

सेटोऽमन्तस्य वमिकमिचमिवर्जितस्य इचि कृतं कार्यं न भवति ञ्णानुबन्धे कृति परे। शमकः शमिता। दमकः दमिता। यमकः यमिता।

अच् पचादिभ्यश्च ॥५६२॥

पचादिभ्यः अच् भवति। सर्वे धातवः पचादिषु पठ्यन्ते। पचः पठः करः देवः।

नन्द्यादेर्युः ॥५६३॥

नन्द्यादेर्युर्भवति सर्वे धातवो नन्द्यादौ पठ्यन्ते। नन्दतीति नन्दनः। रम क्रीडायां रमणः। राध साध संसिद्धौ। राधनः साधनः।

ग्रहादेर्णिन् ॥५६४॥

ग्रहादेर्गणात् णिन् भवति। सर्वे धातवः ग्रहादौ पठ्यन्ते। ग्राही ग्राहिणौ ग्राहिणः। स्थायी मायी श्रावी।

नाम्युपधात्प्रीकृगृज्ञां कः ॥५६५॥

नाम्युपधात् प्रीणातेः किरतेर्गिरतेर्जानातेश्च को भवति। क्षिप प्रेरणे। विक्षिपः। लिख विलेखने विलिखः। कृशः। प्रीञ् तर्पणे कान्तौ च। प्रियः उत्किरः।

'हस्य हन्तेर्घिरिणिचोः' ३६७ सूत्र से इण् इच् के आने पर हन् के हकार को घकार हो जाता है इस नियम से घातकः, हन्ता। दा धा 'आयिरिच्यादंतानां' ३६४वें सूत्र से आय् होकर दायकः धायकः दाता धाता बना।

वम् कम् चम् को छोड़कर इट् सहित अम् अन्त वाली धातु से ञ् णानुबन्ध कृदन्त प्रत्यय के आने पर इच् प्रत्यय से कहा गया कार्य नहीं होता है ॥५६१॥

शमकः शमिता, दमकः दमिता, यमकः यमिता।

पचादि धातु से 'अच्' प्रत्यय होता है ॥५६२॥

पचादि शब्द से सभी धातुयें ली जाती हैं पच् अ = पचः पठः करः देवः इत्यादि।

नन्द्यादि से 'यु' प्रत्यय होता है ॥५६३॥

नद्यादि से सभी धातुयें पढ़ी जाती हैं। 'युवुलामनाकान्ताः' ५५९वें सूत्र से यु को अन हो जाता है। नन्दतीति = नन्दनः। रमु—क्रीड़ा करना = रमणः। राध् साध्—सिद्धि अर्थ में हैं। राधनः, साधनः।

ग्रहादि गण से णिन् प्रत्यय होता है ॥५६४॥

ग्रहादिगण में सभी धातु लिये जाते हैं। ग्रह्—णिन् हुआ णानुबंध से वृद्धि होकर ग्राहिन् बना = ग्राही ग्राहिणौस्था मा से आय् होकर णिन् हुआ है एवं श्रु को वृद्धि हुई है स्थायी मायी श्रावी बनेंगे।

नामि उपधा वाले और प्री कृ गृ और ज्ञा से 'क' प्रत्यय होता है ॥५६५॥

क्षिप्—प्रेरणा = विक्षिपः क् अनुबन्ध होकर 'अ' रहता है। लिख् = विलिखः कृश् = कृशः। प्रीञ्—तर्पण करना और चमकना। ई को इय् होकर 'प्रियः' बना। कृ अ 'ऋदन्तस्येरगुणे' सूत्र १९९ से इर् होकर किरः उत्किरः।

वा स्वरे ॥५६६ ॥

गिरते रेफस्य वा लकारो भवति स्वरे परे। उद्गिरः उद्गिलः प्रज्ञः।

उपसर्गे चातो डः ॥५६७ ॥

उपसर्गे तु आकारान्ताड्डो भवति। सुग्लः। सुम्लः। प्रस्थः। प्रह्वः। छो छेदने। प्रच्छः।

धेट्दृशिपाघ्राध्मः शः ॥५६८ ॥

उपसर्गे उपपदे एभ्यः शो भवति। उद्धयः। उत्पश्यः। उत्पिबः। उज्जिघ्रः। उद्धमः।

साहिसातिवेद्युदेजिचेतिधारिपारिलिम्पिविदां त्वनुपसर्गे ॥५६९ ॥

एषामनुपसर्गे शो भवति। साहयतीति साहयः। एवं सातयः। वेदयः। एजृ कम्पने। उदेजयः। चिती संज्ञाने। चेतयः। धृङ् धारणे धारयः। पार तीर कर्मसमाप्तौ। पारयः। लिम्पः। विन्दः।

वा ज्वलादिदुनीभुवो णः ॥५७० ॥

ज्वलादिभ्यो दुनोतेः नयतेर्भवतेश्च अनुपसर्गे णो भवति वा पक्षे अच्। ज्वल दीप्तौ। ज्वलः ज्वालः। चल कम्पने। चलः चालः। कसपर्यन्तो ज्वलादिः। टुदु उपतापे। दवः दावः। नयः नायः। भवः भावः।

स्वर प्रत्यय के आने पर गॄ के रकार को विकल्प से लकार हो जाता है ॥५६६ ॥

उद्गिरः, उद्गिलः। ज्ञा कानुबन्ध से अन्तिम स्वर का लोप होकर प्रज्ञः बना।

उपसर्ग सहित आकारान्त धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ॥५६७ ॥

सु उपसर्ग पूर्वक ग्ला म्ला हैं 'डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः' ५१० सूत्र से डानुबन्ध में अन्त्य स्वर का लोप होकर सुग्लः सुम्लः सुस्थः प्रस्थः ह्वा से प्रह्वः बना।

उपसर्ग उपपद सहित धेट् दृश् पा घ्रा और ध्मा धातु से 'श' प्रत्यय होता है ॥५६८ ॥

शित् होने से पश्य पिब आदि आदेश होते हैं उत् धे अ = उद्धयः। उत्पश्यः उत्पिबः उज्जिघ्रः उद्धमः इनमें 'दृशेः पश्यः' ६९, 'पः पिब' ६३, 'घ्रो जिघ्रः' ६४, 'ध्मो धमः' ६५ इन सूत्रों से क्रम से दृश् को पश्य, पा को पिब, घ्रा को जिघ्र और ध्मा को धम आदेश होता है।

साहि साति वेदि उत्पूर्वक एजृ धृङ् पार लिप विद धातु से उपसर्ग के अभाव में 'श' प्रत्यय होता है ॥५६९ ॥

शानुबन्ध से सार्वधातुकवत् कार्य होता है। साहयतीति साह्यः चुरादिगण से इन् होकर अन् होकर बना है। ऐसे ही सातयः वेदयः बने हैं। एजृ-कम्पना उत्पूर्वक उद्वेजयः चिती—समझना चेतयः चुरादिगण से बना है। धृङ्—धारण करना धारयः पार तीर-कार्य समाप्त होना पारयः तारयः। लिम्पः विन्दः इन दो में तुदादि गण में 'मुचादेरागमो नकारः स्वरादनि विकरणे' १९७ सूत्र से नकार का आगम होकर अन् विकरण होकर रूप बना है।

ज्वलादि से दु, नी, भू धातु से विकल्प से अण् प्रत्यय होता है ॥५७० ॥

इन धातु से उपसर्ग रहित में अण् या अच् प्रत्यय होता है। ज्वल-दीप्त होना, ज्वलः ज्वालः चल—कम्पना चलः चालः, कस पर्यन्त ज्वलादि धातु हैं। टुदु—उपताप देना दवः दावः, नयः नायः, भवः भावः।

समाङो स्रुवः ॥५७१ ॥

समाङोः स्रवतेर्णो भवति। संस्रावः। आस्राव। समाङोरिति किं ? परिस्रवः।

अवे ह्रषोः ॥५७२ ॥

अव—उपपदे हरतेः स्यतेश्च णो भवति। ह्रञ् हरणे। अवहारः। षोऽन्तकर्मणि। अवसायः।

दिहिलिहिश्लिषिश्वसिव्यधतीण्श्यातां च ॥५७३ ॥

एषां णो भवति। दिह उपचये। देहः। लिह आस्वादने। लेहः। श्लिष आलिङ्गने श्लेषुः। श्वस प्राणने श्वासः। व्यध ताडने व्याधः। अत्यायः। च्युङ् छ्युङ् ज्युङ् ग्युङ् प्रुङ् गाङ् श्यैङ् गतौ। अवश्यायः। दायः। पायः। प्रत्याय इत्यादि।

ग्रहेर्वा ॥५७४ ॥

ग्रहेर्वा णो भवति। ग्राहो जलचरः ग्रहः।

स्वरवृदृगमिग्रहामल ॥५७५ ॥

स्वरान्ताद् वृदृगमिग्रहिभ्यश्च अल् भवति घञोपवादः।

गेहे त्वक् ॥५७६ ॥

ग्रहेर्गेहेऽभिधेये तु अग्भवति। गृह्णातीति गृहं। गृहं दाराः।

नृतिखनिरञ्जिभ्य एव शिल्पिनि वुस् ॥५७७ ॥

अभ्य एव शिल्पिनि अभिधेये वुस् भवति। नर्त्तकः नर्त्तकी खनकः खनकी। रंज रागे।

सम् आङ् पूर्वक स्नु धातु से अण् होता है ॥५७१ ॥

संस्रावः आस्रावः, सम् आङ् से ही हो ऐसा क्यों कहा ? परिस्रवः।

अव उपपद सहित ह्, सो धातु से अण् होता है ॥५७२ ॥

अवहारः अवसायः।

दिह, लिह, श्लिष, श्वस्, व्यध, इण, शो धातु से परे 'ण' प्रत्यय होता है ॥५७३ ॥

णानुबन्ध से गुण होकर दिह = देहः, लिह् = लेहः, श्लिष = श्लेषः, श्वस् = श्वासः, व्यध = व्याधः अति पूर्वक इण् को अत्यायः श्यैङ्—गमन करना 'अवश्यायः' दायः पायः 'आयिरिच्यादंतानां' से आय् हुआ है। प्रत्यायः इत्यादि।

ग्रह धातु से विकल्प से 'ण' होता है ॥५७४ ॥

ग्राहः जलचरः ग्रहः।

स्वरान्त और वृ दृ गम ग्रह से परे 'अल्' प्रत्यय होता है ॥५७५ ॥

घञ् का अपवाद हो जाता है।

ग्रह धातु से घर अर्थ में अव् प्रत्यय होता है ॥५७६ ॥

संप्रसारण होकर गृहं बनता है।

नृत, खन् रंजि से शिल्पी अर्थ में वुस् प्रत्यय होता है ॥५७७ ॥

नर्तकः नर्तकी, खनकः खनकी। रंज—राग करना।

उषिघिनीणोश्च ॥५७८ ॥

रंजेः पञ्चमो लोप्यो भवति उषिघिनिणोः परतः ॥ रज्यते इत्येवं शिल्पमस्य ॥ रजकः रजकी ।

गस्थकः ॥५७९ ॥

गायतेः शिल्पिन्यर्थे थको भवति । गाथकः । गाथकी ।

ण्युट् च ॥५८० ॥

गायतेः शिल्पिन्यर्थे ण्युट् च भवति । गायनः गायनी ।

हः कालव्रीह्योः ॥५८१ ॥

जहातेः काले व्रीहौ चार्थे ण्युङ् भवति । जहाति काले भावानिति हायनः संवत्सरः । जहत्युदकमिति हायना व्रीहयः ।

आशिष्यकः ॥५८२ ॥

आशिषि गम्यमाने धातोरकप्रत्ययो भवति । जीव प्राणधारणे । जीवतात् जीवकः । एवं नन्दकः ।

प्रुस्रुसृल्वां साधुकारिणि ॥५८३ ॥

एषां साधुकारिण्यर्थे अकः प्रत्ययो भवति। साधुकरणं शिल्पमेव। च्युङ् छ्युङ् प्रुङिति दण्डकधातुः । साधु प्रवते साधुप्रवकः । एवं स्रवकः । सरकः । लवकः । साधु सरतीति । साधु लुनातीति । सृ गतौ । इत्यादि ।

कर्मण्यण् ॥५८४ ॥

उष् घिनी, ण् से परे रंज के पंचम अक्षर का लोप हो जाता है ॥५७८ ॥

रंगना यह है काम जिसका रजकः रजकी ।

गा धातु से शिल्पी अर्थ में थक प्रत्यय होता है ॥५७९ ॥

गाथकः गाथकी ।

गा धातु से शिल्पी अर्थ में ण्युट् प्रत्यय भी होता है ॥५८० ॥

गायनः गायनी ५५९ से 'यु' को अन आदेश हुआ है ।

ओहाक् धातु से काल और ब्रीहि अर्थ में ण्युङ् प्रत्यय होता है ॥५८१ ॥

जहाति काले भावान् इति 'हायनः' संवत्सरः 'आपिरिच्यादंतानां' से आय् हुआ है जो उदक को छोड़ते हैं हायनाः ब्रीह्यः ।

आशिष् अर्थ में धातु से अक प्रत्यय होता है ॥५८२ ॥

जीव—प्राण धारण करना जीवतात् = जीवकः नंदकः इत्यादि ।

प्रु स्रु सृ लु से परे साधुकरण अर्थ में अक प्रत्यय होता है ॥५८३ ॥

साधुकरण शिल्प ही है । च्युङ् छयुङ्प्रुङ् ये दण्डक धातु हैं । साधु प्रवते = साधु प्रवकः, स्रवकः, सरकः, लवकः । साधु सरतीति साधु लुनातीति । सृ—गमन करना । इत्यादि ।

कर्म उपपद में रहने पर धातु से अण् प्रत्यय होता है ॥५८४ ॥

कर्मण्युपपदे धातोरण् भवति। कुम्भं करोतीति कुम्भकारः। एवं काण्डलावः। वेदाध्यायः। कुम्भकारी।

ह्वावामश्च ॥५८५ ॥

एभ्यः कर्मण्युपपदे अण् भवति। मित्राह्वायः। तन्तुवायः। धान्यमायः।

शीलिकामिभक्षाचरिभ्यो णः ॥५८६ ॥

एभ्यो णो भवति कर्मण्युपपदे। दधिशीला। दधिकामा। दधिभक्षा। कल्याणाचारा स्त्री।

आतोऽनुपसर्गात्कः ॥५८७ ॥

कर्मण्युपपदेऽनुपसर्गादाकारान्ताद्धातोः को भवति। धनु ददातीति धनदः। एवं सर्वज्ञः।

नाम्नि स्थश्च ॥५८८ ॥

नाम्नि उपपदे तिष्ठतिराकारान्ताच्च को भवति। समे तिष्ठतीति समस्थः। कूटस्थः। कच्छेन पिबतीति कच्छपः। द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः।

तुन्दशोकयोः परिमृजापनुदोः ॥५८९ ॥

तुन्दशोकयोः कर्मणोरुपपदयोः परिमृजापनुदिभ्यां को भवति। तुन्दं परिमार्ष्टीति तुन्दपरिमृजः अलसः। एवं शोकमपनुदतीति। शोकापनुदः। आनन्दकारी।

प्रे दाज्ञः ॥५९० ॥

कर्मणि प्रोपपदे दाज्ञाभ्यां को भवति। प्रदः। पथि प्रज्ञः।

समि ख्यः ॥५९१ ॥

कर्मणि समि चोपपदे ख्यातेः को भवति।

कुम्भं करोति कुम्भकारः काण्डं लुनातीति = काण्डलावः। वेदं अधीते = वेदाध्यायः। स्त्रीलिंग में कुम्भकारी इत्यादि।

ह्वा, वा, मा से कर्म उपपद में अण् होता है ॥५८५ ॥

मित्रं आह्वयती = मित्राह्वायः, तंतुं वयति = तंतुवायः धान्यं मिमीते = धान्यमायः।

कर्म उपपद से शील काम भक्ष चर के आने पर 'ण' प्रत्यय होता है ॥५८६ ॥

दधिशीला, दधिकामा, दधिभक्षा, कल्याणाचारा।

कर्म उपपद में होने पर उपसर्ग रहित आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है ॥५८७ ॥

कानुबंध से अंत स्वर का लोप हो जाता है। धनं ददातीति = धनदः सर्वंजानातीति = सर्वज्ञः।

नाम उपपद में होने पर स्था और आकारान्त धातु से 'क' प्रत्यय होता है ॥५८८ ॥

समे तिष्ठतीति समस्थः कूटस्थः स्वस्थः। कच्छेन पिबतीति कच्छपः, द्वाभ्यां पिबतीति द्विपः।

तुंद और शोक उपपद में होने पर परिमृज् अपनुद से 'क' प्रत्यय होता है ॥५८९ ॥

तुंदं परिमार्ष्टि इति = तुंदपरिमृजः,—आलसी, शोकं अपनुदतीति शोकापनुदः—आनन्दकारी।

प्र उपपद में दा ज्ञा से 'क' प्रत्यय होता है ॥५९० ॥

प्रकर्षेण ददाति = प्रदः पथि प्रज्ञः।

सम् उपपद में रहने पर ख्या से 'क' प्रत्यय होता है ॥५९१ ॥

चक्षिङः ख्याङ् ॥५९२ ॥

चक्षिङ् इत्येतस्य ख्याङादेशो भवति असार्वधातुके। गां संचष्टे गोसंख्यः।

गष्टक् ॥५९३ ॥

कर्मण्युपदे गायतेष्टक् भवति। मधुरं गायतीति मधुरगी। सामगी।

सुरासीध्वोः पिबतेः ॥५९४ ॥

सुरासीध्वोरुपपदयोः पिबतेष्टग्भवति। सुरापी। सीधुपी।

ह्रञोऽच् वयोऽनुद्यमनयोः ॥५९५ ॥

कर्मण्युपपदे हरतेरज् भवति वयसि अनुद्यमने गम्यमाने। ऊर्ध्वं नयनमुद्यमनं ततोऽन्यदनुद्यमनं। कवचहरः क्षत्रियकुमारः।

आङि ताच्छील्ये ॥५९६ ॥

कर्मण्याङि चोपपदे ताच्छील्यार्थे हरतेरज् भवति। पुष्पाणि आहर्तुं शीलमस्य पुष्पाहरो विद्याधरः।

अर्हश्च ॥५९७ ॥

कर्मण्युपपदे अर्हतेरज् भवति। पूजामर्हतीति पूजार्हः।

धृञः प्रहरणे चादण्डसूत्रयोः ॥५९८ ॥

चक्षिङ् धातु को असार्वधातुक में ख्याङ् आदेश होता है ॥५९२ ॥

गां संचष्टे गोसंख्यः।

कर्म उपपद में गा धातु से 'टक्' प्रत्यय होता है ॥५९३ ॥

मधुरं गायतीति मधुरगी।

सुरा, सीधु उपपद में होने पर 'पा' धातु से टक् प्रत्यय होता है ॥५९४ ॥

सुरापी, सीधुपी।

कर्म उपपद में रहने पर वयस् और अनुद्यमन अर्थ में हृ धातु से 'अच्' प्रत्यय होता है ॥५९५ ॥

किसी वस्तु को उठाते हैं तो ऊपर करना होता है उद्यमन कहलाता है और इससे विपरीत अनुद्यमन कहलाता है। कवचं हरतीति = कवचहरः।

कर्म और आङ् उपपद में होने पर तत् स्वभाव अर्थ में हृ धातु से अच् होता है ॥५९६ ॥

पुष्पों के ग्रहण करने का है स्वभाव जिसका उसे कहते हैं पुष्पाहरः विद्याधरः।

कर्म उपपद में रहने पर अर्ह् धातु से अच् होता है ॥५९७ ॥

पूजाम् अर्हति इति पूजार्हः।

दण्ड सूत्र वर्जित प्रहरणवाचक उपपद के होने पर 'धृ' धातु से अच् प्रत्यय होता है ॥५९८ ॥

दण्डसूत्रवर्जिते प्रहरणवाचके उपपदे धृञोऽञ् भवति। वज्रधा: चक्रधर:। अदण्डसूत्रयोरिति किं। दण्डधार:। सूत्रधार:।

धनुर्दण्डत्सरुलाङ्गलाङ्कुशयष्टितोमरेषु ग्रहेर्वा ॥५९९॥

एषूपपदेषु ग्रहेरज्वा भवति। धनुर्ग्रह: धनुर्ग्राह:। दण्डग्रह:। दण्डग्राह:। त्सरुग्रह: त्सरुग्राह:। लाङ्गलग्रह:। लाङ्गलग्राह:। अङ्कुशग्रह: अङ्कुशग्राह:। यष्टिग्रह: यष्टिग्राह:। तोमरग्रह:। तोमरग्राह:।

स्तम्बकर्णयो रमिजपो: ॥६००॥

स्तम्बकर्णयोरुपपदयोरमिजपिभ्यां अज् भवति। स्तम्बेरमो हस्ती। कर्णेजप: पिशुन:।

शंपूर्वेभ्य: संज्ञायाम् ॥६०१॥

शंपूर्वेभ्यो धातुभ्य: संज्ञायां अज् भवति। शं करोति इति शंकर:। शंभव:। शंवद:।

शीङोऽधिकरणे च ॥६०२॥

अधिकरणे च नाम्नि उपपदे शेते अज् भर्श्ववति। खे शेते खशय:। चकारात्—

पार्श्वपृष्ठादौ करणे ॥६०३॥

पार्श्वपृष्ठादौ करणे उपपदे शीङ: अज् भवति। पार्श्वेन शेते पार्श्वशय:। पृष्ठशय: कुब्ज:।

चरेष्ट: ॥६०४॥

अधिकरणे नाम्नि उपपदे चरेष्टो भवति। कुरुषु चरतीति कुरुचर:। एवमटवीचर:।

वज्रं धरति इति वज्रधार:। चक्रं धरति इति चक्रधर:। दण्ड सूत्र वर्णित ऐसा क्यों कहा ? दण्डधार: सूत्रधार:। इसमें ५८४ सूत्र से अण् प्रत्यय हुआ है। वृद्धि हुई।

धनुष, दण्ड, त्सरु, लाङ्गल, अंकुश, यष्टि और तोमर के उपपद में होने पर ग्रह धातु से अच् प्रत्यय विकल्प से होता है ॥५९९॥

धनुर्गृह्णाति इति धनुर्ग्रह: पक्ष में 'कर्मण्यण्' सूत्र ५८४ से अण् होकर धनुर्ग्राह:। दण्डग्रह: दण्डग्राह: त्सरुग्रह: त्सरुग्राह: आदि।

स्तंब और कर्ण उपपद में होने पर रम् जप् धातु से अच् प्रत्यय होता है ॥६००॥

स्तंबं रमते इति = स्तंबेरम:—हस्ती, कर्णे जपतीति = कर्णेजप:—पिशुन:।

शं पूर्वक कृ धातु से संज्ञा अर्थ में यच् होता है ॥६०१॥

शं करोति इति = शंकर:। शंवद:। शंभव:।

अधिकरण और नाम उपपद में होने पर शीङ् धातु से अच् होता है ॥६०२॥

खे शेते—आकाश में सोता है। खशय:। चकार से—

पार्श्व पृष्ठ आदि करण उपपद में होने पर शीङ् से अच् होता है ॥६०३॥

पार्श्वेन शेते—पार्श्वशय:। पृष्ठशय: = कुब्ज:।

अधिकरण नाम उपपद में होने पर चर से 'ट' प्रत्यय होता है ॥६०४॥

कुरुषु चरतीति = कुरुचर:। अटवीचर:।

स्त्रीलिङ्ग में कुरुचरी अटवीचरी बनता है।

पुरोऽग्रतोऽग्रेषु सर्त्तेः ॥६०५ ॥

एषूपदेषु सर्त्तेष्टो भवति । पुरः सरः । अग्रतःसरः अग्रेसरः ।

पूर्वे कर्त्तरि ॥६०६ ॥

पूर्वशब्दे कर्त्तर्युपपदे सर्त्तेष्टो भवति । पूर्वसरः पूर्वसरी ।

कृञो हेतुताच्छील्यानुलोम्येष्वशब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु ॥६०७ ॥

अशब्दादिषु कर्मसूपपदेषु हेतौ ताच्छील्ये आनुलोम्ये कृञष्टो भवति । हेतौ यशस्करी विद्या । *ताच्छील्ये श्राद्धकरः । आनुलोम्ये वचनकरः । अशब्दादिष्विति किं । शब्दकारः । श्लोककारः ।* कलहकारः । गाथाकारः । वैरकारः । चाटुकारः । सूत्रकारः । मन्त्रकारः । पदकारः ।

तद्यदाद्यन्तानन्तकारबहुबाह्वहर्दिवाविभानिशाप्रभाभाश्चित्रकर्तृनान्दीकिंलिपिलिबिबलिभक्तिक्षेत्रजंघाधनुररुःसंख्यासु च ॥६०८ ॥

तदादिषु कर्मसूपपदेषु कृञष्टो भवति । तत्करोतीति तत्करः तस्करः । रूढित्वात्तस्य सकारः । यत्करः । आदिकरः । अन्तकरः । अनन्तकरः । कारकरः । बहुकरः । बाहुकरः । अहस्करः । दिवाकरः । विभाकरः । निशाकरः । प्रभाकरः । भास्करः । चित्रकरः । कर्तृकरः । नान्दीकरः । किं करोतीति किंकरः । लिपिकरः । लिबिकरः । बलिकरः । भक्तिकरः । क्षेत्रकरः जंघाकरः । धनुःकरः । अरुःकरः । एककरः । द्विकरः । इत्यादिं । चकारात् रजनीकरः ।

भृतौ कर्मशब्दे ॥६०९ ॥

कर्मशब्दे उपपदे कृञष्टो भवति भृतावथ । कर्मकरो भृत्यः ।

पुरः अग्रतः और अग्र उपपद में होने पर 'सृ' से 'ट' प्रत्यय होता है ॥६०५ ॥

पुरः सरति इति पुरः सरः । अग्रतः सरति अग्रतः सरः । अग्रे सरति इति अग्रेसरः ।

पूर्व शब्दकर्ता से उपपद में होने पर सृ से 'ट' प्रत्यय होता है ॥६०६ ॥

पूर्वं सरति इति पूर्वसरः पूर्वसरी ।

शब्द, श्लोक, कलह, गाथा, वैर, चाटु, सूत्र, मंत्र इनको छोड़कर अन्य कर्म के उपपद में रहने पर 'कृ' धातु से हेतु तत्स्वभाव और अनुलोम अर्थ में 'ट' प्रत्यय होता है ॥६०७ ॥

हेतु अर्थ में—यशः करोति इति = यशस्करी—विद्या। तत्शील अर्थ में—श्राद्धं करोतीति—श्राद्धकरः । अनुलोम अर्थ में—वचनं करोति—वचनकरः । शब्द श्लोक आदि को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? शब्दं करोति इति—शब्दकारः श्लोककारः इनमें अण् प्रत्यय हुआ है ।

तदादि उपपद में एवं आदि, अंत, अनंत, कार, बहु, बाहु, अहर्, दिवा विभा, निशा, प्रभा, भास्, चित्र, कर्तृ, नान्दी, किं, लिपि, लिबि, बलि, भक्ति, क्षेत्र, जंघा, धनुष्, अरुष् और संख्यावाची शब्दों के उपपद में रहने पर 'कृ' धातु से 'ट' प्रत्यय होता है ॥६०८ ॥

तत्करोतीति = तत्करः 'रूढित्वात् तस्य सकारः ।' नियम से त को 'स' होकर तस्करः बना । यत्करः आदिकरः इत्यादि । चकार से रजनीकरः आदि भी लेना चाहिये ।

कर्म शब्द उपपद में होने पर भृत्य अर्थ में 'कृ से ट' प्रत्यय होता है ॥६०९ ॥

कर्म करोति इति—कर्मकरः भृत्यः ।

इस्तम्बशकृतोः व्रीहिवत्सयोः ॥६१० ॥

स्तम्बशकृतोरुपपदयोः कृञ इर्भवति । स्तम्बकरिः व्रीहिः । शकृत्करिः बालवत्सः ।

हरतेर्दृतिनाथयोः पशो ॥६११ ॥

दृतिनाथयोरुपपदयोर्हरतेरिर्भवति पशावर्थे । दृतिहरिः नाथहरिः । पशुः ।

फलेमलरजः सुग्रहे ॥६१२ ॥

एषूपपदेषु ग्रहेरिर्भवति । फलेग्रहिः । मलग्रहिः । रजोग्रहिः ।

देववातयोरापेः ॥६१३ ॥

देववातयोरुपपदयोराप्नोतेरिर्भवति । देवानाप्नोति देवापिः । वातापिः ।

आत्मोदरकुक्षिषु भृञः खिः ॥६१४ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु भृञः खिर्भवति । नस्तु क्वचित् इति नलोपः ।

ह्रस्वारुषोर्मोन्तः ॥६१५ ॥

ह्रस्वान्तस्यानव्ययस्यारुषश्चोपपदस्य मकारान्तो भवति खानुबन्धे कृति परे । आत्मानं बिभर्त्तीति आत्मंभरिः । एवमुदरंभरिः । कुक्षिंभरिः ।

एजेः खश् ॥६१६ ॥

स्तम्ब और शकृत् उपपद में रहने पर 'कृ' धातु से 'इ' प्रत्यय होता है ॥६१० ॥

स्तंबकरिः—ब्रीहिः, शकृत्करिः बालवत्सः ।

दृति और नाथ शब्द उपपद में होने पर पशु अर्थ में हृ धातु से 'इ' प्रत्यय होता है ॥६११ ॥

दृतिहरिः, नाथहरिः—पशुः ।

फले मल और रजःके उपपद में होने पर ग्रह धातु से 'इ' प्रत्यय होता है ॥६१२ ॥

फलेग्रहिः मलग्रहिः रजोग्रहिः । फलानि गृह्णाति इति ।

देव और वात उपपद में रहने पर 'आप्' धातु से 'इ' प्रत्यय होता है ॥६१३ ॥

देवान् आप्नोति—देवापिः वातम् आप्नोति इति = वातापिः ।

आत्मन् उदर और कुक्षि शब्द के उपपद में रहने पर 'भृञ्' धातु से 'खि' प्रत्यय होता है ॥६१४ ॥

अव्यय रहित, ह्रस्वान्त और अरुष् के उपपद में रहने पर खानुबंध प्रत्यय के आने पर उपर्युक्त उपपद को मकारान्त हो जाता है ॥६१५ ॥

आत्मानं बिभर्तीति = आत्मंभरिः 'नस्तु क्वचिद्' सूत्र से आत्मन् के नकार का लोप हो गया है । ऐसे ही उदरं बिभर्ति = उदर + अम् । इ तत्स्थालोप्याः विभक्तयः सूत्र से विभक्ति का लोप होकर ऋ को गुण 'अर्' होकर इस सूत्र से मकारांत होकर उदरंभरिः कुक्षिंभरिः बन गये ।

कर्म उपपद में होने पर इन्नन्त एज् धातु से खश् होता है ॥६१६ ॥

कर्मण्युपपदे एजयतेरिनन्तात् खश् भवति। एजृ कंपने। जनमेजयतीति जनमेजयः।

शुनीस्तनमुञ्जकूलास्यपुष्पेषु धेटः ॥६१७॥

एषु कर्मसूपपदेषु धेटः खश् भवति।

दीर्घस्योपपदस्थानव्ययस्य खानुबन्धे ॥६१८॥

दीर्घान्तस्यानव्ययस्योपपदस्य ह्रस्वो भवति खानुबन्धे कृति परे। धेट् पाने। शुनीं धयतीति शुनिंधयः। स्तनं धयतीति स्तनंधयः। मुञ्जंधयः। कूलन्धयः। आस्यन्धयः। पुष्पंधयः। शुनिन्धयी।

नाडीकरमुष्टिपाणिनासिकासु ध्मश्च ॥६१९॥

एषु कर्मसूपपदेषु धमतेर्धेटश्च खश् भवति। नाडिन्धमः। करन्धमः। करन्धयः। मुष्टिन्धयः। मुष्टिन्धमः। पाणिन्धयः। पाणिन्धमः। नासिकन्धमः। नासिकन्धयः।

विध्वरुस्तिलेषु तुदः ॥६२०॥

एषु कर्मसूपपदेषु तुदः खश् भवति। विधुंतुदः।

संयोगादेर्धुटः ॥६२१॥

संयोगादेर्धुटो लोपो भवति धुटि परे। अरुंतुदः तिलन्तुदः।

असूर्योग्रयोर्दृशः ॥६२२॥

अनयोरुपपदयोर्दृशः खश् भवति। असूर्यंपश्या राजदाराः। उग्रंपश्याः।

जनम् एजयतीति = जनमेजयः। खानुबंध से अनुस्वार आगम एवं शानुबंध से सार्वधातुकवत् कार्य होता है।

शुनी स्तन, मुञ्ज, कूल, आस्य और पुष्प इनके उपपद में आने पर धेट् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६१७॥

धेट्—पीना। शुनीं धयतीति।

अव्यय रहित दीर्घान्त उपपद को खानुबंध कृत्प्रत्यय के आने पर ह्रस्व हो जाता है ॥६१८॥

शुनिंधयः, स्तनंधयः इत्यादि।

नाडी, कर, मुष्टि, पाणि और नासिका के उपपद में रहने पर ध्मा और धेट् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६१९॥

नाडीं धमति इति 'नाडिधमः' ६१८ सूत्र से ह्रस्व हुआ है। एवं 'ध्योधमः' इस ६५वें सूत्र से ध्मा को धम आदेश हुआ है। ऐसे ही धेट् से नाडिधयः इत्यादि।

विधु, अरुस् और तिल के उपपद में रहने पर तुद् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६२०॥

विधुंतुदः।

संयोगादि धुट् का लोप हो जाता है धुट् के आने पर ॥६२१॥

यहाँ अरुस् के सकार का लोप हो गया है अतः अरुंतुदः, तिलन्तुदः।

असूर्य और उग्र से परे दृश् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६२२॥

असूर्यंपश्या उग्रंपश्या, "दृशेः पश्यः" सूत्र ६९ से दृश् को पश्य हुआ है।

ललाटे तपः ॥६२३ ॥

ललाटे उपपदे तपतेः खश् भवति । ललाटंतपः ।

मितनखपरिमाणेषु पचः ॥६२४ ॥

एषु कर्मसूपपदेषु पचः खश् भवति । मितम्पचा ब्राह्मणी । नखंपचा यवागूः । प्रस्थंपचा द्रोणंपचा स्थाली ।

कूल उद्रुजोद्वहोः ॥६२५ ॥

कूले उपपदे उद्रुजोद्वहोः खश् भवति । रुजो भंगे । कूलमुद्रुजा नदी । कूलमुद्वहः समुद्रः ।

वहंलिहाभ्रंलिहपरन्तपेरंमदाश्च ॥६२६ ॥

एते खशन्ता निपात्यन्ते । वहंलिहा गौः । अभ्रलिहो वायुः । परंतपः खलः । इरंमदा सीधुः । चकारात् वातमजन्तीति वातमजाः । श्राद्धं जहातीति श्राद्धजहा माषाः ।

वदेः खः प्रियवशयोः ॥६२७ ॥

अनयोरुपपदयोर्वदेः खो भवति । प्रियंवदः । वशंवदः ।

सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कषः ॥६२८ ॥

एषूपपदेषु कषतेः खो भवति । कष सिषेति दण्डकधातुः । सर्वंकषः खलः । कूलंकषा नदी । अभ्रंकषो गिरिः । करीषंकषा वात्या ।

भयार्त्तिमेघेषु कृञः ॥६२९ ॥

ललाट उपपद में रहने पर तप् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६२३ ॥

ललाटं तपतीति = ललाटंतपः ।

मित नख और परिमाण के उपपद में रहने पर पच् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६२४ ॥

मितंपचा—ब्राह्मणी । नखंपचा—यवागू, प्रस्थंपचा—स्थाली द्रोणंपचा खारी इत्यादि ।

कूल उपपद में रहने पर उत् पूर्वक रुज् वह् धातु से खश् प्रत्यय होता है ॥६२५ ॥

रुज्—भंग करना, कूलमुद्रुजा—नदी । कूलमुद्वहः समुद्रः ।

वहंलिह अभ्रंलिह परन्तप इरम्मद ये खश् प्रत्ययान्त शब्द निपात से सिद्ध हुये हैं ॥६२६ ॥

बहंलिहा—गाय, अभ्रंलिहः—वायुः, परंतपः-दुष्ट, इरंमदा-सुरा । चकार से वातं अजंति-वातमजाः, श्राद्धं जहातीति श्राद्धजहाः-उड़द ।

प्रिय और वश उपपद में रहने पर वद धातु से 'ख' प्रत्यय होता है ॥६२७ ॥

प्रियंवदः वशंवदः ।

सर्व कूल अभ्र और करीष उपपद में आने पर कष धातु से 'ख' प्रत्यय होता है ॥६२८ ॥

कष सिष ये दण्डक धातु हैं। सर्वं कषति-सर्वंकषः-दुष्टः, कूलंकषा-नदी, अभ्रंकषो-गिरिः, करीषंकषा-वात्या = आंधी ।

भय, ऋति और मेघ से परे कृ धातु से 'ख' प्रत्यय होता है ॥६२९ ॥

एषूपपदेषु कृञः खो भवति । भयंकरः । ऋतिंकरः । मेघंकरः ।

क्षेमप्रियमद्रेष्वण्च ॥६३० ॥

एषूपपदेषु कृञः खो भवति अण्च । क्षेमंकरः क्षेमकारः । प्रियंकरः प्रियकारः । मद्रंकरः मद्रकारः ।

नाम्नि तृभृवृजिधारितपिदमिसहां संज्ञायाम् ॥६३१ ॥

नाम्न्युपपदे एभ्यः संज्ञायां खो भवति । रथेन तरतीति रथंतरं सामी विश्वं बिभर्तीति विश्वंभरा भूः । पतिं वृणीते पतिंवरा कन्या । धनं जयतीति धनञ्जयः । वसुं धारयतीति वसुन्धरा । शत्रुं तापयतीति शत्रुंतपः । अरिं दमयतीति अरिन्दमः । शत्रुं सहते इति शत्रुंसहः ।

गमश्च ॥६३२ ॥

नाम्नि उपपदे गमश्च खो भवति संज्ञायां । सुतंगमः । हृदयङ्गमा वाचः ।

उरोविहायसोरुरविहौ च ॥६३३ ॥

उरोविहायसोरुरविहौ भवतः गमश्च खो भवति संज्ञायां । उरसा गच्छतीति उरङ्गमः । विहायसा गच्छतीति विहङ्गमः ।

डोऽसंज्ञायामपि ॥६३४ ॥

नाम्नि उपपदे गमेर्डो भवत्यसंज्ञायामपि । भुजाभ्यां गच्छतीति भुजगः । तुरगः । प्लवगः । पतगः । अध्वगः । दूरगः । पारगः । पन्नगः । सुगः । दुर्गः । नगः । अगः । उरगः । विहगः ।

विहङ्गतुरङ्गभुजङ्गाश्च ॥६३५ ॥

भयंकरः, ऋतिंकरः, मेघंकरः ।

क्षेम प्रिय और मद्र से परे 'कृ' धातु से ख और अण् प्रत्यय होता है ॥६३० ॥

क्षेमंकरः, क्षेमकारः इत्यादि ।

नाम उपपद में होने पर तृ भृ वृज धृ तप दम सह धातु से संज्ञा अर्थ में ख प्रत्यय होता है ॥६३१ ॥

रथेन तरति—रथंतरं, विश्वं बिभर्ति या सा इति—विश्वंभरा—पृथ्वी, पतिं वृणीते या सा पतिंवरा—कन्या, धनं जयतीति धनंजयः, वसुं धारयति—वसुंधरा शत्रुं तापयति—शत्रुतपः अरिं दमयति—अरिंदमः शत्रुं सहते—शत्रुंसहः, सर्वं सहते इति सर्वंसहः—मुनिः ।

नाम उपपद में होने पर संज्ञा अर्थ में गम धातु से ख प्रत्यय हो जाता है ॥६३२ ॥

सुतंगमः हृदयंगमा—वाचः ।

उरस् विहायस् को उर विह होकर संज्ञा अर्थ में गम धातु से ख प्रत्यय हो जाता है ॥६३३ ॥

उरसा गच्छति—उरंगमः विहायसा गच्छति—विहंगमः ।

नाम उपपद में होने पर गम धातु से असंज्ञा अर्थ में भी 'ड' प्रत्यय होता है ॥६३४ ॥

भुजाभ्यां गच्छति—भुजगः तुरगः, प्लवगः इत्यादि । डानुबंध से अन्त्यस्वर को आदि में करके व्यंजन का लोप हो जाता है अतः गम् के अम् का लोप हो गया है ।

विहङ्ग तुरङ्ग और भुजङ्ग शब्द ड प्रत्ययान्त निपात से सिद्ध होते हैं ॥६३५ ॥

एते डान्ता निपात्यन्ते संज्ञायां। विहङ्गः। तुरङ्गः। भुजङ्गः।

अन्यतोऽपि च ॥६३६॥

नाम्नि उपपदे गमेरन्यस्मादपि डो भवति। वारि चरतीति वार्चः हंसः। गिरौ शेते गिरिशः। वरानाहन्तीति वराहः। परिखन्यते परिखा।

हन्तेः कर्मण्याशीर्गत्योः ॥६३७॥

कर्मण्युपपदे आशिषि गतौ च वर्तमानाद्धन्तेर्डो भवति। शत्रुं वध्यात् शत्रुहः। क्रोशं हन्तीति क्रोशहः।

अपात्क्लेशतमसोः ॥६३८॥

क्लेशतमसोरुपपदयोरपहन्तेर्डो भवति। क्लेशापहः। तमोपहः। दुःखापहः। ज्वरापहः। विषापहः। अन्यतोऽपि। अन्यापहः। दर्पापहः।

कुमारशीर्षयोर्णिन् ॥६३९॥

कुमारशीर्षयोरुपपदयोः हन्तेर्णिन् भवति। कुमारघाती। शीर्षघाती।

टग्लक्षणे जायापत्योः ॥६४०॥

जायापत्योरुपपदयोर्हन्तेष्टग् भवति लक्षणवत्कर्त्तरि। जायाघ्नः ब्राह्मणः। पतिघ्नी वृषली।

अमनुष्यकर्तृकेऽपि च ॥६४१॥

नाम उपपद में होने पर गम से भिन्न अन्य धातु से भी 'ड' प्रत्यय होता है ॥६३६॥

वारि चरतीति—वार्चः हंसः यह वार् शब्द रकारांत है। गिरौ शेते—'गिरिंशी' के ई का लोप होकर गिरिशः वरान् आहंति इति—वराहः परिखन्यते—परिखा।

कर्म उपपद में आने पर आशिष और गति अर्थ में वर्तमान हन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ॥६३७॥

शत्रुं वध्यात् शत्रुहः, यहाँ आशीर्लिङ् है। क्रोशं हन्ति इति—क्रोशहः। यहाँ हन् धातु का गति अर्थ होने से एक कोश गमन करने वाला। ऐसा अर्थ है।

क्लेश तमस् के उपपद में रहने पर अपपूर्वक हन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है। ।६३८॥

क्लेशं अपहन्ति—क्लेशापहः, तमोपहः, दुःखापहः। इत्यादि।

कुमार और शीर्ष उपपद में होने से हन् धातु से णिन् प्रत्यय होता है ॥६३९॥

कुमारं हन्ति—कुमारघाती "हस्य हन्तेर्घिरिनिचोः" ३६७ सूत्र से हन् के ह को घ होकर हन्तेस्तः ५६० सूत्र से नकार को तकार हुआ है। अतः शीर्षघातिन् बना है लिंग संज्ञा होकर विभक्ति आकर शीर्षघाती बना।

जाया और पति उपपद में आने से हन् से टक् होता है और कर्ता में लक्षणवत् कार्य होता है ॥६४०॥

जायां हन्ति—जायाघ्नः 'गमहन्' इत्यादि ११३ सूत्र से हन् की उपधा का लोप होकर 'लुप्तोपधस्य च' सूत्र ११४ से ह् को घ् होकर जायाघ्नः बना। ऐसे पतिघ्नी बना।

मनुष्य के कर्ता न होने पर भी वर्तमान हन् से टक् हो जाता है ॥६४१॥-

अमनुष्यकर्तृकेऽपि च वर्त्तमानात् हन्तेरपि टग्भवति। जायाघ्नः तिलकः। पतिघ्नी पाणिरेखा। पित्तघ्नं घृतम्। वातघ्नं तैलं। श्लेष्माणं हन्तीति श्लेष्मघ्नं त्रिकटुकं। अपिशब्दात् कृतघ्नः।

हस्तिबाहुकपाटेषु शक्तौ ॥६४२ ॥

एषूपपदेषु हन्तेष्टग्भवति शक्तौ। हस्तिनं हंतीति हस्तिघ्नः। एवं बाहुघ्नः। कपाटघ्नः।

पाणिघताडघौ शिल्पिनि ॥६४३ ॥

एतौ शिल्पे निपात्येते। पाणिना हन्तीति पाणिघः। ताडघः।

नग्नपलितप्रियान्धस्थूलशुभगाढ्येष्वभूततद्भावे कृञः ख्युट् करणे। ।६४४ ॥

नग्नादिषूपपदेषु अभूततद्भावेऽर्थे कृञः ख्युट् भवति करणे। अनग्नो नग्नः क्रियते अनेन नग्नंकरणं द्यूतं।एवं पलितंकरणं तैलं। प्रियंकरणं शीलं। अन्धंकरणः शोकः। स्थूलंकरणं दधि। शुभगंकरणं रूपं। आढ्यंकरणं वित्तं।

भुवः खिष्णुखुकञौ कर्त्तरि ॥६४५ ॥

नग्नादिषूपपदेषु अभूततद्भावे भुवः खिष्णुखुकञौ भवतः कर्त्तरि। अनग्नो नग्नो भवति नग्नंभविष्णुः। नग्नंभावुकः। पलितंभविष्णुः। पलितंभावुकः। प्रियंभविष्णुः। प्रियंभावुकः। अन्धंभविष्णुः अन्धंभावुकः। स्थूलंभविष्णुः स्थूलंभावुकः।

कर्मणि भजो विण् ॥६४६ ॥

जायाघ्नः—तिलकः, पतिघ्नी—पाणिरेखा, पित्तघ्नं—घृतं वातघ्नं—तैलं श्लेष्माणं हन्ति श्लेष्मघ्नं—त्रिकटुकं। अपि शब्द से—कृतं हन्ति—कृतघ्नः।

हस्ति बाहु कपाट के उपपद में होने पर शक्ति अर्थ में हन् से टक् प्रत्यय होता है ॥६४२ ॥

हस्तिघ्नः, बाहुघ्नः, कपाटघ्नः।

शिल्पी अर्थ में पाणिघ और ताडघ निपात से सिद्ध होते हैं ॥६४३ ॥

पाणिना हन्ति—पाणिघः, ताडघः।

नग्न, पलित, प्रिय, अन्ध, स्थूल, शुभग, आढ्य, उपपद में रहने पर अभूत तद्भाव अर्थ में 'कृ' धातु से करण से 'ख्युट्' प्रत्यय होता है ॥६४४ ॥

अभूततद्भाव—जो जैसा नहीं है उसका वैसा होना। *अनग्नः नग्नः क्रियते अनेन—जो नग्न नहीं* है वह इससे नग्न किया जाता है। नग्नंकरणं-जूआ। पलितंकरणं—तैलं-'युवुलामनाकान्ता' से यु को अन हुआ है। प्रियंकरणं-शीलं। अप्रिय को प्रिय करने वाला शील अन्धकरणं-शोकः चक्षु सहित को भी शोक अन्धा करने वाला है।

ये नग्न आदि उपपद में रहने पर अभूत तद्भाव अर्थ में 'भू' धातु से कर्ता में खिष्णु और खुकञ् प्रत्यय होते हैं ॥६४५ ॥

खिष्णु में खानुबंध और खुकञ् में खञानुबंध होते हैं खानुबंध से अनुस्वार होता है। अनग्नो नग्नो भवति गुण अव् होकर नग्नंभविष्णुः, नग्नं भावुकः। ञानुबंध से वृद्धि हुई है और आव् हुआ इत्यादि।

कर्म में भज् से 'विण्' प्रत्यय होता है ॥६४६ ॥

कर्मणि भजो विण् भवति। वेर्लोपोऽपृक्तस्य इति वेर्लोपो भवति॥ अर्द्धभाक्। पादभाक्।

सहः छन्दसि ॥६४७॥

छन्दसि भाषायां सहो विण् भवति। तुरांसहते।

सहेष्षो ढः ॥६४८॥

सहेस्सकारस्य षत्वं भवति हकारस्य ढकारो भवति चेत्। तुराषाड् तुरासाहौ तुरासाहः।

वहश्च ॥६४९॥

नाम्नि उपपदे वहश्च विण् भवति। प्रष्ठवाट् प्रष्ठौही।

अनसि डश्च ॥६५०॥

अनस्युपपदे वहश्च विण् भवति। अनसश्च डो भवति। अनड्वान्। अनडुही।

दुहः को घश्च ॥६५१॥

दुहः को भवति अन्तस्य घादेशः। ब्रह्मदुघा। कामदुघा।

विट् कमिगमिखनिसनिजनाम् ॥६५२॥

नाम्नि एभ्यो विट् भवति।

विड्वनोराः ॥६५३॥

णानुबंध से वृद्धि एवं 'वेर्लोपोऽपृक्तस्य' सूत्र से 'वि' का लोप होकर प्रत्यय कुछ भी शेष नहीं रहा है। अर्द्धंभजति इति—अर्द्धभाक्, पाद भाक् ज् को ग् होकर प्रथम अक्षर हुआ है 'चवर्गदृगादीनां च' सूत्र से सिके आने पर ज् को ग् हुआ है।

छन्द भाषा में 'सह' से विण् होता है ॥६४७॥

तुरांसहते। इति—

सह् के सकार को षकार और हकार को ढकार हो जाता है ॥६४८॥

तुराषाड् तुरासाहौ तुरासाहः इत्यादि।

नाम उपपद से वह धातु से विण् प्रत्यय होता है ॥६४९॥

प्रष्ठं वहति इति—प्रष्ठवाट् प्रष्ठौही।

अनस् उपपद में 'वह्' से विण् होता है ॥६५०॥

अनस् के स् को 'उ' होता है। अनड्वान्[1], अनडुही।

दुह् धातु से 'क' प्रत्यय होता है और अंत को 'घ' आदेश होता है ॥६५१॥

ब्राह्मणं दोग्धि इति—ब्रह्म दुघा, कामदुघा।

कम् गम् खन् सन् और जन् के नाम उपपद में रहने से विट् प्रत्यय होता है ॥६५२॥

विट् और वन प्रत्यय के आने पर पंचमान्त को आकार हो जाता है ॥६५३॥

---

१. अनः शकटं वहतीति।

विटि च वनि च प्रत्यये परे पञ्चमान्तस्याकारो भवति। उदधिकाः। अग्रेगाः। विषखाः। गोषाः। अब्जजाः।

अतो मन् क्वनिप्वनिप्विचः ॥६५४॥

आकारान्ताद्धातोर्मन् क्वनिप् वनिप् विच् एते प्रत्यया भवन्ति। मन् सुष्ठु ददातीति सुदामा। अश्व इव तिष्ठतीति अश्वत्थामा। क्वनिप्। सुपीवा। सुधीवा। वनिप्। भूरिदावा। घृतपावा। विच्। क्षीरपाः। सर्वापहारी प्रत्ययलोपः।

अन्येभ्योऽपि दृश्यन्ते ॥६५५॥

अन्येभ्योपि धातुभ्य एते प्रत्यया दृश्यन्ते। मन् कृतवर्मा। क्वनिप्। इण गतौ। प्रातरेति प्रातरित्या। वनिप् यज्वा। विच्—त्विष हिंसायां त्विट्।

क्विप् ॥६५६॥

धातोः क्विप् दृश्यते। उखायाः स्रंसते उखास्रत्। पर्णध्वत्।

वः क्वौ ॥६५७॥

वेञः सम्प्रसारणं दीर्घमापद्यते क्वावेव। ऊः उवौ उवः।

उदधिं काम्यति = उदधिका, अन्त के पंचम अक्षर को आकार होकर संधि हो गई है। अग्रे गच्छति अग्रेगाः विषं खनति = विषखाः खवति गोषा[1]। अब्जं जनयति अब्जजाः।

आकारांत धातु से मन्, क्वनिप् और विच् ये प्रत्यय होते हैं ॥६५४॥

मन्—सुष्ठु ददाति—सुदामन् लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति आकर सुदामा बना। अश्व इव तिष्ठति—अश्वत्थामा, यहाँ सकार को तकार हुआ है वह 'लृवर्ण तवर्गलसादन्त्याः' न्याय से स् को द् होकर प्रथम अक्षर हुआ है। क्वनिप्—कप् और इकार अनुबंध है अतः सुपावन् रहा 'दामागायति' इत्यादि १६४वें सूत्र से ईकार होकर सुपीवन् बना, लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में सुपीवा बना। ऐसे ही सुधीवन् से सुधीवा बना है।

क्वनिप् में कानुबंध होने से ५०२ सूत्र से यणवत् कार्य होता है।

वनिप् में—भूरिदावन् = भूरिदावा, घृतपावा विच् में—क्षीरं पिबतीति—क्षीरपाः विच् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप होता है।

अन्य धातु से भी ये प्रत्यय देखे जाते हैं ॥६५५॥

मन् से—कृतवर्मा, क्वनिप् से—इण् गति अर्थ में है प्रातः एति—प्रातरित्वा। वनिप् यज्वा। विच् में—त्विष्—हिंसा अर्थ में है 'त्विट्' बना है।

धातु से क्विप् प्रत्यय होता है ॥६५६॥

उखायाः स्रंसते = उखाश्रस् लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति से रूप बना उखाश्रत् पणानि ध्वंसते = पर्णध्वत्।

क्विप् प्रत्यय के आने पर वेञ् का संप्रसारण दीर्घ हो जाता है ॥६५७॥

वे—ऊ बना रूप चलने से ऊः उवौ उवः क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो जाता है।

---

१. गां पृथ्वी षनोतीति गोषा।

ध्याप्योः ॥६५८ ॥

ध्याप्योः सम्प्रसारणं दीर्घमापद्यते क्वौ परे । आधीः । व्याधीः । आपीः । वचनात्सम्प्रसारणं सिद्धम् ।

पञ्चमोपधाया धुटि चागुणे ॥६५९ ॥

पञ्चमान्तस्योपधायाः क्वौ धुटि चागुणे प्रत्यये परे दीर्घो भवति ।

मो नो धातोः ॥६६० ॥

धातोर्मकारस्य नकारो भवति धुट्यन्ते च । प्रशान् । प्रतान् ।

च्छ्वोः शूठौ पञ्चमे च ॥६६१ ॥

छकारवकारयोः शू ऊठि—त्येतौ भवतः क्वो धुट्यगुणे पञ्चमे च । लिश विछ गतौ । विछ गोविट् प्रच्छ ज्ञीप्सायां । पथिप्राट् । क्वचिद् ह्रस्वस्य दीर्घता । दिव् अक्षद्यूः । षिव् स्यूः । प्रच्छ प्रष्टः पृष्ट्वा । दिव् द्यूतः द्यूत्वा । विच्छ विश्नः । छस्य द्विः पाठे निमित्ताभावे नैमित्तिकस्याप्यभावः ।

श्रिव्यविमविह्वरित्वरामुपधयो ॥६६२ ॥

एषामुपधया सह वकारस्य ऊठ् भवति क्वौ धुट्यगुणे पञ्चमे च । श्रिवु गतिशोषणयोः । श्रूः । अव रक्ष पालने । अव् ऊः । मव्य बन्धने मूः । ज्वर रोगे जूः । त्वर तूः ।

राल्लोप्यौ ॥६६३ ॥

क्विप् के आने पर ध्या, प्या का संप्रसारण दीर्घ हो जाता है ॥६५८ ॥

आ ध्या—धी = आधीः, आपीः इस सूत्र से संप्रसारण सिद्ध है ।

पंचमान्तस्थ की उपधा को क्विप् और धुट् अगुण विभक्ति के आने पर दीर्घ हो जाता है ॥६५९ ॥

प्रशाम्यति इति प्रशम्—प्रशाम् बना । क्विप् प्रत्यय का सर्वापहारी लोप हो गया पुनः—

धुट् अन्त के आने पर धातु के मकार का नकार हो जाता है ॥६६० ॥

प्रशान् प्रतान् । प्रताम्यतीति प्रतान् ।

क्विप् और धुट् अगुण पंचम अक्षर के आने पर छकार वकार को शू और व को इठ् आदेश होता है ॥६६१ ॥

लिश, विछ—गमन करना । गोविट् शानुबंध से सार्वधातुकवत् कार्य होता है ॥ अतः प्रच्छ से—पन्थानं पृच्छति इति पथिप्राट् क्वचित् कहीं पर "ह्रस्वस्य दीर्घता" ४७० सूत्र से दीर्घ हो गया है ।

दिव् के व् को ऊठ् होकर अक्षैर्दीव्यति अक्षद्यूः षिव्-स्यूः । प्रच्छ से प्रष्टः पृष्ट्वा, दिव्-द्यूतः द्यूत्वा । विच्छ—विश्नः छ का द्वित्व पाठ है किंतु निमित्त के अभाव में नैमित्तिक का भी अभाव हो जाता है ।

क्विप् और धुट् अगुण पंचम प्रत्यय के आने पर श्रिव् अव् ।

मव् ज्वर् त्वर् के उपधा सहित वकार को ऊठ् हो जाता है ॥६६२ ॥

श्रिवु—गति और शोषण, श्रिव् की इ और व को ऊठ् होकर श्रू बना लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में 'श्रूः' बना ।

अव् से 'ऊः' मव् से मूः ज्वर् से जूः त्वर् से तूः बना ।

रेफ से परे धुट् अगुण पञ्चम और क्लिप के आने पर छकार वकार का लोप हो जाता है ॥६६३ ॥

रेफात्परौ छकारवकारौ लोप्यौ भवतः क्वौ धुट्यगुणे पञ्चमे च। मूर्च्छ मूः। धूर्व धूः।

वहे पञ्चम्यां भ्रंशेः ॥६६४॥

वहेः पञ्चम्यन्त उपपदे भ्रंशेः क्विप् भवति। भ्रंश भ्रंश अधःपतने। वहात् भ्रश्यत इति वहभ्रट्।

स्पृशोऽनुदके ॥६६५॥

अनुदके नाम्नि उपपदे स्पृशः क्विप् भवति। स्पृश संस्पृशे। घृतस्पृक् मन्त्रस्पृक्।

अदोऽनन्ने ॥६६६॥

अनन्न उपपदे अदः क्विप् भवति। सस्यमत्तीति सस्यात्। तृणात्।

क्रव्ये च ॥६६७॥

क्रव्ये चोपपदे अदः क्विप् भवति पक्वेऽर्थे। क्रव्यात्। पुनर्वचनादण् अपक्वेऽपि। क्रव्यादः राक्षस।

ऋत्विग्दधृक्स्रग्दिगुष्णिहश्च ॥६६८॥

एते क्विबन्ता निपात्यन्ते। ऋतौ यजतीति स्वपि वपि इत्यादिना संप्रसारणं, वमुवर्ण इति वत्वं। ऋत्विक्। धृष्णोतीति दधृक्। स्रक्। दिक्। उष्णिक्।

सत्सूद्विषद्रुहयुजविदभिदजिनीराजामुपसर्गेऽप्यनुपसर्गेऽपि ॥६६९॥

मूर्च्छ् धूर्व् धातु हैं इनके छकार वकार का लोप होकर मूः धूः बना।

वह पंचम्यंत उपपद में होने पर भ्रंश से क्विप् होता है ॥६६४॥

भ्रश भ्रंश = अधःपतन होना। बहात् भ्रश्यते वहभ्रट् बना।

अनुदक नाम उपपद में होने पर स्पृश् से क्विप् होता है ॥६६५॥

स्पृश्—संस्पर्श करना, घृतं स्पृशति—घृतस्पृक् मंत्रस्पृक्।

अन्त उपपद में न होने पर अद् से क्विप् होता है ॥६६६॥

सस्यं अत्तीति सस्य अद्—सस्याद् सि विभक्ति में 'सस्यात्' बना ऐसे ही तृणम् अत्ति = तृणात् बना।

और क्रव्य उपपद में होने पर पक्व अर्थ में अद् से क्विप् होता है ॥६६७॥

क्रव्यम् अत्ति = क्रव्यात्। पुनर्वचन से अण् भी होता है और अपक्व अर्थ में भी होता है। क्रव्यादः-राक्षसः।

ऋत्विग् दधृक् स्रक् दिग् और उष्णिक् ये क्विबन्त शब्द निपात से सिद्ध हुए हैं ॥६६८॥

ऋतौ यजति ई 'स्वपि वाचि' इत्यादि सूत्र से संप्रसारण होकर ऋतु इज् रहा 'वमुवर्णः' सूत्र से संधि होकर ऋत्विज् लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में "चवर्ग दृगादीनां च" सूत्र से ग होकर प्रथम अक्षर होकर ऋत्विक् बना है। धृष्णोति इति 'दधृक्' सृजतीति—स्रक् दिशति इति दिक्, उष्णिक् है।

सत्, सू, द्विष्, द्रुह् युज् विद् भिद् जि, नी, और राज् को उपसर्ग और अनुपसर्ग में भी एवं नाम उपपद अनाम उपपद में भी क्विप् प्रत्यय होता है ॥६६९॥

एषामुपसर्गेऽप्यनुपसर्गेऽपि नाम्नि अप्यनाम्नि उपपदे क्विप् भवति। उपसीदतीति उपसत्। सत्। सभासत्। सूरदादि: प्रसू:। सू:। अण्डसू:। द्विष् अप्रीतौ। विद्विट्। द्विट्। मित्रद्विट्। द्रुह जिघांसायां प्रधुक्। धुक्। मित्रधुक् प्रधुक् गोधुक्। प्रयुक्। युक् अश्वयुक्। संवित् वित् वेदवित्। प्रभित् भित् काष्ठभित्। प्रच्छित् छित् रज्जुच्छित्। प्रजित् जित् अवनिजित्। अवनी: नी: सेनानी:। विराट् राट् गिरिराट्।

कर्मण्युपमानेत्यदादौ दृशष्टक्सकौ च ॥६७० ॥

कर्मण्युपमाने त्यदादौ उपपदे दृशष्टक्सकौ च भवत:। चकारात् क्विप् च।

आ सर्वनाम्न: ॥६७१ ॥

दृग्दृशदृक्षेषु परत: सर्वनाम्न आकारो भवति। दृशिर् प्रेक्षणे। तमिव पश्यतीति अथवा स इव दृश्यते इति तादृश:। तादृक्ष:। तादृक्। यादृश:। यादृक्। यादृक्ष:। एतादृश:। एतादृक्ष:। एतादृक्।

इदमी: ॥६७२ ॥

दृगादिषु परत इदमीर्भवति। इदमिव पश्यतीति ईदृश:। ईदृक्ष: ईदृक्।

किं की: ॥६७३ ॥

दृगादिषु किं कीर्भवति। किमिव पश्यतीति कीदृश:। कीदृक्ष: कीदृक्।

उपसीदति—उपसत् षद् को सीद आदेश हुआ था मूल धातु षद् है। उपसर्ग के अभाव में 'सत्' बना। नाम उपपद में होने पर सभासत् बना। सूङ् प्राणि प्रसवे—प्रसू: सू: अण्डसू:। द्विष्-अप्रीति करना, विद्विट् द्विट्-मित्रद्विट्। द्रुह—द्रोह करना प्रद्रुह् लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में—'हचतुर्थांतस्याधातो:' इत्यादि २९० सूत्र से द्रुह के द को ध होकर 'दादेर्हस्यग:' सूत्र ३३२ से हकार को गकार होकर प्रधुक् बना। धुक्, गुरू धुक् आदि बनते हैं। युज् से—प्रयुक् युक् अश्वयुक्। वित् से—संवित् वित् वेदवित्।

भिद से—प्रभित् भित् काष्ठभित्। छिद् से—प्रच्छित् छित् रज्जुछित्। जि से—प्रजित्, जित् अवनिजित्। नी से—अवनी: नी: सेनानी:। राज् से—विराट् राट् गिरिराट् बने हैं।

उपमान अर्थ में त्यदादि उपपद में होने पर दृश् धातु से टक् और सक प्रत्यय होते हैं ॥६७० ॥

चकार से क्विप् प्रत्यय भी होता है।

दृग्, दृश और दृक्ष से परे सर्वनाम को आकार हो जाता है ॥६७१ ॥

दृशिर्—देखना। तमिव पश्यति अथवा स इव दृश्यते। टक् प्रत्यय से 'तत् दृश् अ' तत् को आकार होकर तादृश बना, क्विप् में—तादृश्, और सक् में कानुबंध होकर 'छशोश्च' सूत्र १२२ से श् को ष् होकर 'षढोक: से' सूत्र ११९ से ष को क् होकर 'नामिकरपर:' इत्यादि सूत्र से क् से परे स को ष होकर 'कषयोगेक्ष:' नियम से क्ष होकर तादृक्ष बना। तीनों को लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में तादृश: तादृक् तादृक्ष: बनेंगे। ऐसे ही यत् से यादृश: आदि, एतत् से एतादृश: आदि बनेंगे।

दृग् दृश् और दृक्ष के आने पर इदं को 'ई' हो जाता है ॥६७२ ॥

इदं इव पश्यति—ईदृश: ईदृक् ईदृक्ष:।

दृग् आदि के आने पर किं को 'की' आदेश होता है ॥६७३ ॥

किमिव पश्यति—कीदृश: कीदृक् कीदृक्ष:।

अदोमूः ॥६७४॥

दृगादिषु अदस् अमूर्भवति। अमुमिव पश्यतीति अमूदृशः अमूदृक्षः अमूदृक्।

दृग्दृशदृक्षेषु समानस्य स्यः ॥६७५॥

दृगादिषु परेषु समानस्य सभावो भवति। समानमिव पश्यतीति सदृशः। सदृक्षः। सदृक्।

नाम्न्यजातौ णिनिस्ताच्छील्ये ॥६७६॥

अजातौ नाम्नि उपपदे धातोर्णिनिर्भवति ताच्छील्येऽर्थे तच्छब्देन धात्वर्थो गृह्यते। उष्णं भोक्तुं शीलमस्य उष्णभोजी। धर्ममवभासितुं शीलमस्य धर्ममवभास्यत इति एवं शीलः धर्मावभासी। प्रियवादी। प्रियवादिनी।

कर्तर्युपमाने ॥६७७॥

कर्तृवाचिनि उपमाने उपपदे धातोर्णिनिर्भवति। उष्ट्र इव क्रोशतीति उष्ट्रक्रोशी। ध्वांक्षरावी। हंसगामिनी।

व्रताभीक्ष्ण्ययोश्च ॥६७८॥

व्रताभीक्ष्ण्ययोरर्थयोर्धातोर्णिनिर्भवति। व्रतं शास्त्रविहितो नियमः। आभीक्ष्ण्यं पौनःपुन्यं। अश्राद्धभोजी। स्थण्डिलशायी। क्षीरपायिणः उशीनराः। सौवीरपायिणो बाह्लिकाः।

मनः पुंवच्चात्र ॥६७९॥

कर्मण्युपपदे मन्यतेर्णिनिर्भवति उपपदस्य पुंवद्भवति यथासम्भवं। पटुमानी। पट्वीमात्मानं मन्यते। पटुमानिनी।

दृग् आदि के आने पर अदस् को 'अम्' आदेश होता है ॥६७४॥

अमुम् इव पश्यति अमूदृशः इत्यादि।

दृग् दृश और दृक्ष के आने पर समान को 'स' आदेश होता है ॥६७५॥

समानमिव पश्यति सदृशः इत्यादि।

जाति से भिन्न नाम उपपद में होने पर तत्शील अर्थ में धातु से णिन् प्रत्यय होता है ॥६७६॥

तत् शब्द से धातु अर्थ लिया जाता है।

उष्णं भोक्तुं शीलम् अस्य—उष्ण खाने का है स्वभाव जिसका—उष्ण भुज् से णिन् होकर उष्णभोजिन् सि विभक्ति में उष्णभोजी बना। धर्मावभासी, प्रियवादी, प्रियवादिनी इत्यादि बनेंगे।

कर्तावाची उपमान उपपद में होने पर धातु से णिन् प्रत्यय होता है ॥६७७॥

उष्ट्र इव क्रोशति इति = उष्ट्र क्रोशी, ध्वांक्षरावी, हंस—गामिनी इत्यादि।

व्रत और आभीक्ष्य अर्थ में धातु से णिन् प्रत्यय होता है ॥६७८॥

शास्त्र विहित नियम को व्रत कहते हैं। पुनः पुनः को आभीक्ष्य कहते हैं। श्राद्धे भोक्तुं शीलमस्य न अश्राद्ध भोजी स्थण्डिल शेते स्थंडिलशायी इत्यादि।

कर्म उपपद में होने पर मनु धातु से णिन् प्रत्यय होता है और यथा-संभव उपपपद को पुंवद् भाव हो जाता है ॥६७९॥

पटुम् आत्मानं मन्यते—पटुमानी, पट्वीम् आत्मानं मन्यते काचित् स्त्री = पटुमानिनी यहाँ पट्वी को पुंवद् भाव हो गया है।

खश्चात्मने ॥६८० ॥

कर्मण्युपपदे आत्मार्थे मन्यतेर्णिनिर्भवति खश्च प्रत्ययः पुंवच्च। विदुषीमिव आत्मानं मन्यते विद्वन्मानिनी। पटुमिवात्मानं मन्यते पटुमन्यः।

करणेऽतीते यजः ॥६८१ ॥

करणे उपपदे यजेर्णिन् भवति अतीतेऽर्थे। अग्निष्टोमेन इष्टवान् अग्निष्टोमयाजी। वाजपेययाजी।

कर्मणि हनः कुत्सायाम् ॥६८२ ॥

कर्मण्युपपद हन्तेर्णिनिर्भवति अतीते काले वर्त्तमानात् कुत्सायां। पितृघाती। मातुलघाती।

क्विप् ब्रह्मभ्रूणवृत्रेषु ॥६८३ ॥

ब्रह्मादिषूपपदेष्वतीते हन्तेः क्विप् भवति। ब्रह्माणं हन्तिस्म ब्रह्महा। भ्रूणहा। वृत्रहा।

कृञः सुपुण्यपापकर्ममन्त्रपदेषु ॥६८४ ॥

एतेषूपपदेषु कृञः क्विप् भवति अतीते। सुष्टु करोतिस्म सुकृत्। पुण्यकृत्। पापकृत्। कर्मकृत्। मन्त्रकृत्। पदकृत्।

सोमे सुञः ॥६८५ ॥

सोमे उपपदे सुञः क्विप् भवति अतीते। सोमं सुनोतिस्म सोमसुत्।

कर्म उपपद में होने पर आत्मा अर्थ में मनु धातु से णिन् प्रत्यय होता है और 'ख' प्रत्यय होता है पुंवद् भी होता है ॥६८० ॥

विदुषीमिव आत्मानं मन्यते विद्वन्मानिनी पटुमन्यः।

करण उपपद में होने पर अतीत अर्थ में यज् से णिन् प्रत्यय होता है ॥६८१ ॥

अग्निष्टोमेन इष्टवान्—अग्निष्टोमयाजी, वाजपेययाजी।

कर्म उपपद में होने पर अतीत काल में वर्तमान कुत्सा अर्थ में हन् धातु से णिन् प्रत्यय होता है ॥६८२ ॥

पितरम् हन्ति इति—पितृ घाती, "हस्य हंतेर्घिरिणिचोः" ३६७ सूत्र से ह को घ होकर 'हन्तेस्तः' सूत्र ५६० से नकार को तकार हुआ है। ऐसे मातुलघाती गुरुघाती आदि बनते हैं।

ब्रह्म भ्रूण और वृत्र उपपद में होने पर अतीत काल में हन् से क्विप् होता है ॥६८३ ॥

ब्रह्माणं हंतिस्म ब्रह्महन् बना लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में ब्रह्महा बनेगा। ऐसे ही भ्रूणहा, वृत्रहा।

सु, पुण्य, पाप, कर्म, मंत्र और पद उपपद में रहने पर अतीत काल में कृ धातु से क्विप् होता है ॥६८४ ॥

सुष्ठु करोतिस्म सुकृत् "धातोस्तोऽन्तः पानुबंधे" सूत्र ५२९ से पानुबंध कृदन्त प्रत्यय के आने पर ह्रस्वान्त धातु के अंत में तकार का आगम हो जाता है। अतः कृ से तकार का आगम होकर 'कृत्' बन जाता है। ऐसे ही पुण्यकृत् पापकृत् आदि।

सोम उपपद में अतीत अर्थ में 'कृ' से क्विप् होता है ॥६८५ ॥

सोमं सुनोतिस्म—सोमसुत्। तकार का आगम हुआ है।

चेरग्नौ ॥६८६ ॥

अग्नावुपपदे चिनोतेः क्विप् भवति अतीते । अग्निं चिनोतिस्म अग्निचित् ।

विक्रिय इन् कुत्सायाम् ॥६८७ ॥

विक्रीणातेरतीते कुत्सायां इन् भवति । सोमं विक्रीणीतेस्म सोमविक्रयी । डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये ।

दृशेः क्वनिप् ॥६८८ ॥

कर्मण्युपपदे दृशेः क्वनिप् भवति अतीते । मेरुं पश्यतिस्म मेरुदृश्वा ।

सहराज्ञोर्युधः ॥६८९ ॥

सहराज्ञोरुपपदयोः युधः क्वनिप् भवति अतीते । युध सम्प्रहारे सह युध्यतेस्म सहयुध्वा । राजानं युध्यतेस्म राजयुध्वा ।

कृञश्च ॥६९० ॥

सहराज्ञोरुपपदयोः कृञः क्वनिप् भवति अतीते । सहकृत्वा । राजकृत्वा ।

सप्तमीपञ्चम्यन्ते जनेर्डः ॥६९१ ॥

सप्तम्यन्ते पञ्चम्यन्ते उपपदे जनेर्डो भवति अतीते । जले जातं जलजं । सरसिजं संस्कारात् जातं संस्कारजं । बुद्धिजं । एवं पंकेजं । नीरजं ।

अन्यत्रापि च ॥६९२ ॥

अन्यस्मिन्नप्युपपदे जनेर्डो भवति अतीते । न जातः अजः । द्वाभ्यां जाते द्विजः । अभिजः । अग्रजः । अनुजः पुमांसमनुजातः ।

अग्नि शब्द उपपद में होने पर चिञ् धातु से क्विप् होता है ॥६८६ ॥

अग्निं चिनोतिस्म—अग्निचित् ।

विक्रीणाति धातु से कुत्सा अर्थ में 'इन्' प्रत्यय होता है ॥६८७ ॥

अतीत काल में—सोमं विक्रीणीतेस्म सोमविक्रयित् = सोमविक्रयी बना ।

कर्म उपपद में होने पर अतीत अर्थ में दृश् धातु से क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥६८८ ॥

मेरुं पश्यतिस्म मेरु दृश्वन् = मेरुदृश्वा बना ।

सह और राजन् के उपपद में अतीत में युध् से क्वनिप् होता है ॥६८९ ॥

युध—प्रहार करना । सह युध्यते स्म सहयुध्वन् = सहयुध्वा । राजानं युध्यते स्म = राजयुध्वा ।

सह राजा के उपपद में कृञ् धातु से अतीत में क्वनिप् प्रत्यय होता है ॥६९० ॥

सहकृत्वा, राजकृत्वा ।

सप्तम्यंत और पंचम्यंत उपपद में होने पर अतीत में 'जनि' से 'ड' प्रत्यय होता है ॥६९१ ॥

जले जातं—जलजं डानुबंध से अन् का लोप होकर बना है ।

सरसिजं, संस्कारजं बुद्धिजं इत्यादि ।

अन्य के उपपद में भी अतीत अर्थ में जन् धातु से 'ड' प्रत्यय होता है ॥६९२ ॥

न जातः = अजः द्वाभ्यांजातः द्विजः अभिजः अग्रजः इत्यादि । पुमांसम्-अनुजायतेस्म—अनुजातः ।

वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ।
धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम् ॥१॥
वर्णागमो गवेन्द्रादौ सिंहे वर्णविपर्ययः।
षोडशादौ विकारः स्याद्वर्णनाशः पृषोदरे ॥२॥
वर्णविकारनाशाभ्यां धातोरतिशयेन यः।
योगः स उच्यते प्राज्ञैर्मयूरभ्रमरादिषु ॥३॥

मह्यां रौतीति मयूरः। भ्रमन् रौतीति भ्रमरः। व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभोरिति न्यायात् पुंसोऽऽन्शब्दलोप इति सूत्रेण अन्शब्दलोपः। संयोगान्तस्य लोप इति सलोपः। पुमनुजः। स्त्र्यनुजः।

निष्ठा ॥६९३॥

धातोर्निष्ठाप्रत्ययो भवति अतीते काले।

क्तक्तवन्तू निष्ठा ॥६९४॥

क्तक्तवन्तू निष्ठासंज्ञौ भवतः।

न श्र्युवर्णवृतां कानुबन्धे ॥६९५॥

श्रयतेरुवर्णान्तस्य वृङ्वृञ्ऋदन्तस्य च नेड् भवति कानुबन्धेऽसार्वधातुके। श्रितः श्रितवान्। युतः युतवान्। भूतः भूतवान्। वृतः वृतवान्।

रान्निष्ठातो नोऽपॄमूर्च्छिमदिख्याध्याभ्यः ॥६९६॥

श्लोकार्थ—वर्ण का आगम, वर्ण विपर्यय, वर्ण का विकार वर्ण का नाश और धातु का उसके अर्थ के अतिशय के साथ योग होना यह पाँच प्रकार का निरुक्त कहलाता है ॥१॥। गवेन्द्र आदि में वर्ण का आगम हुआ है गो + इन्द्र 'अवःस्वरे' सूत्र से ओ को अव आगम हुआ है अतः गवेन्द्रः बना है। 'सिंह' शब्द में वर्ण का विपर्यय हुआ है हिंस से 'सिंह' बना है। षोडश में—षष् दश से विकार होकर षोडश बना है। पृषोदर में वर्ण का नाश हुआ है ॥२॥ वर्ण विकार और नाश से धातु में जो अतिशय आता है उसे योग कहते हैं यह मयूर भ्रमर आदि शब्दों में हुआ है ऐसा विद्वानों का कहना है ॥३॥

मह्यां रौति मयूरः, भ्रमन् रौति इति भ्रमरः। 'व्यञ्जनान्तस्य यत्सुभोः' इस न्याय से पुमन्स् के अन् शब्द का लोप होकर 'संयोगान्तस्य लोपः' सूत्र से संयोगी सकार का लोप होकर 'पुमनुजः' बना। ऐसे स्त्रियं अनुजातः—स्त्र्यनुजः।

अतीत काल में धातु से निष्ठा प्रत्यय होते हैं ॥६९३॥

क्त और क्तवन्तु निष्ठा संज्ञक होते हैं ॥६९४॥

कानुबंध असार्वधातुक प्रत्यय के आने पर श्रिञ् उवर्णांत और वृङ् वृञ् ऋदन्त धातु से इट् नहीं होता है ॥६९५॥

क्त क्तवन्तु में कानुबन्ध हुआ है। श्रितः श्रितवान्। युतः युतवान् भूतः भूतवान् वृतः। वृतवन्त् की लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में वृतवान् बना ऐसे ही सर्वत्र समझना।

पॄ मूर्च्छि ख्या, मदि और ध्या को छोड़कर रेफ से परे निष्ठा के तकार को नकार हो जाता है ॥६९६॥

रेफात्परस्य निष्ठातकारस्य नकारो भवति नतु पृमूर्च्छिमदिख्याध्याभ्यः। शॄ हिंसायां। शीर्णः शीर्णवान्। कीर्णः कीर्णवान्। गीर्णः गीर्णवान्। प्रतिषेधः किम् ! पॄ पूर्त्तः पूर्त्तवान्। मूर्च्छा मोह समुच्छ्राययोः। मूर्त्तः मूर्तवान्। मत्तः न डीङ्श्वीदनुबन्धवेटामपतिनिष्कुषोरिति इट्प्रतिषेधः। ख्यातः। ध्यातः।

निष्ठेटीनः ॥६९७॥

निष्ठायामिटि परे इनो लोपो भवति। चोर्यतिस्म चोरितः चोरितवान्। कारितः कारितवान्॥ क्षुधिवसोश्चेति वर्त्तते।

निष्ठायाञ्च ॥६९८॥

क्षुधिवसोर्निष्ठायां वा नेट् भवति।

लुभो विमोहने ॥६९९॥

विमोहनेऽर्थे लुभो निष्ठानां वा नेट् भवति। क्षुधितः क्षुधितवान्। उषितः उषितवान्। लुभ गार्ध्ये लुभितः लुभितवान्। लुब्धः लुब्धवान्।

पूञ्क्लिशोर्वा ॥७००॥

पूञः क्लिशश्च निष्ठायामिड् वा भवति। पूतः पूतवान्। पवितः पवितवान्। क्लिश् विबाधने। क्लिष्टः क्लिष्टवान्। क्लिशितः क्लिशितवान्।

न डीङ्श्वीदनुबन्धवेटामपतिनिष्कुषोः ॥७०१॥

डीङः श्वयतेरीदनुबन्धस्य च वेटस्य निष्ठायां नेड् भवति अपतिनिष्कुषोः।

शॄ—हिंसा करना "ऋदन्तेरगुणे" सूत्र से 'इर्' होकर 'इरूरोरीरूरौ' सूत्र से दीर्घ होकर नकार को णकार होकर शीर्णः शीर्णवान् बना है।

ऐसे ही कॄ गॄ में कीर्णः गीर्णः इत्यादि। उपर्युक्त धातुओं का निषेध क्यों किया है ? पॄ—पूर्त्तःपूर्त्तवान् बनेगा। मूर्च्छ से मूर्तः, मूर्तवान् बनेगा, मद से मत्तः "न डीङ्श्वीदनुबंध" इत्यादि ७०१ सूत्र से इट् का निषेध होकर ख्यातः ध्यातः बनता है।

निष्ठा प्रत्यय के परे इट् के आने पर इन् का लोप हो जाता है ॥६९७॥

चोर्यति स्म—चोरितः चोरितवान्। कारितः कारितवान्। 'क्षुधिवसोश्च' सूत्र अनुवृत्ति में चला आ रहा है।

क्षुध और वस से निष्ठा प्रत्यय के आने पर इट् विकल्प से होता है ॥६९८॥

विमोहन अर्थ में लुभ से निष्ठा प्रत्यय के आने पर विकल्प से इट् होता है ॥६९९॥

क्षुधितः क्षुधितवान्। वस को संप्रसारण होकर उषितः उषितवान्। लुभ्—गृद्धि करना। लुभितः लुभितवान्। इट् के अभाव में—लुब्धः लुब्धवान्।

पूञ् और क्लिश, से निष्ठा में इट् विकल्प से होता है ॥७००॥

पूतः पूतवान्, पवितः पवितवान्। क्लिश-क्लिष्टः क्लिष्वान् 'छशोश्च' सूत्र से श् को ष् होकर "तवर्गस्य षटवर्गाट्टवर्गः" सूत्र से टवर्ग होकर क्लिष्टः बना है।

इट् में—क्लिशितः क्लिशितवान्।

पति, निष्कुष को छोड़कर डीङ् श्वि और ईकारानुबंध से निष्ठा प्रत्यय के आने पर विकल्प से इट् होता है ॥७०१॥

ल्वाद्योदनुबन्धाच्च ॥७०२ ॥

लूञादिभ्य ओदनुबन्धेभ्यश्च परस्य निष्ठातकारस्य नकारो भवति। डीङ् विहायसा गतौ। डीनः डीनवान्। टुओश्वि गतिवृद्ध्योः।

तद्दीर्घमन्त्यम् ॥७०३ ॥

तत्सम्प्रसारणमन्त्यं चेद्दीर्घमापद्यते। शूनः शूनवान्। दीप्तः दीप्तवान्। ओलजी ओलस्जी व्रीडायां। लज्जतेस्म अन्तरङ्गत्वात् चजोः कगौ धुटि चानुबन्धयोरिति जकारस्य गकारः। लग्नः लग्नवान्।

धुटि खनिसनिजनाम् ॥७०४ ॥

एषां पञ्चमान्तस्य आकारो भवति धुटि परे। खातः। सातः। जातः। जातवान्। वेटः—गुहू संवरणे। ढे ढलोपो दीर्घश्चोपधायाः। गूढः गूढवान्।

दाद्दस्य च ॥७०५ ॥

दकारात्परस्य निष्ठातकारस्य दस्यं च नकारो भवति।

आदनुबन्धाच्च ॥७०६ ॥

आकारादनुबन्धाद्धातोर्नेड् भवति निष्ठायां ञिमिदा स्नेहने। मिन्नः मिन्नवान्। क्लिदू आर्द्रीभावे। क्लिन्नः क्लिन्नवान्।

आतोऽन्तस्थासंयुक्तात् ॥७०७ ॥

अन्तस्थासंयुक्तादाकारात्परस्य निष्ठातकारस्य नकारो भवति। ग्लै। हर्षक्षये। ग्लानः ग्लानवान्। म्लै मात्रविनामे। म्लानः। श्रा पाके। श्राण। द्रा कुत्सायां गतौ। विद्राणः विद्राणवान्।

लूञ आदि से और ओकारानुबन्ध धातु से परे निष्ठा के तकार को नकार होता है ॥७०२ ॥

डीङ्—आकाश में गमन करना। डीयते स्म इति डीनः डीनवान् टुओश्वि—गमन और बढ़ना। टुओ का अनुबन्ध है श्वि त, तवन्त् है।

वह यदि संप्रसारण है तो अन्त्य में दीर्घ हो जाता है ॥७०३ ॥

श्वि में उपधा सहित व को उ होकर दीर्घ होकर शूनः शूनवान्। दीप्तः दीप्तवान्। ओलजी—लज्जा करना। लज्जते स्म "चजोः कगौ धुटि घानुबंधयोः" ५४२ सूत्र से जकार को गकार होकर लग्नः लग्नवान्।

खन् सन् जन् के पंचम अक्षर को धुट् के आने पर आकार हो जाता है ॥७०४ ॥

खातः, खातवान्, सातः सातवान्। जातः जातवान्। गुहू—ढकना 'होढः' १४६ सूत्र से ह् को ढ् होकर आगे के तवर्ग को ढ होकर "ढे ढलोपो दीर्घश्चोपधायाः" सूत्र १४७ से ढकार का लोप होकर पूर्व को दीर्घ होकर गूढः गूढवान्।

दकार से परे निष्ठा के तकार और दकार दोनों को नकार हो जाता है ॥७०५ ॥

आकार अनुबंध धातु से निष्ठा प्रत्यय आने पर इट् नहीं होता है ॥७०६ ॥

ञिमिदा—स्नेह करना। मिन्नः मिन्नवान्। क्लिदू—गीला होना-क्लिन्नः क्लिन्नवान्।

अन्तस्थ संयुक्त आकार से परे निष्ठा के तकार को नकार हो जाता है ॥७०७ ॥

ग्लै—हर्ष क्षय होना, ग्लानः ग्लानवान् "संध्यक्षर धातु आकारांत हो जाते हैं" म्लै-म्लान होना—म्लानः, श्रा—पकाना श्राणः, द्रा—कुत्सित गमन करना—द्राणः विद्राणवान् इत्यादि।

व्रश्चेः कश्च ॥७०८ ॥

व्रश्चेः परस्य निष्ठातकारस्य नकारो भवति कश्चान्तादेशः । व्रश्चू छेदने । सम्प्रसारणं । वृक्णः वृक्णवान् ।

क्षैशुषिपचां मकवाः ॥७०९ ॥

एभ्यो निष्ठातकारस्य यथासंख्यं मकवा भवन्ति । क्षै जै षै क्षये । क्षामः क्षामवान् । शुष्कः । पक्वः ।

वनतितनोत्यादिप्रतिषिद्धेटां धुटि पञ्चमोऽच्चान्तः ॥७१० ॥*

वनतेस्तनोत्यादेः प्रतिषिद्धेटश्च पञ्चमस्य लोपो भवति धुट्यगुणे पञ्चमे च । आकारस्य अद् भवति । वन षण संभक्तौ । वतः । ततः । हतः । यतः । रतः । नतः । गतः । गतवान् ।

जपिवमिभ्यामिड् वा ॥७११ ॥

जपिवमिभ्यामिड् वा भवति निष्ठायां । जप विमानसे च । जप्तः जप्तवान् । जपितः जपितवान् । वान्तः । वान्तवान् वमितः वमितवान् ।

व्याद्भ्यां श्वसः ॥७१२ ॥

व्याद्भ्यां परस्य श्वस इड् वा भवति निष्ठायां । विश्वस्तः । विश्वसितः । विश्वस्तवान् विश्वसितवान् । आश्वस्तः आश्वस्तवान् । आश्वसितः आश्वसितवान् ।

भावादिकर्मणोर्वा ॥७१३ ॥

आदनुबन्धाद्धातोर्भाव आदिक्रियायाञ्च इड् वा भवति निष्ठायां ।

व्रश्च् धातु से परे निष्ठा के तकार को नकार होता है और अन्त को ककार आदेश होता है ॥७०८ ॥

व्रश्चू—छेदना संप्रसारण हुआ है 'संयोगादेर्लोपः' से शकार का लोप होकर वृक्णः वृक्णवान् ।

क्षै शुष् और पच् से परे निष्ठा के तकार को क्रम से म, क और व आदेश होता है ॥७०९ ॥

क्षै जै षै—क्षय होना । क्षामः क्षामवान् । शुष्कः पक्वः 'चवर्गस्य किरसवर्णे' सूत्र से चवर्ग को कवर्ग हुआ है ।

वन तनु आदि से और इट् निषिद्ध धातु से धुट् अगुण और पंचम अक्षर प्रत्यय के आने पर पंचम अक्षर का लोप हो जाता है और आकार को अत् होता है ॥७१० ॥

वन षण—संभक्ति । वन् के नकार का लोप होकर वतः, तन् से ततः, हन् से हतः, यम् रम् नम् गम् से यतः रतः नतः गतः गतवान् बना ।

जप और वम् से परे निष्ठा के आने पर विकल्प से इट् होता है ॥७११ ॥

जप—मन में जपना, जप्तः जपितः, वम्—वान्तः वमितः ।

वि आ से परे श्वस् धातु से निष्ठा के आने पर विकल्प से इट् होता है ॥७१२ ॥

विश्वस्तः विश्वसितः । आश्वस्तः आश्वसितः इत्यादि ।

आकारानुबंध धातु से निष्ठा के आने पर भाव और आदि क्रिया में विकल्प से इट् होता है ॥७१३ ॥

शीङ्पूङ्धृषिक्ष्विदिस्विदिमिदां निष्ठासेट् ॥७१४ ॥

शीङादीनां निष्ठा सेट् गुणी भवति । शयितः शयितवान् । पवितः पवितवान् । ञिधृषा प्रागल्भ्ये । धर्षितः धर्षितवान् । प्रक्ष्वेदितः प्रक्ष्विण्णः । प्रस्येदितः प्रस्विन्नः । प्रमेदितः । प्रमित्रः । प्रमित्रवान् ।

स्फायः स्फीः ॥७१५ ॥

स्फायः स्फीरादेशो भवति निष्ठायां । स्फायी ओप्यायी वृद्धौ । स्फीतः स्फीतवान् ।

भावादिकर्मणोर्वोदुपधात् ॥७१६ ॥

उदुपधाद्धातोर्निष्ठा सेट् गुणी भवति वा भावे आदिक्रियायाञ्च । द्योतितमनेन द्युतितमनेन । प्रद्योतितः प्रद्युतितः ।

यपि चादो जग्धिः ॥७१७ ॥

तकारादौ अगुणे यपि च परे अदेर्जग्धिर्भवति जग्धं अद्यते स्म निष्ठाक्तः ।

द्यतिस्यमास्थां त्यगुणे ॥७१८ ॥

एषां तकारादावगुणे प्रत्यये परे इड् भवति । दो अवखण्डने । दितवान् । अवसितः । माङ् माने । मितः । स्थितः स्थितवान् ।

वा छाशोः ॥७१९ ॥

छाशोस्तकारादावगुणे इड् वा भवति । छो छेदने । अवच्छितः अवच्छातः । शो तनूकरणे निशितः निशातः ।

शीङ् पूङ् धृष् क्ष्विद् खिद् मिद् धातु को निष्ठा के आने पर इट् सहित को गुण होता है ॥७१४ ॥

शी इ न गुण होकर = शयितः शयितवान् । पवितः, धर्षितः प्रक्ष्वेदितः, धृष्टः, प्रक्ष्विण्णः, प्रस्वेदितः प्रस्विन्नः, प्रमेदितः प्रमिन्तः ।

निष्ठा के आने पर स्फाय को 'स्फी' आदेश होता है ॥७१५ ॥

स्फायी ओप्यायी—वृद्धिगत होना । स्फीतः स्फीतवान् ।

उकार उपधावाली धातु से भाव और आदि क्रिया में निष्ठा के आने पर इट् सहित को गुण विकल्प से होता है ॥७१६ ॥

द्युत् उकार उपधावाली धातु है । द्योतितं द्युतितम् । प्रद्योतितः प्रद्युतितः ।

तकारादि अगुण और यप् प्रत्यय के आने पर अद् को जग्ध होता है ॥७१७ ॥

निष्ठा के तकार को ध होकर जग्धः जग्धवान् ।

दो, षो, माङ् और स्था से तकारादि अगुण प्रत्यय के आने पर इट् होता है ॥७१८ ॥

दितः सितः, मितः स्थितः स्थितवान् ।

छो और शो धातु से तकारादि अगुण विभक्ति के आने पर विकल्प से इट् होता है ॥७१९ ॥

छो—छेदना, अवच्छितः अवच्छातः, शो—पतला करना । निशितः निशातः ।

दधातेर्हिः ॥७२० ॥

दधातेर्हिर्भवति तकारादावगुणे । अभिहितः । अभिहितवान् ।

स्वरान्तादुपसर्गात्तः ॥७२१ ॥

स्वरान्तादुपसर्गात्परस्य दासंज्ञकस्य तो भवति तकारादावगुणे । प्रत्तं प्रत्तवान् । नित्तं नित्तवान् ।

दद्दोऽधः ॥७२२ ॥

अधेटो दासंज्ञकस्य दद्भवति तकारादावगुणे । दत्तः दत्तवान् । दत्त्वा दत्तिः । धाव् गति शुद्ध्योः । छ्वोः शूठौ ।

अवर्णादूठो वृद्धिः ॥७२३ ॥

अवर्णात्परस्य ऊठो वृद्धिर्भवति । धौतः ।

आदिकर्मणि क्तः कर्त्तरि च ॥७२४ ॥

आदिक्रियाणां कर्त्तरि च क्तो भवेदिति वेदितव्यः । प्रकृतः कटं भवान् । प्रकृतः कटो भवता । सुप्तो भवान् । प्रसुप्तं भवता । प्रशब्दः आदिक्रियाद्योतकः ।

गत्यर्थाकर्मकश्लिषशीङ्स्थासवसजनरुहजीर्यतिभ्यश्च ॥७२५ ॥

गत्यर्थेभ्यः अकर्मकेभ्यः श्लिषादिभ्यश्च कर्त्तरि क्तो भवति । गतो ग्रामं भवान् । ग्रामो भवता प्राप्तः । ग्रामं भवान् प्राप्तः । प्राप्तो ग्रामो भवता । गतोऽयं गतमनेन । प्राप्तोऽयं प्राप्तमनेन । अकर्मकात् । शयितो भवान् शयितं भवता । श्लिषादयः सोपसर्गाः सकर्मकाः आश्लिष्टो गुरुं भवान् । आश्लिष्टो गुरुर्भवता

'धा' धातु को 'हि' आदेश हो जाता है ॥७२० ॥

तकारादि अगुण विभक्ति के आने पर । अभिहितः अभिहितवान् ।

स्वरांत उपसर्ग से परे दा संज्ञक धातु को तकारादि अगुण विभक्ति के आने पर 'त्' हो जाता है ॥७२१ ॥

प्र दा त = प्रत्तं प्रत्तवान् नित्तं नित्तवान् ।

धेट् को छोड़कर दा संज्ञक को तकारादि अगुण विभक्ति के आने पर 'इद्' आदेश हो जाता है ॥७२२ ॥

दत्तः दत्तवान् । दत्त्वा, दत्तिः । धाव्—गमन करना शुद्ध होना । धाव् त 'छ्वोः शूठौ पञ्चमे च' ६६१ सूत्र से व् को ऊ होकर—

अवर्ण से परे 'ऊ' को वृद्धि हो जाती है ॥७२३ ॥

धा औ = धौतः धौतवान् ।

आदिक्रिया और कर्ता में 'क्त' प्रत्यय होता है ॥७२४ ॥

प्रकृतः कटं भवान्—आपने चटाई बनाना आरम्भ किया । प्रकृतः कटः भवता—आपने चटाई बनाई । सुप्तः भवान् प्रसुप्तं भवता । यहाँ 'प्र' शब्द आदि क्रिया का द्योतक है ।

गत्यर्थ, अकर्मक और श्लिषादि धातु से कर्ता में 'क्त' प्रत्यय होता है ॥७२५ ॥

गतः प्राप्तः, भवान् ग्रामं प्राप्तः, भवता ग्रामः प्राप्तः अयं गतः, अनेन गतम् । इत्यादि । अकर्मक

श्लिष आलिङ्गने। अधिशयितः खट्वां भवान्। अधिशयिता खट्वा भवता। उपस्थितो गुरुं भवान्। उपस्थितो गुरुर्भवता। उपसितो गुरुं भवान्। उपासितो गुरुर्भवता। वस निवासे। अनूषितो गुरुं भवान्। अनूषितो गुरुर्भवता। अनुजातो बुधं चन्द्रमाः अनुजातो बुधश्चन्द्रमसा। आरूढो वृक्षं कपिः आरूढो वृक्षः कपिना। जृषुझृषु वयोहानौ। अनुजीर्णो वृषलीं भवन्। अनुजीर्णा वृषली भवता।

क्तोऽधिकरणे च ध्रौव्यगतिप्रत्यवसादनार्थेभ्यः ॥७२६॥

ध्रुवस्य भावो ध्रौव्यं प्रत्यवसादनं भोजनं। ध्रौव्यार्थेभ्यः गत्यर्थेभ्यः प्रत्यवसादनार्थेभ्यश्च क्तो भवति अधिकरणे इदमेषामासितं। इदमासितमेभिः। अत्रासितोऽयं। इदमेषां यातं। इदं। तैर्यातं। ग्रामं ते याताः। इदमेषां भुक्तं। इदं तैर्भुक्तं। ओदनं ते भुक्ताः। इदमेषां पीतं। पयस्तैः पीतं। पयस्ते पीताः। पीत पयः।

ञ्यनुबन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क्तः ॥७२७॥

मतिरिच्छा बुद्धिर्ज्ञानं पूजा सत्कारः। ञ्यनुबन्धमतिबुद्धिपूजार्थेभ्यः क्तो भवति वर्तमानकाले भावे कर्मणि कर्त्तरि च यथासम्भवं। ञिमिदा स्नेहने। मिन्नः। स्विन्नः। क्ष्विण्णः। राज्ञां मतः। सतामिष्टः बुद्धौ राज्ञां बुद्धः। राज्ञां ज्ञातः। पूज पूजायां। राज्ञां पूजितः। सतामर्चितः।

नपुंसके भावे क्तः ॥७२८॥

भावे क्तो भवति नपुंसके। उपासितमत्र। सुजल्पितं। कुमारस्य शयितं। आस् उपवेशने। आसितं पुत्रस्य एधित।

युट् च ॥७२९॥

भावे नपुंसके युट् च भवति। भवनं। पचनं। यजनं। वसनं। देवनं। तोदनं। रोदनं। करणं। मननं। इत्यादि सर्वमवगन्तव्यं।

से—शयितः भवान्, शयितं भवता। श्लिषादि धातु उपसर्ग सहित सकर्मक कहलाती हैं। आश्लिष्टः गुरुं भवान्, आश्लिष्टः गुरुः भवता इत्यादि।

ध्रौव्यार्थक, गत्यर्थक और भोजनार्थक प्रत्यवसादनार्थक धातु से अधिकरण अर्थ में 'क्त' प्रत्यय होता है ॥७२६॥

ध्रुव के भाव को ध्रौव्य कहते हैं। भोजन को प्रत्यवसादन कहते हैं। आस् धातु से—आसितं, इदं एषां आसितं इदं आसितं एभिः अर्थात् यह यहाँ बैठा है। इत्यादि।

ञि अनुबंधधातु से, मतिबुद्धि पूजार्थ वाले धातु से 'क्तं' प्रत्यय होता है ॥७२७॥

यथा सम्भव वर्तमान काल में भाव, कर्म और कर्ता में क्त प्रत्यय होता है। मति—इच्छा, बुद्धि-ज्ञानं, पूजा-सत्कार। ञिमिदा—स्नेह करना। 'दाद्स्य च' ७०५ सूत्र से तकार के आने पर दकार और तकार दोनों को नकार हो जाता है। मिन्नः, स्विन्नः, क्ष्विण्णः, मनुङ्—मतः ७१० सूत्र से पंचम अक्षर का लोप हुआ है। इषु—इच्छायां इष्टः, बुध्—बुद्धः, पूजितः अर्चितः। सताम् अर्चितः सज्जनों से पूजा गया।

नपुंसकलिंग में भाव में 'क्त' प्रत्यय होता है ॥७२८॥

आस्—उपासितम् अत्र। सुजल्पितम्। शयितं कुमारस्य, कुमार का सोना। एधितम् इत्यादि।

भाव में नपुंसक लिंग में 'युट्' भी होता है ॥७२९॥

'युवुलामनाकान्ताः' ५५९वें सूत्र से यु को 'अन' आदेश होकर अन विकरण और 'अनिचविकरणे' से गुण होकर—भवनं पचनं यजनं इत्यादि। ऐसे ही सभी में समझ लेना।

तच्छीलतद्धर्मतत्साधुकारिष्वा क्वेः ॥७३० ॥

आक्वेः कोऽर्थः क्विपमभिव्याप्य इत्यर्थः । तच्छीलादिषु कर्तृषु अतः परे केचित्प्रत्यया वेदितव्याः ।

तृन् ॥७३१ ॥

तच्छीलादिषु धातोस्तृन् भवति वदिता जनापवादान् मूर्खः । मुण्डयितारः श्राविष्ठायिनाः । अधीतृ ज्ञानं ।

भ्राज्यलङ्कृञ्भूसहिरुचिवृतिवृधिचरिप्रजनापत्रपेनामिष्णुच् ॥७३२ ॥

एभ्यः इष्णुच् *भवति तच्छीलादिषु । भ्राजिष्णुः । अलङ्करिष्णुः । भविष्णुः । सहिष्णुः । रोचिष्णुः* वर्तिष्णुः । वर्धिष्णुः । चरिष्णुः । प्रजनिष्णुः । त्रपूष् लज्जायां । अपत्रपिष्णुः । इनन्तेभ्यः । धारयिष्णुः ।

मदिपतिपचामुदि ॥७३३ ॥

उद्युपपदेभ्य एभ्य इष्णुच् भवति तच्छीलादिषु । उन्मदिष्णुः । उत्पतिष्णुः । उत्पचिष्णुः ।

जिभुवोः ष्णुक् ॥७३४ ॥

आभ्यां ष्णुग्भवति तच्छीलादिषु । जिष्णुः । भूष्णुः ।

क्रुधिमण्डिचलिशब्दार्थेभ्यो युः ॥७३५ ॥

एभ्यो युर्भवति तच्छीलादिषु । कुप क्रुध रुष रोषे । कोपनः । क्रोधनः । रोषणः । एते क्रुध्यर्थाः । मण्ड्यर्थात् । मडि भूषायां । मण्डनः । भूष अलङ्कारे । भूषणः । चल्पर्थात् । चल कल्पने । चलनः । टुवेपृ कपि चलने । वेपनः । कम्पनः । शब्दार्थात् । रवणः भाषणः ।

क्विप् पर्यंत तच्छील, तद्धर्म, तत्साधुकारि अर्थ में प्रत्यय होते हैं ॥७३० ॥

सूत्र में 'आ क्वेः' का क्या अर्थ है ? क्विप् को व्याप्त करके है अर्थात् इससे आगे तत्स्वभाव आदि कर्ता अर्थ में कुछ प्रत्यय जानना चाहिये ।

तत्स्वभाव आदि अर्थ में धातु से तृन् प्रत्यय होता है ॥७३१ ॥

वदिता, मुण्डयिता, अधीतृ ज्ञानं इत्यादि ।

भ्राजि, अलंकृ, भू सहि रुचि वृति वृधि चरि प्रजन, अपत्रप और इन्नंत से तत्स्वभाव आदि अर्थ में इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥७३२ ॥

होकर भ्राज् इष्णु = भ्राजिष्णुः, अलंकरिष्णुः भविष्णुः सहिष्णुः रोचिष्णुः वर्तिष्णुः वर्धिष्णुः चरिष्णुः प्रजनिष्णुः अपत्रपिष्णुः । इन्नंत से—धारयिष्णुः कारयिष्णुः आदि ।

उत् उपपद होने पर मद, पत, पचधातु से इष्णुच् प्रत्यय होता है ॥७३३ ॥

तत्स्वभाव आदि अर्थ में । उन्मदिष्णुः उत्पतिष्णुः उत्पचिष्णुः ।

तत्स्वभाव आदि अर्थ में जि और भू से 'ष्णुक्' प्रत्यय होता है ॥७३४ ॥

जिष्णुः भूष्णुः ।

तत्स्वभाव आदि अर्थ में क्रुध, मण्ड, चल, शब्द इन अर्थ वाले धातु से 'यु' प्रत्यय होता है ॥७३५ ॥

'युवुलामनाकान्ताः' ५५९ सूत्र से यु को 'अन' होकर रूप बनेंगे । क्रुध् कुप् रूष् रोष अर्थ में हैं कोपनः क्रोधनः रोषणः । मण्डन अर्थ में—मडि-भूषायां—मण्डनः, भूष—अलंकारे भूषणः चल अर्थ में—चल् कंपने—चलनः, वेपनः, कम्पनः । शब्द अर्थ से—रवणः भाषणः ।

रुचादेश्च व्यञ्जनादेः ॥७३६ ॥

व्यञ्जनादेश्च रुचादेर्गणात् युर्भवति तच्छीलादिषु । रोचनः । लोचनः । वर्त्तनः । वर्द्धनः । दीपनः ।

ततो यातेर्वरः ॥७३७ ॥

ततश्चेक्रीयितान्ताद्यातेर्वरो भवति तच्छीलादिषु । यस्यानिनि इति यलोपश्च । यायावरः ।

कसिपिसिभासीशस्थाप्रमदां च ॥७३८ ॥

एषां वरो भवति तच्छीलादिषु ।

घोषवत्योश्च कृति ॥७३९ ॥

घोषवति तौ च कृति नेड् भवति कस्वरः । पेस्वरः । भास्वरः । ईश्वरः । स्थावरः । प्रमद्वरः ।

सनन्ताशंसिभिक्षामुः ॥७४० ॥

सनन्तस्याशंसेर्भिक्षेश्च उर्भवति तच्छीलादिषु । बुभूषुः । पिपासुः । बुभुक्षुः । चिकीषुः । शंस-स्तुतौ च । आशंसुः । भिक्ष याञ्चायां । भिक्षुः ।

उणादयो भूतेऽपि ॥७४१ ॥

उणादयः प्रत्यया वर्त्तमाने भूतेऽपि भवन्ति ।

कृवापाजिमीस्वदिसाध्यशूदृषणिजनिचरिचटिभ्य उण् ॥७४२ ॥

एभ्यो धातुभ्य उण् प्रत्ययो भवति । णकार इद्वद्भावः । करोतीति कारु वा गतिगन्धनयोः । वातीति वायुः । पायुः जायुः । मीङ् हिंसायां । मायुः स्वद आस्वादने । स्वादुः । साध् संसिद्धौ साध्यतीति साधुः ।

व्यञ्जनादि और रुचादि गण से तत्स्वभाव आदि अर्थ में 'यु' प्रत्यय होता है ॥७३६ ॥

रोचनः लोचनः वर्तनः वर्द्धनः दीपनः इत्यादि ।

चेक्रीयितान्त से तत्स्वभावादि अर्थ यात् से वर प्रत्यय होता है ॥७३७ ॥

यायावरः । 'यस्यानिनि' इत्यादि सूत्र से यकार का लोप हुआ है ।

कस् पिस् भास् ईश् स्था और प्रमद से तत्स्वभावादि अर्थ में 'वर' प्रत्यय होता है ॥७३८ ॥

घोषवान् से परे कृदन्त प्रत्यय के आने पर इट् नहीं होता है ॥७३९ ॥

कस्वरः पस्वरः भास्वरः ईश्वरः स्थावरः प्रमद्वरः ।

सन्नंत, आशंसि और भिक्षा से तत्स्वभावादि अर्थ में 'उ' प्रत्यय होता है ॥७४० ॥

भवितुम् इच्छुः बुभूषुः सब सन्नंत के पिछले सूत्र लगेंगे । पिपासुः बुभुक्षुः चिकीर्षुः । शंस्-स्तुति अर्थ में है आशंसुः भिक्ष—याञ्चा करना भिक्षुः ।

उण् आदि प्रत्यय वर्तमान और भूत में भी होते हैं ॥७४१ ॥

कृ, वा, पा, जि, मी, स्वदि साधि अशूङ् ह, षणि, जनि, चरि और चट् से 'उण्' प्रत्यय होता है ॥७४२ ॥

णकारानुबंध इद् वत् भाव के लिये है । करोति इति कारुः वातीति वायुः पायुः जायुः मायुः स्वादुः साधुः अश्नुः, दारुः सानुः जानुः चारुः चाटुः ।

अशूङ् व्याप्तौ। अश्नुते इति अश्नुः। दृ कि विदारणे। दृणातीति दारुः। पणु दाने। सनोतीति। सानुः। जनिङ् प्रादुर्भावे। जायत इति जानुः। चर गतिभक्षणयोः। चरतीति चारुः। चट विगतौ। चटतीति चाटुः। 'सर्वधातुभ्य अस्' मनु ज्ञाने। सृ गतौ। तिज निशाने। रुजो भङ्गे। मनः। सरः। तेजः। रोगः।

भविष्यति गम्यादयः ॥७४३॥

औणादिका गमीत्येवमादयः भविष्यति भवन्ति। भविष्यत्कालवृत्तिभ्यः गमादिभ्यः इनादयः स्युरित्यर्थः।

गमेरिन्णिनौ च ॥७४४॥

गम्लृ गतावित्येतस्माद्धातोरिन्णिनौ भवतः। ग्रामं गमिष्यतीति ग्रामं गमी। ग्रामं गामी।

भवतेश्च ॥७४५॥

भू सत्तायां इत्येतस्माद्धातोरिन्णिनौ भवतः भविष्यत्काले। भविष्यतीति भवी भावी। इत्यादि सर्वमुणादिषु वेदितव्यम्।

वुण्तुमौ क्रियायां क्रियार्थायाम् ॥७४६॥

क्रियायां क्रियार्थायामुपपदे धातोर्वुण्तुमौ भवतः भविष्यदर्थे वर्तमानात्। पाचको व्रजति। पक्तुं व्रजति। पक्ष्यामि इति व्रजतीत्यर्थः। एवं गन्तुं दातुं पातुं धरितुं तरितुं योक्तुं भोक्तुं स्रष्टुं द्रष्टुं प्रष्टुं।

सहिवहोरोदवर्णस्य ॥७४७॥

सहिवहोरवर्णस्य ओत्वं भवति धुटि परे। सोढुं। वोढुं।

'सर्वधातुभ्यः अस्' इस सूत्र से सभी धातु से अस् प्रत्यय होता है। मनुज्ञाने—मनस् = मनः, सृ—सरस् = सरः तिज—निशाने—तेजस् = तेजः, रुज से रोगः।

औणादिक गमी आदि भविष्यत् काल में होते हैं ॥७४३॥

भविष्यत्कालवर्ती गमादि से इन् आदि प्रत्यय होते हैं।

गम् धातु से इन् णिन् प्रत्यय होते हैं ॥७४४॥

ग्रामं गमिष्यति इति गमी, गामी, ग्रामं गमी। इन् गमिन् णिन् से गामिन् बना है।

भू धातु से भविष्यत्काल में इन् णिन् प्रत्यय होते हैं ॥७४५॥

भविष्यति इति भविन् भाविन्। भवी भावी।

उणादि प्रत्ययों में सभी को समझ लेना चाहिये।

क्रिया और क्रिया का अर्थ उपपद में होने पर भविष्यत् अर्थ में वर्तमान धातु से 'वुण्' और 'तुम्' प्रत्यय होते हैं ॥७४६॥

पच् 'युवुलामनाकान्ता' सूत्र ५५९ से वुण् को 'अक' होकर णानुबंध से वृद्धि होकर पाचकः कारकः इत्यादिक बनेंगे तुम् प्रत्यय से—पक्तुं व्रजति अर्थात् पकायेगा इसलिये जाता है। गन्तुं दातुं पातुं आदि बनेंगे।

सह वह के अवर्ण को धुट् के आने पर 'ओ' हो जाता है ॥७४७॥

'होढः' सूत्र से ह को ढ् होकर तुं को ढुं होकर सोढुं वोढुं बना है।

शन्त्रानौ स्यसहितौ शेषे च ॥७४८ ॥

क्रियार्थायां क्रियायामुपपदे भविष्यदर्थे वर्त्तमानाद्धतोः स्येन सहितौ शन्त्रानौ शन्तृङानशौ भवतः। करिष्यामि इति व्रजति कटं करिष्यन् व्रजति। कटं करिष्यमाणो व्रजति। शेषे च करिष्यतीति करिष्यन् करिष्यमाणः। यक्ष्यन् यक्ष्यमाणः।

पदरुजविशस्पृशो वा घञ् ॥७४९ ॥

एषां घञ् भवति वा। पादः। वेशः। स्पर्शः। उच समवाये ओकः।

भावे ॥७५० ॥

सर्वस्माद्धातोर्घञ् भवति। पाकः। यागः। योगः। त्यज हानौ। त्यागः। भोगः। भागः। पारः। भावः। इत्यादि ॥

घञीन्धेः ॥७५१ ॥

इन्धेः पञ्चमस्य लोपो भवति भावकरणयो—र्विहिते घञि परे। ञिइन्धी दीप्तौ। इन्धनं एधः ॥

रञ्जेर्भावकरणयोः ॥७५२ ॥

रञ्जेर्भावकरणविहिते घञि परे पञ्चमो लोप्यो भवति। रञ्ज रागे। रञ्जनं रागः।

उपसर्गादसुदुर्भ्यां लभेः प्राग् भात् खल्घञोः ॥७५३ ॥

सुदुर्वर्जितादुपसर्गात्परस्य लभेर्भात् प्राङ् मकारागमो भवति खल्घञोः परतः।

क्रिया है प्रयोजन जिसका ऐसा जो क्रियावाचक पद वह उपपद में होने पर भविष्यत् अर्थ में वर्तमान धातु से 'स्य' सहित शन्तृङ् और आनश् प्रत्यय होते हैं ॥७४८ ॥

शन्तृङ् का अन्त् और आनश का आन रहता है।

कृ स्य अन्त् 'अन् विकरण: कर्तरि' से अन् होकर 'अनि च विकरणे' से गुण होकर करिष्यन्त् बना है असंध्यक्षरयोरस्य तौतल्लोपश्च '२६' सूत्र से ष्य के अकार का लोप हुआ है। पुनः लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में करिष्यन् बना है। 'आन्मोन्त आने' सूत्र ४९८ से आन के आने पर आत्मने पद में अकारांत से मकार का आगम होता है अतः 'करिष्यमाणः' बना। कटं करिष्यमाणः व्रजति—कट को बनाएगा इसलिये जाता है।

यज् से—यक्ष्यन् यक्ष्यमाणः।

पद रुज विश् और स्पृश से विकल्प से घञ् प्रत्यय होता है ॥७४९ ॥

पादः रोगः वेशः स्पर्शः उच—समवाय अर्थ में है उससे ओकः बनता है।

सभी धातु से भाव में घञ् होता है ॥७५० ॥

पच् से पाकः योगः भोगः इत्यादि।

भाव और करण में घञ् प्रत्यय के आने पर इन्ध् के पञ्चम अक्षर का लोप हो जाता है ॥७५१ ॥

ञिइन्धी—दीप्त होना इन्धनं—एधः।

रञ्ज से भाव करण में घञ् के आने पर पंचम का लोप हो जाता है ॥७५२ ॥

रञ्ज्—रंगना रञ्जनं—रागः।

सु दुर् को छोड़कर अन्य उपसर्ग से परे खल् और घञ् प्रत्यय के आने पर लभ के 'भ' से पहले मकार का आगम हो जाता है ॥७५३ ॥

डुलभष्—प्राप्त करना।

उपसर्गाणां घञि बहुलम् ॥७५४ ॥

उपसर्गाणां दीर्घो भवति बहुलं घञि परे डुलभष् प्राप्तौ । उपलम्भः उपालम्भः । प्रलम्भः प्रालम्भः । असुदुर्भ्यामिति किं । सुलभः दुर्लभः ।

अकर्त्तरि च कारके संज्ञायाम् ॥७५५ ॥

कर्तृवर्जिते कारके भावे च संज्ञायां घञ् भवति । दीयते अस्मादिति दायः । चीयतेऽस्मादिति चायः । एवं विघातः । अस—क्षेपणे प्रास्यते अस्मादिति । प्रासः । आहारः । विहरन्त्यस्मिन्निति वा विहारः । भुज्यते इति भोगः ।

स्वरवृदृगमिग्रहामल् ॥७५६ ॥

स्वरान्ताद्वृदृगमिग्रहिभ्यश्च अल् भवति भावे । भूयते भवनं वा भवः । भयनं भयः । जयनं जयः । वरणं वरः । दरणं दरः । गमनं गमः । ग्रहणं ग्रहः ।

ट्वनुबन्धादथुः ॥७५७ ॥

ट्वनुबन्धाद्धातोरथुर्भवति भावे । टुवेपृ कम्पि चलने । वेपथुः । टुदु उपतापे । दवथुः । टुवेपृ । वेपनं वेपथुः । टुणदि समृद्धौ । नन्दथुः टुवम् उद्गिरणे । वमथुः । टु ओश्वि गतिवृद्ध्योः । श्वयथुः ।

ड्वनुबन्धात्त्रिमक्तेन निर्वृत्ते ॥७५८ ॥

ड्वनुबन्धाद्धातोस्त्रिमग्भवति तेन धात्वर्थेन निर्वृत्ते । पाकेन निर्वृत्तं पक्त्रिमं । एवं कारणेन निर्वृत्तं कृत्रिमं ।

याचिविछिप्रछियजिस्वपिरक्षियतां नङ् ॥७५९ ॥

एभ्यो नङ् भवति भावे । याच्ञा । छ्वोः शूठौ इति शकारः । विश्नः । प्रश्नः । यज्ञः । स्वप्नः । रक्षणः । यती प्रयत्ने । प्रयत्नः ।

घञ् प्रत्यय के आने पर बहुलता से उपसर्ग को दीर्घ हो जाता है ॥७५४ ॥

उपलम्भः उपालम्भः प्रलम्भः प्रालम्भः ।

सुधुर् को छोड़कर ऐसा क्यों कहा ? सुलभः दुर्लभः । इनमें मकार आगम और दीर्घ नहीं हुआ है ।

कर्तृ वर्जित कारक और भाव में संज्ञा अर्थ में घञ् प्रत्यय होता है ॥७५५ ॥

दीयते अस्मात् इति दायः चीयते—चायः हन् से विघातः अस्—प्रासः ह—आहारः विहारः भोगः इत्यादि ।

स्वरांत से और वृ, दृ, गम, ग्रह धातु से भाव में 'अल्' प्रत्यय होता है ॥७५६ ॥

भूयते भवनं वा भवः, भयः जयनं-जयः वरः दरः गमः ग्रहः ।

टु अनुबन्ध धातु से भाव में 'अथु' प्रत्यय होता है ॥७५७ ॥

टु वेपृ—वेपथुः टुदु—उपतापे—दवथुः कंपथुः टुणदि—समृद्धौ—नंदथुः टुवमु—उद्गिरणे—वमथुः टुओश्वि, गति वृद्धयोः श्वयथुः ।

डु अनुबंध धातु से निवृत्त अर्थ में 'त्रिमक्' प्रत्यय होता है ॥७५८ ॥

पाकेन निवृत्तेः पक्त्रिमं 'चवर्गस्यकिरसवर्णे' से क् हुआ है । कारकेण निर्वृत्तेः कृत्रिमं बना ।

याच् विछ प्रच्छ यज् स्वप् रक्ष और यत् से भाव में 'नङ्' होता है ॥७५९ ॥

याञ्चा वन 'छ्वोः शूठो पंचमे च' सूत्र ६६१ से छकार को शकार होकर विश्नः प्रश्नः यज् से न को ञ होकर 'जञोर्ज्ञः' नियम से यज्ञः स्वप्नः रक्षणः प्रयत्नः ।

उपसर्गे दः किः ॥७६० ॥

उपसर्गे उपपदे दासंज्ञकात्किर्भवति भावे । आलोपोऽसार्वधातुके इत्याकारलोपः । आदिः । आधिः । व्याधिः । सन्धिः । निधिः ।

कर्मण्यधिकरणे च ॥७६१ ॥

कर्मण्युपपदे दासंज्ञकात्किर्भवति अधिकरणे च । बाला धीयन्तेऽस्मिन्निति बालधिः । एवं जलधिः । वारिधिः । अब्धिः । वार्धिः । अम्भोधिः ।

कर्मव्यतिहारे णच् स्त्रियाम् ॥७६२ ॥

क्रियाव्यतिहारे वर्त्तमानाद्धातोः भावे णच् भवति स्त्रियां । तत्र न वृध्यागमः किन्तु वृद्धिरादौ सणि इति वृद्धिः । क्रियाव्यतिहारे क्रुश् आह्वाने रोदने च । पुनः पुनः व्यवक्रोशनं व्यवक्रोशः । व्यवक्रोश एव व्यावक्रोशी । हसि विहसने । पुनः पुनः व्यवहस्यते व्यवहासः । व्यवहास एव व्यवहासी ।

अभिविधौ भावे इनण् ॥७६३ ॥

अभिविधिरिति कोऽर्थः । अभिव्याप्तेः साकल्येन क्रियासंबन्ध इत्यर्थः । अभिविधौ गम्यमाने धातोरिनण् भवति भावे स्वार्थे अण् भवति । कुट कौटिल्ये । संकुटनं संकोटिनं । संकोटिनमेव सांकोटिनं वर्त्तते । एवं सांराविणम् । सांहासिनं वर्तते ।

षानुबन्धभिदादिभ्यस्त्वङ् ॥७६४ ॥

उपसर्ग उपपद में होने पर दा संज्ञक से भाव में 'कि' प्रत्यय होता है ॥७६० ॥

'आलोपोऽसार्वधातुके' सूत्र से आकार का लोप हो गया आ 'दा' इ = आदिः आधिः वि आ धा इ = व्याधिः सन्धिः निधिः ।

कर्म उपपद में होने पर दा संज्ञक से अधिकरण अर्थ में 'कि' प्रत्यय होता है ॥७६१ ॥

बाला धीयते अस्मिन् इति बालधिः जलधिः वारिधिः अप् धा इ = अब्धिः वार्धिः अम्भोधिः इत्यादि ।

क्रिया व्यतिहार अर्थ में वर्तमान धातु से भाव में स्त्रीलिंग में 'णच्' प्रत्यय होता है ॥७६२ ॥

उसमें वृद्धि का आगम नहीं होता है किन्तु 'वृद्धिरादौसणे' सूत्र से वृद्धि होती है क्रुश् धातु—आह्वानन करने और रोने अर्थ में है। पुनः पुनः व्यवक्रोशनं व्यवक्रोशः । व्यवक्रोश एव व्यावक्रोशी । हस—हंसना पुनः पुनः व्यवहस्यते व्यवहासः व्यवहास एव व्यावहासी बना है ।

अभिविधि अर्थ में धातु से भाव में इनण् और स्वार्थ में अण् प्रत्यय होता है ॥७६३ ॥

अभिविधि किसे कहते हैं ? अभिव्याप्ति को कहते हैं अभिव्याप्ति से—संपूर्णतया क्रिया का संबंध होना । कुट्—कौटिल्ये संकुटनं—संकोटिनं, संकोटिनमेव—सांकोटिनं संराव—सांराविणं संहास से—सांहासिनं ।

षानुबंध से और भिदादि से भाव में स्त्रीलिंग में 'अङ्' प्रत्यय होता है ॥७६४ ॥

षानुबन्धेभ्योभिदादिभ्यश्च भावे अङ् भवति स्त्रियां। कृप कृपायां। कृप सामर्थ्ये। कृपा। व्यथदुःखभयचलनयोः। व्यथा। व्यध ताडने व्यधा। छिदिर् छिदा। गुहू संवरणे। गुहा। स्पृह ईप्सायां स्पृहा:।

आतश्चोपसर्गे ॥७६५ ॥

उपसर्गे उपपदे आकारान्ताद्धातोरङ्भवति स्त्रियां। सन्ध्या। संस्था। उपधा। अन्तर्धा।

रोगाख्यायां वुञ् ॥७६६ ॥

रोगाख्यायां धातोर्वुञ् भवति स्त्रियां। प्रवाहिका। प्रछर्दिका।

संज्ञायां च ॥७६७ ॥

संज्ञायाञ्च धातोर्वुञ् भवति स्त्रियां। भञ्जो आमर्दने। उद्दालपुष्पाणि भज्यन्ते यस्यां क्रीडायां सा उद्दालपुष्पभञ्जिका। एवं शालपुष्पप्रवाहिका।

प्रश्नाख्यानयोरिञ्वुञ् च वा ॥७६८ ॥

प्रश्ने आख्याने अवगम्यमाने धातोरिञ् भवति वुञ्च भवति। वाग्रहणात् यथाप्राप्तं च। त्वं कां कारिमकार्षीः कां कारिकां कां क्रियां कां कृत्यां। अहं सर्वां कारिमकार्षं सर्वां कारिकां सर्वां क्रियां सर्वां कृत्यां। एवं त्वं कां कारणामकार्षीः। त्वं कां पाचिकामपाक्षीः। कां पक्तिं।

नञ्यन्याक्रोशे ॥७६९ ॥

नञ्युपपदे आक्रोशे गम्यमाने धातोरनिर्भवति। अकरणिस्ते वृषल भूयात्। जीव प्राणधारणे। एवमजीवनिः। जन जनने अजननीः अप्राणनीः।

कृप—कृपा और सामर्थ्य में है कृप् अ 'स्त्रियामादा' से 'आ' प्रत्यय होकर कृपा, व्यथा, व्यधा, धिदा भिदा, गुहा। स्पृह—स्पृहा।

उपसर्ग उपपद में रहने पर आकारांत धातु से स्त्रीलिंग में 'अङ्' होता है ॥७६५ ॥

संध्या, संस्था, अंतर्धा, उपधा आदि।

रोग वाचक धातु से स्त्रीलिंग में वुञ् होता है ॥७६६ ॥

प्रवाहिका, प्रछर्दिका।

संज्ञा अर्थ में धातु से स्त्रीलिंग में वुञ् प्रत्यय होता है ॥७६७ ॥

वुञ् को अक होकर "उद्दालपुष्प तोड़े जाते हैं जिस क्रीड़ा में वह उद्दालपुष्प भञ्जिका है" भञ्ज्—आमर्दन करना। शालपुष्प प्रवाहिका।

प्रश्न और आख्यान अर्थ में धातु से इञ् और उञ् प्रत्यय होते हैं ॥७६८ ॥

वा ग्रहण करने से यथाप्राप्त होते हैं। कृ से इञ् होकर कारि बन कर रूप चलेंगे वुञ् को अक होकर कारिका बनेंगे। त्वं कां कारिमकार्षीः कां कारिकां कां क्रियां कां कृत्यां। तुमने क्या कार्य किया, किस कार्य को, क्रिया को, किस कृत्य को किया। ऐसे मैंने सभी कार्य किये इत्यादि।

नञ् उपपद में होने पर आक्रोश अर्थ में धातु से 'अनि' प्रत्यय होता है ॥७६९ ॥

अकरणिः जीव धातु से—अजीवनिः अजननिः अप्राणनिः।

युट्च ॥७७० ॥

नपुंसके भावे युट् भवति । गमनं । हस हसने । हसनं । शयनं । यजनं ।

करणाधिकरणयोश्च ॥७७१ ॥

करणेऽधिकरणे च युट् भवति । ओव्रश्च्चू छेदने इध्मानि प्रकर्षेण वृश्च्यन्ते अनेन अस्मिन्निति वा इध्मप्रव्रश्चनः । गौः दुह्यते अनयाऽस्यामिति गोदोहनी सक्तूनि धीयन्ते सक्तुधानी स्थानं । आसनं । यानं । यजनं ।

पुंसि संज्ञायां घः ॥७७२ ॥

करणाधिकरणयोश्च पुंसि संज्ञायां घो भवति ।

छादेर्घे स्मन्त्रन्क्विप्सु च ॥७७३ ॥

छादेः ह्रस्वो भवति घ इस् इन् त्रन् क्विप् एषु परतः । छद षदृ संवरणे । उरः छाद्यते अनेनेति उरश्छदः । एवं दन्तच्छदः ।

अर्चिशुचिरुचिहुसृपिछादिछर्दिभ्य इस् ॥७७४ ॥

एभ्य इस् भवति । अर्चिः । शोचिः । रोचिः । हविः । सर्पिः । छदिः । छर्द वमने । छर्दिः ।

सर्वधातुभ्यो मन् ॥७७५ ॥

छद्म ।

छदिगमिपदिनीभ्यस्त्रन् ॥७७६ ॥

एभ्यः परः त्रन् प्रत्ययो भवति । छाद्यते अनेनेति छत्रं । क्विप् । तनुच्छत् । कुर्वन्ति अनेनेति करः । शृण्वन्त्यनेनेति श्रवः । लीङ् श्लेषणे । लीयन्ते अस्मिन्निति लयः ।

भाव अर्थ में नपुंसकलिंग में 'युट्' होता है ॥७७० ॥

गमनं हसनं इत्यादि यु को अन हुआ है ।

करण और अधिकरण अर्थ में 'युट्' होता है ॥७७१ ॥

ओ व्रश्चू—छेदना । इध्मानि प्रकर्षेण वृश्च्यंते अनेन अस्मिन्निति वा इध्म प्रवृश्चनः । गो दुही जाती है जिसके द्वारा अथवा जिसमें वह—गोदोहनी । सक्तूनि धीयंते अस्यां सक्तुधानी । स्था अन = स्थानं, आसनं, यानं यजनं ।

करण अधिकरण में संज्ञा अर्थ में पुल्लिंग से 'घ' प्रत्यय होता है ॥७७२ ॥

घ इस् इन् त्रन् क्विप् प्रत्यय के आने पर 'छाद' को ह्रस्व होता है ॥७७३ ॥

छद षदृ—संवरण करना । उरः छाद्यते अनेनेति—उरश्छदः दन्तच्छदः ।

अर्च, शुच् रुच् हु सुप् छाद् और छर्दि से 'इस्' प्रत्यय होता है ॥७७४ ॥

अर्चिस् रोचिस् शोचिस् हविस् सर्पिस् छदिस् छर्दिस् लिंग संज्ञा होकर सि विभक्ति में अर्चिः रोचिः शोचिः आदि बनेंगे ।

सभी धातुओं से 'अन्' प्रत्यय होता है ॥७७५ ॥

छअन् = छद्म ।

छद् गम् पद और नी से 'त्रन्' प्रत्यय होता है ॥७७६ ॥

छाद्यते अनेन इति छत्र । क्विप्—तनुं छादयति इति तनुच्छत् । 'घ' प्रत्यय से—कुर्वंति अनेनेति करः शृण्वंत्यनेनेति श्रवः । लीङ्—श्लेषण करना लीयंते अस्मिन्निति लयः ।

ईषद्दुःसुषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् ॥७७७ ॥

कृच्छ्रं दुःखं दुरोऽर्थः । अकृच्छ्रं सुखं सोरर्थः । एषूपपदेषु कृच्छ्राकृच्छ्रार्थेषु खल् भवति भावे कर्मणि कर्त्तरि च । ईषदप्रयासेन क्रियत इति ईषत्करः कटो भवता । दुष्करः । सुकरः । ईषद्बोधं काव्यं । दुर्बोधं व्याकरणं । सुबोधं अध्यात्मं ।

कर्तृकर्मणोश्च भूकृञोः ॥७७८ ॥

ईषदादिषूपपदेषु आभ्यां कर्तृकर्मणोः खल् भवति । ईषदाढ्यस्य भवनं ईषदाढ्यंभवं । भवता दुराढ्यंभवं । भवता स्वाढ्यंभवं । ईषदाढ्यः क्रियते ईषदाढ्यंकरो भवान् । दुराढ्यङ्करः । स्वाढ्यंकरः ॥

आढ्यो य्वदरिद्रातेः ॥७७९ ॥

ईषदादिषूपपदेषु आकारान्तेभ्यो युर्भवति अदरिद्राते ॥ ईषत्पानः सोमो भवता । दुष्पानः । सुपानः । ईषद्यानः । दुर्यानः सुयानः । ईषद्दाना । दुर्दाना । सुदाना ।

अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः क्त्वा वा ॥७८० ॥

अलं खलु शब्दयोः प्रतिषेधार्थयोरुपपदयोर्धातोः क्त्वा वा भवति । अलंकृत्वागच्छति । खलुकृत्वा । अलंभुक्त्वा । खलुभुक्त्वा । अलङ्करणेन । खलुकरणेन । अलं भोजनेन । खलुभोजनेन ।

क्त्वामसन्ध्यक्षरान्तोऽव्ययं ॥७८१ ॥

क्त्वामकारसन्ध्यक्षरान्ताश्च कृत्संभवा अव्ययानि भवन्ति । अव्ययाच्चेति विभक्तीनां लुक्

एककर्तृकयोः पूर्वकाले ॥७८२ ॥

ईषत् दुर् और सु उपपद में रहने पर कृच्छ्र अकृच्छ्र अर्थ में 'खल्' प्रत्यय होता है ॥७७७ ॥

कृच्छ्र—दुःख, अकृच्छ्र—सुख, ईषत्—बिना प्रयास के । यह 'खल्' प्रत्यय भाव, कर्म और कर्ता में होता है । ईषत् अप्रयासेन क्रियते इति ईषत्करः कटः दुष्करः सुकरः । ईषद् बोधं—काव्यं, दुर्बोधं—व्याकरणं सुबोधम् अध्यात्मं ।

ईषत् दुर् सु उपपद में होने पर भू कृ धातु से कर्ता और कर्म में 'खल्' प्रत्यय होता है ॥७७८ ॥

ईषद् आढ्यस्य भवनं = ईषद् आढ्यं भवं दुराढ्यं भवं स्वाढ्यंभवं । ईषदाढ्यः क्रियते = ईषदाढ्यंकरः भवता दुराढ्यंकरः स्वाढ्यंकरः । खानुबंध से अकारांत से परे अनुस्वार का आगम होता है ।

ईषदादि उपपद में होने पर दरिद्रा को छोड़कर आकारांत से 'यु' होता है ॥७७९ । ।

ईषत्पानः यु को 'अन' हुआ है । दुष्पानः सुपानः ईषद्यानः ईषद्दानः इत्यादि ।

अलं और खलु ये प्रतिषेध अर्थ वाले शब्द उपपद में होने पर धातु से 'कृत्वा' प्रत्यय विकल्प से होता है ॥७८० ॥

अलंकृत्वा, खलुकृत्वा, अलंभूक्त्वा खलु भुक्त्वा । पक्ष में—अलंकरणेन, खलुकरणेन, अलंभोजनेन खलु भोजनेन ।

क्त्वा नकार संध्यक्षरान्त कृत् प्रत्यय से बने शब्द अव्यय होते हैं ॥७८१ ॥

'अव्ययाच्च' इस सूत्र से विभक्तियों का लोप हो जाता है ।

एक कर्तृक दो धात्वर्थ के मध्य में पूर्व क्रिया के काल में वर्तमान धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय होता है ॥७८२ ॥

एकंकर्तृकयोर्धात्वर्थयोर्मध्ये पूर्वक्रियाकाले वर्तमानाद्धातोः क्त्वा भवति। भुक्त्वा व्रजति। स्नात्वा भुङ्क्ते। गत्वा गृह्णाति।

गुणी क्त्वा सेडरुदादिक्षुधक्लिशकुशकुषगृधमृडमृदवदवसग्रहां ॥७८३॥

अरुदादिक्षुधादीनां च क्त्वा सेड् गुणी भवति।

उदनुबन्धपूक्लिशां क्त्वि ॥७८४॥

उदनुबन्धापूञः क्लिशश्च इड् वा भवति क्त्वाप्रत्यये परे। देवनं पूर्वं पश्चात्किंचिदिति देवित्वा द्यूत्वा। वृधु। वर्धनं पश्चात्किंचिदिति वर्धित्वा वृध्वा। स्रंस् भ्रंस् अवस्रंसने। स्रंसित्वा स्रस्त्वा। भ्रंसित्वा। भ्रस्त्वा पवित्वा। पूत्वा। क्लेशित्वा। क्लिष्ट्वा।

व्यञ्जनादेर्व्युपधस्यावो वा ॥७८५॥

उश्च इश्च वी। वी उपधे यस्यासौ व्युपधः व्यञ्जनादेरुकारइकारोपधस्यावकारान्तस्य धातोः क्त्वा सेट् गुणी भवति। द्योतित्वा द्युतित्वा। लेखित्वा लिखित्वा।

तृषिमृषिकृषिवञ्चिलुञ्च्यृतां च ॥७८६॥

एषां क्त्वा सेट् गुणी भवति वा। ञितृषा पिपासायां। तर्षित्वा तृषित्वा। मृष सहने च। मर्षित्वा मृषित्वा। कृष बिलेखने। कर्षित्वा। कृषित्वा। वञ्च प्रलंभने। वञ्चित्वा। लुञ्च अपनयने। लुञ्चित्वा ऋत इति सौत्रो धातुः। अर्त्तित्वा ऋतित्वा।

थफान्तानां चानुषङ्गिणां ॥७८७॥

इसमें कानुबंध होता है। भुज् त्वा 'चवर्गस्य किरलवर्णे' सूत्र से कवर्ग होकर भुक्त्वा व्रजति—खाकर के जाता है। यहाँ खाने और जाने की क्रिया का कर्ता एक है। इसे अधूरी क्रिया भी कहते हैं। स्नात्वा। भुङ्क्ते।

रुदादि, क्षुध क्लिश कुश् कुष् गृध मृड, मृद वद वस ग्रह धातु को छोड़कर क्त्वा प्रत्यय के आने पर इट् सहित धातु गुणी होती हैं ॥७८३॥

उदनुबंध, पू और क्लिश धातु से क्त्वा प्रत्यय के आने पर इट् विकल्प से होता है ॥७८४॥

देवनं पूर्वं पश्चात् किंचित् इति देवित्वा इट् के अभाव में—द्यूत्वा। वृधु—वर्धित्वा वृध्वा, स्रंसित्वा स्रस्त्वा, भ्रंसित्वा भ्रस्त्वा, पवित्वा, पूत्वा क्लेशित्वा क्लिष्ट्वा।

व्यंजनादि धातु, उकार इकार उपधावाली, एवं यकारान्त रहित धातुयें क्त्वा प्रत्यय आने पर इट् सहित विकल्प से गुणी होती हैं ॥७८५॥

सूत्र में 'व्युपधस्य' पद है उसका अर्थ—उश्च इश्च उ और इ को 'वमुवर्णः' से उ को व होकर इ मिलकर 'वि' द्विवचन में 'वी' बनेगा। वी उपधा में हैं जिसके उसे व्युपधा कहते हैं। जैसे द्युत्, लिख्। द्योतित्वा, लेखित्वा लिखित्वा।

तृप् मृष् कृष् वञ्च् लुञ्च् ऋत् धातुयें क्त्वा प्रत्यय में इट् गुणी विकल्प से होती हैं ॥७८६॥

ञितृषा—प्यास लगना। तर्षित्वा गुण के अभाव में—तृषित्वा, मर्षित्वा मृषित्वा, कर्षित्वा कृषित्वा। वञ्चित्वा, लुञ्चित्वा। ऋत धातु सूत्र में है अर्तित्वा, ऋतित्वा।

थकारान्त फकारान्त अनुषंग सहित धातु को क्त्वा के आने पर इट् सहित गुण विकल्प से होता है ॥७८७॥

थान्तानां फान्तानां चानुषङ्गिणां क्त्वा सेट् गुणीभवति वा। श्रन्थ ग्रन्थ सन्दर्भे। श्रन्थित्वा ग्रन्थित्वा। श्रथित्वा ग्रथित्वा। गुफ गुम्फ दृभी ग्रन्थे। गुम्फित्वा। गुफित्वा।

जान्तनशामनिटां ॥७८८॥

जान्तनशामनिटां चानुषङ्गिणां क्त्वा गुणीभवति वा। षञ्ज सङ्गे। संक्त्वा सक्त्वा। रञ्ज रागे। रक्त्वा। रंक्त्वा। भञ्जो आमर्द्दने। भ्रंक्त्वा भक्त्वा। ष्वञ्ज परिष्वङ्गे। स्वंक्त्वा वक्त्वा।

मस्जिनशोर्धुटि ॥७८९॥

मस्जिनशोः स्वरात्परो नकारागमो भवति धुटि परे। टुमस्जो शुद्धौ। मंक्त्वा मक्त्वा। णश अदर्शने। नंष्ट्वा नष्ट्वा। रुदादिभ्यश्च इड् वा भवति। नशित्वा।

इज्जहातेः क्त्वि ॥७९०॥

जहातेरिद् भवति क्त्वा प्रत्यये। हित्वा।

समासे भाविन्यनञः क्त्वो यप् ॥७९१॥

अनञः क्त्वान्तेन समासे भाविनि क्त्वाप्रत्ययस्य यपादेशो भवति अभिभूय। अभिभवनं पूर्वं पश्चात्किंचिदिति। अभिभूय स्थितं। विजित्य प्रस्तुत्य। अधीत्य। उपेत्य।

मीनात्यादिदादीनामाः ॥७९२॥

मीनातिमिनोतिदीङां दामागायति पिबति स्थास्यति जहातीनामाकारो भवति यपि परे। मीङ् हिंसायां प्रमाय। डुमिङ् प्रक्षेपणे। परिमाय दीङ् क्षये। दीङ् अनादरे। प्रदाय। दामादीनामां बाधनार्थं। आदाय। निमाय। प्रगाय। प्रपाय। प्रस्थाय अवसाय। विहाय।

श्रंथ् ग्रंथ्—संदर्भ। श्रंथित्वा ग्रंथित्वा, गुण के अभाव में अनुषंग का लोप होता है। श्रथित्वा ग्रथित्वा। गुम्फ् गुम्फित्वा, गुफित्वा।

जकारान्त नश अनिट् अनुषंग सहित को क्त्वा इट् सहित में गुण विकल्प से होता है ॥७८८॥

सञ्ज—संगे—संक्त्वा सक्त्वा, रञ्ज—रंगना रंक्त्वा रक्त्वा, भञ्ज—भंक्त्वा भक्त्वा स्वञ्ज—स्वंक्त्वा स्वक्त्वा।

मस्जि नश् को स्वर से परे धुट् विभक्ति के आने पर नकार का आगम होता है ॥७८९॥

टुमस्जो—शुद्ध होना। मंक्त्वा मक्त्वा 'सकार का संयोगादेर्लोपः' से लोप होकर ज को ग् क् हो जाता है। णश्—नष्ट होना नंष्ट्वा नष्ट्वा। रुदादि गण से इट् विकल्प से होता है नशित्वा।

ओहाक् को इत् हो जाता है ॥७९०॥

क्त्वा प्रत्यय के आने पर। हित्वा।

नञ् रहित क्त्वा प्रत्ययान्त समास में भविष्यत् अर्थ में 'क्त्वा' को 'यप्' आदेश हो जाता है ॥७९१॥

अभि-भूत्वा = अभिभूय अभिभवनं पूर्वं पश्चात् किंचिदिति। अभिभूय स्थितं जि—क्त्वा को यप् = विजित्स 'धातोस्तोन्तः पानुबंधे' सूत्र ५२९ से ह्रस्वान्त से तकार का आगम होता है। प्रस्तुत्य अधीत्य, उपेत्य निकृत्य इत्यादि।

मीङ् आदि धातु को यप् प्रत्यय के आने पर आकार हो जाता है ॥७९२॥

"दा मा गायति पिबति" इत्यादि को यप् के आने पर आकार होता है। मीङ्-हिंसा-प्रमाय

यपि च ॥७९३॥

वनतितनोत्यादिप्रतिषिद्धेटां पञ्चमो लोप्यो भवति आतश्च अद्भवति, यथासम्भवं धुट्यगुणे यपि च परे। प्रवत्य प्रतत्य प्रमत्य प्रहत्य।

वा मः ॥७९४॥

प्रतिषिद्धेटां मकारो लोप्यो भवति वा यपि च परे। प्रणत्य प्रणम्य आगत्य आगम्य।

ये वा ॥७९५॥

खनि वनि सनि जनामन्तस्य आकारो भवति यकारे वा। खन खनने। प्रखाय प्रखन्य प्रवाय प्रवन्य। षणु दाने। प्रसाय। प्रसन्य। जनी प्रादुर्भावे। प्रजाय प्रजन्य।

लघुपूर्वो यपि ॥७९६॥

लघुपूर्व इन् अय् भवति यपि च परे। प्रशमय्य प्रगमय्य। गण् संख्याने विगणय्य।

णम् चाभीक्ष्ण्ये द्विश्च पदं ॥७९७॥

एककर्तृकयोः पूर्वकाले वर्तमानाद्धातोर्णम् क्त्वा च आभीक्ष्ण्ये पदं च द्विर्भवति। भोजं भोजं व्रजति। भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। पांच पांच भुंक्ते। पक्त्वा पक्त्वा भुङ्क्ते। दायं दायं तुष्यति। दत्वा दत्वा तुष्यति। पायं पायं तृष्यति। पीत्वा पीत्वा तृष्यति।

कर्मण्याक्रोशे कृञः खमिञ् ॥७९८॥

कर्मण्युपपदे कृञः खमिञ् भवति आक्रोशे गम्यमाने। चौरंकारमाक्रोशति। अंधंकारं निरीक्ष्यते। बधिरंकारं शृणोति। पङ्गुंकारं गच्छति।

डुमिङ्—प्रक्षेपण करना परिमाय, दीङ्क्षय होना—दीङ्-अनादर करना प्रदाय, दामा आदि के ईकार को बाधित करने के लिये यह सूत्र है 'आदाय' निमाय, प्रगाय प्रपाय, प्रस्थाय अवसाय विहाय।

वन तन आदि और इट् प्रतिषिद्ध धातु के पंचम अक्षर का लोप हो जाता है और आकार को अकार हो जाता है ॥७९३॥

यथासंभव धुट् अगुण और यप् के आने पर। वन्—प्रवत्य प्रतत्य प्रमत्य प्रहत्य।

निषिद्ध इट् धातु के मकार का लोप विकल्प से होता है ॥७९४॥

यप् के आने पर। णम्—प्रणत्य प्रणम्य, आगत्य आगम्य।

खन् वन् सन् जन् के अंत को यकार के आने पर विकल्प से आकार हो जाता है ॥७९५॥

खन्—खोदना—प्रखाय प्रखन्य, प्रवाय प्रवन्य, प्रसाय प्रसन्य प्रजाय प्रजन्य।

यप् के आने पर लघु पूर्व इन् को अय् हो जाता है ॥७९६॥

गम—प्रगमय्य प्रशमय्य। गण्—संख्या करना प्रगणय्य।

एक कर्तृक दो धातु के पूर्व काल में वर्तमान धातु से णम् और क्त्वा प्रत्यय होते हैं और पुनः पुनः में पद को द्वित्व हो जाता है ॥७९७॥

भोजं भोजं व्रजति णम् हुआ है ये अव्ययान्त पद हो गये हैं भुक्त्वा भुक्त्वा व्रजति। दायं दायं इत्यादि।

कर्म उपपद में रहने पर आक्रोश अर्थ में 'कृ' धातु से 'खमिञ्' प्रत्यय होता है ॥७९८॥

चौरंकारम् अंधंकारं बधिरंकारं शृणोति। इत्यादि।

यावति विन्दजीवोः ॥७९९॥

यावदित्यनिर्दिष्टवाची यावदित्युपपदे विन्दतेर्जीवतेश्च णम् भवति। यावद्वेदं भुङ्क्ते। यावन्तं लभते तावन्तं भुङ्क्ते इत्यर्थः। यावज्जीवमधीते। यावन्तं जीवति तावन्तं अधीते इत्यर्थः।

कर्म्मणि चोपमाने ॥८००॥

उपमाने कर्त्तरि कर्मणि चोपपदे धातोर्णम् भवति। चुडक इव नष्टः। चूडकनाशं नष्टः। गुरुरिव अभवत् गुरुभावमभवत्। रत्नमिव निहितं रत्ननिधायं निहितं।

निमूलसमूलयोः कषः ॥८०१॥

निमूलसमूलयोः कर्मणोरुपपदयोः कषतेर्णम् भवति। निमूलकाषं कषति निमूलं कषतीत्यर्थः। समूलकाषं कषति समूलं कषतीत्यर्थः। अभ्रकाषं कषति अभ्रंकषतीत्यर्थः। ओदनमिव पक्कः ओदनपाकं पक्कः। इत्यादि प्रयोगादनुसर्तव्यम्।

स्त्रियां क्तिः ॥८०२॥

धातोर्भावे क्तिर्भवति स्त्रियां। घोषवत्योश्च कृतीति नेट्। भूयते भवनं वा भूतिः। नवनं नुतिः। स्तवनं स्तुतिः। वर्धनं वृद्धिः। धारणं धृतिः। वर्त्तनं वृतिः। यजनं इष्टिः। श्रु विश्रवणे श्रवणं श्रुतिः। बुध अवगमने बोधनं बुद्धिः। कारणं कृति भ्रमु अवस्थाने भ्रमणं, पञ्चमोपधाया धुटि चागुणे इति उपधाया दीर्घः भ्रान्तिः।

ॠल्वादिभ्योऽपृणातेः क्तेः ॥८०३॥

पृणातिवर्जितादॄकारान्ताल्ल्वादिभ्यश्च परस्य क्तेर्नकारो भवति। कृ विक्षेपे करणं कीर्यत इति वा कीर्णिः। गरणं गीर्णिः। लवनं लूनिः। पृणातेस्तु उरोष्ठ्योपधस्य च पृ पा लनपूरणयोः पूरणं पूर्तिः। मरणं मूर्तिः।

'यावत्' पद के उपपद में रहने पर विन्द और जीव् से णम् प्रत्यय होता है ॥७९९॥

यावद् वेदुं भुंक्ते-जितना मिलता है उतना खाता है यह अर्थ है। यावज्जीवं अधीते—जब तक जीता है तब तक पढ़ता है।

उपमान अर्थवाले कर्ता और कर्म उपपद में होने पर धातु से णम् प्रत्यय होता है ॥८००॥

चूडक इव नष्टः—चूडकनाशं नष्टः। गुरुः इव अभवत्—गुरुभावं अभवत्। रत्नमिव निहितं—रत्ननिधायं निहितं।

निमूल और समूल कर्म उपपद में होने पर कष् धातु से णम् प्रत्यय होता है ॥८०१॥

निमूलकाषं—निमूलं कषति ऐसा अर्थ है। समूलकाषं कषति—समूलं कषति। अभ्रकाषं कषति। ओदनमिव पक्वः ओदनपाकं पक्वः। इत्यादि प्रयोग से अनुसरण करना चाहिये।

धातु से भाव अर्थ में स्त्रीलिंग में 'क्ति' प्रत्यय होता है ॥८०२॥

"घोषवत्योश्च कृतीतिनेट्" इस नियम से इट् नहीं होता है। भूयते भवनं वा भूतिः। कानुबंध हो गया है। नवनं—नुतिः स्तवनं स्तुतिः, वर्धनं वृद्धिः धृतिः वृत्तिः यज्—इष्टिः श्रुतिः बुधः बुद्धिः, कृतिः 'पंचमोपधाया धुटि चागुणे' सूत्र से उपधा को दीर्घ होने से भ्रान्तिः।

पृ वर्जित ॠकारान्त और लु आदि से परे क्ति को नकार हो जाता है ॥८०३॥

कॄ—विक्षेपण करना—करणं कीर्यते इति वा कीर्णिः 'ऋदन्ते—रगुणे' से इर् होकर 'इरूरो-रीरूरौ' सूत्र से दीर्घ होकर बना है। ऐसे ही गरणं गीर्णिः, लवनं लूनिः। पृ—पालन पूरणयोः 'उरोष्ठ्योपधस्य

हाज्याग्लाभ्यश्च ॥८०४॥

एभ्यो धातुभ्यश्च परस्य क्तेः नकारो भवति स्त्रियां । ओहाक् त्यागे हानं हानिः । ज्या वयोहानौ ज्यानं ज्यानिः । ग्लानं ग्लानिः ।

संपदादिभ्यः क्विप् ॥८०५॥

संपदादिभ्यः क्विप् भवति भावे स्त्रियां । पद गतौ संपद्यते संपदनं वा संपत् । षद्लृ विशरणगत्यवसादनेषु ॥ संसदनं संसत् । परिषदनं परिषत् ।

व्रजयजोः क्यप् ॥८०६॥

आभ्यां भावे स्त्रियां क्यब् भवति । व्रज् गतौ प्रव्रजनं प्रव्रज्या इज्या ।

श च ॥८०७॥

कृञो भावे शो भवति क्यप् क्तिश्च स्त्रियां । क्रीयते करणं वा यणाशिषोर्ये इति इकारागमः क्रिया धातोस्तोन्तः पानुबन्धे कृत्वा कृतिः ।

शंसिप्रत्ययादः ॥८०८॥

शंसेः प्रत्ययान्ताद्धातोर्भावे अप्रत्ययो भवति स्त्रियां शंसु विस्तुतौ प्रशंसनं प्रशस्यते इति वा प्रशंसा । प्रत्ययान्तात् बुभूषणं बुभूष्यत् इति वा बुभूषा । वच परिभाषणे विवक्षणं विवक्षा । विधित्सनं विधित्सा । पिपतिषणं पिपतिषा । पिपासनं पिपासा । बोभूयनं बोभूया । कण्डूञ्गात्रविकर्षणे । स्वार्थेयण् । कण्ड्वादेर्यण् कण्डूयनं कण्डूया ।

च' सूत्र ३९७ से ऋदंत को अगुण प्रत्यय आने पर उर् हो जाता है और "नामिनोर्वोरकुर्च्छुर्व्यंजने" सूत्र से उर् को दीर्घ होकर 'पूर्तिः' बना ऐसे ही मृङ् से मूर्तिः बना ।

हा ज्या और ग्ला से परे क्ति के तकार को नकार हो जाता है ॥८०४॥

ओहाक्—त्यागे—हानं हानिः, ज्या—वयोहानौ ज्यानं ज्यानिः, ग्लानं ग्लानिः ।

संपद् आदि से भाव में स्त्रीलिंग में क्विप् होता है ॥८०५॥

पद—गमन करना संपद्यते संपदनं वा संपत् । षद्लृ—विशरणगति अवसादन अर्थ में है । संसदनं संसत् । परिषदनं परिषत् ।

व्रज् यज् से भाव में स्त्रीलिंग में क्यप् होता है ॥८०६॥

प्रव्रजनं—प्रव्रज्या, यजनं इज्या । 'स्त्रियां आदा' सूत्र से आ प्रत्यय होता है ।

कृ धातु से भाव में स्त्रीलिंग में 'श' क्यप् और क्ति प्रत्यय होते हैं ॥८०७॥

क्रियते करणं वा 'यणाशिषोर्ये' सूत्र से इकार का आगम होकर 'श' प्रत्यय से क्रिया बना, यहाँ 'स्त्रिया मादा' सूत्र से 'आ' प्रत्यय हुआ है । आगे 'धात्तोस्तोन्तः पानुबंधे' सूत्र से क्यप् प्रत्यय में पानु बंध होने से ह्रस्वांत धातु से तकार का आगम होकर कृत्य आ प्रत्यय होकर 'कृत्या' बना है । क्ति से कृतिः बना है ।

शंस और प्रत्ययांत धातु से भाव में स्त्रीलिंग में 'अ' प्रत्यय होता है ॥८०८॥

शंसु—स्तुति करना । प्रशंसनं प्रशस्यते इति वा प्रशंसा "स्त्रियामादा" सूत्र से 'आ' प्रत्यय हुआ है । प्रत्ययान्तसे—बुभूषणं बुभूष्यते इति वा बुभूषा । वच—परिभाषण करना ।

विवक्षणं—विवक्षा । विधित्सनं विधित्सा । पतितुम् इच्छति पिपतिषति पिपतिषणं पिपतिषा । पिपासनं पिपासा । वोभूयनं बोभूया । कण्डूञ्—गात्र विकर्षण करना । स्वार्थ में यण् प्रत्यय हुआ है 'कण्ड्वादेर्यण्' कण्डूयनं कण्डूया ।

गुरोश्च निष्ठायां सेटः ॥८०९॥

निष्ठायां सेटः गुरुमंतो धातोरप्रत्ययो भवति स्त्रियां। ईह चेष्टायां ईहनं ईह्यत इति वा ईहा। ईक्ष दर्शने ईक्षणं। ईक्षा। एवं सर्वमवगन्तव्यम्।

भावसेनत्रिविद्येन वादिपर्वतवज्रिणा॥
कृतायां रूपमालायां कृदन्तः पर्यपूर्यत॥१॥
मन्दबुद्धिप्रबोधार्थं भावसेनमुनीश्वरः॥
कातन्त्ररूपमालाख्यां वृत्तिं व्यररचत्सुधीः॥२॥
क्षीणेऽनुग्रहकारिता समजने सौजन्यमात्माधिके॥
सन्मानं नुतभावसेन मुनिये त्रैविद्यदेवे मयि॥३॥
सिद्धान्तोऽयमथापि यः स्वधिषणागर्वोद्धतः केवलम्॥
संस्पर्द्धेत तदीयगर्वकुहरे वज्रायते मद्वचः॥४॥

इति कातन्त्रस्य रूपमाला प्रक्रिया समाप्ता। ❑

अत्र उपयुक्ताः श्लोकाः।

आख्यातं श्रीमदाद्यार्हत्प्रभोर्जेजीयते भुवि।
यत्प्रसादाद् व्याकरणं भवेत् सर्वार्थसाधकं॥१॥

निष्ठा प्रत्यय के आने पर इट् सहित दीर्घवाले धातु से स्त्रीलिंग में 'अ' प्रत्यय होता है॥८०९॥

ईह—चेष्टा करना, ईहनं ईह्यते इति वा ईह—अ 'स्त्रियामादा' से आ प्रत्यय होकर 'ईहा'। ईक्ष्—देखना—ईक्षणं—ईक्षा। इसी प्रकार से सभी को समझ लेना चाहिये।

इस प्रकार से कृदन्त प्रकरण समाप्त हुआ।

श्लोकार्थ—वादिगण रूपी पर्वतों के लिये वज्र के सदृश ऐसे श्रीमान् भावसेन त्रिविद्य मुनिराज ने इस कातंत्र व्याकरण की 'रूपमाला' नामक टीका में कृदन्त प्रकरण पूरा किया है॥१॥

मंदबुद्धि शिष्यों को प्रबोध कराने के लिए बुद्धिमान् श्री भावसेन मुनीश्वर ने कातंत्ररूपमाला नाम की वृत्ति को रचा है॥२॥

अन्य जनों के द्वारा संस्तुत मुझ भावसेन त्रैविद्यदेव का तो यह सिद्धांत है कि अपने से हीन जनों पर अनुग्रह किया जाय, समानजनों पर सौजन्य किया जाय और अपने से अधिकजनों में सम्मान प्रदर्शित किया जाय॥३॥

यद्यपि यह सिद्धांत है फिर भी जो अपनी बुद्धि के गर्व से उद्धत है और केवल हम जैसों के साथ मात्र स्पर्द्धा या ईर्ष्या करते हैं उनके गर्व रूपी पर्वत को नष्ट करने के लिये मेरे वचन वज्र के सदृश आचरण करते हैं॥४॥

इस प्रकार कातंत्र व्याकरण की रूपमाला नाम की प्रक्रिया समाप्त हुई। ❑

यहाँ उपयुक्त श्लोक और हैं।

अकारादिहसीमानं वर्णाम्नायं वितन्वता।
ऋषभेणार्हताद्येन स्वनामाख्यातमादितः ॥२ ॥
तथाहि,
अ एव स्वार्थिकेणाऽका तादृग् ऋ ऋषभाभिधा।
तदादिर्हावधिः पाठोकारादिहसीमकः ॥३ ॥
अः स्वरे कश्च वर्ग्येषु रादिर्यः स तु हान्वितः।
अकारादिहसीमाख्ये पाठेऽर्हं मंगलं पदं ॥४ ॥
यत्रार्हंपदसंदर्भाद् वर्णाम्नायः प्रतिष्ठितः।
तस्मै कौमारशब्दानुशासनाय नमोनमः ॥५ ॥
ब्राह्म्या कुमार्या प्रथमं सरस्वत्याप्यधिष्ठितं।
अर्हं पदं संस्मरंत्या तत् कौमारमधीयते ॥६ ॥
कुमार्या अपि भारत्या अङ्गन्यासेप्ययं क्रमः।
अकारादिहपर्यंतस्ततः कौमारमित्यदः ॥७ ॥

इति भद्रं भूयात्।

श्लोकार्थ—श्रीमान् प्रथम तीर्थङ्कर अर्हंत प्रभु का यह आख्यात-व्याकरण पृथ्वी तल पर विशेषरूप से जयशील होता है। जिसके प्रसाद से यह व्याकरण संपूर्ण अर्थ को सिद्ध करने वाली होवे ॥१ ॥

अकार को आदि में लेकर 'ह' सीमा पर्यंत वर्णों के समुदाय को कहते हुये श्रीमान् आदिप्रभु ऋषभदेव अर्हत् परमेष्ठी ने आदि में अपने नाम का आख्यात किया है ॥२ ॥

अर्थात् अर्हत् में वर्णों के समुदाय का प्रथम अक्षर 'अ' प्रथम है और वर्णों का अंतिम अक्षर 'ह' अंत में है। इसलिये आदि में आदिनाथ भगवान् ने 'अर्हत्' इस पद से अपने नाम को प्रगट किया है।

तथाहि—

श्लोकार्थ—स्वार्थिक में अण् अक् से 'अ' ही है और उसी प्रकार ऋ से ऋषभ नाम आता है। उसको आदि में करके 'ह' पर्यंत जो पाठ है वह आकारादि से ह की सीमा तक है अर्थात् अकार आदि में है और हकार अंत में है ॥३ ॥

स्वर में 'अ' वर्गों में क है और र को आदि में करके जो है वह 'ह' से सहित है। अकार को आदि में लेकर 'ह' पर्यंत पाठ में 'अर्हं' पद है वह मंगलभूत पद है ॥४ ॥

जहाँ पर 'अर्हं' पद के संदर्भ से वर्णों का समुदाय प्रतिष्ठित है उस कौमार शब्दानुशासन नाम की व्याकरण को बारंबार नमस्कार होवे ॥५ ॥

ब्राह्मी और कुमारी ने प्रथम ही सरस्वती से भी अधिष्ठित 'अर्हं' पद का संस्मरण करते हुये इस 'कौमार' व्याकरण का अध्ययन किया है ॥६ ॥

कुमारी और भारती के अंग न्यास में भी अकार को आदि में करके हकार पर्यंत यह क्रम है अतः इस व्याकरण का नाम 'कौमार' व्याकरण है ॥७ ॥

समाप्त

इति भद्रं भूयात्।

हिन्दी अनुवादकर्त्री की प्रशस्ति

शंभुछंद

महावीर वीर सन्मति भगवन् हे वर्धमान त्रिशलानंदन।
हे धर्मतीर्थ कर्ता तुमको, है मेरा कोटि कोटि वंदन॥
हे मंगलकर्ता लोकोत्तम, हे शरणागत रक्षक निरुपम।
इस कलियुग के भी अंतिम तक, तव अविच्छिन्न शासन अनुपम॥१॥
श्रीकुन्दकुन्द गुरुदेव मुनि को मेरा शत शत है प्रणाम।
है मूलसंघ में कुन्दकुन्द आम्याय सभी संघ में ललाम॥
उसमें सरस्वती गच्छ माना, गण कहलाता है बलात्कार।
इनमें हो चुके मुनी जितने, उन सबको मेरा नमस्कार॥२॥
कलिकालप्रभाव दलित करने, उत्पन्न हुये इक सूरिवर्य।
चारित्रचक्रवर्ती गुरूवर, श्रीशांतिसागराचार्यवर्य॥
इन परम्परा में देश भूषणाचार्य मुनी जग में विश्रुत।
उन आद्यगुरु के प्रसाद से, पाया व्याकरणज्ञान अद्भुत॥३॥
श्रीशांतिसिंधु के पट्टशिष्य, गुरू वीरसागराचार्य यती।
वे मेरे आर्यादीक्षागुरू उनसे ही हुई मैं ज्ञानमती॥

वीराब्द[1] चौबिस सौ निन्यानवे, है शरद्पूर्णिमा आश्विन में।
कातंत्र रूपमाला का यह अनुवाद पूर्ण किया शुभदिन में॥४॥
इस जंबूद्वीप के भरतक्षेत्र में आर्यखंड में कर्मभूमि।
भारत की रजधानी मानी, यह इंद्रप्रस्थ उत्तम भूमि॥
महावीर प्रभू के शुभ पच्चीस शतक निर्वाण महोत्सव में।
मैं भी संघ सहित यहाँ आई, जिनधर्म उद्योत रुची मन में॥५॥

दोहा—यह हिन्दी अनुवाद युत, सरल व्याकरण मान।
पढ़े पढ़ावें सर्वजन, बने श्रेष्ठ विद्वान्॥६॥
आगम के सूत्रार्थ को, करें आर्ष अनुकूल।
निज पर को संतुष्ट कर प्राप्त करें भव कूल॥७॥
यावत् जिन आगम यहाँ, जग में करे प्रकाश।
तावत् यह व्याकरण कृति, करे सुज्ञान विकास॥८॥

वर्धतां जिनशासनम्

---

१. ईस्वी सन् १९७३

परिशिष्ट

भ्वादिगण की धातुयें

भू सत्तायां	परस्मैपदी	भवति
एधङ् वृद्धौ	आत्मनेपदी	एधते
डुपचषुञ् पाके	उभयपदी	पचति, पचते
षिधु गत्यां	परस्मैपदी	सेधति
षिधू शास्त्रे मांगल्ये च	परस्मैपदी	सिद्ध्यति
णीङ् प्रापणे	उभयपदी	नयति नयते
स्रंस् भ्रंस् अवस्रंसने	आत्मनेपदी	स्रंसते, भ्रंसते
ध्वंस् गतौ च	आत्मनेपदी	ध्वंसते
ग्रथि वकि कौटिल्ये	आत्मनेपदी	ग्रन्थते, वंकते
टुनदि समृद्धौ	परस्मैपदी	नंदति
वदि अभिवादनस्तुत्योः	आत्मनेपदी	वंदते
दंश दशने	परस्मैपदी	दशति
षञ्ज स्वंगे	परस्मैपदी	सजति
ष्वंज परिष्वंगे	आत्मनेपदी	परिष्वजते
रञ्ज रागे	परस्मैपदी	रंजति
ष्ठिवु क्षिवु निरसने	परस्मैपदी	निष्ठीवति
क्लमु ग्लानौ	परस्मैपदी	क्लामति
चमु छमु जमु जिमु अदने	परस्मैपदी	आचामति
क्रमु पादविक्षेपे	परस्मैपदी	क्रामति
षु स्रु द्रु प्रु ऋच्छ गम्लृ सृ पृ गतौ	परस्मैपदी	गच्छति
इषु इच्छायां	परस्मैपदी	इच्छति
यमु उपरमे	परस्मैपदी	यच्छति
पा पाने	परस्मैपदी	पिबति
घ्रा गंधोपादाने	परस्मैपदी	जिघ्रति
ध्मा शब्दाग्निसंयोगयोः	परस्मैपदी	धमति
स्था गतिनिवृत्तौ	परस्मैपदी	तिष्ठति
म्ना अभ्यासे	परस्मैपदी	मनति
दाण् दाने	परस्मैपदी	प्रयच्छति
दृशिर् प्रेक्षणे	परस्मैपदी	पश्यति
ऋ प्रापणे	परस्मैपदी	ऋच्छति

ऋ सृ गतौ	परस्मैपदी	सृ धावति
शद्लृ शातने	आत्मनेपदी	शीयते
षद्लृ विशरणमत्यवसादनेषु	परस्मैपदी	सीदति
इण् गतौ	परस्मैपदी	एति
इक् स्मरणे	परस्मैपदी	
इङ् अध्ययने	आत्मनेपदी	अधीते
वद व्यक्तायां वाचि	परस्मैपदी	वदति
ध्रज ध्वज वज व्रज गतौ	परस्मैपदी	व्रजति
वर ईप्सायां	परस्मैपदी	
चर गतिभक्षणयो:	परस्मैपदी	चरति
फल निष्पत्तौ	परस्मैपदी	फलति
शल श्वल्ल आशुगतौ	परस्मैपदी	शलति
रद विलेखने	परस्मैपदी	रदति
गद् व्यक्तायां वाचि	परस्मैपदी	गदति
अट पट इट किट कट गतौ	परस्मैपदी	अटति
वेञ् तंतुसंताने	परस्मैपदी	वयति
अव रक्ष पालने	परस्मैपदी	अवति, रक्षति
तक्षू त्वक्षू तनुकरणे	परस्मैपदी	तक्षति, त्वक्षति
मुष स्तेये	परस्मैपदी	मुष्णाति
कुष निष्कर्षे	परस्मैपदी	कुषति
खगे हसने	परस्मैपदी	खगति
रगे शंकायां	परस्मैपदी	रगति
कगे बोचिंते	परस्मैपदी	कगति
वह् परिकल्पने	परस्मैपदी	वहति
रह् त्यागे	परस्मैपदी	रहति
टुवमुद्गिरणे	परस्मैपदी	वमति
क्रमु पादविक्षेपे	परस्मैपदी	क्रमति
चमु छमु जमु जिमु झमु अदने	परस्मैपदी	चमति, जिमति
व्यय क्षये (गतौ-पाणिनी)	परस्मैपदी	व्ययति
अय वय मय पय तय चय रय णय गतौ	आत्मनेपदी	अयते
कण निमीलने	परस्मैपदी	कणति
रमु क्रीडायां	आत्मनेपदी	रमते
णमु प्रह्वत्वे शब्दे च	आत्मनेपदी	नमति

रिश रुश हिंसायां	आत्मनेपदी	रिशति, रुशति
क्रुश आह्वाने गाने रोदने च	आत्मनेपदी	आक्रोशति
लिश विच्छ गतौ	आत्मनेपदी	
क्रुश ह्वरणदीप्तयो:	आत्मनेपदी	
विश प्रवेशने	परस्मैपदी	विशति
त्विष दीप्तौ	परस्मैपदी	त्विषति
कृष विलेखने	परस्मैपदी	कृषति
श्लिष् आलिंगने	परस्मैपदी	आश्लिषति
द्विष् अप्रीतौ	परस्मैपदी	द्वेष्टि द्विष्टे
दह भस्मीकरणे	आत्मनेपदी	दहति
द्युत शुभ रुच दीप्तौ	आत्मनेपदी	द्योतते, शोभते, रोचते
ह्वेञ् स्पर्धायां वाचि	परस्मैपदी	आह्वयति
भज श्रिञ् सेवायां	उभयपदी	भजति भजते श्रयति श्रयते
क्षिप् क्षान्तौ	परस्मैपदी	क्षिपति
क्षल शौचे	परस्मैपदी	क्षालयति
अर्ह पूजायां	परस्मैपदी	अर्हति
ढौकृ तौकृ गतौ	आत्मनेपदी	ढौकते
भ्राज् भ्राष दीप्तौ	आत्मनेपदी	भ्राजते भ्राषते
दीप दीप्तौ	आत्मनेपदी	दीपते
भाष व्यक्तायां वाचि	आत्मनेपदी	भाषते
जीव प्राणधारणे	परस्मैपदी	जीवति
स्फुट परिहासे	परस्मैपदी	स्फुटति
नट अवस्यंदने	परस्मैपदी	नटति
कुट छेदने	परस्मैपदी	कुटति
ग्रस कवलग्रहणे	परस्मैपदी	ग्रसति
पठ वट ग्रन्थे	परस्मैपदी	पठति
राजृ दीप्तौ	उभयपदी	राजति, राजते
भ्रासृट् भ्राजृट् भ्लासृट् दीप्तौ	आत्मनेपदी	भ्रासते, भ्राजते, भ्लासते
कासृ भासृ दीप्तौ	आत्मनेपदी	कासते, भासते
ञिइन्धिदीप्तौ	आत्मनेपदी	इन्धते
तृ प्लवनतरणयो:	परस्मैपदी	तरति
भज श्रीङ् सेवायां	उभयपदी	भजति, श्रयति
त्रपूष् लज्जायां	आत्मनेपदी	त्रपते

श्रन्थ ग्रन्थ	आत्मनेपदी	श्रन्थते, ग्रन्थते
दम्भू दंभे	आत्मनेपदी	
टुवप् बीजसंताने	आत्मनेपदी	वपति
यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु	उभयपदी	यजति, यजते
वस निवासे	परस्मैपदी	वसति

भू सत्तायां—होना परस्मैपदी धातु

वर्तमान (लट्)

लट्	भवति	भवतः	भवन्ति
	भवसि	भवथः	भवथ
	भवामिं	भवावः	भवामः
सप्तमी (विधिलिङ्)	भवेत्	भवेताम्	भवेयुः
	भवेः	भवेतम्	भवेत
	भवेयम्	भवेव	भवेम
पंचमी (लोट्)	भवतु, भवतात्	भवताम्	भवन्तु
	भव, भवतात्	भवतम्	भवत
	भवानि	भवाव	भवाम
ह्यस्तनी (लङ्)	अभवत्	अभवताम्	अभवन्
	अभवः	अभवतम्	अभवत
	अभवम्	अभवाव	अभवाम
अद्यतनी (लुङ्)	अभूत्	अभूताम्	अभूवन्
	अभूः	अभूतम्	अभूत
	अभूवम्	अभूव	अभूम
परोक्षा (लिट्)	बभूव	बभूवतुः	बभूवुः
	बभूविथ	बभूवथुः	बभूव
	बभूव	बभूविव	बभूविम
श्वस्तनी (लुट्)	भविता	भवितारौ	भवितारः
	भवितासि	भवितास्थः	भवितास्थ
	भवितास्मि	भवितास्वः	भवितास्मः
आशीः (आशीर्लिङ्)	भूयात्	भूयास्ताम्	भूयासुः
	भूयाः	भूयास्तम्	भूयास्त
	भूयासम्	भूयास्व	भूयास्म
भविष्यती (लृट्)	भविष्यति	भविष्यतः	भविष्यन्ति
	भविष्यसि	भविष्यथः	भविष्यथ

	भविष्यामि	भविष्याव:	भविष्याम:
क्रियातिपत्ति (लृङ्)	अभविष्यत्	अभविष्यताम्	अभविष्यन्
	अभविष्य:	अभविष्यतम्	अभविष्यत
	अभविष्यम्	अभविष्याव	अभविष्याम

एध् वृद्धौ बढ़ना—आत्मनेपदी धातु

वर्तमान (लट्)

	एधते	एधेते	एधंते
	एधसे	एधेथे	एधध्वे
	एधे	एधावहे	एधामहे
सप्तमी	एधेत	एधेयाताम्	एधेरन्
	एधेथा:	एधेयाथाम्	एधेध्वम्
	एधेय	एधेवहि	एधेमहि
पंचमी	एधताम्	एधेताम्	एधन्ताम्
	एधस्व	एधेथाम्	एधध्वम्
	एधे	एधावहै	एधामहै
ह्यस्तनी	ऐधत	ऐधेताम्	ऐधन्त
	ऐधेथा:	ऐधेथाम्	ऐधध्वम्
	ऐधे	ऐधावहि	ऐधामहि
अद्यतनी	ऐधिष्ट	ऐधिषाताम्	ऐधिषत
	ऐधिष्ठा:	ऐधिषाथाम्	ऐधिढ्वम्
	ऐधिषि	ऐधिष्वहि	ऐधिष्महि
परोक्षा (१)	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चक्राते	एधाञ्चक्रिरे
	एधाञ्चकृषे	एधाञ्चक्राथे	एधाञ्चकृढ्वे
	एधाञ्चक्रे	एधाञ्चकृवहे	एधाञ्चकृमहे
परोक्षा (२)	एधामास	एधामासतु:	एधामासु:
	एधामासिथ	एधामासथु:	एधामास
	एधामास	एधामास्व	एधामास्म
परोक्षा (३)	एधांबभूव	एधांबभूवतु:	एधांबभूवु:
	एधांबभूविथ	एधांबभूवथु:	एधांबभूव
	एधांबभूव	एधांबभूविव	एधांबभूविम

अदादिगण की धातुयें

अद् प्सा भक्षणे	परस्मैपदी	अत्ति
शीङ् स्वप्ने	आत्मनेपदी	शेते
ब्रूञ् व्यक्तायां वाचि	उभयपदी	ब्रवीति, ब्रूते
असु भुवि	परस्मैपदी	अस्ति
रुदिर अश्रुविमोचने	परस्मैपदी	रोदिति
ञिष्वप् शये	परस्मैपदी	स्वपिति
श्वस प्राणने	परस्मैपदी	श्वसिति
प्राण श्वसने	परस्मैपदी	प्राणिति
जक्ष भक्षहसनयो:	परस्मैपदी	जक्षिति
षूङ् प्राणिगर्भविमोचने	आत्मनेपदी	सूते
हन हिंसागत्यो:	परस्मैपदी	हन्ति
चक्षङ् व्यक्तायां वाचि	आत्मनेपदी	आचष्टे
ईश् ऐश्वर्ये	आत्मनेपदी	ईष्टे
शासु अनुशिष्टौ	परस्मैपदी	शास्ति
दीधीङ् दीप्तिदेवनयो:	आत्मनेपदी	आदीधीते
वेवीङ् वेतनातुल्ये	आत्मनेपदी	वेतीते
ईड्स्तुतौ	आत्मनेपदी	ईट्टे
णु स्तुतौ	परस्मैपदी	नौति
स्तुञ् स्तुतौ	उभयपदी	स्तौति, स्तुते
ऊर्णुञ् आच्छादने	उभयपदी	प्रोर्णोति, प्रोर्णुते
विद् ज्ञाने	परस्मैपदी	वेत्ति
प्सा भक्षणे	परस्मैपदी	प्साति
रा ला आदाने	परस्मैपदी	राति, लाति
द्विष् अप्रीतौ	परस्मैपदी	द्वेष्टि
इण् गतौ	परस्मैपदी	एति
दुह प्रपूरणे	उभयपदी	दोग्धि, दुग्धे
लिह् आस्वादने	उभयपदी	लेढि, लीढे
उष् दाहे	परस्मैपदी	
विद् ज्ञाने	परस्मैपदी	वेत्ति
जाग्र निदाक्षये	परस्मैपदी	जागर्ति
वश कांतौ	परस्मैपदी	वष्टि
ख्या प्रकथने	परस्मैपदी	ख्याति

जुहोत्यादिगण की धातुयें

हु दानादनयो:	परस्मैपदी	जुहोति
ओहाङ् गतौ	आत्मनेपदी	जिहीते
आङ् माने शब्दे च	आत्मनेपदी	मिमीते
डुधाञ् डुभृञ् धारणपोषणयो:	उभयपदी	दधाति, धत्ते
डुधाञ् डुभृञ् धारणपोषणयो:	उभयपदी	बिभर्ति, बिभृते
ओहाक् त्यागे	परस्मैपदी	जहाति
ह्री लज्जायां	परस्मैपदी	जिह्रेति
ऋ सृ गतौ	परस्मैपदी	इयर्ति, ससर्ति
पृ पालनपूरणयो:	परस्मैपदी	पिपर्ति
णिजिर् शौचपोषणयो:	परस्मैपदी	नेनेक्ति
विजिर् पृथक्भावे	परस्मैपदी	वेवेक्ति
विषलृ व्याप्तौ	परस्मैपदी	वेवेष्टि
ञिभी भये	परस्मैपदी	बिभेति

दिवादिगण की धातुयें

दिवु क्रीडाविजिगीषा	परस्मैपदी	दीव्यति
षूङ् प्राणिप्रसवे	आत्मनेपदी	सूयते
णह्ञ् बंधने	उभयपदी	संनह्यति, संनह्यते
ञिमिदा स्नेहने	परस्मैपदी	प्रमेद्यति
शो तनूकरणे	परस्मैपदी	श्यति
छो छेदने	परस्मैपदी	छ्यत्ति
षो अंतकर्मणि	परस्मैपदी	स्यति
दो अवखंडने	परस्मैपदी	द्यति
शम् दम् उपशमे	परस्मैपदी	शाम्यति, दाम्यति
तमु कांक्षायां	परस्मैपदी	ताम्यति
श्रमु तपसि खेदे च	परस्मैपदी	श्राम्यति
भ्रमु अनवस्थाने	परस्मैपदी	भ्राम्यति
क्षमूष् सहने	परस्मैपदी	क्षाम्यति
क्लमु ग्लानौ	परस्मैपदी	क्लाम्यति
मदी हर्षे	परस्मैपदी	माद्यति
जनी प्रादुर्भावे	आत्मनेपदी	जायते
व्यध ताड़ने	परस्मैपदी	विध्यति
शिष्लृ	परस्मैपदी	शिष्यति

तुष तुष्टौ	परस्मैपदी	तुष्यति
पुष पुष्टौ	परस्मैपदी	पुष्यति
शुष शोषणे	परस्मैपदी	शुष्यति
असु क्षेपणे	परस्मैपदी	अस्यति
तृप प्रीणने	परस्मैपदी	तृप्यति
पद गतौ	आत्मनेपदी	पद्यते

स्वादिगण की धातुयें

षुञ् अभिषवे	परस्मैपदी	सुनोति
अशूङ् व्याप्तौ	आत्मनेपदी	अश्नुते
चिञ् चयने	उभयपदीं	चिनोति, चिनुते
श्रु श्रवणे	परस्मैपदी	शृणोति

तुदादिगण की धातुयें

तुद् व्यथने	परस्मैपदी	तुदति
मृङ् प्राणत्यागे	आत्मनेपदी	म्रियते
मुच्लृ मोक्षणे	उभयपदी	मुञ्चति, मुञ्चते
लुप्लृञ् छेदने	उभयपदी	लुभ्यति, लुभ्यते, लुम्पति, लुम्पते
विद्लृञ् लाभे	उभयपदी	विन्दति, विन्दते
लिप उपदेहे	उभयपदी	लिम्पति, लिम्पते
षिचिर क्षरणे	उभयपदी	सिञ्चति, सिञ्चते
कृ विक्षेपे	परस्मैपदी	किरति
गृ निगरणे	परस्मैपदी	गिरति
व्यच् व्याजीकरणे	परस्मैपदी	विचति
प्रच्छ ज्ञीप्सायां	परस्मैपदी	पृच्छति
भ्रस्ज् पाके	उभयपदी	भृज्जति, भृज्जते
स्पृश संस्पर्शने	परस्मैपदी	स्पृशति
मृश आमर्शने	परस्मैपदी	मृशति

रुधादिगण की धातुयें

रूधिर, आवरणे	उभयपदी	रुणद्धि, रुन्धे
भुज पालनाभ्यवहारयोः	उभयपदी	भुनक्ति, भुङ्क्ते
भुज अशन अर्थ में	आत्मनेपदी	भुङ्क्ते
युजिर् योगे	उभयपदी	युनक्ति, युङ्क्ते

भिदिर् विदारणे	परस्मैपदी	भिनत्ति
छिदिर् द्विधाकरणे	परस्मैपदी	छिनत्ति
पिष्लृ संचूर्णने	परस्मैपदी	पिनष्टि
हिंस् हिंसायां	परस्मैपदी	हिनस्ति

तनादिगण की धातुयें

तन् विस्तारे	परस्मैपदी	तनोति
मनुङ् अवबोधने	आत्मनेपदी	मनुते
डुकृञ् करणे	उभयपदी	करोति, कुरुते

क्रयादिगण की धातुयें

डुक्रीञ् द्रव्यविनिमये	परस्मैपदी	क्रीणाति
वृञ् संभक्तौ	आत्मनेपदी	वृणीते
गृहञ् उपादाने	उभयपदी	गृह्णाति, गृह्णीते
ज्या वयोहानौ	परस्मैपदी	जीनाति
पूञ् पवने	परस्मैपदी	पुनाति
लूञ् छेदने	परस्मैपदी	लुनाति
ज्ञा अवबोधने	उभयपदी	जानाति, जानीते
वध संयमने	परस्मैपदी	बध्नाति

चुरादिगण की धातुयें

चुर स्तेये	परस्मैपदी	चोरयति
मंत्रि गुप्तभाषणे	आत्मनेपदी	मन्त्रयते
वृञ् आवरणे	उभयपदी	वारयति, वारयते
गुड़ि सजि पल रक्षणे	परस्मैपदी	गुण्डयति, सञ्जयति, पालयति
अर्च पूजायां	परस्मैपदी	अर्चयति
क्षल् शौचे	परस्मैपदी	क्षालयति
कथ वाक्यप्रबन्धे	परस्मैपदी	कथयति
तर्ज भर्त्स संतर्जने	परस्मैपदी	तर्जयति, भर्त्सयति
चिति स्मृत्यां	परस्मैपदी	चिन्तयति
पीड गहने	परस्मैपदी	पीडयति
मील निमेषणे	परस्मैपदी	मीलयति
स्फुट परिहासे	परस्मैपदी	स्फुटयति
लक्ष दर्शनांकनयोः	परस्मैपदी	लक्षयति
गण परिसंख्याने	परस्मैपदी	गणयति
भक्ष अदने	परस्मैपदी	भक्षयति

घट चलने	परस्मैपदी	घटयति
छद षद संवरणे	परस्मैपदी	छादयति
तुल उन्माने	परस्मैपदी	तोलयति
मूल रोहणे	परस्मैपदी	मूलयति
ज्ञप मानुबंधे	परस्मैपदी	ज्ञपयति
चूर्ण संकोचने	परस्मैपदी	चूर्णयति
पूज पूजायां	परस्मैपदी	पूजयति
लुण्ट स्तेये	परस्मैपदी	लुण्टयति
मडि भूषायां हर्षे च	परस्मैपदी	मण्डयति
तत्रि कुटुंबधारणे	परस्मैपदी	तन्त्रयति
वञ्च प्रलंभने	परस्मैपदी	वञ्चयति
चर्च अध्ययने	परस्मैपदी	चर्चयति
धुषिर् शब्दे	परस्मैपदी	घोषयति
भूष अलंकारे	परस्मैपदी	भूषयति
मुच् प्रमोचने	परस्मैपदी	मोचयति
पूरी आप्यायने	परस्मैपदी	पूरयति
कल गतौ संख्याने च	परस्मैपदी	कलयति
मह पूजायां	परस्मैपदी	महयति
स्पृह ईप्सायां	परस्मैपदी	स्पृहयति
गवेष मार्गणे	परस्मैपदी	गवेषयति
मृग अन्वेषणे	आत्मनेपदी	मृगयते
स्थूल परिबृंहणे	परस्मैपदी	स्थूलयति
अर्थ उपयाञ्चायां	परस्मैपदी	अर्थयति
मूत्र प्रस्रवणे	परस्मैपदी	मूत्रयति
पार तीर समाप्तौ	परस्मैपदी	पारयति तीरयति
चित्र विचित्रीकरणे	परस्मैपदी	चित्रयति
छिद्र कर्णभेदे	परस्मैपदी	छिद्रयति
अन्ध दृष्ट्युपसंहारे	परस्मैपदी	अंधयति
दण्ड निपातने	परस्मैपदी	दण्डयति
सुख दुःख तत्क्रिययोः	परस्मैपदी	सुखयति, दुःखयति
रस आस्वादन स्नेहनयोः	परस्मैपदी	रसयति
वर्ण वर्णक्रियाविस्तारगुणवचने	परस्मैपदी	वर्णयति
पर्ण हरितभावे	परस्मैपदी	पर्णयति

अध पापकरणे	परस्मैपदी	अघयति
राध साध संसिद्धो	परस्मैपदी	आराधयति साधयति

संमिश्रित

वेञ् तंतुसंताने	परस्मैपदी	वयति	भ्वादि०
व्यध ताड़ने	परस्मैपदी	विध्यति	दिवा०
वश कांतौ	परस्मैपदी	वष्टि	अदा०
व्यच् व्याजीकरणे	परस्मैपदी	विचति	तुदा०
प्रच्छ ज्ञीप्सायां	परस्मैपदी	पृच्छति	तुदा०
भ्रस्ज् पाके	उभयपदी	भृज्जति, भृज्जते	तुदा०
पिष्लृ संचूर्णने	परस्मैपदी	पिनष्टि	रुधा०
विष्लृ व्याप्तौ	परस्मैपदी	वेवेष्टि	रुधा०
शिष्लृ	परस्मैपदी	शिष्यति	दिवा०
पुष् तुष् तुष्टौ	परस्मैपदी	तुष्यति पुष्यति	दिवा०
शुष् शोषणे	परस्मैपदी	शुष्यति	दिवा०
असु क्षेपणे	परस्मैपदी	अस्यति	दिवा०
ख्या	परस्मैपदी	ख्याति	अदा०
स्पृश संस्पर्शने	परस्मैपदी	स्पृशति	तु०
मृश् आमर्शने	परस्मैपदी	मृशति	तुदा०
तृप् प्रीणने	परस्मैपदी	तृप्यति	दि०
भज् श्रिञ् सेवायां	उभयपदी	भजति, भजते, श्रयति, श्रयते	
क्षल शौचे	परस्मैपदी	क्षालयति	चुरा०
कथ वाक्यप्रबन्धे	परस्मैपदी	कथयति	चुरा०
तर्ज भर्त्स संतर्जने	परस्मैपदी	तर्जयति	चुरा०
तर्ज भर्त्स संतर्जने	परस्मैपदी	भर्त्सयति	चुरा०
अर्ह पूजायां	परस्मैपदी	अर्हति	भ्वा०
ढौकृ तौकृ गतौ	आत्मनेपदी	ढौकते	भ्वा०
भ्राज् भाष् दीप्तौ	आत्मनेपदी	भ्राजते भ्राषते	भ्वा०
भाष् व्यक्तायां वाचि	आत्मनेपदी	भाषते	भ्वा०
जीव प्राणधारणे	परस्मैपदी	जीवति	भ्वा०
चिति स्मृत्यां	परस्मैपदी	चिंतयति	चु०
पद गतौ	आत्मनेपदी	पद्यते	दि०

❑

कातंत्ररूपमाला—सूत्रावली

अकारादि सूत्र

आकारादि सूत्र

इकारादि सूत्र

ईकारादि सूत्र

उकारादि सूत्र

ऊकारादि सूत्र

ऋकारादि सूत्र

एकारादि सूत्र

ऐकारादि सूत्र

ओकारादि सूत्र

औकारादि सूत्र

अंकारादि सूत्र

अः कारादि सूत्र

क-कारादि सूत्र

खकारादि सूत्र

ग-कारादि सूत्र

घ-कारादि सूत्र

ङ कारादि सूत्र

च कारादि सूत्र

छ कारादि सूत्र

सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक	सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक
छशोश्च	२२२	१२२	छशोश्च	२४४	२१६
छदिगमिपदिनीभ्यस्त्रन्	३५८	७७६	छ्वोः शूठौ पञ्चमे च	२८९	३९२
छादेर्घे स्मन्त्रन्क्विप्सु च	३५८	७७३			

ज कारादि सूत्र

सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक	सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक
जझञशकारेषु ञकारम्	२५	८८	जसि	३५	१३१
जः सर्व इः	४०	१५२	जरा जरः स्वरे वा	६१	२१८
जश्शसौ नपुंसके	७०	२३८	जश्शसोः शिः	७०	२३९
जक्षादिश्च	२२०	१०९	जहातेर्वा	२३३	१७२
जनिवध्योश्च	२८२	३६२	जपादीनां च	२९४	४२७
जनिजृष्क्नसृञ्जोऽमन्ताश्च	३०२	४५६	ज्वलव्हलह्मलनमोनुपसर्गा वा	३०२	४५८
जा जनेर्विकरणे	२३६	१८७	जान्तनशामनिटां	३६१	७८८
जिह्वामूलीयोपध्मानीयौ च	२७	९९	जिघ्रतेर्वा	३०१	४४३
जपिवमिभ्यामिड् वा	३४७	७११	जिभुवोः ष्णुक्	३५१	७३४
जुहोत्यादेश्च	२२८	१४८	जुहोत्यादीनां सार्वधातुके	२२९	१५०
जुहोतेः सार्वधातुके	२२९	१५५	जेर्गिः सन्परोक्षयोः	२८७	३८२

ञकारादि सूत्र

सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक
ञ्यनुबन्धमतिबुद्धि पूजार्थेभ्यः क्तः	३५०	७२७

ट कारादि सूत्र

सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक	सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक
टठयोः षकारम्	२४	८२	टग्लक्षणो जायापत्योः	३३४	६४०
ट्वनुबन्धादथुः	३५५	७५७	टादौ स्वरे वा	५६	२०२
टादौ भाषितपुंस्कं पुंवद्वा	७४	२५२	टात् सुप्तादिर्वा	८९	२७६
टेठे वा षम्	२७	९६	टौसोरे	५९	२१३
टौसोरनः	१०३	३०७			

ड कारादि सूत्र

सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक	सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक
डढणेषु णाम्	२५	९०	ड्वनुबन्धात्त्रिमक्तेन निर्वृत्ते	३५५	७५८
डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः	९१	२८१	डानुबन्धेऽन्त्यस्वरादेर्लोपः	१८२	५१०
डुधाञ्ह्रस्वः	२३०	१६०	डोऽसंज्ञायामपि	३३३	६३४

ढ-कारादि सूत्र

सूत्र	पृष्ठ	सूत्रक्रमांक
ढे ढलोपो दीर्घश्चोपधायाः	२२८	१४७

ण कारादि सूत्र

तकारादि सूत्र

ध कारादि सूत्र

न कारादि सूत्र

प कारादि सूत्र

फ कारादि सूत्र

प्रकारादि सूत्र

ब-कारादि सूत्र

भकारादि सूत्र

म कारादि सूत्र

यकारादि सूत्र

रकारादि सूत्र

वकारादिसूत्र

सकारादि सूत्र

शकारादि सूत्र

षकारादि सूत्र

हकारादि सूत्र

क्ष त्र ज्ञादिसूत्र

कातन्त्ररूपमाला की

सूत्रावली समाप्त

कातन्त्ररूपमाला में प्रयुक्त कतिपय परिभाषाओं की सूची

❑

कातन्त्ररूपमाला के श्लोकों की अकारादि क्रम से सूची

❑